सादर्शनभाष्य

(तृतीय भाग)

भाष्यकार

पं॰ मयाशंकर शर्मा

प्रकाशक—

हरयाणा साहित्य संस्थान

गुरुकुल झज्जर, रोहतक

॥ ओ३म् ॥

मीमांसादर्शनभाष्य

तृतीय भाग

(७ से १२ अध्याय)

गुर्जरभाषाभाष्यकार

श्री पण्डित मयाशंकर शर्मा

आर्यभाषानुवादक

डाक्टर भवानीलाल भारतीय

अध्यक्ष

महर्षि दयानन्दपीठ, पञ्जाब विश्वविद्यालय

चण्डीगढ़

२०३८ विक्रम संवत्]

[मूल्य ४०) रुपये

ओ३म्

मीमांसादर्शनभाष्य का सूचीपत्र

अध्याय ७

अध्याय ८

अध्याय ९

अध्याय १०

अध्याय ११

अध्याय १२

भूमिका

स्वाध्यायशील सज्जनों की दर्शनसम्बन्धी स्वाध्यायप्रवृत्ति को देखते हुये हमने संकल्प लिया था कि सरल आर्यभाषायुक्त और अल्पमूल्य वाले दर्शन भाष्य उपलब्ध कराये जाने चाहियें। इसी ध्येय को सम्मुख रखते हुये हमने श्री पण्डित आर्यमुनि कृत दर्शनभाष्य इस ध्येयपूर्ति के लिये प्रकाशित करने की योजना बनाई और इसी योजनान्तर्गत योगार्यभाष्य, सांख्यार्यभाष्य और मीमांसार्यभाष्य (१ से ६ अध्याय) प्रकाशित कर दिये। ७ से १२ अध्याय तक आर्यमुनि कृतभाष्य बहुत यत्न और अन्वेषण करने पर भी नहीं मिल सका। इस तृतीय भाग के छपकर ४ रु० में जनता तक शीघ्र पहुंचने के आश्वासन का विज्ञापन मीमांसार्यभाष्य (द्वितीय भाग) में सन् १९०७ में प्रकाशित हुवा था। सम्भव है भाष्य किया हो और वह किसी कारण से छप न सका हो।

इस अभाव की पूर्ति हमने आर्य विद्वान् पं० मयाशंकर शर्मा द्वारा विरचित संवत् २००८ में बडौदा से मुद्रित और प्रतापजी सूरजी बल्लभदास बम्बई की ओर से प्रकाशित मीमांसादर्शन के गुजराती भाषाभाष्य का आर्यभाषान्तर करके प्रकाशित करवाया है। इससे आगे न्याय, वैशेषिक और वेदान्त दर्शन के पं० आर्यमुनिकृत आर्यभाष्य शीघ्र ही प्रकाशित करवाये जायेंगे। पं० मयाशंकर ने वैशेषिक और न्याय दर्शन का भी गुजराती भाषा में भाष्य किया था।

मीमांसादर्शन से अतिरिक्त शेष पांच दर्शनों के भाष्य समय-समय पर विद्वज्जन करते आये हैं तथा इनका पठनपाठन भी होता ही रहता है। किन्तु विशिष्ट यज्ञ और कर्मकाण्ड की परम्परा के लुप्त होने से मीमांसादर्शन का प्रचार और प्रसार न्यूनतम होता चला गया। जिस प्रकार योग-सांख्य और न्यायवैशेषिक को विषयसाम्यता के कारण युग्म रूप में गिना जाता है, उसी भांति इस पूर्वमीमांसा का उत्तरमीमांसा (वेदान्त) से साहचर्य माना गया है।

मीमांसा शब्द **'मान पूजायाम्'** धातु से सन् प्रत्यय के योग से बना है। **'मानबधदानशानभ्यो दीर्घश्चाभ्यासस्य** (अष्टाध्यायी ३।१।६) महर्षि पाणिनि के इस सूत्र द्वारा 'मीमांसा' शब्द की सिद्धि होती है। **'मनोर्जिज्ञासायाम्'** इस वचन से मानधातु से जिज्ञासा अर्थ में सन् प्रत्यय लगा हुवा है। इससे मीमांसा शब्द का अर्थ जिज्ञासा हुवा। इस दर्शन का प्रथम सूत्र है—**'अथातो धर्म-जिज्ञासा'**। धर्म की जिज्ञासा और धर्म की मीमांसा का एक ही अर्थ है।

जिज्ञासा का अर्थ है 'जानने की इच्छा'। 'जिज्ञासा—ज्ञानेच्छासाध्यो विचारः' ज्ञान की इच्छा का साध्य विचार होता है, यही जिज्ञासा है। अर्थात् धर्ममीमांसा, धर्मजिज्ञासा और धर्मविचार ये सभी पर्यायार्थक हैं।

प्रसिद्ध इतिहास ग्रन्थ महाभारत के रचयिता महर्षि वेदव्यास बादरायण के शिष्य महर्षि जैमिनिमुनि कृत इस पूर्वमीमांसादर्शन के पठन-पाठन के विषय में महर्षि दयानन्द सरस्वती अपने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ग्रन्थ के ग्रन्थप्रामाण्याप्रामाण्यविषय में इस प्रकार लिखते हैं—

तत्राद्यं कर्मकाण्डविधायकं धर्मधर्मिव्याख्यामयं व्यासमुन्यादिकृतभाष्य-सहितं जैमिनिमुनिकृतसूत्रं पूर्वमीमांसाशास्त्ररूपं ग्राह्यम्। अर्थात्—ऐसे ही वेदों के छः उपाङ्ग अर्थात् जिनका नाम षट्शास्त्र है—उनमें से एक व्यासमुनि आदि कृतभाष्यसहित जैमिनिमुनिकृत पूर्वमीमांसा, जिनमें कर्मकाण्ड का विधान और धर्म धर्मी दो पदार्थों से सब पदार्थों की व्याख्या की है……।

इसी प्रकार सत्यार्थप्रकाश अष्टमसमुल्लास में छः शास्त्रों में अविरोध दिखाते हुये महर्षि दयानन्द जी ने मीमांसा के विषय में लिखा है—'ऐसा कोई भी कार्य जगत् में नहीं होता कि जिसके बनाने में कर्मचेष्टा न की जाये'…… इसलिये सृष्टि छः कारणों से बनती है। उन छः कारणों की व्याख्या एक-एक की एक-एक शास्त्र में है। इसीलिये उनमें विरोध कुछ भी नहीं।

मीमांसादर्शन में जीवात्मा की सत्ता शरीर, इन्द्रिय, मन और बुद्धि की साक्षी से मानी है। इसी भांति स्वर्ग, यज्ञयाग, अग्नि, वरुण, वायु, अश्विनी आदि देवताओं का भी वर्णन प्रकरण और प्रकरणांशों में किया गया है। इस दर्शन पर शबरस्वामीकृत संस्कृतभाष्य उपलब्ध है। कुमारिलभट्ट, मण्डनमिश्र, वाचस्पतिमिश्र, पार्थसारथिमिश्र और माधवाचार्य आदि प्रकांड पण्डितों ने इस दर्शन पर टीकायें लिखी हैं। हमने आर्ष प्रणाली के सर्वाधिक अनुकूल पण्डित आर्यमुनि कृतभाष्य प्रथम छः अध्यायों का प्रकाशित किया है। शेष सातवें से बारहवें अध्याय तक पण्डित मयाशंकर शर्मा कृत गुजराती भाष्य का आर्यभाषानुवाद प्रकाशित किया है। यह अनुवाद पण्डित भवानीलाल जी भारतीय ने किया है। हम भाष्यकर्त्ता और अनुवादक दोनों ही विद्वानों के हृदय से आभारी हैं।

इस मीमांसादर्शन में १२ अध्याय हैं। तृतीय, षष्ठ और दशम अध्याय में आठ-आठ पाद हैं। शेष ९ अध्यायों में चार-चार पाद हैं। इस प्रकार कुल ६० पाद हैं। पण्डित आर्यमुनि कृत भाष्यानुसार मीमांसादर्शन की कुल-सूत्र संख्या २७३० है। पं० मयाशंकर शर्मा के अनुसार २७३६ सूत्र हैं। स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती के अनुसार २७३८ सूत्र हैं। पण्डित मयाशंकर शर्मा ने निम्नलिखित सूत्र अपने भाष्य में अधिक लिखे हैं—अध्याय ३, पाद ३, एकदेश इति चेत्। २२। पं० आर्यमुनि ने यह सूत्र २१ वें सूत्र के साथ लिख-

कर एक सूत्र माना है। पञ्चम पाद में—**तस्माच्चाब्राह्मणस्य सोमं प्रतिषेधति ॥२३॥** यह सूत्र अधिक पठित है। सप्तम पाद में '**संयोगस्यार्थवत्वात् ॥४१॥**' यह सूत्र योगविभाग करके लिखा है, जबकि पं० आर्यमुनि ने इसे ४०वें सूत्र में ही पढ़ा है। चतुर्थ अध्याय के प्रथम पाद में—**ददातिरुत्सर्गपूर्वकः परस्वत्वेन सम्बन्धः ॥२६॥** यह सूत्र अधिक है। षष्ठाध्याय के द्वितीय पाद में पं० आर्यमुनि ने '**देवताश्रये च ॥६॥** यह सूत्र अधिक व्याख्यात किया है। तृतीय पाद में पं० मयाशंकर ने'—**संस्काराश्च खदिरे कर्त्तव्याः ॥३१॥** यह सूत्र अधिक लिखा है। पञ्चम पाद में—**न तस्यादुष्टत्वादविशिष्टं हि कारणम् ॥८॥** अधिक है। सप्तम पाद में—**उपचारोऽन्यार्थदर्शनम् ॥३२॥** अधिक है।

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती ने 'षड्दर्शनम्' के सूत्रानुवाद में ३·६·४४ में '**अपि वा द्विरुक्तत्वात् प्रकृतेर्भविष्यन्तीति**' सूत्र अधिक पढ़ा है। ६·८·३७ में '**न वा प्रयोगसमवायित्वात्**' सूत्र अधिक है। ८·४·२७ में '**प्रतिपत्ती तु ते भवतस्तस्मादतद्विकारत्वम्**' यह सूत्र नहीं है। ६·३·४ में '**लिंगदर्शनाच्च**' सूत्र नहीं है। ६·३·३६ में '**उत्कृष्येतैकसंयुक्तौ द्विदेवते सम्भवात्**' सूत्र अधिक है।

इनसे अतिरिक्त पाठभेद तो बहुत से सूत्रों में मिलता है। इन सबका संशोधन तो अनेक हस्तलेख ग्रन्थों के मिलाने से ही सम्भावित है।

महर्षि जैमिनि द्वारा विरचित 'सङ्कर्षकाण्डसूत्राणि' नाम से ७०८ सूत्र १६ पाद और ४ अध्यायात्मक एक ग्रन्थ और मिलता है। इसे कुछ विद्वान् पूर्वमीमांसा का ही परिशिष्ट भाग मानते हैं। इन सूत्रों पर देवस्वामी का भाष्य मिलता है। इसे मद्रास विश्वविद्यालय ने सन् १९६५ में प्रकाशित किया है।

इस संकर्षकाण्ड का प्रथम अध्याय (मूलमात्र) विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, साधु आश्रम, होश्यारपुर (पंजाब) से सन् १९६३ में प्रकाशित हुआ था। इसके प्रथम अध्याय में १८६ सूत्र हैं।

इस ग्रन्थ के प्रूफ देखने (ईक्षण) का कार्य ब्रह्मचारी विरजानन्द दैवकरणि ने अति सावधानी से किया है, पुनरपि कुछ त्रुटियाँ रह ही जाती हैं, इसके लिये पाठकों से क्षमा चाहते हैं। आजकल मुद्रणालयों में अक्षरयोजकों की अकर्मण्यप्रवृत्ति के कारण यद्यपि हम इस ग्रन्थ को दो वर्ष में पूरा कर पाये हैं, पुनरपि इसके लिये मुद्रणालय के प्रबन्धक श्री सत्यपाल जी भाटिया साधुवाद और धन्यवाद के पात्र हैं। आशा है पाठक महानुभाव इस ग्रन्थ का स्वाध्याय करके ऋषि ऋण से अनृण होने का प्रयास करेंगे।

गुरुकुल झज्जर
रोहतक

निवेदक
ओमानन्द सरस्वती

ओ३म्

मीमांसादर्शनभाष्ये

सप्तमाध्यायस्य प्रथमः पादः

प्रयाजादि धर्म अपूर्व प्रयुक्त हैं, यह इस अधिकरण में बताया गया है—

श्रुतिप्रमाणत्वाच्छेषाणां मुख्यभेदे यथाधिकारं भावः स्यात् । १ ।

पदार्थ—(मुख्यभेदे) मुख्य अर्थात् अपूर्व, अपूर्वों का भेद होने से (शेषाणां) प्रयाजादि जो शेष हैं वे (यथाधिकारम्) प्रकरण प्रमाण से (भावः स्यात्) व्यवस्था होते हैं। (श्रुतिप्रमाणत्वात्) अमुक धर्म अमुक याग का शेष है, यह केवल श्रुतिगम्य होने से।

भावार्थ—प्रथम ६ अध्यायों में प्रत्यक्ष धर्मों का विचार करने में आया है। अब जो अवशिष्ट ६ अध्याय हैं उनमें आतिदेशिक धर्मों का विचार होगा। प्रयाजादि धर्म दर्शपूर्णमास समीप पठित हैं वे क्या दर्शपूर्णमास याग के लिए ही हैं या जितने याग हैं उन सबके लिए हैं? इस प्रश्न का निराकरण इस प्रकार है। अपूर्व का भेद होने से प्रयाजादि जो प्रकरण में पठित होते हैं उनके ही शेष गिने जाते हैं। अतः दर्शपूर्णमास में कथंभाव रूप आकांक्षा से अन्वित हुए प्रयाजादि धर्म दर्शपूर्णमास में ही रहेंगे, वे धर्म अन्य यागों में विहित रूप से नहीं जा सकेंगे।

अब उक्त सिद्धान्त में पूर्वपक्ष कहते हैं:—

उत्पत्त्यर्थाविभागाद्वा सत्ववदैक्यधर्म्यं स्यात् । २ ।

पदार्थ—(वा) (उत्पत्त्यर्थाविभागात्) यज् धातु के अर्थ का विभाग न होने से (सत्ववत्) गोत्वादि जाति में (ऐक्यधर्म्यं स्यात्) ऐक्य धर्म है।

भावार्थ---यागजन्य अपूर्व एक ही होता है, इसलिये याग में वताये गये धर्म सब यागों के लिए हैं जिस प्रकार 'गौः पदा न स्प्रष्टव्या' गाय को पांव से नहीं छूना। इस आदेश में किसी अमुक गाय का स्पर्श निषिद्ध है, ऐसी बात नहीं है परन्तु सब गायों का पांव से स्पर्श निषिद्ध है ऐसा समझना चाहिये। कारण कि गो शब्द का अर्थ गोत्व जाति है तथा वह एक है। स्पर्श निषेध सब गायों में अन्वित है, इसी प्रकार याग में वताये धर्म सब यागों पर लागू होते हैं।

सिद्धान्त सूत्र--

चोदनाविशेषभावाद्वा तद्भेदाद् व्यवतिष्ठेरन्नुत्पत्तेर्गुणभूतत्वात्। ३।

पदार्थ—(वा) अथवा (उत्पत्तेः) दर्श पूर्णमास नामक कर्मों की उत्पत्ति इसलिये अपूर्व में (गुणभूतत्वात्) गौणता होने से (चोदनाविशेषभावात्) यजेत् आदि विधि एक देश रूप होने से (तद्भेदात्) अपूर्व का भेद होने से (व्यवतिष्ठेरन्) प्रतियाग व्यवस्थित हैं।

भावार्थ—प्रयाजादि रूप जो धर्म हैं वे याग में जो अन्वित होते हैं वे कथंभाव रूप आकांक्षा से होते हैं। जिस प्रकार 'याग से अपूर्व उत्पन्न करे' यहां यह आकांक्षा उत्पन्न होती है कि अपूर्व को किस प्रकार उत्पन्न किया जाय, तो उत्तर यह है कि प्रयाजादि यागों के अंगों का अनुष्ठान कर इस प्रमाण जिन अंगों का विधान किया हो उन अंगों का उस याग में ही समावेश होता है, सब यागों में नहीं। प्रतिनियत यागांगों के अनुष्ठान से ही अपूर्व उत्पन्न हो सकता है ऐसा विधि का तात्पर्य है। अतः प्रयाजादि धर्म दर्शपूर्णमास नामक याग के ही धर्म हैं, अन्य याग के नहीं।

सत्वे लक्षणसंयोगात्सार्वत्रिकं प्रतीयेत। ४।

पदार्थ—(सत्वे) गो व्यक्ति में (लक्षणसंयोगात्) लक्षणार्थं व्यक्ति के साथ सम्बन्ध होनेसे (सार्वत्रिकम्) सब गायों में (प्रतीयेत) प्रतीति होती है।

भावार्थ—'गौः पदा न स्प्रष्टव्या' इस वाक्य में गौ पद से समस्त गायों की जो प्रतीति होती है उसका कारण यह प्रमाण है। गो शब्द का अर्थ गोत्व रूप जाति है तथा यह निखिल गो सम्बद्ध एक ही है। अब गोत्व के साथ पाद का स्पर्श नहीं हो सकता अतः गोत्व सम्बन्धी गोव्यक्ति गो-

पद वाच्य है, ऐसा लक्षणावृत्ति से स्वीकार किया जाता है। इस प्रमाण से गोत्व का सम्बन्ध सर्व गोव्यक्ति के साथ होने से निखिल गायों के साथ पाद स्पर्श निषिद्ध होता है। परन्तु यहाँ तो याग गौण है तथा याग जन्य अपूर्व मुख्य है। अतः याग में बताये धर्म अपूर्व के लिये होते हैं। इसलिये प्रयाजादि सब यागों के लिये प्रयुक्त नहीं हैं, परन्तु विशिष्ट अपूर्व के लिये प्रयुक्त हैं अर्थात् याग करना है अतः प्रयाजादि अंग विहित नहीं पर विशिष्ट अपूर्व उत्पन्न करना है इसलिये प्रयाजादि धर्मों का सब यागों के साथ सम्वन्ध नहीं हैं।

पुनः पूर्वपक्ष को प्रस्तुत किया जाता है—

अविभागात्तु नैव स्यात्। ५।

पदार्थ—(तु) परन्तु (अविभागात्) याग के साथ कारण रूप में संयुक्त होने से (एव न स्यात्) यह प्रमाण नहीं।

भावार्थ—प्रयाजादि अंगों का सम्बन्ध याग के साथ है यह तो प्रत्यक्ष हैं। द्रव्य, देवता, मंत्र तथा अग्नि ये याग के कारण हैं, यह तो प्रत्यक्ष रूप से जाना जा सकता है। तथा अपूर्व के ये कारण हैं ये अनुमान के द्वारा जाने जा सकते हैं कारण कि अपूर्व कोई प्रत्यक्ष व्यक्ति नहीं है। इस कारण से अनुमान की अपेक्षा प्रत्यक्ष बलवान् होता है। अतः याग प्रयुक्त प्रयाजादि धर्म हैं तथा उनका सम्बन्ध सर्वयागों के साथ उपर्युक्त युक्ति से सिद्ध होता है।

द्व्यर्थं च विप्रतिषिद्धम्। ६।

पदार्थ—(च) और (द्व्यर्थम्) दो अर्थ मानना, (विप्रतिषिद्धम्) न्याय विरुद्ध है।

भावार्थ—जो दर्श पूर्णमास के लिये के लिए ही प्रयाजादि हों तो सौर्य याग में प्रयाज न होने के कारण 'प्रयाजे प्रयाजे कृष्णलं जुहोति' इस एक ही वाक्य से याग के उद्देश्य के लिये प्रयाज का विधान करना चाहिये तथा प्रयाजादि के उद्देश्य के लिये कृष्णल का विधान करना उचित है, इस रीति से एक ही वाक्य के दो अर्थ मानना अन्याय है। अतः प्रयाजादि सब यागों का धर्म है यह मानना उचित है।

सिद्धान्तपक्ष का सूत्र—

उत्पत्तौ विध्यभावाद्वा चोदनायां प्रवृत्तिः स्यात्ततश्च कर्मभेदः स्यात् । ७ ।

पदार्थ—(वा) अथवा (चोदनायाम्) अपूर्व में (प्रवृत्तिः स्यात्) प्रयाजादि धर्मों की प्रवृत्ति है। (उत्पत्तौ) भाग में (विध्यभावाद्) धर्मों का विधि न होने से (ततः) उससे (कर्मभेदः) अपूर्व का अर्थात् धातु के अर्थ का भेद है।

भावार्थ—अपूर्व के लिये ही प्रयाजादि धर्मों का प्रवर्तन है। याग के लिये ही प्रयाजादि धर्मों का विधान नहीं, इसलिये अपूर्व का भेद है। कारण कि अपूर्व ही फलवत् है। याग में प्रयाजादि का मात्र श्रवण होता है, तथा याग में उनका अनुष्ठान भी होता है। इसलिये ये याग के लिये ही हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता। जिस प्रकार कपड़े पर रंग चढ़ाया जाता है, वह कपड़े के लिये नहीं होता यद्यपि उस रंग का प्रयोग भी कपड़े में ही होता है, पुनरपि उसे कपड़े के लिये नहीं माना जा सकता परन्तु यह रंग कपड़े के उपयोग करने वाले स्त्री या पुरुष के लिये होता है। इसी प्रकार याग में होते हुये भी प्रयाजादि धर्म याग के लिये नहीं परन्तु तज्जन्य अपूर्व के लिये ही हैं।

आक्षेप सूत्र—

यदि वाप्यभिधानवत्सामान्यात् सर्वधर्मः स्यात् । ८ ।

पदार्थ—(यदि वा) अथवा (अभिधानवत्) सब धर्मों का फल अपूर्व यह नाम (सामान्यात्) समान होने से (सर्वधर्मः) धर्म भी समान (स्यात्) होने चाहियें।

भावार्थ—सब धर्मों का प्रयोजक अपूर्व है तथा वह सर्व धर्मों का समान ही है। इसलिये कि प्रयाजादि धर्म जन्य जो जो व्यापार उत्पन्न होते हैं उनका अपूर्व—यह सामान्य नाम है। इसी प्रमाण से धर्म भी सब अपूर्व के लिये समान ही होने चाहियें। 'यथा वाहीकोऽतिथिरागतः यवान्नमस्मै प्रक्रियताम्, इत्युक्ते यो यो वाहीकस्तस्य तस्य यवान्नं क्रियते, एवम् इहापि एकस्य अपूर्वस्य ये धर्माः श्रुताः, ते सर्वेऽपूर्वाणां भवितुमर्हन्ति । इति शाबर भाष्ये।

यथा—वाहीक (रेवारी, मरवाड़) अतिथि आया है उसे जौ का भोजन देना चाहिये। जो जो वाहीक आता है तो सभी को जौ का भोजन एक ही प्रकार का दिया जाता है, उसी प्रकार यहां भी जितने अपूर्व होते हैं उनमें सभी के धर्म एक ही प्रकार के होने चाहियें। इस कारण से प्रयाजादि धर्म सव अपूर्वों के लिये समान ही होने चाहियें। इसलिये सब यागों में उक्त धर्म करने ही चाहियें।

आक्षेप निराकरण सूत्र—

अर्थस्य त्वविभक्तत्वात्तथा स्यादभिधानेषु पूर्ववत्त्वात्प्रयोगस्य कर्मणः शब्दभाव्यत्वाद-विभागाच्छेषाणामप्रवृत्तिः स्यात् । ९ ।

पदार्थ—(तु) परन्तु (अर्थस्य) वाहीक देश सम्बन्ध के (अविभक्तत्वात्) नियत होने से (तथा स्यात्) वह प्रमाण होता है। (अभिधानेषु) अपूर्व रूप नामों में (प्रयोगस्य) उक्त वाक्य प्रयोग (पूर्ववत्वात्) प्रथम भी अनेक वार होने से ऐसा होता है। परन्तु (कर्मणः) अपूर्व तो (शब्दभाव्यत्वात्) वैदिक वाक्यों से ही ज्ञात होने के कारण, भेद है (शेषाणाम्) अतः प्रयाजादि की सर्वत्र (अप्रवृत्तिः स्यात्) प्रवृत्ति नहीं होती।

भावार्थ—वाहीक का दृष्टान्त प्रकृत स्थल में नहीं बैठता। वाहीक का देश के साथ जो सम्बन्ध बनता है वही समान होता है। जितने वाहीक पुरुष अमुक देश में आते हैं उनको जौ का भोजन देना। यहाँ देश का सम्बन्ध ही समान है तथा यह सम्बन्ध प्रत्यक्ष एवं अनुमान से जाना जा सकता है। कारण कि पहले अनेक वार वाहीक गण आते रहे तथा "तस्मै यवान्नं देहि" यह वाक्य भी बहुत वार सुनते रहे। उससे सुनने वाले ने व्याप्ति बना ली कि इस स्थान पर जो जो वाहीक आवे तो उसे यावन्न देना। परन्तु यहां तो अपूर्व कोई प्रत्यक्ष वस्तु नहीं। यह तो मात्र शब्द से जाना जाता है। तथा शब्द अमुक धर्म से अमुक अपूर्व, अपूर्व धर्म से अमुक अपूर्व इस प्रकार धर्म भी पृथक् और उनका अपूर्व भी पृथक् बताते हैं। अतः प्रयाजादि धर्मों की सब यागों में प्रवृत्ति नहीं हो सकती। जिस याग में ये पठित होते हैं उसी याग के साथ इनका सम्बन्ध मानना उचित है।

स्मृतिरिति चेन्न । १० ।

पदार्थ—(स्मृतिः) स्मृति है। (इति चेन्न) जो यह कहने में आवे तो इसका उत्तर अगले सूत्र में है।

भावार्थ—वरुण, पाराशर नामक शाखा वाले कहते हैं कि जो दर्श पूर्णमास के जो जो धर्म हैं वे सब इष्टियों के धर्म हैं। क्या यह स्मृति का कथन असत्य है ? इसका उत्तर आगामीसूत्र में है।

पूर्ववत्त्वात् । ११ ।

पदार्थ—(पूर्ववत्त्वात्) पूर्व अर्थात् प्रकृति याग वालों के लिये ये धर्म हैं।

भावार्थ—दर्शपूर्णमास याग प्रकृति याग है। अतः उसके जो जो विकृति याग हों उनमें प्रकृतिवद् विकृतिः कर्त्तव्या इस चोदक शास्त्र से प्रकृतिगत धर्मों की विकृतियाग में प्राप्ति होती है। इसलिये अविकृति रूप अन्य यागों में प्रयाजादि की प्राप्ति है, ऐसा नहीं समझना चाहिये। अतः वरुण पाराशर शाखा वालों का कथन उक्त चोदक वाक्यों का अनुवाद ही है।

अर्थस्य शब्दभाव्यत्वात् प्रकरणनिबन्धनाच्छब्दादेवान्यत्र भावः स्यात् । १२ ।

पदार्थ—(अर्थस्य) अंग कलाप (शब्दभाव्यत्वात्) विधि वाक्य से ही जाना जा सके ऐसा होने से (प्रकरणनिबन्धनात्) प्रकरण के साथ सम्बन्ध होने से (शब्दात् एव) अतिदेश शास्त्र रूप शब्द से ही (अन्यत्र भावः स्यात्) विकृति याग में सम्बन्ध हो सकता है।

भावार्थ—अमुक अमुक अंग अमुक याग के हैं यह तो केवल विधि वाक्य रूप शब्द से ही जाना जा सकता है। अतः जो जो अंग प्रकृति याग में सम्बद्ध होते हैं वे अंग अन्य याग में अनुष्ठित नहीं हो सकते हैं। अतः अतिदेश वाक्य से ही प्रकृति के धर्म सौर्य आदि विकृति यागों में भी अनुष्ठित नहीं हो सकते। इसलिये अतिदेश शास्त्र का आरम्भ करना चाहिये। इस अधिकरण में यह स्पष्ट कर दिया है कि अपूर्व के कारण ही धर्मों का प्रयोग होता है। अपूर्व पृथक् पृथक् होने से धर्म भी पृथक्-पृथक् होते हैं। समान नहीं। प्रकृति के धर्म विकृति याग में अनुष्ठित करने हों तो अतिदेश शास्त्र से ही उनकी कर्त्तव्यता प्राप्त होती है। अतः अतिदेश शास्त्र का भी प्रारम्भ करना चाहिये।

'समानमितरत् श्येनेन' इस वाक्य से इषु नामक याग में श्येन याग के विशेष धर्मों का अतिदेश होता है। इस अधिकरण के सूत्र समझाते हैं—

पूर्वपक्ष सूत्र—

समाने पूर्ववत्त्वादुत्पन्नाधिकारः स्यात् । १३ ।

पदार्थ—(समाने) 'समानमितरत् श्येनेन' इस वाक्य में (उत्पन्नाधिकारः स्यात्) अनुवाद है। (पूर्ववत्वात्) ज्योतिष्टोम की विकृति होने से।

भावार्थ—'इषु' नामक एक याग है तथा यह एक दिन में सम्पूर्ण होता है। इसमें कितने ही विकृतिगत धर्मों का पाठ करने के पश्चात् लिखने में आया कि बाकी के अनुष्ठान श्येन याग के अनुसार करने चाहियें। इषु तथा श्येन दोनों याग ज्योतिष्टोम की विकृतियाँ हैं। अतः इषु याग के विधानों के निकट जो वैशेषिक धर्म कहे हैं वे तथा इतर अर्थात् अन्य धर्म प्रकृतियाग से लेना, ऐसा अतिदेश है। प्रकृति याग के धर्मों का अतिदेश होने से यह अनुवाद है तथा इतर पद से प्रकृतिगत धर्म ही समझना चाहिये।

श्येनस्येति चेत् । १४ ।

पदार्थ—(श्येनस्य) श्येन याग के धर्म ग्रहण करें (इति चेत्) जो यह शंका हो तो।

भावार्थ—जो कोई कहे कि 'इतर पद से श्येन नामक याग के धर्म लेने' लोहितोष्णीष आदि श्येन याग के विशेष धर्म हैं तो उसका उत्तर अगले सूत्र में दिया जायेगा।

नासंनिधानात् । १५ ।

पदार्थ—(न) नहीं (असंनिधानात्) संनिधान न होने से।

भावार्थ—श्येन याग में ज्योतिष्टोम के धर्म कर्त्तव्य होते हैं। श्येन याग में अन्य बहुत से वैशेषिक धर्म भी कर्त्तव्य होते हैं। इन दो प्रकार के धर्मों से ज्योतिष्टोम का ही धर्म स्वीकार करना चाहिये, क्योंकि प्राकृत धर्मों के साथ ही संनिधान है। अर्थात् श्येन गत प्राकृत धर्मों का ही इषु याग में अतिदेश है।

सिद्धान्त सूत्र—

अपि वा यद्यपूर्वत्वादितरदधिकार्थे ज्यौतिष्टोमिकाद्विधेस्तद्वाचकं समानं स्यात् । १६ ।

पदार्थ—(अपि वा) अथवा (अपूर्वत्वात्) उक्त वाक्य विधायक होने से (इतरत्) इतर शब्द (अधिकार्थे) अधिक अर्थ का वाचक है। (ज्यौति-

ष्टोमिकात्) ज्योतिष्टोम सम्बन्धी धर्म से (तद्वाचकम्) अधिकार्थ का वाचक (समानं स्यात्) समान पद है।

भावार्थ—'समानमितरत् श्येनेन' यह वाक्य विधायकवाक्य है तथा इतरत् पद का अर्थ अधिक है। इसलिए ज्योतिष्टोम याग के जो-जो धर्म हैं वे सब इषु याग में समान रीति से कर्त्तव्य हैं तथा श्येन याग के जो लोहितोष्णीष आदि सभी धर्म हैं वे भी कर्त्तव्य हैं। इससे सिद्ध होता है कि इषु याग में श्येन याग सम्बन्धी लोहितोष्णीष आदि धर्मों का अतिदेश है। इतर शब्द इसी धर्म का सूचक है।

'एतद् ब्राह्मणानि' इत्यादि वाक्य से पाँच हविषों में अर्थवाद सहित अंग विधियों का भी अतिदेश है। यह इस अधिकरण में समझाते हैं।

पूर्वपक्ष सूत्र—

पञ्चसञ्चरेष्वर्थवादातिदेशः सन्निधानात्। १७।

पदार्थ—(पञ्चसञ्चरेषु) पाँच हविषों के संचर में (अर्थवादातिदेशः) अर्थवाद का ही अतिदेश है। (सन्निधानात्) विधिवाक्य के शेषत्व से उसका सन्निधान होने से।

भावार्थ—चातुर्मास्य में वैश्वदेव, वरुण प्रघास, साकमेध तथा शुनासीरीय नामक चार पर्व होते हैं। इनमें वैश्वदेव इष्टि में हविषों का विधान है। 'आग्नेयमष्टाकपालं निर्वपति। सौम्यं चरुम्। सावित्रं द्वादशकपालम्। सारस्वतचरुम्। पौष्णं चरुम्। मारुतं सप्तकपालं वैश्वदेवीमामिक्षाम्। द्यावापृथिव्यमेककपालम्। इन हविषों का ब्राह्मण ग्रन्थों में इस प्रमाण से अर्थवाद समाम्नात किया है। 'वार्त्रघ्नानि च एतानि हवींषि' ये हविष वृत्र का नाश करने वाले हैं। अंग विधियों का भी समाम्नात है। जैसा कि, त्रेधा सन्निद्धं बर्हिर्भवति। त्रेधासन्नद्ध इध्मः। नव प्रयाजा इज्यन्ते। नवानुयाजाः। अब वरुण प्रघास में उपरिकथित हविषों में आग्नेय आदि पाँच हविषों का विधान कर उनका पूर्वोक्त ब्राह्मण वाक्य से पाँच में अतिदिष्ट है। जैसा कि 'एतद् ब्राह्मणान्येव पञ्च हवींषि' यद् ब्राह्मणानीतराणि इति। यहाँ केवल अर्थवाद का अतिदेश ही न्याय्य है कारण कि उनका हविष के साथ स्तुत्य स्तावक रूप से अन्वय संभावित है। अंग विधियों का उनमें सम्भव नहीं।

सिद्धान्त सूत्र— .

सर्वस्य वैकशब्द्यात् । १८ ।

पदार्थ—(वा) सिद्धान्त सूचक है । (सर्वस्य) अर्थवाद तथा अंग विधियों का भी अतिदेश है । (एकशब्द्यात्) एक ब्राह्मण वाक्य से दोनों का प्रतिपादन होनें से ।

भावार्थ— अंग विधि सहित तथा अर्थवाद सहित ब्राह्मण काण्ड का अतिदेश है। 'ब्राह्मण' यह शब्द अंग विधि तथा अर्थवाद के लिए समान है।

लिंगदर्शनाच्च । १९ ।

पदार्थ—(च) और (लिङ्गदर्शनात्) लिंग वाक्य होने से ।

भावार्थ—वरुण प्रघास मे त्रिंशदाहुतयः तीस आहुतियों का परिगणन करनें में आया है । यह परिगणन अंग विधि के अतिदेश के विना उपपन्न नहीं हो सकता । अत: अंग विधियों का भी अतिदेश है ।

विहिताम्नानान्नेति चेत् । २० ।

पदार्थ—(विहिताम्नानात्) विहित का आम्नान होने से (न इति चेत्) अंगविधि अतिदेश नहीं जो यह कहने में आवे तो उत्तर आगामी सूत्र में —

भावार्थ—'अग्नि मन्थन्ति प्रसुवो भवन्ति' इस प्रकार का विधान है। जो अतिदेश हो तो फिर से इन अंग विधियों का विधान नहीं देखा जाता । अत: पुन: विधान होने से अंग विधियों का अतिदेश नहीं । जो ऐसा मानने में आवे तो उमका उत्तर अगले सूत्र में है, उसे देखें—

नेतरार्थत्वात् । २१ ।

पदार्थ—(न) व्यर्थता नहीं (इतरार्थत्वात्) अन्य अर्थ के लिये होने से ।

भावार्थ—अग्नि मन्थन आदि का जो पुन: विधान किया है, वह अन्य हविष के लिये है । अर्थात् 'मारुतीप्रचारार्थत्वात्' मारुत हविष के लिये है। इस कारण से अर्थवाद और अंग विधि दोनों का अतिदेश है, यही सिद्धान्त है।

'एतद् ब्राह्मणं' इत्यादि से एक कपाल तथा ऐन्द्राग्न में भी अर्थवाद सहित अंगविधि का अतिदेश है । यह अधिकरण सूत्र—

एककपालैन्द्राग्नौ च तद्वत् । २२ ।

पदार्थ—(च) और (तद्वत्) उसी प्रमाण से (एककपालैन्द्राग्नौ) इन्द्राग्नि देवताक हविष में भी।

भावार्थ—साकमेध पर्व में भी "एतद् ब्राह्मण ऐन्द्राग्न एतद् ब्राह्मण एककपालः" यहाँ भी अर्थवाद तथा अंगविधि का अतिदेश है।

साकमेधपर्व में वारुणप्रघासिक एक कपाल का अतिदेश है। इस अधिकरण का सूत्र समझाते हैं—

एककपालानां वैश्वदेविकप्रकृतिराग्रयणे सर्वहोमापरिवृत्तिदर्शनादवभृथे च सकृद्द्व्यवदानस्य वचनात्। २३।

पदार्थ—(एक कपालानाम्) जितने एक कपालों का विधान है वे सब (वैश्वदेविक प्रकृतिः) वैश्वदेव एक कपाल प्रकृति हैं। (आग्रयणे) द्यावा पृथिव्य—एक कपाल में (सर्वहोमापरिवृत्तिदर्शनात्) सर्व होमों का अनुवाद होने से (अवभृथे च) तथा वारुण एक कपाल में (सकृद्) एक समय (द्व्यवदानस्य) द्वि अवदान के (वचनात्) वचन होने से।

भावार्थ—वैश्वदेव पर्व में द्यावापृथिवी देवता के एक कपाल का विधान है। वरुणप्रघास में क देवताक एककपाल का विधान है। तथा साकमेधीय पर्व में **वैश्वकर्मणमेककपालम्** ऐसा कहकर (एतद्ब्राह्मण एककपालः) ऐसा श्रवण है। इस वाक्य में एतद् शब्द से वैश्वदेविक एककपाल का ग्रहण करना या वरुण प्रघास सम्बन्धी एक कपाल का ग्रहण करना, इस संदेह में अधिक धर्म होने से वैश्वदेविक एक ग्रहण करना, यह पूर्व पक्ष है। इसके उत्तर रूप में इस सूत्र में सिद्धान्त बताया है कि वारुण प्रघास में एक कपाल का ग्रहण करना। जितने एक कपाल बताये हैं उन सबकी प्रकृति वैश्वदेव एक कपाल है। द्यावा पृथिवी एक कपाल में सब होमों का अनुवाद है। वारुणैकक कपाल में द्विरवद्यति दो समय अवदान करना, ऐसा विधान है। जो वैश्वदैविक प्रकृतिकत्व हो तो द्विरवदान का फिर से विधान व्यर्थ होता है। वैश्वदेव पर्व में **यदेककपालस्य अवद्येत् यजमानस्य अवद्येत्** इस वाक्य से जो निषेध हुआ है उसका उक्त प्रकृत वचन बाधक है। **'शमीमय्यः स्रुचः'** स्रुच शमी के काष्ठ से बनाना, यह विशेष धर्म वरुणप्रघास का है, अतः इस धर्म की प्राप्ति के लिये **एतद्ब्राह्मण एक कपालः** इस वाक्यगत 'एतत्' पद से वरुण प्रघास एक कपाल का ही ग्रहण करना चाहिये। इसलिये कि वरुणप्रघास के जो धर्म हैं उनका ही अतिदेश करना चाहिये।

इति मीमांसादर्शनभाष्ये सप्तमाध्यायस्य प्रथमः पादः।

अथ मीमांसादर्शनभाष्ये

सप्तमाध्यायस्य द्वितीयः पादः

'रथन्तर' आदि शब्दों का अर्थ गान विशेष है, यह इस अधिकरण के सूत्रों में समझाया गया है।
पूर्वपक्ष—

साम्नोऽभिधानशब्देन प्रवृत्तिः स्याद्यथा-शिष्टम् ।१।

पदार्थ—(साम्नः) साम के (अभिधानशब्देन) वाचक शब्द से रथन्तर यह आनुपूर्वी पूर्वक (यथाशिष्टम्) गुरु परम्परा से जैसा उपदिष्ट है उसी प्रमाण से (प्रवृत्तिः स्यात्) प्रवृत्ति होती है।

भावार्थ—'**कवतीषु रथन्तरं गायतीति**' इस वाक्य का यह अर्थ है कि '**अभित्वा शूर नोनुमः**' इस ऋचा में गान विशेष से गाने योग्य साम रथन्तर शब्द वाच्य है। इस ऋचा का गान '**कया नश्चित्र आभुवत्**' आदि तीन मंत्रों में करना यह एक अतिदेश है। इसमें अतिदेश किसका है, यह विचारणीय है। यहाँ पूर्वपक्ष ऐसा मानता है कि कोई किसी से कहता है कि तू रथन्तर साम का गायन कर, तो वह गानयुक्त ऋचा को ही बोलता है। अतः गान विशिष्ट ऋचा का ही अतिदेश है। साम शब्द से भी ऋचा विशेष ही समझी जाती है। गुरु शिष्य सम्प्रदाय भी इसी प्रकार चला आता है। इसलिये रथन्तर नामक गान विशिष्ट '**अभित्वा शूर**' इत्यादि ऋचा का '**कया नश्चित्र**' आदि '**कवती**' ऋचा में अतिदेश है। '**कया नश्चित्र**' आदि तीन ऋचायें '**कवती**' ऋचायें कहलाती हैं।
पूर्वपक्ष को दूषित करने वाला सूत्र—

शब्दैस्त्वर्थविधित्वादर्थान्तरेऽप्रवृत्तिः स्यात् पृथग्भावात् क्रियाया ह्यभिसम्बन्धः ।२।

पदार्थ—(तु) यह शब्द पूर्वपक्ष में दूषण बताता है। (शब्दैः) शब्दों से (अर्थविधित्वात्) अर्थ का बोधन होने से (अर्थान्तरे) भिन्न अर्थ में शब्द

की (अप्रवृत्तिः स्यात्) प्रवृत्ति नहीं हो सकती। (पृथग्भावात्) वाच्यार्थ पृथक्-पृथक् होने से (क्रियायाः) क्रिया का (हि अभिसम्बन्धः) उस उस अर्थ के साथ सम्बन्ध होने के कारण।

भावार्थ—ऋचा का अतिदेश नहीं हो सकता। कवती ऋचा में अभित्वा इत्यादि गान विशिष्ट ऋचा का जो अतिदेश होता हो तो 'कवती' का जो अर्थ है वही अभित्वा इत्यादि ऋचाओं से कथित होना चाहिये, परन्तु यह शक्य नहीं है। शब्द सदा अपने अर्थों के ही वाचक होते हैं। 'घट' शब्द से कभी 'पट' अर्थ का बोध नहीं होता। घटार्थ एवं पटार्थ में तथा घट और पट शब्द में स्पष्ट भेद है। इस कारण से एक ऋचा में दूसरी ऋचा का अतिदेश सम्भव नहीं होता।

दूसरा पूर्वपक्ष—

स्वार्थे वा स्यात्प्रयोजनं क्रियायास्तदंग-भावेनोपदिश्येरन्। ३।

पदार्थ—(वा) अथवा (स्वार्थे) स्वार्थ में प्रवृत्त होने वाली अभिवती ऋचा (अंगभावेन उपदिश्येरन्) अंग रूप में उपदिष्ट होगी। (क्रियायाः) एक ऋचा में दूसरी गान विशिष्ट ऋचा का अतिदेश करने का (प्रयोजनम्) फल अदृष्ट है।

भावार्थ—एक ऋचा भले ही दूसरी ऋचा के अर्थ को घोषित न करे, परन्तु एक ऋचा दूसरी ऋचा का अंग तो हो सकती है। तथा एक ऋचा के बदले दूसरी ऋचा बोलने का फल दृष्ट न होकर अदृष्ट है। इसलिये ऋचा का ही अतिदेश है।

शब्दमात्रमिति चेत्। ४।

पदार्थ—जो (शब्दमात्रम्) केवल शब्द का ही विधान है (इति चेत्) जो ऐसा मानने में आवे तो।

भावार्थ—जो अदृष्टार्थ फल की कल्पना करने में गौरव प्रतीत होता हो तो केवल शब्द का ही विधान करना। अतः कवती आदि ऋचाओं में रथन्तर शब्द का प्रयोग करना चाहिये। रथन्तर शब्द से ही इन ऋचाओं का अभिलाप करना। जहाँ शब्द में ही कार्य का सम्भव हो वहाँ शब्दार्थ में कार्य मानने की आवश्यकता नहीं है। रथन्तर शब्द का ही कवती ऋचा में प्रयोग हो सकता है।

नौत्पत्तिकत्वात् । ५ ।

पदार्थ—(न) शब्द का विधान भी योग्य नहीं । (औत्पत्तिकत्वात्) शब्द तथा अर्थ का नित्य सम्बन्ध होने से ।

भावार्थ—रथन्तर शब्द से कवती ऋचायें नहीं समझा जा सकता कारण कि रथन्तर शब्द का अर्थ इन ऋचाओं से नहीं है । शब्द तथा अर्थ का नित्य सम्बन्ध है । अतः जिस शब्द का जो अर्थ हो, वही समझा जाता है । रथन्तर शब्द रथ तर शब्दार्थ का विधायक नहीं हो सकता, कारण कि इस विधान के साथ रथन्तर शब्द का सम्बन्ध नहीं है ।

शास्त्रं चैवमनर्थकं स्यात। ६ ।

पदार्थ—(एवम्) इस प्रमाण से (शास्त्र) अतिदेश शास्त्र (अनर्थक स्यात्) अनर्थक हो जाएगा ।

भावार्थ—अशक्य अर्थ होने से अतिदेश शास्त्र इस स्थान पर निरर्थक हो जाता है । अर्थात् रथन्तर शब्द का अतिदेश न हो सकने के कारण 'कवतीषु रथन्तरं गायति' यह अतिदेश वाक्य निरर्थक हो जाता है ।

स्वरस्येति चेत् । ७ ।

पदार्थ—(स्वरस्य) स्वर का विधान है (इति चेत्) जो यह मानने में आवे तो ।

भावार्थ—अभि त्वा शूर नोनुमः इत्यादि ऋचा में जो स्वर है उस स्वर का विधान कवती ऋचाओं में करना, इस प्रमाण से अतिदेश मानने में आवे तो ? इसका उत्तर अगामी सूत्र में—

नार्थाभावाच्छ्रुतेर्न सम्बन्धः । ८ ।

पदार्थ—(अर्थाभावात्) यह स्वर कवती में न होने से (श्रुतेः) श्रुति का (न सम्बन्धः) सम्बन्ध नहीं ।

भावार्थ—'अभि त्वा' इत्यादि ऋचा का स्वर कवती में नहीं, अतः 'कवतीषु रथन्तरं गायति' इस वाक्य का सम्बन्ध नहीं है । इसलिए कि स्वर विधि में उक्त वाक्य का तात्पर्य नहीं है ।

स्वरस्तूत्पत्तिषु स्यान्मात्रावर्णाविभक्तत्वात् ।९।

पदार्थ—(तु) परन्तु (स्वरः) स्वर (उत्पत्तिषु) उत्पन्न हुये वर्ण (स्यात्) हैं। (मात्रावर्णाविभक्तत्वात्) मात्रा तथा वर्ण अभिन्न होने से।

भावार्थ—'अभित्वा शूर' इत्यादि ऋचा में जो वर्ण तथा जो मात्रायें हैं, वे वर्ण तथा वे मात्रायें कवती ऋचाओं में भी हैं। अवर्णादि अक्षर तथा ह्रस्व, दीर्घादि दोनों ऋचाओं में एक समान ही हैं, तो एक ऋचा के स्वर का दूसरी में विधान करना निरर्थक है। जो निरर्थक हो तो विधान न मानना, अपितु अनुवाद मानना चाहिये। यह पूर्वपक्ष वादी का मानना है, ऐसा ज्ञात होता है।

लिंगदर्शनाच्च ।१०।

पदार्थ—(च) और (लिङ्गदर्शनात्) लिंग वाक्यों का भी श्रवण हो सकने से।

भावार्थ—रथन्तरमुत्तरयोर्न पश्यामि इति विश्वामित्रस्तपस्तेपे। बृहदुत्तरयोर्न पश्यामीति वसिष्ठः उत्तर की दो ऋचाओं में रथन्तर नहीं समझना, अतः इसे समझने के लिये विश्वामित्र ने प्रयत्न रूप तप किया तथा वसिष्ठ ने बृहद्नमन के लिये तप किया। जो रथन्तर तथा बृहद् उत्तर की ऋचा में न होता तो उसे जानने के लिये दोनों ऋषि तप न करते। इससे सिद्ध होता है कि उत्तर की दोनों ऋचाओं में भी रथन्तर है कवती में रथन्तर का अतिदेश है, यह तो स्पष्ट है।

अश्रुतेस्तु विकारस्योत्तरासु यथाश्रुति ।११।

पदार्थ—(तु) परन्तु (उत्तरासु) उत्तर की ऋचाओं में (विकारस्य) नवीन धर्म का विधान न होने से (यथाश्रुति) स्वाध्याय के समय जिस प्रकार इन ऋचाओं का पाठ कराया जाता है उसी प्रकार गान के समय करना।

भावार्थ—कवती आदि ऋचाओं में स्वाध्याय के समय जिस रीति से पाठ किया जाता है, उसी रीति से गान के समय भी करना चाहिये। इस प्रकार से 'कवतीषु रथन्तरं गायति' यह वाक्य स्पष्ट रीति से निरर्थक जाना जाता है।

शब्दानां चासामञ्जस्यम् । १२ ।

पदार्थ—(च) (शब्दानाम्) शब्दों का (असामञ्जस्यम्) असामञ्जस्य है।

भावार्थ—अनुवाद रथन्तर के धर्मों की प्राप्ति है। और वे धर्म रथन्तरे प्रस्तूयमाने पृथिवीं ध्यायेत्, जब रथन्तरगान आरम्भ करे तब पृथ्वी का ध्यान करना। इस धर्म की प्राप्ति के लिए कवती में रथन्तर साम गाने के लिये कहा है जो ऐसा मानने में आवे तो उक्त वाक्य से जो शक्यार्थ प्रतीत होता है वह पृथ्वी का ध्यान रूप नहीं। इस कारण से 'कवतीषु रथन्तरं गायति' इस वाक्य की लक्षणा माननी पड़ेगी। यह असामञ्जस्य है।

सिद्धान्त सूत्र—

अपितु कर्मशब्दः स्याद्भावोऽर्थः प्रसिद्धग्रहणत्वाद्विकारो ह्यविशिष्टोऽन्यैः । १३ ।

पदार्थ—(अपितु) ऊपर बताये पूर्व पक्ष का निरसन करने के लिये ये शब्द हैं। (कर्मशब्दः) रथन्तर शब्द गान रूप कर्म का वाचक (स्यात्) है। (प्रसिद्धग्रहणात्) रूढ़ि शक्ति के कारण (भावः अर्थः) यही अर्थ वास्तविक है। (हि) कारण कि (अन्यैः अविशिष्टः) अवहनन आदि धात्वर्थ तुल्य (विकाराः) गान शब्द का अर्थ है।

भावार्थ—रथन्तर शब्द गानरूप क्रिया का वाचक है और यह गान ऋचा में एक प्रकार का संस्कार है। रथन्तर गान की रूढ़ि भी गान क्रिया की ही सूचना देती है। जिस प्रकार अग्निहोत्र एक क्रिया है, इसी प्रकार गान भी एक प्रकार की क्रिया है। 'रथन्तरं गायति' इस वाक्य में रथन्तर शब्द का अर्थ गान रूप क्रिया में अभेद सम्बन्ध से अन्वय प्राप्त करता है। जिस प्रकार अवहनन क्रिया से ऊपर के छिलके छूट पड़ते हैं उसी प्रकार गान रूप क्रिया से ऋचाओं के अक्षरों की अभिव्यक्ति होती है। अतः रथन्तर किसी ऋचा का या गान विशिष्ट ऋचा का नाम नहीं है परन्तु शुद्ध क्रिया का ही नाम है।

अद्रव्यं चापि दृश्यते ।१४।

पदार्थ—(अद्रव्यं च) और ऋचा शून्य में (अपि) भी रथन्तर शब्द का प्रयोग (दृश्यते) देखने में आता है।

भावार्थ—ऋचा न हो फिर भी उसमें रथन्तर साम का प्रयोग देखने में आता है इस सूत्र में 'द्रव्य' शब्द का अर्थ 'ऋचा' होता है। अतः गान विशिष्ट ऋचा का अतिदेश नहीं।

तस्य च क्रिया ग्रहणार्था नानार्थेषु विरूपित्वादर्थो ह्यासामलौकिको विधानात् । १५ ।

पदार्थ—(तस्य च क्रिया) उसकी अकर्म के समय जो क्रिया करने में आती है वह (ग्रहणार्था) अभ्यास के लिये होती है (नानार्थेषु) पृथक्-पृथक् ऋचाओं में (विरूपित्वात्) गान भी पृथक्-२ होता है। (आसाम् अर्थः) रथन्तर आदि संज्ञाओं का अर्थ (अलौकिकः) अलौकिक होता है। (विधानात्) गुरु के द्वारा ही जाना जा सकने के कारण।

भावार्थ—जिस समय वैदिक कर्म न करना हो उस समय जो रथन्तर गान करने में आता है वह तो सीखने के लिये होता है। पृथक् पृथक् ऋचाओं में गान भी पृथक् पृथक् होता है और उस गान का जानकार गुरु द्वारा ही समझ सकता है। रथन्तर गान द्वारा अमुक ऋचा गानी और अमुक प्रकार की जो गान क्रिया है उसका नाम रथन्तर गान अर्थात् रथन्तर साम है। यह विषय विविध गान में निष्णात गुरु के विना समझा नहीं जा सकता। रथन्तर आदि शब्द के अर्थ अलौकिक हैं। अर्थात् जिस प्रकार अवहनन क्रिया लोक व्यवहार से समझी जाती है, उसी प्रकार रथन्तर क्रिया लोक व्यवहार से समझी नहीं जा सकती।

तस्मिन् संज्ञाविशेषाः स्युर्विकार-पृथक्त्वात् । १६ ।

पदार्थ—(तस्मिन्) उस ज्ञान रूप क्रिया में (संज्ञाविशेषाः स्युः) पृथक् पृथक् संज्ञायें हैं। (विकारपृथक्त्वात्) गान के स्वरूप पृथक्-पृथक् होने से।

भावार्थ—जिस प्रकार भाषा में अनेक प्रकार के गान होते हैं तथा उनके पृथक्-पृथक् नाम होते हैं, उसी प्रकार वेद में भी पृथक्-२ गान होते हैं तथा उनके नाम भी पृथक्-२ होते हैं। किसी गान का नाम 'रथन्तर' तो किसी गान का नाम 'बृहत्' होता है जिस प्रकार लौकिक गानों में पृथक्-पृथक् राग तथा रागिनी होती हैं, उनके नाम पृथक्-२ होते हैं, उसी प्रकार वैदिक सामगान को भी समझना चाहिये।

योनिशस्याश्च तुल्यवदितराभि-विधीयन्ते । १७ ।

पदार्थ—(च) और (योनिशस्याः) शास्त्रसाधनीभूत ऋचा (इतराभिः) अयोनिशस्या के साथ (तुल्यवद्) समानता से (विधियन्ते) विहित करने में आती है ।

भावार्थ—रथन्तर तथा यह गान जिनमें गाये जाते हैं वे रथन्तर की योनि अर्थात् कारण रूप से कहे जाते हैं। जिस ऋचा में शंसन होता है वह ऋचा योनिशस्या कहलाती है। योनिशस्या ऋचाओं का अयोनिशस्या के साथ विधान करने में आता है, अतः इससे यह स्पष्ट होता है कि रथरन्तर और ऋचा दोनों भिन्न हैं ।

अयौनौ चापि दृश्यते तथायोनि ।१८।

पदार्थ—(अयोनौ च) तथा योनिभृत ऋचा से भिन्न में (अपि) भी (अतथायोनि दृश्यते) अधिक अथवा न्यून ऋचा वाला साम देखने में आता है।

भावार्थ—गायत्री छन्द वाली ऋचा में बृहत्साम गाने में आता है। बृहत्साम की योनिभृत ऋचा में जितने अक्षर होते हैं उनसे अधिक अथवा कम अक्षरों वाली ऋचा मैं भी बृहत्साम आदि का अतिदेश होता है। उससे स्पष्ट जाना जाता है कि रथन्तर आदि कोई ऋचा नहीं परन्तु एक प्रकार का गान है ।

एकार्थे नास्ति वैरूप्यमिति चेत् ।१६।

पदार्थ—(एकार्थं) एक ही अर्थ होने से (वैरूप्य न अस्ति) वैरूप्य नहीं (इति चेत्) जो इस प्रकार कहने में आवे तो ? उत्तर अगले सूत्र में है—

भावार्थ—रथन्तर गान सब एक ही प्रकार का होने से कोई भी एक ऋचा में गायें अतः दूसरी ऋचा में भी गाया जा सकता है। अतः प्रयोग के बाहर इस गान का एक समय अभ्यास करनें के पश्चात् ऋचा में उस गान का अभ्यास करने की जरूरत नहीं है। जो ऐसा शंका उत्हन्न हो तो ? उत्तर आगारी सूत्र में है—

स्यादर्थान्तरेस्वनिष्पत्तेर्यथा पाके । २० ।

पदार्थ—(अर्थान्तरेषु) अन्य ऋचाओं में (अनिष्पत्तेः) अभ्यास विना

सिद्धि न होनें से (स्यात्) अभ्यास होना चाहिये (यथा पाके) जिस प्रकार पाक में।

भावार्थ—एक ऋचा में रथन्तर गान गाया जाय तो अन्य ऋचा में भी गाया जाय ऐसा नहीं है। जिस प्रकार पाक क्रिया एक होते हुये भी एक ही स्थान पर की जानें पर अन्य स्थान पर भी सम्पन्न हो जाती है, ऐसा देखने में नहीं आता। आश्रयदृष्ट पाकक्रिया पृथक्-पृथक् होती है, उसी प्रकार एक आश्रय में रथन्तर गान करते हुये अन्यत्र आश्रय में भी गान होता है, ऐसा नहीं माना जा सकता। प्रति ऋचा में रथन्तर का भी आश्रय की भिन्नता से भेद होता है।

शब्दानां च सामञ्जस्यम् । २१ ।

पदार्थ—(शब्दानाम् च) और शब्दों का (सामञ्जस्यम्) यथार्थ भी स्पष्ट होता है।

भावार्थ—जो कवती शब्द तथा रथन्तर शब्द ये दोनों शब्द ऋचाओं के वाचक हों तो एक ऋचा अन्य ऋचा का अधिकरण नहींहो सकने के कारण शब्दों का सामञ्जस्य नहीं बन सकता। अतः कवती शब्द ऋचावाचक है और रथन्तर शब्द गान विशेष वाचक है। गान क्रिया मानने से गान का अधिकरण ऋचा हो सकती है तथा उससे शब्द का सामञ्जस्य भी बन सकता है। उपर्युक्त प्रकार से स्पष्ट हुआ कि रथन्तर शब्द गान विशेष का वाचक है। **'स्वरादिविशेषानुपूर्वीमात्रस्वरूपमृगक्षरव्यतिरिक्तं यद्गानं तदेव रथन्तर-शब्दस्यार्थं इति माधवः'** स्वर आदि विशेष का क्रम मात्र स्वरूप और ऋचाओं के अक्षरों से भिन्न जो गान होता है वही रथन्तर शब्द का अर्थ है यही माधवाचार्य नें भी कहा है।

इति मीमांसादर्शनभाष्ये सप्तमाध्यायस्य द्वितीयः पादः

अथ मीमांसादर्शनभाष्ये सप्तमाध्यायस्य

तृतीयः पादः

'अग्निहोत्र नाम से उसके धर्म का अतिदेश है, इस अधिकरण के सूत्र उपस्थित किये जाते हैं।

सिद्धान्त सूत्र—

उक्तं क्रियाभिधानं तत् श्रुतावन्यत्र विधिप्रदेशः स्यात् । १ ।

पदार्थ—(क्रियाभिधानम् उक्तम्)अग्निहोत्र नामक क्रिया है, यह इसी नाम के पाद में कहा गया है, (अन्यत्र) अतः दूसरे स्थान में 'कुण्डपायिनामयने' (तच्छ्रुतौ) अग्निहोत्र शब्द के श्रवण में(विधि प्रदेशः स्यात्) धर्म का अतिदेश है ।

भावार्थ—'कुण्डपायिनामयने' यह प्रमाण वाक्य है। मासमग्निहोत्रं जुहोति इस स्थान पर अग्निहोत्र पद से क्या समझना ? यहां यह सिद्धान्त निश्चित किया कि अग्निहोत्र शब्द नित्य होम करने की क्रिया को कहा जाता है। यह आगे सिद्ध किया गया है। अतः 'मासमग्निहोत्रं जुहोति' इस स्थान में नित्य अग्निहोत्र का जो धर्म है उस धर्म का उक्त होम में अतिदेश है, यह समझना।

पूर्वपक्ष—

अपूर्वे वाऽपि भागित्वात् । २ ।

पदार्थ—(अपि वा) अथवा(अपूर्वे) मासाग्निहोत्र में अग्निहोत्र 'शब्द कर्म का ही नाम है, (भागित्वात्) योग्य होने से ।

भावार्थ— मासाग्निहोत्र में भी जो अग्निहोत्र शब्द है वह एक मास पर्यन्त जो हवन किया जाता है उसी का नाम अग्निहोत्र है। जिस प्रकार नित्य होम क्रिया का नाम अग्निहोत्र है उसी प्रकार मास पर्यन्त होम क्रिया की जाती है, उसका नाम अग्निहोत्र है ऐसा पूर्वपक्ष वादी नें प्रस्तुत किया।

पूर्वपक्ष का दोष—

नाम्नस्त्वौत्पत्तिकत्वात् । ३ ।

पदार्थ—(तु) परन्तु (नाम्नः)अग्निहोत्रादि नाम का सम्बन्ध (औत्पत्तिकत्वात्) नित्य होने से ।

भावार्थ—नाम और नामी का सम्बन्ध नियत होनें से एक शब्द के अनेक अर्थ मानना ठीक नहीं।

'अन्याय्यश्चानेकार्थत्वम्' 'माणवक (बालक) सिंह है' ऐसा कहनें से माणवक शब्द सिंह के साथ सम्बद्ध नहीं हो सकता। अतः सिंह के धर्म का अतिदेश माणवक होता है। इसी प्रकार उक्त अग्निहोत्र में भी समझना चाहिये।

प्रत्यक्षाद् गुणसंयोगात् क्रियाभिधानं स्यात् तदभावेऽप्रसिद्धं स्यात् ।४।

पदार्थ— (प्रत्यक्षाद्)) नैयमिक अग्निहोत्र में श्रूयमाण अग्निर्ज्योति-र्ज्योतिरग्निः स्वाहा' ये मंत्र लिंग से (गुणसंयोगात्) देवता रूप गुण का संयोग होने से तत्प्रख्य न्याय से (क्रियाभिधानं स्यात्) अग्निहोत्र रूप क्रिया का नाम होता है। (तदभावे) परन्तु मासाग्निहोत्र में देवता रूप गुण का अभाव होनें से (अप्रसिद्धः स्यात्) अग्निहोत्र नाम नहीं बन सकता।

भावार्थ—नित्य तथा नियमित होम क्रिया में कारणों से अग्निहोत्र नाम दिया गया है, ये कारण मासाग्निहोत्र में नहीं हैं। मासाग्निहोत्र में गुण रूप देवता का विधान नहीं है। अतः नित्य अग्निहोत्र के धर्मों को ही मासाग्नि-होत्र से अतिदेश है। यही सिद्धान्त है।

प्रायणीय नाम से धर्म का अतिदेश नहीं। इस अधिकरण का सूत्र—

अपि वा सर्वत्र कर्मणि गुणार्थैषा श्रुतिः स्यात् ।५।

पदार्थ—(सर्वत्र कर्मणि) प्रकृति तथा विकृति यागों में (गुणार्था) गुण विधि के लिये (एषा) प्रायणीय इत्यादि (श्रुतिः स्यात्) श्रुति है।

भावार्थ—द्वादशाह याग में प्रथम दिवस जो होता है, उसे प्रायणीय कहते हैं। उसकी विकृति जो गवामयन याग है उसमें भी प्रायणीय शब्द आता है। उसमें भी प्रथम दिन का ही जो यह वाचक है इस स्थान पर प्रायणीय शब्द प्रकृतिगत प्रायणीय के धर्म का अतिदेश नहीं बताता, परन्तु दोनों स्थानों पर गणविधि के लिये है प्रायणीय शब्द है।

'प्रारम्य अयति प्रवर्तते इति प्रायणीयाः इस प्रमाण से उसकी व्युत्पत्ति

होती है। अतः प्राथम्य रूप गुण के लिये दोनों स्थानों पर प्रायणीय शब्द प्रयुक्त हुआ है।

'सर्वपृष्ठ' शब्द से ही पृष्ठों का अतिदेश हैं इस अधिकरण के सूत्र—

विश्वजिति सर्वपृष्ठे तत्पूर्वकत्वाज्ज्यौतिष्टोमिकानि पृष्ठानि अस्ति च पृष्ठशब्दः ।६।

पदार्थ—(विश्वजिति सर्वपृष्ठे) विश्वजित् सर्वपृष्ठ उदाहृत वाक्य में (ज्यौतिष्टोमिकानि पृष्ठानि) ज्योतिष्टोमगत जो पृष्ठ कहे गये हैं उन्हीं का अनुवाद है। (तत्पूर्वकत्वात्) कारण ज्योतिष्टोम से विकृति विश्वजित् याग है। (अस्ति च पृष्ठ शब्दः) माहेन्द्रादि चार स्तोत्रों में पृष्ठ शब्द प्रयुक्त हुआ है।

भावार्थ—'विश्वजित् सर्वपृष्ठोऽतिरात्रो भवति' इस स्थान पर सर्वपृष्ठ शब्द अनुवाद जाना जाता है या विधि को बताता है? इस प्रकार पूर्वपक्ष का कथन है कि विश्वजित् सर्वपृष्ठ याग ज्योतिष्टोम याग की विकृति है अतः प्रकृति गत सर्वपृष्ठ का अनुवाद है। ज्योतिष्टोम में भी माहेन्द्रादि चार स्तोत्रों में पृष्ठ शब्द प्रयुक्त हुआ है। एक ही सूक्त में जो तीन ऋचायें हैं उन्हें ब्राह्मणोक्त रीति से सत्तर संख्या में अभ्यास करना इससे सप्तदश स्तोम होंगे। अतः 'सप्तदश पृष्ठानि' यह अनुवाद है। स्तोत्रों में ही पृष्ठ शब्द का व्यवहार हुआ है।

सिद्धान्त सूत्र—

षडहाद्वा तत्र चोदना ।७।

पदार्थ— (वा) अथवा (षडहात्) छः दिन में साध्य होने वाले याग में जो छः स्तोत्र बताये हैं, (तत्र) उनमें (चोदना) अतिदेश है।

भावार्थ— रथन्तर बृहद्, वैराज रैवत तथा शाक्वर इन छः स्तोत्रों का विश्वजित् सर्वपृष्ठ में अतिदेश है।

लिंगदर्शनाच्च ।८।

पदार्थ—(च) और (लिंगदर्शनात्) लिंग रूप वाक्य भी होने से।

भावार्थ—वैरूपं होतुः, वैराजं मित्रावरुणयोः इत्यादि वाक्यों में वैरूप आदि स्तोत्रों में उस उस स्तोत्र का गान करने वाले का निर्देश होने से षडह-धर्म का ही अतिदेश है।

उत्पन्नाधिकारो ज्योतिष्टोमः ।९।

पदार्थ—(उत्पन्नाधिकारः)एक स्तोत्र में पृष्ठ शब्द (ज्योतिष्टोमः) ज्योतिष्टोम में प्रयुक्त हुआ है।

भावार्थ—बृहत्पृष्ठं भवति' इस वाक्य से ज्योतिष्टोम में बृहत्स्तोत्र को पृष्ठ कहा जाता है तथा माहेन्द्रादि स्तोत्रों में जो पृष्ठ शब्द का व्यवहार है वह तो छत्रिन्याय से है।

द्वयोरिति चेत् ।१०।

पदार्थ—(द्वयोः) दो ही स्तोत्रों का विकल्प है (इति चेत्) यदि ऐसा कहना हो तो—

भावार्थ—ज्योतिष्टोम में 'बृहत्' तथा 'रथन्तर' का विकल्प होने से दोनों के समुच्चय के लिये जो ऐसी शंका की जाय तो उसका उत्तर आगामी सूत्र में है—

न व्यर्थत्वात् सर्वशब्दस्य ।११।

पदार्थ— (न) नहीं (सर्वशब्दस्य) सर्व शब्द (व्यर्थत्वात्) व्यर्थ होने से।

भावार्थ—सर्वशब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त होता है दो में ही नहीं। अतः जो दो स्तोत्रों को उद्देश्य बनाकर सर्व शब्द प्रयुक्त हो तो वह प्रयोग व्यर्थ है। इससे सिद्ध होता है कि सर्व पृष्ठ शब्द से षडह में गिनाये गये छः स्तोत्रों का विश्वजित् याग में अतिदेश है, अनुवाद नहीं

अवभृथ' नामक सौमिक धर्म का अतिदेश होता है। इस अधिकरण के सूत्र—

सिद्धान्त सूत्र—

तथावभृथः सोमात् ।१२।

पदार्थ— (तथा) ऊपर के अधिकरण प्रमाण से (सोमात) सोमयाग से (अवभृथः) सौमिक अवभृथ धर्म का प्रापक है।

भावार्थ—'चातुर्मास्ये तुषैश्च निष्कासेन च अवभृथं यन्ति, यह प्रमाण वाक्य है। दर्शपूर्णमास से पूर्वदिशा में उत्सेक किया जाता है। उसमें तुष तथा निष्कास का विधान है अवभृथ शब्द सौमिक धर्म का प्रापक है? इस संशय

का निराकरण यह है कि अवभृथ शब्द सोमिक का प्रापक है । जिस प्रकार उपयुक्त अधिकरण में षडह याग में ६ पृष्ठ स्तोत्रों का अतिदेश होता है, यह बताया गया है, उसी प्रकार अवभृथ भी सोमिक धर्म का प्रापक है ।

पूर्वपक्ष—

प्रकृतेरिति चेत् ।१३।

पदार्थ—(प्रकृतेः) दर्शपूर्णमास में प्राप्त दिगुत्सेक का तुषनिष्कास में गुणत्व से विधि है । (इति चेत्) जो ऐसा मानने में आवे तो—

भावार्थ—पूर्व दिशा में जो जल का उत्सेचन करने में आता है उसे ही अवभृथ कहा जाता है । उत्सेक का तुष निष्कास में गुण रूप में विधान है । जो यह कहने में आवे तो? इसका उत्तर अगले सूत्र में है—

न भक्तित्वात् ।१४।

पदार्थ— (न) से नहीं (भक्तित्वात्) स्तावक होने से ।

भावार्थ—द्विगुत्सेक में जो अवभृथ का प्रयोग हुआ है वह मात्र उसकी स्तुति रूप है । उससे द्विगुत्सेक का तुष निष्कास में गुण रूप में विधान नहीं हो सकता । अतः सौमिक धर्म का अतिदेश है ।

लिंगदर्शनाच्च ।१५।

पदार्थ--(च) और लिंगदर्शनात्) 'नायुर्दा जुहोति' आदि लिंग वाक्य का दर्शन भी है ।

भावार्थ—'नायुर्दा जुहोति न साम गायति' इस वाक्य में प्रतीत होने वाला आयुर्दा होम और साम गान सौमिकावभृथ का धर्म है । जो यहाँ सोमिक धर्म का अतिदेश न हो तो निषेध भी नहीं होना चाहिये । इससे सिद्ध होता है कि अवभृथ के धर्म का अतिदेश होता है ।

'वारुणप्रघासिकावभृथ में तुष निष्कास द्रव्य होता है ।' यह अधिकरण समझाया जाता है ।

द्रव्यादेशें तद्द्रव्यः श्रुतिसंयोगात् पुरोडाशस्त्वनादेशे तत्प्रकृतिकत्वात् ।१६।

पदार्थ— (द्रव्यादेशे) याग साधन होने से द्रव्य की प्राप्ति होती है

अतः (तद्द्रव्यः) उसमें तुषनिष्कास द्रव्य मानना चाहिये । (श्रुतिसंयोगात्) प्रत्यक्षश्रुति से विधान होने से (अनादेश) प्रत्क्षश्रुति से प्राप्त न होने के कारण (पुरोडाशः तु) पुरोडाश का तो बाध होता है (तत्प्रकृतिकत्वात्) तुषप्रकृतिक होने से।

भावार्थ—तुष निष्कास द्रव्य प्रत्यक्षश्रुति से विहित है। पुरोडाश तो अनुमान गम्य है जो यहाँ वारुण प्रघासिक अवभृथ में प्रत्यक्ष श्रुति से विहित द्रव्य न होता तो पुरोडाश को द्रव्य रूप में लिया जा सकता, परन्तु यहाँ प्रत्यक्ष श्रुत द्रव्य होने से पुरोडाश द्रव्य का बाध होता है।

'वैष्णव शब्द से अतिथ्येष्टि में धर्मों का अतिदेश नहीं, यह अधिकरण समझाते हैं।

गुणविधिस्तु न गृह्णीयात् समत्वात् ।१७।

पदार्थ—(गुणविधि) गुण अर्थात् धर्म का विधान (न) नहीं) गृह्णीयात् ग्रहण करना, (समत्वात्) दोनों स्थान पर समान होने से।

भावार्थ—'आतिथ्यायां नवकपालो वैष्णावो भवति' इसी प्रकार से राजसूये वैष्णवस्त्रिकपालः अतिथ्येष्टि में तथा राजसूय यज्ञ में वैष्णव शब्द का श्रवण होता है। यहाँ वैष्णव शब्द आतिथ्य के धर्म का अतिदेश नहीं करता, परन्तु देवता रूप गुण का विधान करता है कारण कि "विष्णु देवतद यस्य इति वैष्णवः" इस रीति से तद्धित प्रत्यय के द्वारा देवता रूप गुण का विधान दोनों स्थानों में एक सा है। अतः वैष्णव शब्द अतिदेश करने वाला नहीं परन्तु गुण विधायक है।

निर्मन्थ्यादि शब्द भी धर्मों का अतिदेश नहीं करते-यह अधिकरण

निर्मन्थ्यादिषु चैवम् ।१८।

पदार्थ—(च) और (एवम्) इसी प्रमाण से (निर्मन्थ्यादिषु) निर्मन्थ्य आदि शब्दों में भी समझना।

भावार्थ—'अग्नो निर्मन्थ्येनेष्टकाः पचन्ति' इत्यादि स्थानों में निर्मन्थ्य नामक अग्नि का नाम आता है, और दर्शपूर्णमास में बर्हि संस्कार प्राप्त का आम्नान है। इस स्थान पर भी मथित अग्नि संस्कृत बर्हि भी गुणत्व रूप से विहित होती है। ये शब्द धर्मों का अतिदेश करने वाले नहीं हैं।

'द्वयोः प्रणयन्ति' इस वाक्य से सौमिक धर्म का अतिदेश नहीं'- यह अधिकरण—

प्रणयनं तु सौमिकमवाच्यं हीतरत् ।१९।

पदार्थ— (तु) पूर्वपक्ष का सूचक है ।(प्रणयनम्) अग्निप्रदीपन (सौमिकम्) सौमिक है, (हि) कारण कि (इतरत्) अन्य का (अवाच्यम्) वाच्य नहीं ।

भावार्थ—चातुर्मास्य में इस प्रकार श्रवण होता है—'द्वयोः प्रणयन्ति तस्माद् द्वाभ्यामेति । इस वाक्य से जो प्रणयन शब्द है वह सौमिक प्रणयन है सोमयाग में जो धर्म वाला होता है वह प्रणयन स्वोकार करना) अन्य जो दार्शपौर्णमासिक प्रणयन है वह अवाच्य है । जो कि प्रणयन शब्द असमासिक होने से लक्षण से प्रणयन शब्द से सौमिक प्रणयन समझना। (प्रणयन अर्थात् वेदि में अग्नि प्रदीप्त करना) ।

उत्तरवेदिप्रतिषेधश्च तद्वत् ।२०।

पदार्थ—(च) और (तद्वत्) उसी प्रमाण से (उत्तरवेदिप्रतिषेधः) उत्तर वेदि का प्रतिषेध भी है।

भावार्थ—'न वैश्वदेवे उत्तरवेदिमुपवपन्ति न शुनासीरीये' वैश्वदेव तथा सुनासीरीय उत्तर वेदी के उपवपन का प्रतिषेध किया है। प्राप्ति के विना प्रतिषेध नहीं होता, यह निर्णीतवाद है। सौमिक प्रणयन में उत्तर वेदी होती है, परन्तु दार्शपौर्णमासिक याग में नहीं होती। उक्त प्रतिषेध से सौमिक प्रणयन ही होना चाहिये ।

सिद्धान्त सूत्र—

प्राकृतं वाऽनामत्वात् ।२१।

पदार्थ— (वा) अथवा (प्राकृतम्) प्रकृतिभूत दार्शपौर्णमासिक याग का प्रणयन है। (अनामत्वात्) प्रणयन शब्द सौमिक प्रणयन का नाम नहीं हो सकता ।

भावार्थ—दार्शपौर्णमासिक प्रणयन है कारण कि प्रणयन शब्द सौमिक प्रणयन का नाम नहीं बन सकता । प्रणयन शब्द लक्षणा से सौमिक प्रणयन जाना जाता है जो ऐसा कहा है वह भी उचित नहीं । संभवति 'श्रुत्यर्थे लक्षणार्थोऽग्राह्यः जहाँ श्रुत्यर्थ संभवित हो वहां लक्षणार्थ नहीं लिया जा सकता । अतः उक्त स्थल में प्रणयन शब्द सौमिक का वाचक नहीं, परन्तु प्राकृतिक दार्शपौर्णमासिक प्रणयन का बोधक है ।

परिसंख्यार्थं श्रवणं गुणार्थमर्थवादो वा ।२२।

पदार्थ—परिसंख्यार्थम्) परिसंख्या के लिये (श्रवणम्) उक्त वाक्य का श्रवण मानना (गुणार्थम् अर्थवादो वा) गुण के लिये अथवा अर्थवाद के लिये।

भावार्थ—दार्शपौर्णमासिक अवाच्य है।'द्वयोः प्रणयन्ति' यह वाक्य परिसंख्या के लिये अथवा अर्थवाद के लिये है, ऐसा समझना। परिसंख्या तीन दोषों से युक्त होने के कारण अर्थवाद ही मानना उचित है। प्रणयन दर्शपौर्णमासिक है अतः वह सौमिक प्रणयन धर्म का अतिदेश नहीं करता।

'द्वयोः प्रणयन्ति' इस वाक्य से मध्यम दो पर्व में अग्नि का प्रणयन करना होता है, यह अधिकरण—

पूर्वपक्ष सूत्र—

प्रथमोत्तमयोः, प्रणयनमुत्तरवेदि-प्रतिषेधात् ।२३।

पदार्थ—(प्रथमोत्तमयोः) प्रथम तथा अन्तिम पर्व में (प्रणयनम्) अग्निप्रणयन करना होता है। (उत्तरवेदिप्रतिषेधात्) उत्तर वेदि का प्रतिषेध होने से।

भावार्थ—यह प्रणयन वैश्वदेव, वरुण प्रघास, साकमेध तथा शुनासीरीय इन चार पर्वों में से किस पर्व में करना होता है, इस जिज्ञासा के समाधान के लिये यह अधिकरण है। उक्त चार पर्वों में से प्रथम तथा अन्तिम पर्व में वैश्वदेव तथा शुनासीरीय पर्वों में अग्निप्रणयन करना प्रथम तथा अन्तिम पर्व में उत्तर वेदी का प्रतिषेध किया है तथा प्रतिषेध प्राप्ति पूर्वक होने से इस पर्व में उत्तरवेदी होने से समझाया जाता है। 'उत्तरवेद्यां अग्नि निदधाति' इस वाक्य से प्राप्त होने वाली उत्तर वेदी का प्रतिषेध सार्थक बनता है। प्रथम तथा अन्त्य पर्व में अग्नि का प्रणयन करना चाहिये।

सिद्धान्त सूत्र—

मध्यमयोर्वा गत्यर्थवादात् ।२४।

पदार्थ—(वा) अथवा (मध्यमयोः) मध्यम के दो वरुण प्रघास तथा साकमेध पर्व में प्रणयन में होता है। (गत्यर्थवादात्) गति रूप अर्थ का

वाद होने से।

भावार्थ—'ऊरू वा एते यज्ञस्य यद्वरुणप्रघासः साकमेधश्च' वरुण प्रघास तथा साकमेध ये दो पर्व यज्ञ के ऊरू हैं। ऊरु शब्द का अर्थ गति साधन है अतः ऊरु पद से संस्तुति होने से 'द्वाभ्यां यन्ति' दो में अग्निप्रणयन करना यह दो संख्या उत्तम चार पर्वों में शेष जो दो पर्व हैं वे ही समझे जाने चाहियें अर्थात् वरुणप्रघास तथा साकमेध में ही प्रणयन करना।

औत्तरवेदिकोऽनारभ्यवादप्रतिषेधः ।२५।

पदार्थ—(औत्तरवेदिकः) उत्तरवेदी का जो प्रतिषेध है वह तो (अनारभ्यवादप्रतिषेधः) अनारभ्यवाद का प्रतिषेध है।

भावार्थ—'न वैश्वदेवे उत्तरवेदिमुपकिरति न शुनासीरीये' इस वाक्य से प्रतिषेध करने में आया है वह अनारभ्यवाद का प्रतिषेध है। 'उत्तरवेद्यामग्निं निदधाति' यह प्रणयन एक भी पर्व का आरम्भ किये विना कहा है अतः अनारभ्यवाद है। और जो इसी वाद का ही उपर्युक्त वाक्यों से उल्लेख हुआ है, उत्तरवेदी अग्नि प्रणयन के लिये ही होती है। इस अधिकरण से यह स्पष्ट हुआ कि मध्य के दो वरुणप्रघास तथा साकमेध पर्व में ही प्रणयन करना उचित है।

स्वरसामैककपालामिक्षं च लिंग-दर्शनात् ।२६।

पदार्थ— (च) और (स्वरसामैककपालामिक्षम्) स्वरसाम, एककपाल आमिक्षा ये तीनों शब्द धर्म का अतिदेश करते है। (लिंगदर्शनात्) लिंग वचन होने से।

भावार्थ—स्वर साम शब्द अन्य क्रतु में श्रूयमाण है। वे गवामयनस्थ स्वर साम शब्द के सप्तदश स्तोम आदि जो धर्म हैं, उनका ग्राहक है और इसी प्रमाण से एक कपाल तथा आमिक्षा शब्द भी धर्मो के ग्राहक हैं। स्वर साम शब्दों का अर्थ जैमिनीय न्यायमाला ग्रन्थ ७.३.१० में इस प्रकार है—गवामयने द्वयोः मासषट्कयोर्मध्ये वर्तमानं विषुवन्नामकं प्रधानभूतमेकमहर्विद्यते तच्च दिवाकीर्त्यम्। तस्मात् प्राचीनास्त्रयः स्वरसामसंज्ञका अहर्विशेषाः तथोपरिष्टादपि त्रयः स्वरसामानः। अर्थात् गवायन में इस प्रकार पाठ है। दो मास षट्क के बीच में विषुवत् नामक प्रधान भूतदिवस है

उसका नाम दिवाकीर्त्य है। यह दिवाकीर्त्य पहले के तीन दिवस तथा पीछे के तीन दिवसों के स्वर साम कहलाते हैं। **"अन्यत्रत्वेवं श्रूयते पृष्ठ्यः षडहः द्वौ स्वरसामनौ"** अन्य ऋतु में पृष्ठ्य तथा षडह ये दोनों स्वर साम कहलाते हैं। इस स्थान पर एकत्र विहित हुए स्वर साम वाचक शब्द अन्य स्थल विहित स्वर साम के धर्म का ग्राहक है, अतः 'वैष्णव' शब्द के पीछे स्वर सामादि शब्द गुण विधायक नहीं, परन्तु धर्म का अतिदेश करने वाले हैं।

चोदनासामान्याद् वा ।२७।

पदार्थ— (चोदनासामान्यात्) विधि सामान्य होने से (वा) हेतु सूचक है।

भावार्थ—स्वर सामत्व सामान्य से एक कपालत्व सामान्य से तथा आमिक्षा सामान्य से भी जाना जाता है कि यह शब्द गुण विधायक है।

'वास आदि शब्द आकृति=जातिवाचक हैं' यह अधिकरण प्रस्तुत है—

पूर्वपक्ष सूत्र—

कर्मजे कर्म यूपवत् ।२८।

पदार्थ— (कर्मजे) तुरीवेमादि संयोगादि रूप क्रिया से उत्पन्न होने वाले वस्त्र आदि द्रव्य (कर्म) क्रिया वाचक हैं (यूपवत्) यूप के तुल्य।

भावार्थ—'वासो ददाति' इस स्थान पर 'वासः' शब्द तुरीवेमादि से होने वाली क्रिया का वाचक वासशब्द है। जिस प्रकार यूप शब्द बाँस आदि से होने वाली क्रिया का वाचक है उसी प्रकार और ऊपर जो 'वासो ददाति' वाक्य है उसका अर्थ यह है कि वस्त्र उत्पन्न कर प्रदान करना ऐसा पूर्वपक्ष वादी का मानना है।

सिद्धान्त सूत्र—

रूपं वाऽशेषभूतत्वात् ।२९।

पदार्थ— (वा) अथवा (रूपम्) आकृति अर्थात् जाति वाच्य है। (शेषभूतत्वात्) अंग के रूप में विधान न होने से।

भावार्थ—उक्त वाक्य में जो वास शब्द प्रयुक्त है, उसका अर्थ जाति है। वास जनक क्रिया के अंग रूप में विधान न होने से 'यूपं तक्षति' इस स्थान पर तो क्रियाकलाप का विधान है अतः यूप शब्द का अर्थ यूपजनक क्रिया हो सकता है। परन्तु वासः शब्द का अर्थ तज्जनक क्रिया वाचक नहीं परन्तु जाति

वाचक है।

गर्ग त्रिरात्र में लौकिक अग्नि का उपनिधान है—यह अधिकरण—

पूर्वपक्ष—

विशये लौकिकः स्यात् सर्वार्थत्वात् ।३०।

पदार्थ—(विशये) संशय में (लौकिकः स्यात्) लौकिक अग्नि का उपधान समझना (सर्वार्थत्वात्) कारण कि वह वैदिक सर्व कर्म के लिये है।

भावार्थ—गर्ग त्रिरात्र में स्तोत्र के अंग रूप में अग्नि का उपनिधान करना कहा है। अग्निमुपनिधाय स्तुवीत इस स्थान पर लौकिक अग्नि का ग्रहण करना या वैदिक का? पूर्वपक्ष का मानना है कि आधान से संस्कृत हुआ वैदिक अग्नि ही जानना चाहिये कारण कि वैदिक सर्व कर्म के लिये आधान संस्कृत अग्नि ही विहित है।

सिद्धान्त सूत्र—

न वैदिकमर्थनिर्देशात् ।३१।

पदार्थ—(वैदिकम्) वैदिक अग्नि (न) नहीं (अर्थनिदशात्) होमरूप अर्थ का वैदिक अग्नि में निर्देश होने से।

भावार्थ—वैदिक अग्नि का उपनिधान नहीं करना चाहिये। परन्तु लौकिक अग्नि का है। 'यदाहवनीये जुहोति, इस वाक्य से प्रतीत होता हुआ होम रूप अर्थ जहां उपस्थित हो वहाँ ही वैदिक अग्नि ग्राह्य होता है। 'अग्निमुपनिधाय स्तुवीत इस वाक्य से होम रूप अर्थ की प्रतीति नहीं होती परन्तु उपनिधान की प्रतीति होती है वहतो लौकिक अग्नि के निकट है अर्थात् वैदिक अग्नि के धर्म का अतिदेश नहीं।

तथोत्पत्तिरितरेषाम् ।३२।

पदार्थ—(तथा) इस प्रमाण से (इतरेषाम्) अन्य अग्नियोंकी (उत्पत्ति) उत्पत्ति है।

भावार्थ—अन्य धिष्ण्य अग्नियों की उत्पत्ति भी उसी प्रकार समझनी अर्थात् धिष्ण्यादि अग्नियों का भी उपनिधान नहीं। इन अग्नियों का कार्य 'प्रागासीनो धिष्ण्यात् व्याघारयति'। इत्यादि व्याघार के लिये होता है। उपनिधान के लिये नहीं। अतः स्तुति के अंग रूप में लौकिक अग्नि का उपनिधान समझना।

'उपशयो यूपो भवति' इत्यादि वाक्य में 'यूप' शब्द संस्कार प्रयोजक नहीं, यह अधिकरण—

पूर्वपक्ष सूत्र—

संस्कृतं स्यात्तचछब्दत्वात् ।३३।

पदार्थ— (संस्कृतम्) उपशय द्रव्य संस्कृत (स्यात्) होता है। (तच्छब्दत्वात्) यूप शब्द से यूप के धर्म का अतिदेश होने से।

भावार्थ—एकादशिन्यां श्रूयते 'उपशयो यूपो भवति' ग्यारह यूपों का जो समुदाय होता है उसे 'एकादशिनि, कहते हैं। उनमें दक्षिण भाग अवस्थापित जो ग्यारहवां यूप हो उसे उपशय कहते हैं। परिव्याण आदि यूप संस्कार हैं कारण कि संस्कार के निमित्त ही यूप शब्द का प्रयोग हुआ है। ऐसा पूर्व पक्ष का मानना है।

सिद्धान्त सूत्र—

भक्त्या वाऽयज्ञशेषत्वाद् गुणानामभिधानात् ।३४।

पदार्थ— (वा) अथवा (भक्त्या) गौण वृत्ति से यूप शब्द का प्रयोग हुआ है। (गुणानां) गुणों का (अभिधानात्) अभिधान होने से (अयज्ञशेषत्वात्) यज्ञ का अंग न होने से उसमें संस्कार नहीं है।

भावार्थ—उपशय यूप यज्ञ का अंग नहीं होता अतः उसमें संस्कार नहीं किये जाते। तूष्णी छेदन आदि गुणों का अभिधान होता है और उससे उनमें यूप शब्द का प्रयोगगौणी वृत्ति से हुआ है पशुबंधन के लिये यूपों का संस्कार किया जाता है, परन्तु ग्यारहवां यूप कि जिसका नाम उपशय है वहां पशुबंधन विहित ही नहीं अतः वहां परिव्याणादि संस्कार नहीं होते। अमन्त्रक छेदन आदि कई धर्म होते हैं। इससे गौणी वृत्ति के कारण यूप शब्द का प्रयोग करने में आया। अतः यूप शब्द धर्म का अतिदेश नहीं करता।

'पृष्ठैरुपतिष्ठते' आदि वाक्य में पृष्ठ शब्द का वाच्य ऋग्वेद की ऋचायें हैं, यह अधिकरण समझाते हैं—

पूर्वपक्ष—

कर्मणः पृष्ठशब्दः स्यात्तथाभूतोप-देशात् । ३५ ।

पदार्थ— (कर्मणः) 'पृष्ठैरुपदधाति' इत्यादि में आये (पृष्ठशब्दः) पृष्ठ शब्द (स्यात्) कर्म के वाचक हैं। (तथाभूतोपदेशात्) उन शब्दों से उपदेश प्राप्त होने से।

भावार्थ—**अग्नौ श्रूयते पृष्ठैरुपतिष्ठते** इत्यादि वाक्य में पृष्ठ शब्द कर्म का वाचक है। हिंकार आदि सामान्य धर्म तथा '**पृथिवीं मनसा ध्यायेत्** आदि विशेष धर्मों सहित पृष्ठ सदृश कर्म करना चाहिये। इसलिए कि अग्निचयन गत उपस्थान कर्म में जो पृष्ठ शब्द प्रयुक्त हुआ है वह पृष्ठ स्तोत्र का जो धर्म है उसका अतिदेश करता है। ऐसा पूर्वपक्ष का मानना है।

सिद्धान्त सूत्र—

अभिधानोपदेशाद्वा विप्रतिषेधाद् द्रव्येषु पृष्ठ शब्दः स्यात् । ३६ ।

पदार्थ-(वा) अथवा (अभिधानोपदेशात्) आत्मनेपद का अभिधान होने से (विप्रतिषेधात्) आत्मनेपद का विरोध होने के कारण (पृष्ठ शब्दः) पृष्ठ शब्द (द्रव्येषु) ऋचा रूप द्रव्य का वाचक है।

भावार्थ—पृष्ठ' शब्द ऋग्मंत्र का वाचक है। किसी कर्म का वाचक नहीं कारण कि **उपान्मन्त्रकरणे** १-३-२५ यह पाणिनीय व्याकरण का मन्त्र सूत्र है। यह उपउपसर्ग पूर्वक 'स्था' धातु को आत्मनेपद से विधान करता है। जो उप स्थान का कारण मन्त्र हो तो उपस्थान का अर्थ इस स्थान पर स्तुति करना होता है। परन्तु '**पृष्ठेरुपतिष्ठते**' इस स्थान पर पृष्ठ शब्द रथन्तरादि सामगाम युक्त **अभित्वा शूर नोनुमः** इत्यादि ऋग्वेद के मंत्रों को ही बताता है। अतः पृष्ठ शब्द स्तोत्र के धर्म का अतिदेश नहीं करता परन्तु वह समागम युक्त ऋचा का ही वाचक है। पृष्ठ—यह मंत्र होने से उससे कारण अर्थ में तृतीया विभक्ति होती है। पृष्ठ संज्ञक मंत्रों से स्तुति करना है, अर्थ यह 'पृष्ठेरुपतिष्ठते' वाक्य का अर्थ है। इस कारण से पृष्ठ शब्द ऋचा का ही वाचक है।

इति मीमांसादर्शनभाष्ये सप्तमाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

अथ मीमांसाभाष्ये सप्तमाध्यायस्य चतुर्थः पादः

सौर्य चरु में इति कर्तव्यता का अतिदेश है, यह अधिकरण समझाते हैं---

इतिकर्त्तव्यता विधेर्यजतेः पूर्वत्वम् ।१।

पदार्थ—(इतिकर्त्तव्यताऽविधेः) इतिकर्त्तव्यता का विधान न होने से (यजतेः) सौर्यादि याग में (पूर्वत्वम्) पूर्ववत्ता है। अर्थात् अन्य विहित धर्मों का उनमें अतिदेश है।

भावार्थ—'सौर्यं चरुं निर्वपेद् ब्रह्मवर्चसकामः' इस वाक्य में सौर्ययाग का विधान है। इसमें किसकी भावना करनी तथा किससे भावना करनी ये दो अंश तो स्पष्ट हैं। इसलिये कि 'सौर्येण चरुणा ब्रह्मवर्चसकामः' सौर्यचरु से ब्रह्मवर्चस प्राप्त करना। यहाँ सौर्यचरु यह करण है, तथा ब्रह्मवर्चस यह फल हैं; परन्तु 'कथंभावयेत्' अर्थात् किस प्रकार भावना करनी यह तीसरा अंश नहीं बताया। अतः जो भाग अन्यत्र जिन धर्मों से निश्चित किया है इस याग में करना चाहिये। इतिकर्त्तव्यता तो करण का व्यापार है। व्यापार विना करण फल उत्पन्न नहीं कर सकता। अतः किस रीति से याग करना, इन धर्मों का अतिदेश प्रकृतिभूत याग में करना चाहिये।

सौर्यचरु में वैदिक इतिकर्त्तव्यता है यह अधिकरण समझाते हैं;

पूर्वपक्ष—

स लौकिकः स्यात् दृष्टप्रवृत्तित्वात् । २ ।

पदार्थ—(तु) और (वचनात्) जो कोई वचन मिले तो उनसे (ततः) लौकिक इति कर्त्तव्यता से (अन्यत्वम्) भेद मानना।

भावार्थ—जो कोई वैदिक वचन मिले तो लौकिक इति कर्त्तव्यता को त्याग कर वैदिक इतिकर्त्तव्यता का ग्रहण करना चाहिये, परन्तु जो ऐसा वचन न मिले तो उक्त यागों में लौकिक कर्त्तव्यता स्वीकार करनी चाहिये। यह भी पूर्वपक्ष की मान्यता है।

सिद्धान्त सूत्र—

वचनात्तु ततोऽन्यत्वम्। ३।

पदार्थ—(तु) और (वचनात्) जो कोई वचन मिले तो उससे (ततः) लौकिक इतिकर्त्तव्यता की अपेक्षा (अन्यत्वम्) भेद मानना।

भावार्थ—जो कोई वैदिक वचन मिले तो लौकिक इतिकर्त्तव्यता का त्याग कर वैदिक इतिकर्त्तव्यता ग्रहण कर सके, परन्तु जो जो ऐसा वचन न मिले तो उक्त योगों में लौकिक कर्त्तव्यता स्वीकार करनी चाहिए। यह भी पूर्व-पक्षवादी का मन्तव्य है।

लिंगेन वा नियम्येत लिंगस्य तद्गुणत्वात्।४।

पदार्थ—(व) अथवा (लिंगेन) लिंग वाक्य से (नियम्येत) इति कर्त्तव्यता का नियम होता है (लिंगस्य) लिंग वाक्य में बताये धर्म (तद्गुणत्वा) वैदिक अपूर्व के गुण होने से।

भावार्थ—लिंग वाक्य से इतिकर्त्तव्यता का निर्णय हो सकता है कारण कि लिंग वाक्य में बताये धर्म वैदिक इतिकर्त्तव्यता बताते हैं। जिस प्रकार **'प्रयाजे प्रयाजे कृष्णलं जुहोति'** इस वाक्य में सूर्ययाग में कृष्णल नामक द्रव्य होमना बताया गया है और उसे प्रत्येक प्रयाज में होमना कहा है। अब प्रयाज तो वैदिक अपूर्व का साधन है अतः वैदिक इतिकर्त्तव्यता ही सौर्ययाग में करनी, यह निर्णय होता है। इस प्रमाण से अनुमान वाक्य का प्रयोग भी हो सकता है। **सौर्ययागापूर्वं, प्रयाजादिजन्यं, वैदिकापूर्वत्वात्, दर्शपूर्णमास पूर्ववत्।** सौर्यभाग का अपूर्व प्रयाजादि धर्म से उत्पन्न हो सकता है। वैदिक अपूर्व होने से। जिस प्रकार दर्श पूर्णमास का अपूर्व प्रयाजादि धर्मों से उत्पन्न होता है उसी प्रकार इस अनुमान से सौर्ययाग में वैदिक इतिकर्त्तव्यता है, यह सिद्धान्त है। आक्षेप सूत्र—

अपि वाऽन्यायपूर्वत्वात् यत्र नित्यानुवाद-वचनानि स्युः।५।

पदार्थ—(अपि वा) अथवा (अन्यायपूर्वत्वात्) अन्यायपूर्वक होने से योग नहीं। (यत्र) जहाँ न्यायपूर्वक लिंग हो, वही मान्य है। अतः उक्त वचन (नित्यानुवाद वचनानि स्युः) नित्य अनुवादबोधक वचन हैं।

भावार्थ—जो न्यायपूर्वक वचन मान्य हों वे मान्य गिने जाते हैं

अन्याय पूर्वक वचन मान्य नहीं गिने जाते। प्रयाजादि धर्म तो दर्शपूर्णमास रूप प्रकरणादि में निबद्ध हैं अतः वे धर्म प्रकरण में से पृथक् नहीं किए जा सकते। सौर्य याग में में प्रयाजादि धर्म ही नहीं तो उनके साथ बताये गये कृष्णल होम किस प्रकार हो सकता है ? जहाँ प्रयाजों का विधान हो वहाँ कृष्णल होम भी हो और वह दर्शपूर्णमास रूप प्रकरण में ही है। अतः वहाँ ही कृष्णल होम कर्त्तव्य है। सौर्य याग में नहीं। अतः प्रयाजे कृष्णलं जुहोति यह वाक्य नित्यानुवाद है। इस कारण से, सौर्य याग में वैदिकी इतिकर्त्तव्यता प्राप्त नहीं हो सकती परन्तु लौकिक इति कर्त्तव्यता ही प्राप्त हो सकती है। यह पूर्वपक्ष का मन्तव्य है।

मिथो विप्रतिषेधाच्च गुणानां यथार्थ-कल्पना स्यात् ।६।

पदार्थ—(च) और (मिथो विप्रतिषेधात्) एक दूसरे का विप्रिषेध होने से (गुणानाम्) धर्मों की (यथार्थ कल्पना स्यात्) यथार्थ कल्पना करनी चाहिए।

भावार्थ—वैदिकी तथा लौकिकी दोनों इतिकर्त्तव्यता किस लिए न करनी, इसके उत्तर में यह सूत्र है। दो इतिकर्त्तव्यता की आवश्यकता नहीं है एक इतिकर्त्तव्यता से कर्म पूर्ण हो गया तो पीछे दूसरी व्यर्थ हो जाती है यह तो स्पष्ट समझा जा सकता है। अतः एक की कल्पना करनी, यही वास्तविक है। प्रकरण निवद्ध होने से वैदिक इतिकर्त्तव्यता तो उससे छूट नहीं सकती, इससे लौकिक इतिकर्त्तव्यता करनी चाहिए। लौकिकी इतिकर्त्तव्यता जो स्मृति में उक्त है तथा वैदिकी इतिकर्त्तव्यता जो वेद तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में कही गई हैं। उक्त न्याय से लौकिकी इतिकर्त्तव्यता करनी चाहिए।

भागित्वात्तु नियम्येत गुणानामभिधानत्वात्सम्बन्धादभिधानवद् यथा धेनुः किशोरेण ।७।

पदार्थ—(गुणानाम्) प्रयाजादि गुणों का (भागित्वात्) अंशत्व होने से (अभिधानवत्) अग्निहोत्रादि नाम वाले प्रयाजादि गुण (अभिधानत्वात्) सौर्ययाग में अभिहित होने से (सम्बन्धात्) सम्बन्ध होने के कारण (नियम्येत) वैदिकी इतिकर्त्तव्यता का नियम बंधा है (यथा धेनुः किशोरेण)

जिस प्रकार धेनु शब्द किशोर के सम्बन्ध के कारण अश्वधेनु में प्रयुक्त होता है

भावार्थ—वैदिगगुण जो प्रयाज हैं, उनका स्मरण विकृति रूप सौर्ययाग में होता है। अतः वैदिक गुणों के सम्बन्ध के कारण वैदिक इतिकर्त्तव्यता ही होनी चाहिए तथा इनका ही अतिदेश होना चाहिए। लौकिकी इतिकर्त्तव्यता का अतिदेश नहीं हो सकता। जो लौकिक पार्वण धर्म का अतिदेश अन्यत्र सुना जाता है यह तो जिस प्रकार धेनु शब्द की प्रवृत्ति गाय में होते हुए भी किशोर शब्द के सम्बन्ध के कारण अश्व में भी धेनु शब्द की प्रवृत्ति होती है। इसी प्रकार प्रयाजादि धर्मों का अतिदेश न होने पर भी विकृति याग में उन्हें मानना चाहिये। **धेनुः स्यात् नवसूतिका** जो गाय सद्यः प्रसूता हो उसे धेनु कहते हैं। और '**कृषण किशोरा धेनु**; ऐसा कहा जावे तो उस धेनु शब्द से घोड़ी समझी जाती है कारण कि उसके साथ 'किशोर' शब्द प्रयुक्त हुआ है। 'किशोर' घोड़ी के बछेरे को कहते हैं। इसलिए जिस प्रकार धेनु शब्द में अदृष्ट प्रवृत्ति होने के कारण किशोर के सम्बन्ध से धेनु शब्द अश्व के लिये प्रयुक्त हुआ है यह समझा जाता है। इसी प्रकार प्रयाज के सम्बन्ध से सौर्य याग में वैदिक इतिकर्त्तव्यता हो तो न्याय्य है।

पूर्वपक्ष—

उत्पत्तीनां समत्वाद् वा यथाधिकारं भावः स्यात् ।८।

पदार्थ—(वा) अथवा (उत्पत्तीनाम्) प्रयाज तथा अनुयाज आदि उत्पत्तियां (समानत्वात्) समान होने के कारण (यथाधिकारम्) अधिकार के रूप में (भावः स्यात्) अस्तित्व रखती हैं।

भावार्थ—प्रयाज प्रधान हों और अन्य उनके अंग हों तो उन प्रयाजों की प्रवृत्ति के साथ उनके अंगों की (अनुयाजादि) भी प्रवृत्ति होनी चाहिए। परन्तु ऐसा नहीं। प्रयाज के बिना भी अनुयाज होते है इसका प्रापक कोई प्रमाण नहीं है। और अनेक स्थानों पर पार्वण धर्मों का सम्बन्ध देखने में आता है। अनुयाज तो एक ही समय केवल दर्शपूर्णमास में ही देखने में आते हैं, अतः सौर्य याग में प्रयाजों के सभी पार्वण धर्म अंग रूप में आते हैं। इसलिए इतिकर्त्तव्यता लौकिकी ही होगी।

उत्पत्तिशेषवचनं च विप्रतिषिद्धमेकस्मिन् ।९।

पदार्थ—(च) और (उत्पत्तिशेषवचनम्) एक ही वाक्य में प्रधान की

उत्पत्ति अंगों का भी विधान मानना यह तो (विप्रतिषिद्धम्) विप्रतिषिद्ध है।

भावार्थ—जो 'निर्वपेत्' इस एक ही वाक्य से प्रधान और अंगों का समान रीति से विधान होता हो तो अंगों को भी पृथक् फल का सम्बन्ध मानना पड़ेगा और ऐसा करने से अंगों का अंगपना ही नष्ट हो जायगा। कारण कि जिस कर्म का स्वतंत् फल होता है, वे अंग कर्म नहीं कहलाते परंतु प्रधान ही कहलाते हैं। अतः लौकिकी अर्थात् स्मृतियों में कही जो इति-कर्त्तव्यता वह स्वीकार करनी चाहिए। यह पूर्वपक्षवादी की मान्यता है।

विध्यन्तो वा प्रकृतिवच्चोदनायां प्रवर्तते तथा हि लिंगदर्शनम् ।१०।

पदार्थ—(व) अथवा (प्रकृतिवत्) दर्शपूर्णमास के रूप में (चोदनायाम्) सौर्ययाग विधि में (विध्यन्तः) पुरोडाशादि निखिल (प्रवर्तते) सम्बन्ध प्राप्त करते हैं। (तथा हि) उसी धर्म के प्रमाण से (लिंगदर्शनम्) प्रयाजादि धर्म प्रापक लिंग का दर्शन है।

भावार्थ—जिस प्रकार दर्शपूर्णमास रूप प्रकृतियाग में तीन अंश करणीय होते हैं। (१) किन साधनों से याग करना (२) क्या करना चाहिए (३) किस रीति से करना— ये तीन अंश कहलाते हैं। विकृति रूप सौर्य-याग में भी ये तीन अंश अवश्य होते हैं। उनमें से दो अंश बताये जाते हैं। (१) चरू से होम करना (२) उस याग से ब्रह्मवर्चस प्राप्त करगा। तीसरा अंश, किस रीति से याग करना, यह बताया गया, इसे 'विध्यन्त' कहा गया है। पुरोडाश आदि धर्म करना, यह तीसरा अंश है। और उनकी सौर्य याग में प्राप्ति है, अतः इतिकर्त्तव्यता वैदिकी है, कारण कि पुरोडाशादि धर्म स्मृतियों में नहीं कहे गये वे तो ब्राह्मण ग्रंथों में ही वर्णित हैं। और वे वैदिक वचन होने से वेदोक्त हैं। वैदिक इतिकर्त्तव्यता करनी चाहिये, यह सिद्धान्त पक्ष है।

लिंगस्य हेतुत्वात् अलिंगे लौकिकं स्यात् ।११।

पदार्थ– (लिंगस्य) प्रयाजादि वाचक शब्द का श्रवण होने से (हेतुत्वात्) वह हेतु रूप है। (अलिंगे) जो लिंग वाक्य न हो तो (लौकिकं स्यात्) लौकिक इतिकर्त्तव्यता माननी होगी।

भावार्थ—प्रजासाधान ऐन्द्राग्न इष्टि में भी दर्शपूर्णमास का धर्म प्रापक

लिंग है। अतः वहां भी प्रयाजादि वैदिक धर्म ही करने होते हैं। जहां लिंग वाक्य का श्रवण न हो, वहीं लौकिक धर्म करने होते हैं, अर्थात् लौकिकी अतः स्मार्त इतिकर्त्तव्यता करनी होती है।

लिंगस्य पूर्ववत्त्वाच्चोदनाशब्दसामान्यादेके-नापि निरुप्येत यथा स्थाली पुलाकेन ।१२।

पदार्थ—(लिंगस्य) प्रयाजादि लिंग (पूर्वत्वात्) अपने से अन्य भी कारण होने से (चोदनाशब्दसामान्यात्) कर्म बोधक विधि पद सामान्य होने से (अपि) भी (निरूप्येत) वैदिक इतिकर्त्तव्यता का निरूपण हो सकता है। (यथा) जैसे (स्थालीपुलाकेन) स्थाली पुलाक से।

भावार्थ—कर्म बोधक विध्यर्थ क्रिया पद से ही वैदिक इतिकर्त्तव्यता समझी जाती है कारण कि वैदिक विधान में **'कथं भावयेत्'** वह अंश आवश्यक होता है। किस रीति से अमुक वैदिक कर्म करना ? तो जिज्ञासा की शान्ति दर्शपूर्णमास के प्रसंग में इस प्रकार हो सकती है। लिंग वाक्य कोई भी इस स्थान पर हो तो भी उससे वैदिक इतिकर्त्तव्यता सर्व विकृतियाग में समझी जाती है। जिस प्रकार देगची में पकते अन्न का एक दाना सुपस्व हो गया .यह समझ कर सारा अन्न पक ही गया है, ऐसा समझा जाता है। उसी प्रकार किसी भी एक स्थान पर विकृतियाग में लिंग वाक्य होने से सर्वत्र विकृतियाग में कर्म प्रकृति याग के प्रमाण से होते हैं ऐसा समझा जा सकता है। इससे सिद्ध होता है कि विकृतिभूत सौर्ययाग में इतिकर्त्तव्यता वैदिक ही है लौकिक नहीं।

'गवामयन' नामक यज्ञ में ऐकाहिक इतिकर्त्तव्यता का अनुष्ठान करना चाहिए। यह अधिकरण समझाते हैं।

पूर्वपक्ष—

द्वादशाहिकमहर्गणे तत्प्रकृतित्वादैकाहिक-मधिकागमात् तदाख्यं स्यादेकाहवत् ।१३।

पदार्थ—(अहर्गणे) अहर्गण नामक याग में (द्वादशाहिकम्) द्वादशाह नामक याग के धर्म कर्त्तव्य होते हैं। (तत्प्रकृतित्वात्) एकाहयाग द्वादशाह याग की विकृति होने से। (ऐकाहिकम्) ऐकाह सम्बन्धी समाख्यान है ज्योति

गौः आयु आदि (अधिकागमात्) ज्योति होम में अधिक धर्मों की प्राप्ति होने से (तदाख्यम् स्यात्) तदाख्य होती है। (एकाहवत्) एकाह के तुल्य।

भावार्थ—गवामयन याग में ज्योति, गौ तथा आयु नाम एक दिन साध्य तीन याग हैं, उनमें द्वादशाह धर्म कर्त्तव्य होते हैं। ज्योति आदि दैनिक यागों के नाम हैं। इस याग में जो प्रकृति याग की अपेक्षा अधिक धर्म होते हैं उनके करने के साथ द्वादशाहिक धर्म का विरोध नहीं। जहाँ प्रकृति के साथ विकृति धर्मों का विरोध ज्ञात हो वहाँ द्वादशाहिक धर्म करने चाहियें। ऐसा पूर्वपक्ष वाले का मानना है।

लिंगाच्च ।१४।

पदार्थ—(च) और (लिंगात्) लिंग वाक्य होने से।

भावार्थ—द्वादशाहिक धर्मों का अनुष्ठान करने के लिए विशेष विवरण शाबर भाष्य में देखना।

न वा प्रत्यक्षत्वात् क्रत्वभिधानादधिका-नाम् शब्दत्वम् ।१५।

पदार्थ—(वा) अथवा (न) नहीं। (प्रत्यक्षत्वात्) नामधेय प्रत्यक्ष होने से (क्रत्वभिधानात्) ज्योतिः आयुः तथा गौः ये कर्म के नामधेय हैं। (अधिकानाम् अशव्दत्वम्) अधिक जो स्तोत्र आदि हैं वे ज्योति आदि नाम से प्राप्त नहीं हैं।

भावार्थ—द्वादशाह धर्म की प्राप्ति ज्योति आदि में नहीं, परन्तु वह क्रतु का नाम होने से क्रतु धर्म की उसमें प्राप्ति है। अतिदेश की अपेक्षा नामधेय प्रबल होता है इससे उसके धर्म की प्राप्ति हुई, यह योग्य है। अधिक जो स्तोत्र, शस्त्र आदि बताये हैं उस नाम से विहित नहीं होते। उनकी प्राप्ति तो वचन विशेष से ही होती है।

लिंगं संघातधर्मः स्यादर्थापत्तेर्द्रव्यवत् ।१६।

पदार्थ—(लिंगम्) लिंग (संघातधर्मः स्यात्) संघात का धर्म होता है। (अर्थापत्तेः) अर्थ को प्राप्ति होने से (द्रव्यवत्) जिस प्रकार एक द्रव्य के स्थान में दूसरा द्रव्य प्राप्त हो तो मूल द्रव्य के धर्म आदेश द्रव्य को प्राप्त होते हैं, उस प्रकार।

भावार्थ—लिंग भी द्वादशाह धर्म की प्राप्ति का कारण नहीं। अर्थात्

द्वादश उपसद का जो विधान है उसकी प्राप्ति ज्योतिरादि में लिंग वाक्य से नहीं होती। लिंग तो संघात का धर्म है। द्वादशाह याग फल विहित है और 'गवामयन' भी फल विहित है। स्थानी के स्थान में जो आदेश हो तो स्थानी के धर्म को प्राप्त करता ही है। जो व्रीहि के स्थान पर नीवार आदिष्ट हो तो अवहननादि जो व्रीहि के धर्म हैं, वे प्रतिनिधिभूत नीवारादि पर भी लागू होते हैं, उनमें अतिदेश अवश्य नहीं पड़ता। अतः द्वादशाह धर्म अतिदेश शास्त्र से गवामयन में प्राप्त नहीं होता।

न वा अर्थधर्मः स्यात्संघातस्य गुणत्वात् ।१७।

पदार्थ—(व) अथवा (न) नहीं (अर्थ धर्मः स्यात्) प्रधान का धर्म है (संघातस्य) समुदायत्व (गुणत्वात्) अहर्गुण होने से।

भावार्थ—द्वादश उपसद द्वादशत्व विशिष्ट दिवस का गुण है। विशिष्ट को जो विधान करने में आता है तो विशेषण का अंग नहीं बनता। राज-पुरुष को बुलाओ ऐसा कहने से राजा को कोई नहीं लाता कारण कि उक्त वाक्य में राजा विशेषण प्रयुक्त हुआ है उससे आनयन रूप क्रिया विशेष्य जो पुरुष है, उसी पर लागू होती है। इसी प्रमाण से लिंग में कहे गये द्वादश उपसद मुख्य के धर्म हैं, विशेषण के नहीं।

अर्थापत्तेर्द्रव्येषु धर्मलाभः ।१८।

पदार्थ—(द्रव्येषु) प्रतिनिधिभूत द्रव्यों में (अर्थापत्तेः) अर्थ में प्राप्ति होने से (धर्म लाभः) स्थानीभूत द्रव्य के धर्म का लाभ होता है।

भावार्थ—जो प्रतिनिधि द्रव्य होता है, उसमें कार्य के लिए स्थानी का धर्म प्राप्त होता है। व्रीहि के अभाव में नीवार प्रतिनिधि द्रव्य हो तो पुरोडाशादि कार्य करने के लिए व्रीहि के अवहनन आदि धर्म का लाभ नीवार में भी होता है। प्रकृत में संघात का कारण उपसद नहीं, अतः द्वादशाह के धर्म की प्राप्ति अतिदेश शास्त्र से नहीं होती।

प्रवृत्त्या नियतस्य लिंगदर्शनम् ।१९।

पदार्थ—(प्रवृत्या) मुख्य प्रवृत्ति से (नियतस्य) नियत का (लिंगदर्शनम्) लिंग वाक्य का दर्शन होता है।

भावार्थ—गवामयन में द्वादशाहिक में प्रथम दिन प्रायणीय कहलाता है और उसके धर्म द्वादशोपसद हैं तथा छः उपसद ज्योति, गौ और आयु नामक जघन्य अहन् के अंग हैं। अतः द्वादशोपसद मुख्य प्रवृत्ति से ही प्राप्त है, वह अतिदेश से प्राप्त नहीं।

विहारदर्शनं च शिष्टस्यानरभ्यवादानां प्रकृत्यर्थत्वात् ।२०।

पदार्थ—(च) और (विहारदर्शनम्) ग्यारह पशुओं का प्रचार वह भी (शिष्टस्य) उसमें विहित का ही दर्शन है। (अनारभ्यवादानाम्) अप्रकरण पठित जो होता है वह (प्रकृत्यर्थत्वात्) भी प्रकरण गामी ही होता है।

भावार्थ—अनारभ्यवाद में जो अर्थ विहित होता है, वह भी किसी न किसी प्रकरण का अनुगामी होता है। इसलिये एकादश पशुप्रचार भी ज्योतिष्टोम रूप प्रकरण का ही अंग है। अतः वहाँ द्वितीय, तृतीय आदि अहन् न होने से द्वादशाह नामक याग में याजो अन्य प्रकृति है, उसमें प्राप्त होता है अतः 'गवामयनार्थमुक्तविधिर्नीतिदेशशास्त्रविषयः' उक्त विधि गवामयनार्थ है अतः यह अतिदेश शास्त्र का विषय नहीं। इसलिये गवामयन में अतिदेश शास्त्र से द्वादशाह की इतिकर्त्तव्यता प्राप्त नहीं होती।

इति मीमांसादर्शनभाष्ये सप्तमाध्यायस्य चतुर्थपादः ।। ७।४ ।।

अथ अष्टमाध्यायस्य
प्रथमः पादः

अब प्रतिज्ञा अधिकरण के सूत्र समझाते हैं।

अथ विशेषलक्षणम् ॥१॥

पदार्थ—(अथ) सामान्य अतिदेश का निरूपण करने के पश्चात् (विशेषलक्षणम्) विशेष अतिदेश लक्षण कहने में आते हैं।

भावार्थ—सप्तम अध्याय में सामान्य अतिदेश का लक्षण बताया है। अब विशेष अतिदेश का लक्षण कहा जाता है।

'विशेष कर्म के धर्मों का अतिदेश करना' यह अधिकरण प्रारम्भ होता है—

यस्य लिंगमर्थसंयोगादभिधानवत् ।२।

पदार्थ—(यस्य) जो विध्यन्त का (लिंगम्) कोई भी शब्दगत या अर्थगत लिंग वैकृतकर्म विधि में जाना जावे उसका विध्यन्त करना। (अर्थ-संयोगात्) अर्थ का उस विध्यन्त के साथ सम्बन्ध होने से (अभिधानवत्) अग्निहोत्रादि नाम से।

भावार्थ—विकृतियाग में विध्यन्त बताने में नहीं आया, अतः विध्यन्त किसी अन्य कर्म से लाना चाहिये। विकृति याग के विधान के साथ देवता द्रव्य आदि के साथ जो विध्यन्त का लिंग जाना जाता है। वही विध्यन्त उस विकृति याग में अनुष्ठित नहीं हो सकता। विध्यन्त अर्थात् इत्थंभाव की आकाँक्षा को जो पूर्ण कर सकता है। **'सौर्यं चरुं निर्वपेत् ब्रह्मवर्चसकामः'** जिन्हें ब्रह्मवर्चस प्राप्ति की इच्छा हो उन्हें सौर्य चरु का निर्वाप करना चाहिए। यहाँ किस रीति से यह निर्वाप करना, यह विध्यन्त बताना नहीं गया। यहाँ सौर्य याग का सम्बन्धी आग्नेय याग है। इसमें देवता भी एक है। तथा द्रव्य भी औषधिरूप, दोनों यागों में एक-सा है। अर्थात् सौर्य चरु औषधि का विकार है, तथा पुरोडाश भी औषधि का

विकार है। इस अर्थगत लिंग से यह फलित होता है कि **सौर्यं चरुं आग्नेयवत् निर्वपेत्** अर्थात् आग्नेय याग में जिस रीति से अष्टकपाल पुरोडाश का निर्वाप होता है उसी रीति से सौर्ययाग में चरु का निर्वाप करना चाहिए। इसी प्रमाण से सोमयाजादि में भी विध्यन्त के बारे में समझना चाहिये। जिस प्रकार कुण्डपायिनामयन में लिखा है—**अग्निहोत्रं जुहुयात्** इस स्थान पर नित्य अग्निहोत्र के धर्म का स्मरण होता है। कारण कि नाम रूप सामान्य से उसका स्मरण होना योग्य है, उसी प्रकार अर्थ का सम्बन्ध भी विशेष विध्यन्त के साथ होने से उनका स्मरण भी होना योग्य है। अतः इस प्रमाण से ही विकृति याग में अनुष्ठान करना।

सोम कर्म में ऐष्टिक धर्म का अतिदेश नहीं, इस अधिकरण के सूत्र प्रस्तुत हैं।
पूर्वपक्ष—

प्रवृत्तत्वादिष्टेः सोमे प्रवृत्तिः स्यात् ।३।

पदार्थ—(सोमे) सोम कर्म में (इष्टेः) इष्टि के धर्मों की (प्रवृत्तिः स्यात्) प्रवृत्ति होती हैं। (प्रवृत्तत्वात्) सोम के अंगभूत दीक्षणीय आदि में प्रवृत्त होने से।

भावार्थ—**'ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामो यजेत'** इस विधान में विध्यन्त के कारण विचारणा है। इसमें इतिकर्त्तव्यता बताने में नहीं आई तो वह कहाँ से ली गई ? दीक्षणीया, आतिथ्या, प्रायणीया आदि में जो विध्यन्त प्रवृत्त है वही विध्यन्त सोम में भी करना। **यथा देवदत्तो भोजयितव्यः, विष्णुमित्रो भोजयितव्यः माठरः कौण्डिन्यो भारद्वाजः** यहाँ माठर आदि में भी जिस प्रकार भोजन का अतिदेश होता है, कारण उपर्युक्त दो वाक्यों में भोजन ही प्रवृत्त है, उसी प्रकार सोम याग में भी दीक्षणीयादि में प्रवृत्त विध्यन्त करना चाहिए। अर्थात् प्रवृत्त इतिकर्त्तव्यता करनी चाहिए।

लिंगदर्शनात् ।४।

पदार्थ—(च) और (लिंगदर्शनात्) लिंग वाक्य के भी दर्शन होने से।

भावार्थ—**तस्य एकशतं प्रयाजानुयाजाः** इस वाक्य में बताये गये प्रयाज तथा अनुयाज ऐष्टिक धर्म ही हैं, अतः सोमयाग में भी ऐष्टिक विध्यन्त हैं।
सिद्धान्त सूत्र—

कृत्स्नविधानाद्वा अपूर्वत्वम् ।५।

पदार्थ—(वा) अथवा (कृत्स्नविधानात्) इतिकर्त्तव्यता का विधान होने से (अपूर्वत्वम्) धर्म की अपेक्षा नहीं।

भावार्थ—सम्पूर्ण अंग कलाप का विधान सोमयाग में हैं, अतः कोई भी धर्म अन्य कर्म में से उसमें नहीं लिया जा सकता।

स्रुगभिधारणाभावस्य च नित्यानुवादात्।६।

पदार्थ—(च) और (स्रुगभिधारणाभावस्य) स्रुगभिधारण का अभाव (नित्यानुवादात्) नित्यानुवाद है।

भावार्थ—जो सोम में इष्टि के धर्म अतिदिष्ट न हो तो **'न सोमऽमाज्येनाभिघारयन्ति** इस वाक्य में सोम में अभिधारण का जो अभाव बताया है, यह सिद्ध करता है कि ऐष्टिक धर्म सोम में है ऐष्टिक धर्म अभिघारण सोम में न हो तो इसका निषेध नहीं होता। प्राप्त का ही निषेध हो सकता है। इसके उत्तर में यह कहा जाता है कि अभिघारण का अभाव यह तो नित्यानुवाद है।

विधिरिति चेत् ।७।

पदार्थ—(विधिः) जो निषेध विधि (इति चेत्) मानने में आवे तो।

भावार्थ—जो अभिघारण का अभाव मानने में आवे तो इसका उत्तर आगे के सूत्र में है।

न वाक्यशेषत्वात् ।८।

(न) निषेध विधि नहीं। (वाक्यशेषत्वात्) वाक्यों का शेष अर्थात् अर्थवाद होने से।

भावार्थ—**'अंशुरंशुष्टे देव सोमाप्यायताम्'** इस मन्त्र का अर्थवाद उक्त वाक्य है।

अथात् **'अवधिपुर्वाएतत् सोमं यदभिषुण्वन्ति'** इत्यादि वाक्य उक्त मंत्र का शेष अर्थात् अर्थवाद रूप है।

शंकते चानुपोषणात् ।९।

पदार्थ—(च) और (अनुपोषणात्) अनुपोषण से (शंकते) शंकरा करते हैं इस कारण।

भावार्थ—**यदनुपोष्य प्रयाद् ग्रीवबद्धमेनममुष्मिंल्लोके निनीयेरन्**

इत्यादि वाक्य में अनुपोषण की शंका बताई है। जो ऐष्टिक धर्म हो तो उसमें उपोषण नियत है। तो उसमें अनुपोषण (उपोषणाभाव) की शंका नहीं करनी चाहिये। ऐसा होने पर भी ऐष्टिक धर्म का अतिदेश नहीं।

दर्शनमैष्टिकानां स्यात् ।१०।

पदार्थ—(दर्शनम्) प्रयाज और अनुयाजों का जो दर्शन है, वह तो (ऐष्टिकानाम्) दीक्षणीया से लेकर अवभृथ तक के प्रयाजों तथा अनुयाजों की (स्यात्) परिगणना है।

भावार्थ—एक सौ प्रयाज तथा अनुयाज जो बताये हैं वे तो सोम के अंगभूत दीक्षणीयादि से लेकर अवभृथ तक के प्रयाजानुयाजों का परिगणन है। ऐष्टिक धर्म नहीं। अतः सोम याग में ऐष्टिक धर्मों का अतिदेश नहीं, यह सिद्धान्त स्पष्ट होता है।

'ऐन्द्राग्नादि में ऐष्टिक धर्म का अतिदेश है।' इस अधिकरण के सूत्र समझाते हैं।

इष्टिषु दर्शपूर्णमासयोः प्रवृत्तिः स्यात् ।११।

पदार्थ – (इष्टिषु) नैमित्तिक तथा अन्य इष्टियों में (दर्शपूर्णमासयोः) दर्श और पूर्णमास याग के (प्रवृत्तिः स्यात्) धर्म की प्रवृत्ति होती है।

भावार्थ – कपाल निर्वाप, निर्वापन्यादि लिंग विशेष से इष्टियों में भी दर्श तथा पौर्णमास के धर्म की प्राप्ति होती है।

अग्निषोमीय पशुयाग में दर्श पौर्णमास के धर्म का अतिदेश है, यह अधिकरण—

पशौ च लिंगदर्शनात् ।१२।

पदार्थ—(च) और (पशौ) अग्नीषोमीय पशु याग में दर्शपूर्णमास के धर्म प्राप्त हैं। (लिंगदर्शनात्) लिंग वाक्य का दर्शन होने से।

भावार्थ—जिनमें पशुओं का दान होता है ऐसे अग्नि तथा सोम उभय देवता के याग में भी दर्श तथा पूर्णमास के धर्म की प्राप्ति होती है।

सवनीय पशु में भी अग्नीषोमीय याग के धर्म अतिदिष्ट हैं—

दैक्षस्य चेतरेषु ।१३।

पदार्थ—(च) और (इतरेषु) अन्य सवनीय पशुओं मे (दैक्षस्य)

अग्नीषोमीय याग के धर्म प्राप्त हैं।

भावार्थ—सवनीय पशुओं में भी अग्नीषोमीय पशु के धर्म प्राप्त हैं। अर्थात् जो विध्यन्त कर अग्नीषोमीय पशु का दान होता है वही विध्यन्त अर्थात् इति कर्त्तव्यता अन्य पशुओं में भी कर वे पशु पात्र को दान में देने।

ऐकादशिन में सवन धर्म का अतिदेश है—

एकादशिनेषु सौत्यस्य द्वैरशन्यदर्शनात्।१४।

भावार्थ—(ऐकादशिनेषु) ऐकादशिन पशुओं में (सौत्यस्य) सवनीय पशु के धर्म कर्त्तव्य होते हैं। (द्वैरशन्यदर्शनात्) द्विरशनारूप लिंग वाक्य मिलता होने के कारण।

भावार्थ—ऐकादशिन पशु सवनीय धर्मों का अतिदेश करते हैं। ऐकादशिनेषु द्वे द्वे रशने परिव्ययति' यहाँ जो दो रशना विहित है वह सवनीय पशु में भी रशनाद्वय विहित हैं। इस साम्य के कारण सवनीय पशुओं के धर्म का अतिदेश होता है।

पशुगणों में ऐकादशिन धर्मों का अतिदेश है—

तत्प्रवृत्तिर्गणेषु स्यात् प्रति पशुयूपदर्शनात्।१५।

पदार्थ—(गणेषु) गणों में (तत्प्रवृत्तिः) ऐकादशिन धर्म की प्रवृत्ति (स्यात्) है। (प्रतिपशु) हर एक पशुओं में (यूपदर्शनात्) यूप का अनुवाद कर दोष का दर्शन बताने के कारण।

भावार्थ—सौत्रामणि याग में पशुगण को उद्दिष्ट कर इस प्रकार पाठ है—'यत्रिषु यूपेऽनालभेत। 'बहिर्धाऽस्मात् इन्द्रियं वीर्यं दध्यात् भ्रातृव्यमस्मै जनयेत एक यूप आलभते।' इस वाक्य में एक यूप में दोष बताया गया है। अतः इस याग की प्रकृति अग्नीषोमीय नहीं परन्तु ऐकादशिन प्रकृति है इससे ऐकादशिन धर्मों का अतिदेश पशुगणों में करना।

अव्यक्त याग में सौमिक धर्म का अतिदेश है—

अव्यक्तासु तु सोमस्य।१६।

पदार्थ—(अव्यक्तासु) जिसमें द्रव्य तथा देवता वाचक पद से विधान न हो ऐसे (सोमस्य) सोम के धर्म का अतिदेश है।

भावार्थ—जिस याग के विधान में द्रव्य या देवता का पद न जाना

जाय उन यागों में सोम याग के धर्म का अतिदेश होता है। जैसे कि **'विश्वजिता यजेत'** इस विधान वाक्य में द्रव्य वाचक या देवता वाचक पद ज्ञात नहीं होता, अत: सोम के धर्म का अतिदेश समझना।

अहर्गणों में द्वादशाह के धर्मों का अतिदेश है—

गणेषु द्वादशाहस्य ।१७।

पदार्थ—(गणेषु) अहर्गणों में (द्वादशाहस्य) द्वादशाह याग के धर्मों का अतिदेश है।

भावार्थ—अहर्गणों में द्वादशाह याग के धर्मों का अतिदेश है।

संवत्सर सत्र में गवामयन धर्मों का अतिदेश है।

गव्यस्य चैतदादिषु ।१८।

पदार्थ—(एतदादिषु) आदित्य के अयन आदि में (च) और (गव्यस्य) गवामयन के धर्मों का अतिदेश है।

भावार्थ—संवत्सर साध्य ऋतुओं में गवामयन धर्मों का अतिदेश है। संवत्सर साध्यत्व रूप सामान्य धर्म होने से।

निकायियागों का धर्म उत्तर निकायि यागों में अतिदेश है।

निकायिनां च पूर्वस्योत्तरेषु प्रवृत्तिः स्यात् ।१९।

पदार्थ—(च) और (निकायिनाम्) निकायियागों में (पूर्वस्य) पूर्व की (प्रवृत्तिः) प्रवृत्ति (उत्तरेषु) उत्तर यागों में (स्यात्) होती है।

भावार्थ—'साद्यस्का' 'साहस्रा' ऐसे नाम वाले एक संघवर्ती अनेक याग विहित हैं। उनमें एक नामत्व तथा एक संघवर्तित्व रूप सामान्य लिंग से प्रथम साद्यस्क तथा प्रथम साहस्र नामक याग की प्रवृत्ति द्वितीय साद्यस्क तथा द्वितीय साहस्र याग में होती है।

फल आदि का अतिदेश नहीं, इस अधिकरण के सूत्र—

कर्मणस्त्वप्रवृत्तित्वात् फलनियमकर्तृसमुदायस्यानन्वयस्तद्बन्धनत्वात् ।२०।

पदार्थ—(कर्मणः) सौर्य याग रूप कर्म (अप्रवृत्तत्वात्) आकांक्षा के भाव से प्रवृत्त न होने से (तु) निश्चित (फलनियमकर्तृसमुदायस्य) फल, नियम, कर्ता तथा समुदाय का (अनन्वयः) सम्बन्ध नहीं (तद्बन्धनत्वात्)

प्रधान कर्म के साथ उसका सम्बन्ध होने से।

भावार्थ—सौर्य इष्टिफल स्वर्ग, नियम—जब तक जीवित रहे तब तक हवन करना, कर्त्ता=स्वर्ग की इच्छा करने वाला पुरुष विशेष, समुदाय—आग्नेय आदि यागषट्क का साहित्य—इन चारों का सौर्य याग में अतिदेश नहीं। अनाकांक्षित प्रधान कर्म का विकृति याग में सम्बन्ध न होने से। फल आदि भी अनाकांक्षित होने से उनका भी अतिदेश नहीं है।

प्रवृत्तौ चापि तादर्थ्यात् ।२१।

पदार्थ—(प्रवृत्तौ च अपि) और प्रवृत्ति हो भी तो (तादर्थ्यात्) पुरुषार्थ होने से निष्काम हो जाती है।

भावार्थ—फल पुरुष का ही उपकारक है। जीवन पर्यन्त का नियम भी पुरुष के लिये ही होता है। कर्म भी पुरुष के लिये होता है। कर्म के लिये कोई पुरुष नहीं होता। और प्रधान कर्म भी फल के लिए होता है, अतः उक्त चारों में से कोई भी क्रत्वर्थ ज्ञात नहीं होता, इसलिये याग में इनका अतिदेश नहीं है।

अश्रुतित्वाच्च ।२२।

पदार्थ—(च) और (अश्रुतित्वात्) प्रधान का अतिदेश करने वाला कोई शास्त्र न होने से।

भावार्थ—प्रधान का अतिदेश करने का कभी सुना नहीं अतः उसका अतिदेश नहीं करना।

गुणकाम गोदोहन आदि के अनतिदेशाधिकरण के सूत्र—
पूर्वपक्ष सूत्र—

गुणकामेष्वाश्रितत्वात् प्रवृत्तिः स्यात् ।२३।

पदार्थ—(गुणकामेषु) गोदोहन आदि रूप गुण के कारण परवादी की इच्छा होने से (प्रवृत्तिः स्यात्) गोदोहनादि की प्रवृत्ति होनी चाहिये (आश्रितत्वात्) प्रणयनाश्रित होने से।

भावार्थ—'चमसेनापः प्रणयेत् गोदोहनेन प्रणयेत् पशुकामः' इस वाक्य में प्रणयन गोदोहनाश्रित कर्म में उपयोगी बताया है। उससे गोदोहन का भी अतिदेश होना चाहिये। गोदोहन विना प्रणयन नहीं हो सकता। आश्रित की

कर्म में आवश्यकता होती है, इसलिये आश्रय भी अवश्य होना चाहिये। पराश्रित चित्र की जरूरत हो तो पट भी अवश्य स्वीकार करना ही होगा। इससे गोदोहनादि का अतिदेश स्वीकार करना चाहिये।

सिद्धान्त सूत्र—

निवृत्तिर्वा कर्मभेदात् ।२४।

पदार्थ—(वा) अथवा (कर्मभेदात्) चमस तथा गोदोहन के फल में भेद पड़ता होने से (निवृत्तिः) गोदोहनादि की निवृत्ति माननी चाहिये।

भावार्थ—विकृति याग में गोदोहनादि अतिदेश करने की आवश्यकता नहीं। कारण, चमस क्रत्वर्थ है तथा गोदोहन पुरुषार्थ है। विकृति याग में जो क्रत्वर्थ हो उन्हीं की आकांक्षा होती है। अतः गोदोहन की निवृत्ति माननी चाहिये, अर्थात् इसका अतिदेश नहीं करना चाहिये।

अपि वाऽतद्विकारत्वात् क्रत्वर्थत्वात् प्रवृत्तिः स्यात् ।२५।

पदार्थ—(अपि वा) अतद्विकार होने से (क्रत्वर्थत्वात्) क्रत्वर्थ होने से (प्रवृत्तिः स्यात्) विकृति याग में खादिर की प्रवृत्ति हो सकती है।

भावार्थ—जो विकृति याग में गोदोहन का अतिदेश न मानो तो खादिरं वीर्यकामस्य यूपं कुर्यात्' इस वाक्य से खादिर यूप जो याग में हो वहाँ खादिर का अतिदेश मानना चाहिए। इस शंका के समधान में बताया गया है कि खादिर का अतिदेश हो सकता है कारण कि उस स्थान पर तो खादिर भी क्रत्वर्थ है, परन्तु गोदोहन क्रत्यर्थ नहीं। इन दोनों में स्पष्ट भेद होने से दृष्टान्त योग्य नहीं। अतः गोदोहन अतिदेश विकृति याग में न मानना, यही सिद्धान्त है।

सौर्य चरु में अभिमर्शन रूप का विकल्प है—यह अधिकरण समझाते हैं—

एककर्मणि विकल्पोऽविभागो हि चोदनैकत्वात् ।२६।

पदार्थ—(अविभागः) सौर्य याग एक अविभक्त कर्म है (हि) कारण कि (चोदनैकत्वात्) एक विधि विहित होने से, अतः (एककर्मणि) एक कर्म में (विकल्प) विकल्प है।

भावार्थ—'चतुर्होत्रापूर्णमासीमभिमृशेत् (पञ्चहोत्रा अमावस्यायाम्) इस प्रमाण से प्रकृतिभूत दर्शपूर्णमास के हविषों में जो अभिमर्शन अर्थात् स्पर्श विहित है। ये स्पर्शद्वय सौर्य याग रूप विकृति याग में अतिदेश शास्त्र प्राप्त होते हैं प्रकृति याग में एक हविःस्पर्शन पूर्णिमा के दिन और दूसरा हविःस्पर्शन अमावस्या के दिन होता है।

पूर्णिमा के दिन जो याग होता है उसमें चतुर्होत्रा इत्यादि मंत्रों से तथा अमावस्या के दिन जो याग होता है उसमें पञ्चहोत्रा इत्यादि मंत्रों से हविष् का आसादन करना पड़ता है। विकृतिभूत सौर्य याग में जब इनका अतिदेश होता है, तब दो काल नहीं होते। अतः उक्त दो मंत्रों से हविष् का आसादन होता है, इसमें विकल्प मानना चाहिये। प्रकृति याग में तो दो कर्म-याग होते हैं, अतः वहाँ व्यवस्था हो सकती है कि एक याग में चतुर्होत्रा से तथा दूसरे याग में पञ्च होत्रा से हविष् का आसादन किया जाय। परन्तु सौर्य याग तो एक ही कर्म है। इसलिए दोनों का समावेश नहीं हो सकता अतः दोनों में से एक मन्त्र से अभिमर्शन करना या उपर्युक्त दो मन्त्रों में से चाहे जिस एक मन्त्र से, यह सिद्धान्त पक्ष है। अर्थात् इस स्थान पर विकल्प मानना चाहिए।

सौर्य याग में आग्नेय धर्म का अतिदेश करना चाहिए।

पूर्वपक्ष सूत्र—

लिंगसाधारण्याद् विकल्पः स्यात् ।२७।

पदार्थ—(लिंगसाधारण्यात्) उभयत्र औषधि लिंग साधारण होने से (विकल्पः स्यात्) विकल्प होता है।

भावार्थ—सौर्य याग में दर्शपूर्ण मास के ६ यागों में से किसी भी याग का विध्यन्त करना या किसी विशिष्ट अमुक याग का, इस शंका के सम्बन्ध में यह पूर्व पक्ष का सूत्र है। इसका भाव यह है कि किसी भी याग का विध्यन्त करना चाहिए। कारण कि अमुक याग का ही विध्यन्त करना ऐसा कोई नियामक ज्ञात नहीं होता। अर्थात् ६ यागों में से किसी भी याग का विध्यन्त करना। औषधि रूप द्रव्य साधारण लिंग है, इससे भी यह सिद्ध होता है कि किसी भी औषधि द्रव्य वाले याग का विध्यन्त करना।

सिद्धान्त सूत्र—

ऐकार्थ्याद् विनियम्येत पूर्ववत्वाद्विकारो हि ।२८।

पदार्थ—(हि) कारण यह है कि (विकारः) सौर्ययाग (पूर्ववत्वात्)

प्रकृति धर्म सापेक्ष होने से (ऐकार्थ्यात्) देवता रूप एक अर्थ वाला होने से (विनियम्येत) नियम बांधा जा सकता है।

भावार्थ—सौर्य याग विकृति याग है, और विकृति याग प्रकृति याग के धर्म की अपेक्षा रखता है। सौर्य याग एकदेवताक याग है तथा प्रकृतिभूत आग्नेय याग भी एक देवताक याग है। अतः आग्नेय याग का विध्यन्त सौर्य याग में करना, ऐसा नियम है।

अश्रुतित्वादिति चेत् । २९ ।

पदार्थ—(अश्रुतित्वात्) एकत्व का श्रवण नहीं (इति चेत्) जो ऐसी शंका हो तो—

भावार्थ—'सौर्य' यह शब्द तद्धित प्रत्ययान्त है। सास्य देवता ४।२।२३ इस पाणिनि सूत्र से कहे गये अर्थ में सूर्य शब्द में अण् प्रत्यय लगने से सौर्य शब्द सिद्ध होता है। इस तद्धित विग्रह वाक्य में एक वचन पुल्लिग का नियम नहीं लगाया जा सकता। सूर्य जिसका देवता है, यह तथा दो सूर्य जिनके देवता हैं वे, इस प्रकार भी विग्रह हो सकता हैं। 'सूर्यो देवता अस्य' अथवा 'सूर्यौ देवते अस्य' ऐसा भी अर्थ निकल सकता है। पुनः सूर्या देवता अस्य' यह भी अर्थ निकल सकता है। ऐसी शंका इस सूत्र में बताई गई है। इसका उतर अगले सूत्र में है—

स्याल्लिगभावात् । ३० ।

पदार्थ—(लिंगभावात्) एक वचन मानने के कारण (स्यात्) एक देवता तथा यह पुल्लिग ही है।

भावार्थ—'अमुमेव आदित्यं स्वेन भागधेयेन उपधावति' इस अर्थवाद से सिद्ध होता है कि सौर्य पद में सूर्य एक वचन में ही है, कारण कि उक्त अर्थवाद 'आदित्यम्' इस सूर्यार्थिक पद को एक वचन में ही प्रयुक्त किया है अतः सौर्य याग एक ही देवता का याग है।

तथा चान्यार्थदर्शनम् । ३१ ।

पदार्थ—(तथा च) और इस प्रमाण (अन्यार्थदर्शनम्) अन्य मंत्र में भी अर्थ दर्शन जाना जाता है।

भावार्थ—'उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः' तथा 'चित्रं देवाना-मुदगात्' इन दो मंत्रों में भी सूर्य रूप एक ही अर्थ बताया गया है। इससे

एक देवता रूप अर्थ के कारण सौर्य याग में एक देवताक आग्नेय याग का ही विध्यन्त करना चाहिए। अर्थात् सौर्य याग में आग्नेय याग को स्वीकार करना, यह सिद्धान्त है।

हविष् तथा देवता दोनों का जहां सन्निपात हो वहाँ हविः सामान्य बलवत् होता है, इस अधिकरण के सूत्र समझाये जाते हैं—

विप्रतिपत्तौ हविषा नियम्येत कर्मणस्तदु-पाख्यत्वात् ।३२।

पदार्थ—(विप्रतिपत्तौ) विरोध में (हविषा) हविष् के सादृश्य से (नियम्येत) नियम होता है। (कर्मणः) कर्म (तदुपाख्यत्वात्) अन्तरंग होने से।

भावार्थ—इस प्रमाण में श्रवण है। ऐन्द्रमेकादशकपालं निर्वपेत्। आग्नेयं पयः' इस स्थान पर देवता सामान्य से सान्नाय के धर्म की प्राप्ति होती है, तथा एकादशकपालादि लिंग से पुरोडाश के धर्म की प्राप्ति होती है। सान्नाय हविष् का देवता इन्द्र है और उक्त वाक्य एकादश कपाल पुरोडाश का देवता भी इन्द्र है। उस देवता को लेकर विध्यन्त का निर्णय करना या हविष् को लेकर एकादश कपाल पुरोडाश रूप हविष् देवता अग्नि है, यह आगे आया है। इस विरोध में इस रीति से निर्णय किया जाता है कि हविष् के सादृश्य से ही निर्णय करना, कारण कि कर्म अन्तरंग होता है और कर्म में हविष् सन्निहित तथा दृष्ट होता है जब कि देवता व्यवहित और अदृष्ट होता है। अतः याग में देवता बहिरंग होता है तथा हविष्रूप द्रव्य अन्तरंग होता है। द्रव्य के लिंग से देवता का लिंग बाधित होता है।

तेन च कर्मसंयोगात् ।३३।

पदार्थ—(च) और (तेन) हविष् से (कर्म संयोगात्) कर्म संयुक्त होता है।

भावार्थ—याग रूप कर्म में हविष् के साथ निर्देश होता है, कर्म में हविष् का साक्षात्कार होता है। ऐन्द्र, आग्नेय आदि पदों से हवि-प्रधान होती है। अतः हविष् ही बुद्धि में प्रथम सन्निहित होती है, इसलिए हविष् से ही विध्यन्त का निर्णय होता है।

गुणत्वेन देवताश्रुतिः ।३४।

पदार्थ—(गुणत्वेन) गौणता से (देवताश्रुतिः) देवता का श्रवण होता है।

भावार्थ—ऐन्द्र, आग्नेय आदि शब्द तद्धितान्त है। तद्धित प्रत्यय है और इन्द्र तथा अग्नि ये प्रत्ययों की प्रकृति माने गये हैं प्रकृति का अर्थ विशेषण रूप में माना जाता है और प्रत्यय का अर्थ विशेष्य रूप में। **'प्रत्ययानां प्रकृत्यर्थान्वितस्त्वार्थबोधकत्वनियमात्'** प्रत्यय जब अपना अर्थ बताता है तब प्रकृत्यर्थ के साथ अन्वित हो कर ही स्वार्थ (अपने अर्थ) को बताता है। विशेषण की अपेक्षा प्रबल होता है। अतः देवता गौण होता है और हविष् मुख्य बनता है। इससे दृविष् से ही विध्यन्त का निर्णय करना चाहिए।

शतकृष्णल नामक हिरण्य में औषध धर्म का अतिदेश है—इस अधिकरण के सूत्र समझाये जाते हैं—

पूर्वपक्ष सूत्र—

हिरण्यमाज्यधर्मस्तेजस्त्वात् ।३५।

पदार्थ—(हिरण्यम्) शतकृष्णल अर्थात् स्वर्ण के सौ छोटे-छोटे कणों के यज्ञ (आज्यधर्मः) आज्य के धर्म कर्त्तव्य होते हैं। (तेजस्त्वात्) दोनों द्रव्यों में स्वच्छता रूप समान धर्म होने से।

भावार्थ—'प्राजापत्यं धृते शतकृष्णलं चरुं निर्वपेत्' प्रजापति देवताक शत कृष्णल इनका निर्वाप करते समय उनमें जो धर्म अर्थात् विधि शेष करना हो वह आज्य का विधिशेष करना 'पुरोडाश का विधिशेष नहीं, यह पूर्वपक्ष का मन्तव्य है।

धर्मानुग्रहाच्च ।३६।

पदार्थ—(च) और (धर्मानुग्रहात्) धर्म का बाध न होने से।

भावार्थ—पत्नी अवेक्षण आदि आज्य धर्म स्वर्ण में भी हो सकते हैं। स्वर्ण अति स्वच्छ होने से उसमें भी प्रतिबिम्ब हो सकता है। पुरोडाश में अवेक्षण नहीं हो सकता। इसलिए आज्य धर्म का ही अतिदेश करना योग्य है।

सिद्धान्त सूत्र—

औषधं वा विशदत्वात् ।३७।

पदार्थ—(वा) पूर्वपक्ष की निवृत्ति की सूचना देता है। (औषधम्) व्रीहि आदि ओषधि के धर्म ही कर्त्तव्य हैं। (विशदत्वात्) कठिनत्वादि धर्म का साम्य होने से।

भावार्थ—व्रीहि आदि औषध के धर्मों का स्वर्ण में अतिदेश है। कारण कि कठिनत्व रूप धर्म दोनों में समान हैं।

चरुशब्दाच्च ।३८।

पदार्थ—(च) और (चरुशब्दात्) चरु शब्द औषधि धर्म का प्रापक है।

भावार्थ—'चरु निर्वपेत्' यह कहा गया है। 'चरु' शब्द आज्य के लिए प्रयुक्त नहीं हुआ परन्तु पुरोडाश आदि औषधि से बनते द्रव्य के लिए प्रयुक्त हुआ है। इस कारण से भी स्वर्ण में आज्य धर्म का अतिदेश सिद्ध होता है।

तस्मिंश्च श्रपणश्रुतेः ।३९।

पदार्थ—(च) और (तस्मिन्) उसमें (श्रपणश्रुतेः) श्रपण का श्रवण है।

भावार्थ—श्रपण का श्रवण चरु के निकट होता है। आज्य में श्रपण शब्द का प्रयोग नहीं होता, इसलिए औषधि के धर्मों का ही अतिदेश है। इससे सिद्ध होता है कि शतकृष्णल स्वर्ण में औषधि धर्म ही अतिदिष्ट है।

मधूदक में उपांशुयाजीय धर्म का अतिदेश हैं, इस अकिरण के सूत्र—
पूर्वपक्ष सूत्र—

मधूदके द्रव्यसामान्यात् पयोविकारः स्यात् ।४०।

पदार्थ—(मधूदके) मधु तथा उदक में (पयोविकारः स्यात्) दूध के धर्मों का अतिदेश है। (द्रव्यसामान्यात्) द्रव्यत्व रूप धर्म दोनों में समान होने से।

भावार्थ—चित्रा नामक याग में **दधि मधु घृतमापो धानाः तण्डुलाः। तत्संसृष्टं प्राजापत्यम्॥** दही, मधु, घृत, पानी, धाना तथा तण्डुल सभी संसृष्ट प्राजापात्य देवताक होते हैं। इस स्थान पर मधु तथा उदक में द्रव्यत्व रूप समान धर्म के कारण पयोविकार अर्थात् दूध के धर्म का अतिदेश है। सान्नाय गत पय के जो धर्म होते हैं वे धर्म मधु तथा उदक में भी करने चाहियें, यह पूर्वपक्ष का मन्तव्य है।

सिद्धान्त सूत्र—

आज्यं वा वर्णसामान्यात् ।४१।

पदार्थ— (वा) अथवा (आज्यम्) आज्य के धर्म कर्त्तव्य होते हैं (वर्णसामान्यात्) वर्ण के साम्य होने के कारण।

भावार्थ—मधु तथा जल में आज्य के धर्म का अतिदेश है कारण कि उनमें वर्ण का साम्य है। शुक्ल वर्ण तीनों में समान है।

धर्मानुग्रहाच्च ।४२।

पदार्थ—(च) और (धर्मानुग्रहात्) आज्य के धर्म उसमें न हो सकने के कारण।

भावार्थ—पय के धर्म जो दोहनादि हैं उनका मधु तथा उदक में बाध होता है जब कि आज्य के अधिकतर धर्म उनमें हो सकते हैं, अतः आज्य के धर्मों का ही उसमें अतिदेश करना चाहिए।

पूर्वस्याविशिष्टत्वात् ।४३।

पदार्थ—(पूर्वस्य) पूर्वपक्ष वादी ने जो द्रवत्वरूप हेतु दिया है वह (अविशिष्टत्वात्) घृत में भी है।

भावार्थ—घी को गरम करने से उसमें भी द्रवत्व आता है, इससे आज्य में भी द्रवत्व है। अतः मधु और उदक में आज्य के धर्मों का जो अतिदेश है, पय के धर्मों का अतिदेश नहीं। यही सिद्धान्त पक्ष है।

इति मीमांसादर्शनभाष्येऽष्टमाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥८।१॥

अथ अष्टमाध्यायस्य द्वितीयः पादः

चातुर्मास्य तथा सौत्रामणि याग में ऐष्टिक धर्म का अतिदेश है— यह अधिकरण—

पूर्वपक्ष सूत्र—

वाजिने सोमपूर्वत्वं सौत्रामण्यां च ग्रहेषु ताच्छब्द्यात् ।१।

पदार्थ—(वाजिने सौत्रामण्यां च) वाजिन याग में तथा सौत्रामणि याग में (सोमपूर्वत्वम्) सोम के धर्म का अतिदेश है। (ग्रहेषु) ग्रह नामक पात्र में (ताच्छब्द्यात्) ताच्छब्द्य का प्रयोग होने से।

भावार्थ—'आश्विनं गृह्णाति' इत्यादि प्रयोग से जाना जाता है कि चातुर्मास्य में वाजिन याग है। 'वाजिभ्यो वाजिनम्' वाजि देवता को उद्दिष्ट कर वाजि का त्याग करना। इस याग में सोम के धर्म वाजिन द्रव्य में करने। कारण कि 'सोमो वै वाजिनम्' ऐसा वाक्य है। इस वाक्य से सोम तथा वाजिन द्रव्य भिन्न होने पर भी अभेद गर्भित उच्चारण किया है। इसलिए वाजिन में सोम धर्म का अतिदेश सिद्ध होता है इसी प्रमाण से 'सुरा वै सोमः ऐसा वाक्य आया है। इससे भी सुरा में सोम धर्म का अतिदेश सिद्ध होता है। सोम शब्द इस स्थान पर सोम के धर्म का वाचक लक्षणावृत्ति से बनता है।

अनुवषट्काराच्च ।२।

पदार्थ—(च) और (अनुवषट्कारात्) अनुषट्कार का प्रयोग भी सोम धर्म की प्राप्ति बताता है।

भावार्थ—'वाजिनस्याग्ने वीहि' यह अनुवषट्कार वाक्य कहलाता है। और यह सोम का धर्म है, इसलिए वाजिन के लिए प्रयोग किया है। इससे वाजिन याग में सोम के धर्म का अतिदेश है, ऐसा सिद्ध होता है।

समुपहूय भक्षणाच्च ।३।

पदार्थ—(च) और (समुपहूय) समुपह्वान कर (भक्षणात्) भक्षण का निर्देश होने से।

भावार्थ—'शेषं विभज्य समुपहूय भक्षयन्ति' यह समुपह्वान पूर्वक भक्षण भी सोम धर्म को प्राप्त करने का लिंग है।

क्रयणश्रपणपुरोरुगुपयामग्रहणासादन-वासोपनहनं च तद्वत् ।४।

पदार्थ—(क्रयणश्रपणपुरोरुक्उपयामग्रहाणासादनवासोपनहनं च) और क्रयण, श्रपण, पुरोरुक्, उपयाम, ग्रहण, आसादन तथा वासोपनहन लिंग भी (तद्वत्) सोम धर्म का अतिदेश करने के लिंग हैं।

भावार्थ—क्रयण आदि धर्म सोम के हैं, अतः वे सुरा में भी देखे जाते हैं इससे सौत्रामणि याग में तथा वाजिन याग में सोम धर्म का अतिदेश है। ऐसा पूर्वपक्ष वादी का मन्तव्य है।

सिद्धान्त सूत्र—

हविषा वा नियम्येत द्विकारत्वात् ।५।

पदार्थ—(वा) अथवा (हविषा) हविष् की सादृश्य से (नियम्येत) ऐष्टिक धर्मों का नियम है। (तद्विकारत्वात्) दर्श पूर्णमास के हविष् का विकार होने से।

भावार्थ—सुरा तथा वाजिन द्रव्य दर्शपूर्णमास के हविष् का विकार है। सुरा औषधि द्रव्य का विकार है। वाजिन सान्नाय्य हविष् का विकार है। इससे ऐष्टिक धर्म ही वाजिन आदि द्रव्य में करने होते हैं, सोम के धर्म नहीं।

प्रशंसा सोमशब्दः ।६।

पदार्थ—(सोमशब्दः) सुरा के लिए प्रयुक्त सोम शब्द (प्रशंसा) मात्र प्रशंसा का सूचक है।

भावार्थ—'सोमो वै सुरा' इस स्थान में प्रयुक्त सोम शब्द प्रशंसा वाचक है। जिस प्रकार अमात्य के लिए प्रयुक्त हुआ 'राज' शब्द प्रशंसा वाचक होता है, उसी प्रकार।

वचनानीतराणि ।७।

पदार्थ—(इतराणि) अन्य (वचनानि) वचन भी वाचनिक रूप से विधीयमान हैं।

भावार्थ—इस प्रकार द्रव्य से सादृश्य के ऐष्टिक, विध्यन्त, सिद्ध होने से अन्य धर्म भी वचनों से विहित किये हैं।

व्यपदेशश्च तद्वत् ।८।

पदार्थ—(च) और तद्वत्) उसी प्रमाण से (व्यपदेशः) व्यपदेश है।

भावार्थ—शष्पैरेव दीक्षणीयामाप्नोति 'तोक्मभिः प्रायणीयाम्' इन वाक्यों में शष्प तथा तोक्म शब्द भी स्तुति वाचक हैं।

पशुपुरोडाशस्य लिंगदर्शनात् ।९।

पदार्थ—(च) और (पशुपुरोडाशस्य) पशु पुरोडाश का निषेध भी (लिंगदर्शनात्) ऐष्टिक धर्म का अतिदेश में लिंग है।

भावार्थ—**नैतेषां पशूनां पुरोडाशा भवन्ति ग्रहपुरोडाशा ह्येते**। इस वाक्य में पशुओं का पुरोडाश होने का निषेध बताया है। और ग्रह को ही पुरोडाश रूप बताया है। इसमें ग्रहों की ही प्रशंसा भी की है, वह भी ऐष्टिक धर्म के अतिदेश का लिंग है। इस प्रकार उपर्युक्त से सिद्ध है कि वाजिन और सौत्रामणि याग में ऐष्टिक धर्म का ही विध्यन्त है। सौमिक धर्म का नहीं।

पशु में सान्नाय्य धर्म का अतिदेश है, इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष—

पशुः पुरोडाशविकारः स्यात् देवता सामान्यात् ।१०।

पदार्थ—(पशुः) पशु याग (पुरोडाशविकारः) पुरोडाश के धर्म वाला (स्यात्) है। (देवतासामान्यात्) दोनों के देवता समान होने से।

भावार्थ—ज्योतिष्टोम याग में पशु देव रूप में होते हैं। उन पशुओं में जो विध्यन्त करना हो वह पुरोडाश जिस प्रकार करना हो उसी विधि से करना चाहिए। कारण कि पुरोडाश और पशु इन दोनों की देवता एक ही होती है। जैसे पुरोडाश अग्नीषोमीय होता है उसी प्रकार पशु भी अग्नीषोमीय होता है, अतः पुरोडाश का विध्यन्त करना। ऐसा पूर्वपक्षवादी का मानना है।

प्रोक्षणाच्च । ११ ।

पदार्थ—(च) और (प्रोक्षणात्) प्रोक्षण का श्रवण होने से।

भावार्थ—'अद्भ्यस्त्वौषधीभ्यो जुष्टं प्रोक्षामि' इस वाक्य में पशु का प्रोक्षण करना बताया है। प्रोक्षण—यह पुरोडाश का धर्म है। इससे भी सिद्ध होता है कि पुरोडाश के धर्मों का ही पशु में अतिदेश होता है।

पर्यग्निकरणाच्च । १२ ।

पदार्थ—(च) और (पर्यग्निकरणात्) पर्यग्निकरण होने से।

भावार्थ—पर्यग्निकरण भी पशु के लिए विहित है और पुरोडाश का भी पर्यग्निकरण किया जाता है। इससे भी सिद्ध होता है कि पुरोडाश के धर्म पशु में कर्त्तव्य हैं। 'उल्मुकेन पशुं पर्यग्नि करोति' इस प्रकार का शाबर भाष्य में उल्लेख है।

सिद्धान्त सूत्र—

सान्नाय्यं वा तत्प्रभवत्वात् ।१३।

पदार्थ—(वा) सिद्धान्त सूचक है। (सान्नाय्यम्) सान्नय्य हविष् के धर्म पशु में कर्त्तव्य हैं। (तत्प्रभवत्वात्) सान्नाय्य हविष् पशु में से उत्पन्न होने से।

भावार्थ—सान्नाय्य धर्म पशु में कर्त्तव्य है। सान्नाय्य हविष् की उत्पत्ति अर्थात गाय आदि पशु में से है। सान्नाय्य अर्थात् दही और दूध। दूध पशु में से उत्पन्न होता है और दूध का विकार दही होता है। इस साज्यात्य की प्रवलता के कारण सान्नाय्य के धर्म पशुओं में कर्त्तव्य हैं।

तस्य च पात्रदर्शनात् ।१४।

पदार्थ—(च) और (तस्य) पशु को (पात्रदर्शनात्) पात्र का दर्शन होने से।

भावार्थ—सान्नाय्य हविष् को जिस प्रकार पात्र की जरूरत है उसी प्रकार पशु को भी खाने आदि के लिए पात्र की आवश्यकता होती है। इस लिए सान्नाय्य धर्म ही पशु में कर्त्तव्य हैं। पुरोडाश के नहीं।

पशु में पयोधर्मों का अतिदेश है—इस अधिकरण से सम्बन्धित सूत्र—

पूर्वपक्ष—

दध्नः स्यान्मूर्तिसामान्यात् ।१५।

पदार्थ—(दध्न स्यात्)सान्नाय्य धर्म वाले पशु याग में दही के धर्म का अतिदेश है। (मूर्तिसामान्यात्) मूर्त-घनत्व सामान्य धर्म के कारण।

भावार्थ—सान्नाय्य धर्म वाले पशु में दही के धर्म का अतिदेश है। कारण कि दही में घनत्व है और पशु में भी घनत्व है। इस सामान्य धर्म के कारण दधि धर्म का अतिदेश पशु में है।

सिद्धान्त सूत्र—

पयो वा कालसामान्यात् ।१६।

पदार्थ—(वा) अथवा (पयः) दूध पशु में अपने धर्म का अतिदेश करता है। (कालसामान्यात्) पशु और पय में सद्यः कालता रूप धर्म समान है।

भावार्थ—दूध पशु से दही की अपेक्षा सन्निहित है। दही से पशु दूध के कारण व्यवहित होता है। इसलिए दूध के धर्म का अतिदेश करने में आता है।

पश्वानन्तर्याच्च ।१७।

पदार्थ—(च) और (पश्वानन्तर्यात्) पशुप्रभाव में आनन्तर्य होने से।

भावार्थ—पशु में से प्रथम दूध तथा दूध से दही उत्पन्न होता है। अतः दही की अपेक्षा दूध अन्तरंग होता है।

द्रव्यत्वं चाविशिष्टम् ।१८।

पदार्थ— (च) और (द्रव्यत्वम्) द्रव्यत्वरूप धर्म भी (अविशिष्टम्) समान है।

भावार्थ—पशु भी द्रव्य है और दूध भी द्रव्य है। द्रव्यत्व रूप धर्म भी समान है। अतः सान्नाय्य धर्म वाले पशु याग में पयोधर्म अतिदिष्ट है।

आमिक्षा में पयो धर्म का अतिदेश है। इस अधिकरण के सूत्र समझाते हैं—

आमिक्षोभयभाव्यत्वादुभयविकारः स्यात् ।१९।

पदार्थ—(आमिक्षा) आमिक्षा (उभयभाव्यत्वात्) दूध तथा दही दोनों से होने के कारण (उभयविकारः स्यात्) दोनों के धर्म उसमें कर्त्तव्य होते हैं।

भावार्थ—दूध और दही दोनों से 'आमिक्षा' द्रव्य उत्पन्न होता हैं अतः 'वैश्वदेव्यामिक्षा इस वाक्य से जो याग विहित होता है उसमें दूध तथा दही दोनों के धर्म कर्त्तव्य होते हैं।

एकं वा चोदनैकत्वात् ।२०।

पदार्थ—(वा) अथवा (एकम्) दोनों में से एक के ही धर्म का अतिदेश मानना योग्य है (चोदनैकत्वात्) एक विधि से विहित होने के कारण।

भावार्थ—एक के धर्म का अतिदेश निराकांक्ष होता है, तो पीछे दूसरे के विध्यन्त की कुछ भी जरूरत नहीं रहती। अतः दोनों का विध्यन्त नहीं, परन्तु एक का ही विध्यन्त स्वीकार करना चाहिए।

दधि संघातसामान्यात् ।२१।

पदार्थ—(दधि) दही के धर्म का अतिदेश करना चाहिए। (संघात-सामान्यात्) घनी भाव रूप धर्म दोनों में समान होने से।

भावार्थ—दही और आमिक्षा में घनत्वरूप समान धर्म है, इसलिए दही का ही विध्यन्त स्वीकार करना चाहिए।

सिद्धान्त सूत्र—

पयो वा तत्प्रभवत्वाल्लोकवद् दध्नस्त-दर्थत्वात् ।२२।

पदार्थ—(वा) सिद्धान्त सूचक है। (पयः) पयोधर्म अतिदिष्ट है। (तत्प्रभावत्वात्) दूध में से ही आमिक्षा बनने के कारण। (लोकवत्) लोक व्यवहार में भी दूध में जामन दही बनाने के लिए डाला जाता है। (दध्नः तदर्थत्वात्) दूध में जो थोड़ा दही डालने में आता है वह दही बनाने के लिए ही होता है।

भावार्थ-तप्ते पयसि दध्यानयति सा वैश्वदेवी आमिक्षा' तपे हुए दूध में दही डाला जाता है और जब वह फट जाता है, तभी जो कठिन भाग-मावा अलग हो जाता है, उसे आमिक्षा कहते हैं और जो पानी जैसा प्रवाही भाग होता है उसे 'वाजिन' कहा जाता है। आमिक्षा दूध से ही बनती है दही से नहीं। दही तो केवल आतंचन जामन के रूप में ही उपयोग में लिया जाता है। अतः पयोधर्म ही आमिक्षा में अतिदिष्ट है।

धर्मानुग्रहाच्च ।२३।

पदार्थ—(च) और (धर्मानुग्रहात्) सद्यः कालता रूप धर्म अनुकूल होने से।

भावार्थ—वैश्वदेव सद्यः काल याग है। उसमें दही के धर्म कर्त्तव्य हो तो सद्यः कालता का बाध होता है। दही की भांति वह याग भी द्व्यहकाल साध्य होना चाहिए। 'सद्यो भावं च दर्शयति जुषन्तं युज्यं पयः' इस प्रकार से शाबर भाष्य में भी उल्लेख है। अतः आमिक्षा में पयोविकार कर्त्तव्य है। अर्थात् पयो धर्म ही आमिक्षा में अतिदिष्ट है।

द्वादशाह में सत्र और अहीन की व्यवस्था से धर्म का अतिदेश होता है, यह अधिकरण। पूर्वपक्ष सूत्र—

सत्रमहीनश्च द्वादशाहस्तस्योभयथा प्रवृत्तिरैककर्म्यात् ।२४।

पदार्थ—(सत्रम् अहीनः च) सत्र तथा अहीन दोनों स्वभाव वाला (द्वादशाहः) द्वादशाह होता है। उस द्वादशाह की (उभयथा प्रवृत्तिः) दोनों प्रकार से प्रवृत्ति होती है। (ऐककर्म्यात्) कर्म एक ही होने से।

भावार्थ—द्वादशाह एक क्रतु है। जिसके दो रूप हैं। एक अहीन और दूसरा सत्र। इन दोनों रूपों में भेद होता है। सत्र में जो यजमान हों वे ऋत्विज् होते हैं। 'सर्वेऽपि दीक्षेरन' सभी को दीक्षा लेनी चाहिए। अहीन धर्म द्वादशाह उपसद आदि होते हैं। द्विरात्र आदि अहीनों में तथा गवामयनादि सत्रों में से प्रत्येक में दोनों के धर्म प्रवर्तित होते हैं या सत्र में सत्र के धर्म और अहीन में अहीन के धर्म ? इस संदेह में पूर्वपक्षवादी का यह मानना है कि द्वादशाह उभय स्वभाव होता है अर्थात् सत्र और अहीन दोनों के धर्म उस पर लागू होते हैं कारण कि कर्म तो एक ही है।

सिद्धान्त सूत्र—

अपि वा यजतिश्रुतेरहीनभूतप्रवृत्तिः स्यात् प्रकृत्यातुल्यशब्दत्वात् ।२५।

पदार्थ—(अपि वा) अथवा (यजतिश्रुतेः) जहाँ यजति पद का श्रवण हो वहाँ (अहीनभूतप्रवृत्तिः) अहीन धर्म की प्रवृत्ति (स्यात्) माननी। (प्रकत्या) द्वादशाह रूप प्रकृति के साथ (तुल्यशब्दत्वात्) समान शब्द होने से।

भावार्थ—प्रकृति भूत द्वादशाह में 'प्रजाकामं याजयेत्' यहाँ यजति का श्रवण है। इसी प्रमाण से 'य एवं विद्वान् द्विरात्रे यजते' इस विकृति याग में भी 'यजति' का श्रवण है। अतः अहीन में अहीन के धर्म तथा सत्र में सत्र के धम प्रवर्तित होते हैं।

द्विरात्रादीनामेकादशरात्रादहीनत्वं यजति चोदनात् ।२६।

पदार्थ—(द्विरात्रादीनाम्) द्विरात्र आदि याग (एकादशरात्रात्) एकादश रात्र तक के याग (अहीनत्वम्) अहीन कहलाते हैं (यजतिचोदनात्) 'यजति' पद से विधान होने के कारण।

भावार्थ—जहाँ जहाँ यजति पद से विधान होता हो वहाँ वहाँ अहीन धर्म समझना तथा जहाँ जहाँ आसीरन् अथवा उपेयुः पद का प्रयोग किया हो, जैसे कि 'गृहपति सप्तदश स्त्रयमृत्विजो ब्राह्मणाः सत्वमुपेयुः' वहाँ-वहाँ सब धर्म का प्रयोग करना। (द्विरात्रेण यजेत, त्रिरात्रेण यजेत) य अहीन लिंग हैं और 'त्रयोदशरात्रमृद्धिकामा उपेयुः' यह सत्रलिंग है। कारण कि उपेयुः शब्द का प्रयोग किया गया है। इसी प्रमाण से 'चतुर्दशरात्रं प्रतिष्ठाकामा आसीरन्' यह भी सत्र का लिंग है, कारण कि यहाँ 'आसीरन्' पद का प्रयोग किया है।

त्रयोदशरात्रादिषु सत्रभूतस्तेष्वासनोपायि-चोदनात् ।२७।

पदार्थ--(त्रयोदशरात्रादिषु) त्रयोदशरात्र आदि में (सत्रभूतः) सत्र के धर्म का अतिदेश है। (आसनोपायिचोदनात्) आसन तथा उपाय शब्द का प्रयोग होने से।

भावार्थ—'त्रयोदशरात्रमृद्धिकामा उपेयुः' त्रयोदश रात्र याग में उपेयुः शब्द से विधान हुआ है इससे वह सत्र कहलाता है। जहाँ 'आसीरन्' अथवा 'उपेयुः' शब्द से विधान होता है, वह सत्र कहलाता है।

लिंगाच्च ।२८।

पदार्थ—(च) और (लिंगात्) अर्थवाद रूप लिंग होने से।

भावार्थ—'अग्निष्टोमो वै प्रजापतिः स उत्तरानेकाहानसृजत तमेनं द्विरात्रादयोऽहर्गणा ऊचुः त्वमस्मान्मा हासीः' इस अर्थवाद से सिद्ध होता है कि द्विरात्रादि अहीन धर्म वाला हो है। सत्र धर्म वाला नहीं। इससे सिद्ध होता है कि द्विरात्रादि अहीन धर्म वाले तथा त्रयोदशरात्रमृद्धिकामा उपेयुः' त्रयोदश रात्र आदि सत्र धर्म वाले होते हैं। इस प्रमाण के अनुसार व्यवस्था से धर्म का अतिदेश है।

पञ्चदश रात्रादि में सत्र धर्म का अतिदेश है। यह अधिकरण—

पूर्व पक्ष—

अन्यतरतोऽतिरात्रत्वात् पञ्चदशरात्रस्याहीनत्वं कुण्डपायिनामयनं च तद्भूतेष्वहीनत्वदर्शनात् ।२९।

पदार्थ—(पञ्चदशरात्रस्य कुण्डपायिनामयनं च) पञ्चदश रात्र तथा कुण्डपायिनामयन में (अहीनत्वम्) अहीन के धर्म का अतिदेश है। (अन्यतरतः) आदि तथा मध्य के एक देश में (अतिरात्रत्वात्) अतिरात्र नामक याग होने से (तद्भूतेषु) अतिरात्र वाले में (अहीनत्वदर्शनात्) अहीनत्वधर्म का दर्शन होता है।

भावार्थ—पञ्चदश रात्र तथा कुण्डपायिनामयन में अहीन धर्मों का अतिदेश होता है। कारण कि उन दोनों में एक के अन्त में अतिरात्र संज्ञक याग होता है। और जिसमें अतिरात्र होता है वह अहीन धर्म वाला होता है 'यदन्यतरतोऽतिरात्रास्तेनाहीनाः' इस प्रमाण से श्रवण है।

अहीनवचनाच्च ।३०।

पदार्थ—(च) और (अहीनवचनात्) उक्त वाक्य में 'अहीन' ऐसा स्पष्ट वचन होने से।

भावार्थ—उक्त वाक्य में 'अहीन' यह स्पष्ट शब्द है इससे पंचदश रात्र आदि अहीन धर्म वाला है, यह समझना।

सिद्धान्त सूत्र—

सत्रे चोपायिदर्शनात् ।३१।

पदार्थ—(च) पर (उपायिदर्शनात्) सत्र में उपायि शब्द के विधान रूप प्रयोग होने से (सत्रे) उक्त दोनों सत्र हैं।

भावार्थ—'पञ्चदश रात्रमुपेयुः' इस वाक्य में उपेयुः शब्द होने से इस याग में सत्र धर्म ही अतिदिष्ट है।

सत्रलिंगं च दर्शयति ।३२।

पदार्थ—(च) और (सत्रलिंगम्) सत्र का लिंग (दर्शयति) बताता है।

भावार्थ—कुण्डपायिनामयन में सत्रलिंग इस प्रकार बताया है। गृहपतिः सुब्रह्मण्यः सत्र में ही गृहपति शब्द का व्यवहार होता है। इससे सिद्ध होता है कि पञ्चदश रात्र आदि में सत्र धर्मों का अतिदेश है।

इति मीमांसादर्शनभाष्ये अष्टमाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥८२॥

अथ मीमांसादर्शनभाष्ये अष्टमाध्ययास्य तृतीयः पादः

शुचि देवता में आग्नेय का तथा आग्नावैष्णव में आग्नीषोमीय का धर्मातिदेश है, यह अधिकरण—

पूर्व पक्ष—

हविर्गणे परमुत्तरस्य देशसामान्यात् ।१।

पदार्थ—(हविर्गणे) हविर्गण में (परम्) पर (उत्तरस्य) उत्तर अग्नि की उपांशु याग प्रकृति है। (देशसामान्यात्) देश की समानता होने से।

भावार्थ—इस प्रमाण में हविर्गण का श्रवण होता है। 'आग्नावैष्णवम् एकादश कपालं निर्वपेत् सरस्वत्यै चरुम् बार्हस्पत्यं चरुम्। अन्य गण का आग्नान इस प्रमाण से होता है—अग्नये पावकाय अग्नये शुचयेऽष्टाकपालम्। इनमें आग्नावैष्णव का प्रथम पाठ होने से आग्नेय याग की विकृति हैं तथा शुचि देवताक द्वितीय स्थान अर्थात् पीछे से श्रवण होने से अग्नीषोमीय की विकृति है। जो याग जिसकी विकृति होता है, उसके धर्म उसमें अतिदिष्ट होते हैं।

सिद्धान्त सूत्र—

देवतया वा नियम्येत शब्दवत्वादितर-स्याश्रुतित्वात् ।२।

पदार्थ—(वा) अथवा (देवतया) देवता से (नियम्येत) नियम बंधा होता है। (शब्दवत्वात्) देवता साम्य शाब्दिक होने से (इतरस्य) अन्य (अश्रुतत्वात्) श्रुत न होने से।

भावार्थ—देवता के सादृश्य से नियम बंधा होता है। आग्नावैष्णव तथा अग्नीषोमीय द्विदेवताक होने से आग्नावैष्णव अग्नोषोमीय की विकृति है तथा शुचि देवताक तथा आग्नेय एक देवताक होने से शुचि देवताक याग आग्नेय याग की विकृति है। अतः आग्नावैष्णव में अग्नीषोमीय याग के धर्मों का तथा शुचि देवताक याग में आग्नेय याग के धर्मों का अतिदेश है। यह

साम्य शब्द गम्य है। जब कि देश साम्य शब्द गम्म नहीं। अतः उक्त रीति से से ही धर्मों का अतिदेश करना उचित है।

जनक सप्तरात्र में त्रिवृत् अहन् में द्वदशाह धर्मों का अतिदेश है। इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष सूत्र—

गणचोदनायां यस्य लिंगं तदावृत्तिः प्रतीयेताग्नेयवत् ।३।

पदार्थ—(गणचोदनायाम्) गण विधान में जो उदाहरण बताने में आये हैं उनमें (यस्य) जो प्रथम अहन् के (लिंगम्) त्रिवृत्त्व कहे हैं (तदावृत्तिः) वे प्रथम अहन् की आवृत्ति (प्रतीयेत) प्रतीत होते हैं। (आग्रयवत्) आग्नेय विध्यन्त का जैसे अभ्यास बताने में आया है, उसी प्रकार।

भावार्थ—अग्नये पवमानाय, अग्नये पावकाय अग्नये शुचये। यहाँ जिस प्रकार देवता के ऐक्य का सादृम्य है तथा उससे आग्रेय विध्यन्त का अभ्यास मानने में आता है, उसी प्रकार जनक सप्तरात्र में जो गण विधान है, उसमें प्रथम अहन् की आवृत्ति ही प्रतीयमान है। प्रथम अहन् ही त्रिवृत्त-स्तोम है, पीछे के उत्तर अहनों में उसी की आवृत्ति करनी होती है।

सिद्धान्त सूत्र—

नानाऽहानि वा संघातत्वात् प्रवृत्तिलिगेन चोदनात् ।४।

पदार्थ—(वा) अथवा (नाना अहानि) द्वादशाह सम्बन्धी पृथक्-पृथक् अहनों का विधान है। (संघातत्वात्) चत्वारि अहानि इस प्रकार चार संख्या से अहनों के समुदाय का विधान होने से (प्रवृत्तिलिगेन चोदनात्) प्रवृत्ति लिग से विधान होने के कारण।

भावार्थ—द्वादशाह सम्बन्धी पृथक्-पृथक् अहनों का विधान है, अतः समुदाय का विधान द्वादशाहिक में चार अहनों को अनुवाद कर विधान किया है। संघात में त्रिवृत्त्व का विधान है। प्रथम अहन् को त्रिवृत्सोम विशिष्ट मानकर पीछे उत्तरत्र को उसका ही विध्यन्त स्वीकार करना अनुचित है। एक ही अहन् की आवृत्ति से चार अहन् सिद्ध नहीं हो सकते कारण कि चार अहन् पृथक्-पृथक् हैं। अतः उनमें द्वादशाह याग के धर्म मानने योग्य हैं।

तथा चान्यार्थदर्शनम् ।५।

पदार्थ—(तथा च) और इस प्रमाण से (अन्यार्थदर्शनम्) अन्य दर्शन भी है।

भावार्थ—**तेषामग्निष्टोमः प्रथमः** यहाँ अग्निष्टोम में प्रथमत्व बताया है। जबकि अन्य अग्निष्टोम ही नहीं तो प्रथम अग्निष्टोम कैसे कहलाता है ? दूसरे की अपेक्षा यह प्रथम कहलाता है अतः अहनों में भिन्न धर्मकत्व है यह सूचित होता है। जो प्रथम अहन् में धर्म विहित है उसकी आवृत्ति अहनों में होती है, इस हेतु से त्रिवृत् अहनों में द्वादशाह धर्मों का अतिदेश है।

षट्त्रिंशद्रात्र में षडह धर्मों का अतिदेश है, यह अधिकरण—

पूर्व पक्ष—

कालाभ्यासेऽपि बादरिः कर्मभेदात् ।६।

पदार्थ—(कालाभ्यासेऽपि) काल का अभ्यास कहने वाला वाक्य है, (बादरि) ऐसा बादरि आचार्य मानते हैं। (कर्मभेदात्) कर्म का भेद होने से।

भावार्थ—**षडहा भवन्ति चत्वारो भवन्ति**। यहाँ अहः संज्ञक सोम याग का संख्या विशेष षडह पदान्तर्गत षट् शब्द से अभिहित होता है। पुनः उन्हें चार गुणा वताने से चौबीस संख्या वाले अहन् के संघ में पर्यवसित होते है। अहन् संघ की प्रकृति द्वादशाह होती है, अतः द्वादशाह का ही धर्मातिदेश षडह संज्ञक में करना चाहिए और षडह रूप काल की ही आवृत्ति माननी चाहिये, ऐसा बादरि आचार्य मानते हैं।

सिद्धान्तसूत्र—

तदावृत्ति तु जैमिनिरह्नामप्रत्यक्षं संख्यत्वात्।७।

पदार्थ—(तु) सिद्धान्त पक्ष को सूचित करता है। (तदावृत्तिः) कर्म की आवृत्ति है, ऐसा (जैमिनिः) जैमिनि आचार्य मानते हैं। (अह्नाम) अहनों की (अप्रत्यक्षसंख्यत्वात्) प्रत्यक्ष संख्या न होने से।

भावार्थ—छः दिवस से साध्य जो कर्म है, वही कर्म षडह शब्द वाच्य है। और उसके लिए २४ दिन लगते हैं। अतः जो षडह नामक कर्म विशेष है उसी का विध्यन्त मानना, यही न्याय्य है, ऐसा जैमिनि आचार्य मानते हैं।

संस्था गणों में द्वादशाहिक धर्म का अतिदेश है इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्व पक्ष—

संस्थागणेषु तदभ्यासः प्रतीयेत कृतलक्षण-ग्रहणात् ।८।

पदार्थ—(संस्थागणेषु) ज्योतिष्टोम की संस्थाओं में (तदभ्यासः) ज्योतिष्टोम का विध्यन्त। (प्रतीयेत) प्रतीत होता है। (कृतलक्षणग्रहणात्) कृत नामक ज्योतिष्टोम का ग्रहण होने से।

भावार्थ—शतोक्थ्यंभवति, शतातिरात्रं भवति, पञ्चाग्निः पञ्चोक्थ्यः इन नामों वाले यज्ञ ज्योतिष्टोम की संस्था के रूप में सुने जाते हैं। इनमें ज्योतिष्टोम का ही विध्यन्त होता है कारण कि उक्थ्य, षोडशी, अतिरात्र, अग्निष्टोम ये सभी ज्योतिष्टोम के नाम हैं।

अधिकाराद्वा प्रकृतिः तद्विशिष्टा स्यादभिधा-नस्य तन्निमित्तत्वात् ।९।

सिद्धान्तसूत्र—

पदार्थ—(वा) अथवा (तद्विशिष्टा) उक्थ्यादि संस्था विशिष्टा (प्रकृतिः) द्वादशाह सम्बन्धी अहनों के (स्यात्) विहित करने में आये हैं। (अधिकारात्) अतिदेश शास्त्र का अधिकार होने से (अभिधानस्य तन्निमित्त-त्वात्) उक्थ्यादि नाम ऋतु समाप्ति के कारण प्रदान करने में आने के कारण।

भावार्थ—उक्थ्य आदि स्तोत्र हैं। जिस कर्म की समाप्ति जिस स्तोत्र से होती है, वह कर्म (याग) समाप्ति रूप निमित्त के कारण उस स्तोत्र के नाम से कहा जाता है। अतः द्वादशाह के अन्दर अहनों में उक्थ्यादि नाम का सम्भव होने से संघत्व रूप लिंग से द्वादशाह का विध्यन्त होता है।

शतोक्थ्यादि में ज्योतिष्टोम से स्तोत्रों में उपचय होता है, इस अधि-करण के सूत्र—

गणादुपचयस्तत्प्रकृतित्वात् ।१०।

पूर्वपक्ष सूत्र—

पदार्थ—शतोक्थ्यं भवति, यहां उक्थ्य स्तोत्र में ज्योतिष्टोमोक्थ्य में से कितने ही अधिक धर्म आम्नात किये हैं। ये धर्म द्वादशाह गण में से प्राप्त करने होते हैं। कारण कि शतोक्थ्य की प्रकृति द्वादशाह गण यज्ञ प्रकृति है।

सिद्धान्त सूत्र—

एकाहाद्वा तेषां समत्वात् स्यात् ।११।

पदार्थ—(वा) अथवा (एकाहाद्) ज्योतिष्टोम में से धर्म प्राप्त करने होते हैं। (तेषाम्) शतोक्थ्य तथा द्वादशाह अहन् इन दोनों की (समत्वात् स्यात्) समानता होने से ।

भावार्थ—द्वादशाह गण स्वयं ही ज्योतिष्टोम की विकृति है और शतोक्थ्य स्तोत्र भी विकृति होता है। इसलिए दोनों को एक दूसरे से धर्म प्राप्त करने होते हैं। अतः शतोक्थ्य स्तोत्र में सबकी प्रकृति भूत भाग में ज्योतिष्टोम से ही धर्म प्राप्त करते हैं। ज्योतिष्टोम किसी के पास भिक्षा नहीं मांगता और द्वादशाह को तो भिक्षा मांगनी पड़ती हैं 'न भिक्षुको भिक्षुकं याचते अभिक्षुके सति' जो अभिक्षुक मिले तो भिक्षुक के पास नहीं मांगता। इस लौकिक के न्याय के अनुसार शतोकथ्य द्वादशाह के पास से नहीं परन्तु ज्योतिष्टोम के पास से ही धर्म वृद्धि मांगता है ।

'गायत्रमेतद् अहर्भवति' इत्यादि में उत्पत्ति गायत्री का आगम है, यह अधिकरण—

पूर्वपक्ष—

गायत्रीषु प्राकृतीनामवच्छेदः प्रकृत्यधिका-रात्संख्यात्वादग्निष्टोमवदव्यतिरेकात्तदाख्य-त्वम् ।१२।

पदार्थ—(गायत्रीषु) श्रूयमाण गायत्री में (प्राकृतीनाम्) प्रकृति याग में से प्राप्त होने वाले त्रिष्टुप् जगती इत्यादि में से (अवच्छेदः) अक्षरों का लोप करना और गायत्री बतानी । (प्रकृत्यधिकरात्) प्रकृतिगत विधान के अनुग्रह होने से । (संख्यात्वात) गायत्री में चौवीस अक्षरों की संख्या होने से (अव्यतिरेकात्) नित्य सम्बन्ध होने से (तदाख्यत्वम्) गायत्री नाम वाला है। (अग्निष्टोमवत्) पूर्वाधिकरण में अग्निष्टोम की रीति के अनुसार ।

भावार्थ—वाजपेय याग करने के पीछे बृहस्पतिसव नामक याग करना। इस प्रकार सुना जाता है कि यह अहन् गायत्र है । इसलिए इसमें गायत्री मन्त्र का उपयोग करना चाहिए। अब यह बृहस्पतिसव विकृति याग होने से उसमें प्रकृति याग में से अतिदेश शास्त्र से प्रायः होने पर त्रिष्टुप् और अनुष्टुप् आदि

छन्दों वाली ऋचाओं में से अक्षरों का लोप कर उन्हें गायत्री छन्द बनाना या दाशतयी ऋग्वेद में से गायत्री छन्द का आगम कर उक्त याग को सम्पन्न करना ? इस संशय में पूर्व पक्षवादी का यह कहना है कि प्रकृतिगत श्रूयमाण त्रिष्टुप और जगती आदि छन्दों में से अक्षरों का लोप कर उसे गायत्री छन्द का रूप देना। त्रिष्टुप् छन्द में ४४ अक्षर होते हैं तो उनमें से २० अक्षरों का लोप कर उसे २४ अक्षरों का गायत्री छन्द बनाना। ऋग्वेद से कोई नयी गायत्री लाने की आवश्यकता नहीं। जिस प्रकार पूर्वाधिकरण में गताग्निष्टोम में द्वादशाहिक अहनों में उक्थ्य का लोप करने में आता है उसी प्रकार इस स्थान पर भी अधिक अक्षर वाले छन्दों में से बढ़े हुए अक्षरों का लोप कर उन्हें गायत्री छन्द बनाना और उनसे बृहस्पतिसव को सम्पन्न करना।

नित्यवच्च पृथक्सतीषु तद्वचनम् ।१३।

पदार्थ—(च) और (पृथक् सतीषु) गायत्री की अपेक्षा दो पृथक् गिनी जाने वाली त्रिष्टुप् और जगती आदि में (नित्यवत्) नित्य संख्या वाचक (तद्वचनम्) गायत्री वचन है।

भावार्थ—इस सूत्र में गायत्री शब्द २४ संख्या का वाचक है यह सिद्ध करने में आया है। जगती छन्द ४८ अक्षरों का है। ये हि द्वे गायत्र्यौ सैका जगती। दो गायत्री मिलकर एक जगती छन्द होता है। अब जो गायत्री छन्द २४ संख्या का ही वाचक न हो तो उपर्युक्त वचन किस प्रकार संगत होगा ? कहीं दो गायत्री छन्द वाली ऋचा मिलकर एक जगती नहीं बनती इस कारण से गायत्री शब्द शुद्ध २४ संख्या का ही वाचक है। यह पूर्वपक्षवादी का मन्तव्य है।

न विंशतौ दशेति चेत् ।१४।

पदार्थ—(विंशतौ) २० संख्या में (दश) जिस प्रकार १० संख्या समायी हुई है उसी प्रकार जगती में गायत्री भी समायी हुई है। (इति चेत् न) जो यह मानने में आवे तो उसका उत्तर अगले सूत्र में है।

भावार्थ—२० संख्या में जिस प्रकार १० संख्या समायी है उसी प्रकार जगती में गायत्री भी आ जाती है। अतः जहां गायत्री से कर्म करने को कहा हो और उस स्थान पर जो छन्द प्राप्त हुआ हो तो जगती में से अक्षरों का लोप कर उसे गायत्री का रूप देने की आवश्यकता नहीं क्योंकि उसमें गायत्री भी आ गयी। जो ऐसा कहने में आवे तो इसका उत्तर आगामी सूत्र में है।

ऐकसंख्यमेव स्यात् ।१५।

पदार्थ—(ऐकसंख्यम्) एक ही संख्या (एव स्यात्) निश्चित होती है।
भावार्थ—जो ऐसा मानने में आवे तो परार्थ ही एक मानना चाहिए दूसरी सभी संख्याओं का समावेश उसमें हो ही जाता है। तो पीछे पृथक् संख्या किस लिए माननी चाहिए।

गुणाद्वा द्रव्यशब्दःस्यादसर्वविषयत्वात् ।१६।

पदार्थ—(वा) अथवा (गुणात्) गुण होने से (द्रव्यशब्दः) २४ अक्षर युक्त द्रव्य का वाचक (स्यात्) गायत्री शब्द है। (असर्वविषयत्वात्) सर्व विषयक न होने से।

भावार्थ—गायत्री शब्द २४ संख्या का वाचक नहीं पर २४ अक्षर वाले द्रव्य का (ऋचा) का वाचक है। जो केवल संख्या वाचक होता तो २४ घड़े इत्यादि में भी प्रयोग होता। कोई पूछे कि कितनी गायें हैं तो क्या कहना कि गायत्री गायें हैं ? इस कथन से २४ गायें हैं ऐसा नहीं समझा जा सकता अतः गायत्री शब्द ४८ अक्षर वाली ऋचा का ही वाचक है। केवल संख्या का नहीं।

गोत्ववच्च समन्वयः ।१७।

पदार्थ—(च) और (गोत्ववत्) गो शब्द गोत्व वाचक है इसलिए गमन गो शब्द की प्रवृत्ति निमित्त आता है। अतः उसकी भांति (समन्वयः) समन्वय करना चाहिये।

भावार्थ—जिस प्रकार गो शब्द गमन निमित्तक सामान्य द्रव्य का वाचक होने पर भी सास्नादि वाले पशु द्रव्य जो गाय अथवा बैल है उसका ही वाचक बनता है। जिन-जिन में गमन होता है उन उन का वाचक नहीं बनता पुरुष में भी गमन है परन्तु उसमें गो शब्द का प्रयोग नहीं होता अतः वैसे गो शब्द गाय में ही प्रवृत होता है उसी प्रकार गायत्री शब्द २४ अक्षर वाले ऋग्मन्त्र में ही प्रवृत्त होता है।

संख्यायाश्च शब्दवत्त्वात् ।१८।

पदार्थ—(च) और (संख्यायाः) २४ संख्या का वाचक चतुर्विंशति शब्द है। (शब्दवत्वात्) अतः उक्त संख्या शब्द वाली है।
भावार्थ—२४ संख्या का वाचक चतुर्विंशति शब्द है तो पीछे इसी

संख्या का कथन करने के लिए गायत्री शब्द की आवश्यकता नहीं। संज्ञा व्यवहार सिद्ध के लिए है जो एक शब्द से व्यवहार सिद्धि हो गयी तो उसके लिए दूसरे शब्द की जरूरत नहीं।

इतरस्याश्रुतत्वाच्च ।१९।

पदार्थ—(च) और (इतरस्य) ऋग् रूप द्रव्य के लिए (अश्रुतत्वात्) शब्द न होने से।

भावार्थ—ऋग्वेद के मंत्रों के लिए उनकी संख्या की गणना गायत्री आदि छन्दों के सिवाय अन्य कोई शब्द नहीं अतः गायत्री नाम ऋचाओं का ही है। और उनके लिए ही इन शब्दों की सार्थकता है।

द्रव्यान्तरेऽनिवेशादुक्थ्यलोपे विशिष्टं स्यात् ।२०।

पदार्थ—(द्रव्यान्तरे) अन्य द्रव्य में (अनिवेशात्) निवेश न होने से (उक्थ्यलोपे) उक्थ्य का लोप कर (विशिष्टं स्यात्) विशिष्ट अग्निष्टोम नाम बनता है।

भावार्थ—अग्निष्टोम शब्द किसी अन्य द्रव्य का वाचक नहीं जिस प्रकार गायत्री शब्द ऋग्वेद का वाचक है उसी प्रकार अग्निष्टोम शब्द भी केवल अग्निष्टोमान्ततः को ही कहता है। उक्थ्य का लोप किये बगैर द्वादशाहिक के अहनों की अग्निष्टोमता नहीं होती अतः उक्थ्य का लोप जरूर करना चाहिए। अग्निष्टोम साम से क्रतु की समाप्ति करने से ही 'अग्निष्टोम' यह विशिष्ट नाम बनता है।

अशास्त्रलक्षणत्वाच्च ।२१।

पदार्थ—(च) और (अशास्त्रलक्षणत्वात्) उक्थ्य में शास्त्र का लक्षण न होने से।

भावार्थ—जिस प्रकार शताग्निष्टोमः अहीन् अग्निष्टोमान्तत्व प्रत्यक्ष शास्त्र गम्य है उसी प्रकार उक्थ्य प्रत्यक्ष शास्त्र गम्य नहीं यह तो आनुमानिक है। अतः उसका बाध हो सकता है। गायत्री भी शास्त्रीय लक्षण वाली है अतः आनुमानिक त्रिष्टुप् जगती आदि से उसका बाध नहीं हो सकता।

उत्पत्तिनामधेयत्वाद् भक्त्या पृथक्सतीषु ।२२।

पदार्थ—(उत्पत्तिनामधेयत्वात्) 'ऋचः गायत्री' ऋचा का नाम गायत्री है और यह स्वभावसिद्ध है भक्त्या गौण वृत्ति से (पृथक्सतीषु) जगती आदि में गायत्री आदि शब्द का प्रयोग हुआ है।

भावार्थ—'**द्वे गायत्र्यौ एका जगती**' इस स्थान पर जगती के २४-२४ अक्षरों के लिए जो गायत्री शब्द का प्रयोग हुआ है वह गौण वृत्ति के कारण हुआ है। गायत्री शब्द का मुख्य वृत्ति से प्रयोग तो २४ अक्षर की जो एक ऋचा होती है उसी में है। अतः जगती छन्द के अवयव में गायत्री शब्द मुख्य नहीं।

वचनमिति चेत् ।२३।

पदार्थ—(वचनम्) विधान है (इति चेत्) जो यह कहने में आवे तो।

भावार्थ—लक्षणा वृत्ति तो जहां अनुवाद करना हो वहीं उपयोगी है। विधान में तो अभिधा वृत्ति से ही प्रयोग होना चाहिए। '**द्वाभ्यां गायत्रीभ्यां वैशस्य क्रियते जगत्यैवं कृतं भवति**' दो गायत्रियों से वैश्य के कार्य किये जाते हैं एक जगती से जो कार्य करने में आवे तो भी दो, गायत्री से कार्य कराया यह भी सत्य है। कारण कि दो गायत्री के अक्षर ४८ होते हैं और एक जगती के भी ४८ अक्षर होते हैं। यह विधान है इसमें गौण वृत्ति अर्थात् लक्षणा वृत्ति से प्रयोग नही होना चाहिए।

यावदुक्तम् ।२४।

पदार्थ—(यावदुक्तम्) सभी वृत्तियों से प्रयोग हो सकता है।

भावार्थ—विधान भी अभिधा और लक्षणा वृत्ति से शब्द प्रयोग वेद में होता है अतएव '**पृष्ठैरुपतिष्ठते**' इस स्थान पर पृष्ठ शब्द गौण वृत्ति से प्रयुक्त हुआ है।

अपूर्वे च विकल्पः स्याद् यदि संख्याभिधानम् ।२५।

पदार्थ—(च) और (अपूर्वे) प्रकृतिभूत दर्श पूर्णमास में गायत्री का (विकल्पः स्यात्) विकल्प मनना पड़े (यदिसंख्याभिधानम्) जो गायत्री का का अर्थ २४ संख्या मानने में आवे तो।

भावार्थ—प्रकृतिभूत दर्श पूर्णमास में सुना जाता है कि '**जगत्या परिदध्यात्**' जगती से परधाव करया ऐसा कहकर गायत्र्या परिदध्यात् गायत्री

से परिधान करना यह भी कहा है अब इस स्थान पर जगती के २४ अक्षरों से परिधान करने में आवे तो भी गायत्री से ही कर्म हुआ कहा जायेगा। गायत्री मंत्र २४ संख्या का नाम हो तो ऐसा करने पर 'आजुहोता दुवस्यताग्निं प्रयत्यध्वरे। वृणीध्वं हव्यवाहनम्' ऋग्वेद ५, २८, ६। इस गायत्री का विकल्प होगा इस लिए जगती के २४ अक्षरों से किसी समय परिधान और किसी समय उक्त गायत्री से भी होगा। अतः इस पक्ष में ऋग्गायत्री का वाध होगा। यह बाध नहीं होना चाहिये। इस कारण से भी गायत्री शब्द २४ संख्या का वाचक नहीं परन्तु २४ अक्षर वाले ऋङ्मंत्र का वाचक है।

ऋग्गुणत्वान्नेति चेत् ।२६।

पदार्थ—(ऋग्गुणत्वात्) ऋचाओं का ही गुण होनेसे (न इति चेत्) ऐसा नहीं हो सका।

भावार्थ—गायत्रीत्व यह तो ऋचा विशेष का ही गुण है। अतः जगती के एक देश में ऋक्त्व धर्म नहीं जो जगती के एक देश से परिधान करने में आवे तो यह परिधान ऋक् का धर्म है यह कथन मिथ्या हो जायेगा अतः 'आजुहोता दुवस्यत' इत्यादि गायत्री से ही परिधान करना। गायत्री का इस कर्म में विकल्प नहीं।

तथा पूर्ववति स्यात् ।२७।

पदार्थ—(तथा) इस प्रमाण से (पूर्ववति स्यात्) बृहस्पतिसव में भी है।

भावार्थ—विकृतिभूत बृहस्पतिसव में भी गान विदित है और वह भी ऋक् का ही धर्म है। ज्योतिष्टोम में गान ऋचाओं में ही गाना होता है अतः अतिदेश शास्त्र से गायत्री छन्दों में ही गान करना चाहिये। तभी अतिदेश शास्त्र का कथन सफल होता है।

गुणावेशश्च ।२८।

पदार्थ—(च) और (गुणावेशः) २४ संख्या का समावेश सर्वत्र होना चाहिये।

भावार्थ—जो केवल २४ संख्या का वाचक गायत्री शब्द हो, ग्रह और चमस आदि में भी इसका प्रयोग होना चाहिये जो २४ ग्रह कहे जायें वहाँ गायत्री ग्रह ऐसा भी वर्जित होना चाहिये परन्तु इस रीति से प्रयोग नहीं मिलता अतः शुद्ध २४ संख्या का वाचक गायत्री शब्द नहीं।

निष्पन्नग्रहादिति चेत् ॥२९॥

पदार्थ—(निष्पन्नग्रहात्) रूढ़ि रूप अर्थ का ग्रहण होने से (इति चेत्) जो ऐसा मानने में आवे तो।

भावार्थ—ग्रह आदि की गणना में तो जो शब्द २४ संख्या में रूढ़ हों वही शब्द ग्रहों की २४ संख्या में प्रयुक्त होने चाहिये जो ऐसा मानने में आवे तो (उत्तर अगले सूत्र में है।)

तथेहापि स्यात् ।३०।

पदार्थ—(तथा इह अपि स्यात्) उसी प्रमाण से यहां भी मानना चाहिये।

भावार्थ—ऋक् के अतिरिक्त अन्य स्थान पर गायत्री शब्द का व्यवहार नहीं अत: २४ अक्षरों की संख्या वाले ऋक् के मन्त्र को ही गायत्री के रूप में समझना अन्य किसी पदार्थ का नाम गायत्री नहीं।

यदि वाऽविशये नियमः प्रकृत्युपबन्धाच्छरेष्वपि प्रसिद्धः स्यात् ।३१।

पदार्थ—(वा) अथवा (अविशये) गायत्री शब्द का संख्याविशिष्ट ऋगर्थत्व में संशय होने पर भी (प्रवृत्युपबन्धात्) अतिदेश शास्त्र के अनुग्रह के कारण (नियम:) अगायत्री में भी गायत्री शब्द की कल्पना करनी (यदि) जो यह हो तो (शरेषु अपि प्रसिद्धः स्यात्) कुश में भी शरीर शब्द की कल्पना करनी चाहिये।

भावार्थ—अतिदेश शास्त्र के कारण जो अगायत्री में भी गायत्री शब्द कल्पना करने में आवे तो **'शरमयं बर्हिर्भवति'** उस स्थान में कुश शब्द शर शब्द वाच्य है ऐसी कल्पना करनी चाहिये। **'प्रकृत्युपबन्धात् अगायत्र्यां गायत्री शब्दः कल्प्यते'** इस प्रकार शाबर भाष्य में पाठ है अथवा कुश में शब्द का प्रयोग न होने में कोई विशेष हेतु कहना चाहिये।

दृष्टः प्रयोग इति चेत् ।३२।

पदार्थ—(दृष्टः) देखने में आया है (प्रयोगः) प्रयोग (इति चेत्) जो ऐसा कहने में आवे तो।

भावार्थ—अक्षरगत २४ संख्या में गायत्री शब्द का प्रयोग देखने में आया है और दो गायत्री अर्थात् दो २४ अक्षर मिलकर एक जगती छन्द बनता है। इससे ऐसा अनुमान निकल सकता है कि अगायत्री छन्द में भी गायत्री

शब्द का प्रयोग होता है और शर में कुश शब्द का व्यवहार नहीं ऐसी शंका करने में आवे तो उत्तर अगले सूत्र म है।

तथा शरेष्वपि ।३३।

पदार्थ—(तथा) उस प्रमाण से (शरेषु अपि) शर में भी ।

भावार्थ—शर शब्द का भी कुश अर्थ में प्रयोग देखने में आता है जिस प्रकार कि 'शरवणेदं हि कुशवनम्' शरवण ही यह कुशवन है।

भक्त्येति चेत् ।३४।

पदार्थ—(भक्त्या) लक्षणावृत्ति से प्रयोग करने में आया है (इति चेत्) जो यह कहने में आवे तो—

भावार्थ—शरवण में जो कुशवन इस शब्द का प्रयोग करने में आया है तो यह गौण वृत्ति से है अर्थात् लक्षणा वृत्ति से है जो यह कहने में आये तो उत्तर अगले सूत्र में है।

तथेतरस्मिन् ।३५।

पदार्थ—(तथा) इस प्रकार (इतरस्मिन्) अन्य स्थान पर भी।

भावार्थ—जो शरवण में कुशवन शब्द गौण वृत्ति से मानने में आवे तो '**द्वे गायत्र्यौ सैकाजगती**' इस स्थान पर गायत्री शब्द का गौण अर्थ में प्रयोग स्वीकार करो। अतः ऋचाओं में ही गायत्री शब्द का मुख्य अर्थ है। संख्या के अर्थ में नहीं अतः जगती छन्द में अक्षर लोप नहीं करना चाहिये।

अर्थस्य चासमाप्तत्वान्न तासामेकदेशे स्यात् ।३६।

पदार्थ—(च) और (अर्थस्य असमाप्तत्वात्) अर्थ सम्पूर्ण न होने से (तासाम्) प्रकृतिगत जगती आदि ऋचाओं के (एकदेशे) एक भाग में (न स्यात्) गायत्री शब्द का प्रयोग नहीं होता।

भावार्थ --त्रिष्टुप् और जगती आदि छन्दों में अक्षर लोप कर गायत्री बनाने में शब्दों का अर्थ अधूरा रह जाएगा। लुप्त हुए शब्द के साथ अन्य विद्यमान शब्द का संबंध रह जाने से अर्थ नहीं समझा जायेगा। इस प्रकार लोप करने से शाब्द बोध नहीं हो सकता अतः प्राकृत ऋचाओं के एक देश में

गान आदि नहीं हो सकता इस कारण से २४ अक्षर वाली ऋग्वेद की स्वतन्त्र और अन्य ही गायत्री ऋचाओं का ग्रहण करना चाहिये। अक्षर लोप करने से मंत्र निरर्थक हो जाता है। अर्थ के अभिधान के लिए तो मन्त्र का प्रयोग होता है। मन्त्र प्रयोग को निरर्थक मानना योग्य नहीं इससे त्रिष्टुप् जगती आदि एक देश में गायत्री शब्द न मानना।

।इति मीमांसादर्शनभाष्येऽष्टमाध्यायस्य तृतीयः पादः ८।३ ।।

अथाष्टमाध्यायस्य चतुर्थः पादः

दर्विहोम यह कर्म का नाम है, इस अधिकरण के सूत्र

सिद्धान्त सूत्र—

दर्विहोमो यज्ञाभिधानं होमसंयोगात् ।१।

पदार्थ— (दर्विहोम) दर्विहोम (यज्ञाभिधानात्) यज्ञ का नाम है। (होमसंयोगात्) होम का सम्बन्ध होने से ।

भावार्थ—'यदेकया जुहुयात् दर्विहोमं कुर्यात्' इस स्थान पर होमशब्द के साथ दर्वि का अभेद सम्बन्ध बताया है। इससे दर्विहोम यज्ञ का नाम है। दर्विहोम कोई गुण रूप में नहीं ।

दर्विहोम शब्द लौकिक और वैदिक दोनों कर्म का नाम है । यह अधि-करण—

पूर्वपक्ष सूत्र—

स लौकिकानां स्यात् कर्तुस्तदाख्यत्वात् ।२।

पदार्थ—(सः) नामरूप के संकेत (लौकिकानां स्यात्) स्थालीपाक आदि लौकिक कर्म का है (कर्तुः तदाख्यत्वात्) लौकिक कर्म के कर्ता का उसके साथ स्मरण होने से ।

भावार्थ—दर्विहोम यह नाम लौकिक कर्म का है कारण कि लौकिक कर्म के कर्त्ता का नाम उसके साथ जुड़ा है। जैसे, 'शिनीनां दार्विहोमिको ब्राह्मणः। अम्बष्ठानां दार्विहोमिको ब्राह्मणः' जो मनुष्य जो कर्म करता है उस कर्म से ही उस कर्त्ता का नाम पड़ जाता है। जैसे कि जो लवन (अन्न काटना) करे वह लावक तथा पवन करने से पावक। उक्त वाक्य में लौकिक कर्म के कर्त्ता के रूप में दार्विहोमिक ब्राह्मण का निर्देश है अतः दार्विहोम लौकिक कर्म का नाम है।

सिद्धान्त सूत्र—

सर्वेषां वा दर्शनाद् वास्तुहोमे ।३।

पदार्थ—(वा) अथवा (सर्वेषां) लौकिक तथा वैदिक कर्म का यह नाम है (वास्तुहोमे दर्शनात्) वास्तुहोम में ऐसी रीति देखने में आई है।

भावार्थ—दर्विहोम लौकिक और वैदिक दोनों कर्मों का नाम है।

'यदेकया जुहुयाद् दर्विहोमं कुर्यात्' इस प्रकार का प्रयोग देखने में आता है। 'पुरोवाक्यामनूच्य याज्यया जुहोति सदेवत्वात्' इस वाक्य में याज्या से होम करना बताया है, इससे दर्विहोम वैदिक कर्म भी है, यह सिद्ध होता है।

दर्विहोम शब्द का ही नाम है, इस अधिकरण के सूत्र—

सिद्धान्त सूत्र—

जुहोति चोदनानां वा तत्संयोगात् ।४।

पदार्थ—(वा) सिद्धान्त को सूचित करता है—(जुहोति चोदनानाम्) जुहोति शब्द से विधान होने के कारण 'जुहोति' विधान का ही नाम है, यजति का नाम नहीं। अर्थात् याग का नाम नहीं। (तत्संयोगात्) होम शब्द का सम्बन्ध होने से दर्विहोम शब्द का सम्बन्ध होने से।

भावार्थ—होम शब्द का सम्बन्ध होने से दर्विहोम का नाम है, याग का नहीं। होम और याग दोनों शब्दों के अर्थ में भी होता है। 'प्रक्षेपाङ्गको-द्देशत्यागरूपक्रियाद्वयवृत्तिजातेः यागत्वात् उद्देशत्यागप्रक्षेपात्मकक्रियात्रय-वृत्तिजातेः होमत्वाच्च' प्रक्षेपांगक उद्देश और त्याग इस क्रिया का नाम याग है। उद्देश, त्याग और प्रक्षेप इन तीन क्रियाओं का नाम होम है ऐसा भी कई विद्वान् कहते हैं।

दर्विहोम शब्द का गुण विधित्व निराकरण अधिकरण—

पूर्वपक्षसूत्र—

द्रव्योपदेशाद् वा गुणाभिधानं स्यात् ।५।

पदार्थ—(वा) पूर्वपक्ष सूचित करता है। (द्रव्योपदेशात्) दर्वि पद से द्रव्य का उपदेश होने से (गुणाभिधानं स्यात्) गुण का विधान होता है।

भावार्थ—दर्व्या होमः दर्विहोमः इस प्रकार तृतीय तत्पुरुष समास से शब्द की सिद्धि होती है। अतः दर्वि रूप द्रव्य से होम करना। अतः दर्वि होम शब्द गुणविधि को सूचित करता है।

सिद्धान्त सूत्र—

न लौकिकानामाचारग्रहणत्वाच्छब्दवतां चान्यार्थविधानात् ।६।

पदार्थ—(न) नहीं (लौकिकानाम् आचारग्रहणत्वात्) लौकिक होम से आचार से ही दर्वि का ग्रहण होता है अतः उसका विधान करना नहीं रहता। (शब्दवताम् च अन्यार्थविधानात्) श्रौत होम के लिए तो अन्य पात्र आम्नात होते हैं।

भावार्थ —स्मार्त होम में तो आचार से दर्वि गृहीत होता है जैसे कि 'त्वग्विलया मूलदण्ड्या दर्व्या जुहोति' परन्तु श्रौत होम में तो अन्य ही पात्रों का अम्नान है जैसे कि 'स्रुवेण जुहोति' यहां स्रव का आम्नात है। किसी स्थान पर चमस का भी आम्नात है, आम्नात पात्र के साथ दर्वि का विकल्प करना यह अन्याय है। अतः गुण का विधान नहीं।

दर्शनाच्चान्यपात्रस्य ।७।

पदार्थ—(च) और (अन्य पात्रस्य) अन्य पात्र का (दर्शनात्) दर्शन होने से।

भावार्थ—दर्वि होम में अन्य पात्र देखने में आता है। जैसे कि 'भूतेभ्यस्त्वां' ऐसा कह कर अपूर्व स्रुव का स्मरण करता है, अतः गुणविधि नहीं।

तथाग्निहविषोः ।८।

पदार्थ—(तथा) इस प्रकार (अग्निहविषोः) अग्नि और हविष् के स्थान पर दर्वि रहेगा, ऐसा कहना भी ठीक नहीं।

भावार्थ—'दर्वौ होम अथवा दर्वेर्होम' इस प्रकार सप्तमी या षष्ठी तत्पुरुष समास का स्वीकार कर अग्नि अथवा हविष के कार्य का करने वाला दर्वि है। यह कह कर गुण विधान मानना यह भी ठीक नहीं। आधार के रूप में आहवनीय अग्नि का विधान है। जैसे कि 'यदाहवनीये जुहोति' और प्रदेय रूप में पुरोडाश का विधान नहीं है अतः हविष् और अग्नि के कार्य में दर्वि का निवेश हो नहीं सकता। इससे गुण विधान नहीं माना जा सकता।

उक्तश्चार्थसम्बन्धः ।९।

पदार्थ---(उक्तः च) और कहने में आया है। (अर्थसम्बन्धः) अर्थ का सम्बन्ध।

भावार्थ—अग्नि जो कार्य कर सकता है वह कार्य कोई द्रव्य कदापि नहीं कर सकता। दहन, पाचन और प्रकाशन यह अग्नि का काम है, यह काम दर्वि कदापि नहीं कर सकती। इस कारण से दर्वि होम शब्द से गुण वृद्धि की प्रतीति नहीं होती। परन्तु यह शब्द उपयुक्त प्रमाण से होम का ही वाचक है।

दर्वि होम का अपूर्वत्वाधिकरण

पूर्वपक्षसूत्र—

तस्मिन् सोमः प्रवर्तेताव्यक्तत्वात् ।१०।

पदार्थ—(तस्मिन्) इस दर्विहोम में (सोमः प्रवर्तेत) सोम के धर्मों की

प्रवृत्ति है। (अव्यक्तत्वात्) अव्यक्त रूप समानता के कारण।

भावार्थ—दर्विहोम में सोम का विध्यन्त करना चाहिए, अर्थात् सोम याग के जो धर्म हैं, उन धर्मों का अनुष्ठान दर्विहोम में भी करना। कारण कि सोम याग में व्यक्त विधि नहीं और इसमें भी व्यक्त विधि नहीं। अव्यक्त इसलिए अपने अंग रूप में देवता का विधान न होने से सोम याग के अंग के रूप में देवता का नहीं, अतः सोमयाग अव्यक्त है। यहाँ भी 'भिन्ने जुहोति' में देवताओं का अंग रूप में विधान है। इस सामान्य के कारण दर्वि होम सोम धर्म लाने चाहियें।

सिद्धान्त सूत्र—

न वा स्वाहाकारेण संयोगाद् वषट्कारस्य च निर्देशात् तन्त्रे तेन विप्रतिषेधात् ।११।

पदार्थ—(वा) पूर्वपक्ष की निवृत्ति का सूचक है। (न) यहाँ सौमिक विध्यन्त नहीं करना चाहिये। (स्वाहाकारेण संयोगात्) दर्वि होम में स्वाहाकार के साथ संयोग है और (तन्त्रे) सोमादितन्त्र में (वषट्कारस्य च निर्देशात्) वषट्कार के निर्देश से (तेन) उसके साथ (विप्रतिषेधात्) विरोध होने से।

भावार्थ—दर्विहोम स्वाहाकार से संयुक्त है। जैसा कि **'पृथिव्यै अन्तरिक्षाय स्वाहा'** इत्यादि। और सोमयाग में तो वषट्कार का निर्देश है इससे स्वाहाकार का वषट्कार के साथ विरोध होने से दर्विहोम में सौमिक विध्यन्त नहीं। जो सौमिक विध्यन्त हो तो वषट्कार का निर्देश होना चाहिये, तो पीछे स्वाहाकार का आम्नात व्यर्थ हो जाय। स्वाहाकार और वषट्कार दोनों का विकल्प मानने में आवे तो पक्ष में दोनों का बाध होगा। अतः जो दर्विहोम को अपूर्व कर्म मानने में आवे तो यह विरोध नहीं आयगा, अतः दर्विहोम अपूर्व कर्म होगा।

शब्दान्तरत्वात् ।१२।

पदार्थ—(शब्दान्तरत्वात्) पृथक्-पृथक् शब्दों के प्रयोग होने से।

भावार्थ—**'सोमेन यजेत'** इस स्थान पर सोम का विधान 'यजति' शब्द से हुआ है और **'नारिष्टान् जुहोति'** यह दर्विहोम में 'जुहोति' शब्द से विधान हुआ है। इस प्रकार दोनों विधान समान शब्दों से नहीं पर पृथक्-पृथक् शब्दों से हैं। विधान की समानता से धर्म की प्राप्ति की इच्छा प्रकट होती है। इस कारण से भी सौमिकी धर्म प्राप्ति मानना अनुचित है।

लिंगदर्शनाच्च ।१३।

पदार्थ—(च) और (लिंगदर्शनात्) लिंगभूत वाक्य के दर्शन से भी जाना जाता है कि दर्विहोम में सौमिक विध्यन्त नहीं।

भावार्थ—'**सोमघृतेन द्यावापृथिवी आपृणेथाम्**' इत्यादि में '**औदुम्बर्यां जुहोति**' यहाँ औदुम्बरी होम में '**आमूलादवस्त्रावयन्ति भूमिगते स्वाहा**' भूमिगत को उद्दिष्ट कर स्वाहा शब्द का प्रयोग किया है। जो जुहोति शब्द से विहित दर्विहोम में सौमिक विध्यन्त होता तो वषट्कार का ही विधान करते, **भूमिगते स्वाहा**' ऐसा प्रयोग न करते। उससे भी समझा जाता है कि दर्विक होम में सौमिक विध्यन्त नहीं।

उत्तरार्थस्तु स्वाहाकारो यथा साप्तदश्यं तत्राविप्रतिषिद्धा पुनः प्रवृत्तिर्लिंग-दर्शनात्पशुवत् ।१४।

पदार्थ—(तु) पूर्वपक्ष की ओर से आक्षेप का सूचक है (उत्तरार्थः) प्रकृतिभिन्न के लिये (स्वाहाकारः) स्वाहाकार विधि है। (यथा) जिस प्रकार (साप्तदश्यम्) साप्तदश्य वाक्य मित्रविंदादि विकृति में सन्निविष्ट होता है। (तत्र) उसमें (अविप्रतिषिद्धा) सोम-धर्म की प्रवृत्ति प्रतिषिद्ध नहीं (पुनः प्रवृत्तिः) फिर से प्रवृत्ति होती है। (लिंगदर्शनात्) लिंगभूत वाक्य के दर्शन से (पशुवत्) जिस प्रकार पशुदेयक याग में।

भावार्थ—औदुम्बरी होम में स्वाहाकार विधि प्रकृतिभिन्न विकृति के लिये है। जिस प्रकार अनारभ्य पठित '**सप्तदशानुब्रूयात्**' यह वाक्य दर्शपूर्ण मास रूप प्रकृति गामी होता है, परन्तु वहाँ श्रूयमाण पाञ्चदश्य है, और वह प्रकरण पठित है, अतः बलवत् पाञ्चदश्य से निवारित हुआ उक्त साप्तदश्य वाक्य विकृतिभूत '**सप्तदश सामिधेनीस्वाह**' श्रूयमाण सप्तदश्य वाले पशु मित्रविंदादि विकृति में सन्निवेश प्राप्त करते हैं। इसी प्रमाण से 'स्वाहाकरेण' वषट्कारेण वा देवेभ्यो हविर्दीयते।' इस वाक्य में स्वाहाकार से दानविरधि वषट्कार में अवरुद्ध हुये प्रकृतिभूत दर्शपूर्णमास में सन्निवेश नहीं प्राप्त करता, जहाँ स्वाहाकार श्रुत है वहीं उपसंहार प्राप्त करता है। इस प्रकार स्वाहाकार प्रवृत्ति रूप लिंग वाक्य से सौमिक धर्म की प्राप्ति में विरोध नहीं आता। पशुदेयक याग में साप्तदश्य का विधान होने पर भी दर्शपूर्णमास के धर्म जो प्रयाजानुयाज आदि हैं उनका विरोध नहीं होता। इसी प्रकार स्वाहा-कार का विधान होने पर भी सोमधर्म का विरोध नहीं होता, अर्थात् दर्वि-

होम में सोम धर्म की प्राप्ति है।

आक्षेप निवारक सूत्र—

अनुत्तरार्थो वा अर्थवत्त्वादानर्थक्याद्धि प्राकृतस्योपरोधः स्यात् ।१५।

पदार्थ—(वा) अथवा (अनुत्तरार्थः) प्रकृति भिन्न के लिए नहीं (हि) कारण कि (आनर्थक्यात्) साप्तदश्य तो आनर्थक्य के कारण (प्राकृतस्य) प्रकृति गत पाञ्चदश्य (उपरोधः स्यात्) निवारक हो सके।

भावार्थ—स्वाहाकार प्रदानविधि के जो अनारभ्याधीत है वे दर्शपूर्ण-मास रूप प्रकृति के लिये है। कारण कि नारिष्टहोमादि में उनका निवेश हो सकने से वह सफल है। साप्तदश्य तो किसी भी स्थान पर निवेश न प्राप्त करने से वह निष्फल हो जाता है। अतः उसका निवारक पाञ्चदश्य हो सकता है। परन्तु स्वाहाकार विधि तो प्रकृति में अनर्थक नहीं। अतः वह उत्तरार्थ नहीं पर प्रकृति के लिए ही है और उससे सोमधर्म के अभाव में यह सुदृढ़ लिंग वाक्य है। अर्थात् दर्विहोम में सोम धर्म की प्राप्ति नहीं।

आक्षेप सूत्र—

न प्रकृतावपीति चेत् ।१६।

पदार्थ—(प्रकृतौ अपि) प्रकृतिभूत नारिष्टहोमों में भी (न) स्वाहाकार का सन्निवेश नहीं (इति चेत्) जो ऐसा आक्षेप करने में आवे, तो इसका उत्तर अगले सूत्र में है—

भावार्थ—**द्व्यक्षरो वै वषट्कार एषवै सप्तदशः प्रजापतिः** इस वाक्य से दर्शपूर्णमास प्रकरण में अनुवषट्कार विधान प्रकरण से नारिष्टहोमादि में भी वषट्कार का भी निवेश है, इससे इनमें स्वाहाकार का निवेश नहीं हो सकता। इस शंका में इस सूत्र का भावार्थ यह है कि जो नारिष्ट होम में स्वाहाकार निवेश न हो तो ? इस प्रश्न का उत्तर अगले सूत्र में है—

उक्तं समवाये पारदौर्बल्यम् ।१७।

पदार्थ—(उक्तम्) कहने में आया है कि (समवाये) श्रुत्यादि के समवाय में (पारदौर्बल्यम्) जिस प्रमाण से होता है उनकी दुर्बलता है।

भावार्थ—उपर्युक्त शंका अयोग्य है कारण कि **श्रुतिलिङ्गवाक्य-प्रकरणस्थानसमाख्यानां समवाये पारदौर्बल्यमर्थविप्रकर्षात्** ॥३।३।१४। इस सूत्र में श्रुति, लिंग आदि प्रमाणों में जिन-जिन पर प्रमाण आता जाता है, उसी प्रकार पूर्व की अपेक्षा उत्तर प्रमाण दुर्बल माना जाता है। कारण

कि उत्तरोत्तर प्रमाण अर्थ समझने में पूर्वप्रमाण के कारण विलम्ब होता है। इस नियम के आधार पर प्रकरण से प्राप्त हुये वषट्कार की प्राप्ति से वाक्य से प्राप्त 'स्वाहाकार' की प्राप्ति अधिक बलवती है। **'वाक्यं च प्रकरणाद् बलीयः'** प्रकरण से वाक्य बलवत्तर है। इस कारण से भी दर्विहोम में सोम धर्म की प्राप्ति नहीं, अतः दर्विहोम यह अपूर्व कर्म है।

पक्षान्तर का उत्थापक सूत्र—

तच्चोदना वेष्टेः प्रवृत्तत्वाद् विधिः स्यात् ।१८।

पदार्थ—(वा) अथवा (तच्चोदना) नारिष्टहोम विधा का दर्विहोम में प्रवृत्त होगा। (इष्टेः) दर्शपूर्णमास इष्टि सामान्य में (प्रवृत्तत्वात्) प्रवृत्त होने से (विधिः स्यात्) अग्निहोत्रादि में नारिष्टहोम प्रवर्तक विधि प्राप्त होती है।

भावार्थ - जो इष्टि पशु पर उपकार करती है तो अग्निहोत्र में उपकार करती ही है। राजधानी में रहकर जो अधिक लोगों पर उपकार करते हैं, वे मनुष्य मेरे ऊपर भी उपकार करेंगे ऐसा आगन्तुक नया मनुष्य भी समझ सकता है। इस प्रकार प्रकरणस्थ जो विधि अधिक इष्टियों पर उपकार करती है, अग्निहोत्र पर भी उपकार करेगी। अतः नारिष्ट के जो धर्म हैं वे दर्विहोम में अग्निहोत्रादि में भी प्रवृत्त होगा। अतः इस सूत्र में दर्विहोम अपूर्व कर्म नहीं ऐसी सूचना मिलती है।

शब्दसामर्थ्याच्च ।१९।

पदार्थ—(च) और (शब्दसामर्थ्यात्) शब्द सामर्थ्य से।

भावार्थ—'जुहोति चोदनाचोदितत्वसामर्थ्यात् जहोति' शब्द से विधान हुआ है। जिस प्रकार **'नारिष्टान् जुहोति** और **'अग्निहोत्रं जुहोति'** इन दोनों स्थानों में जुहोति रूप तक ही विधायक शब्द से विधान हुआ है। अतः विधान साम्य से नारिष्ट धर्मों की प्राप्ति अग्निहोत्र में है।

लिंगदर्शनाच्च ।२०।

पदार्थ—(च) और (लिंगदर्शनात्) लिंगभूत वाक्य के श्रवण होने से।

भावार्थ—परिधि और अन्तर्वेदि सांग प्रधान कर्म का अंग है, ऐसा दर्शपूर्णमास में बताया गया है। इससे परिधि और अन्तर्वेदि नारिष्ट होमों का भी अंग है। इस प्रकार—अग्निहोत्र में **'यत्कीटावपन्नेन जुहुयात् अप्रजा अपशुः यजमानः स्यात्'** इस प्रमाण में कीट वाले हविष् के होम में

दोष बताकर **मध्यमेन पूर्णेन द्यावापृथिव्यया ऋचा अन्तःपरिधि निनयेत्'** इस लिंग वाक्य से अग्निहोत्र में नारिष्ट धर्म की प्राप्ति है। तथा 'अन्तर्वेदि तिष्ठन् 'सावित्राणि जुहोति' इस वाक्य से भी दर्विहोम में नारिष्ट प्रकृतिकत्व सिद्ध होता है। इसलिये कि नारिष्टहोम के धर्म दर्विहोम में प्राप्त हैं, ऐसा उक्तलिंगवाक्य से निष्कर्ष निकलता है।

उत्थापित पक्षान्तर का खण्डन सूत्र—

तत्राभावस्य हेतुत्वाद् गुणार्थे स्याददर्शनम् ।२१।

पदार्थ—(तत्र) उसमें (अभावस्य) अभाव को (हेतुत्वात्) हेतु रूप बताया है। (गुणार्थे) गुण प्रधान के लिये होने से (स्यात्) इध्मबर्हिष् आदि गुणों का भाव होना चाहिए अतः (अदर्शनम्) असाधक है।

भावार्थ—अग्निहोत्र में नारिष्ट गुण की प्रवृत्ति होती है। उसमें जो प्रवृत्ति रूप हेतु दिया है, वह दर्विहोम में नारिष्ट प्रकृतिकत्व को सिद्ध नहीं कर सकता। कारण कि प्रतिज्ञा वाक्य में नारिष्टहोम के गुणों का अभाव बताया है। और इस भाव हेतु का तरीका है—**अप्रतिष्ठिता वै त्र्यम्बकाः नेध्मार्बाहिः संनह्यतेन प्रयाजानु इज्यन्ते नानयाजा इज्यन्ते न सामीधेनी-स्त्वाह** इस प्रमाण से त्र्यम्बक को अप्रतिष्ठितत्व बताकर और इस अप्रतिष्ठितत्व को सिद्ध करने के लिये इध्मादि गुणों का अभाव हेतु रूप बताया है। नारिष्टहोम की दर्विहोम में प्रवृत्ति होती हो तो इध्मादि गुणों का भाव होना चाहिये, अभाव नहीं। अतः दर्विहोम में नारिष्ट होम की प्रवृत्ति नहीं होती।

विधिरिति चेत् ।२२।

पदार्थ—(विधिः) विधि किस कारण न मानना (इति चेत्) जो ऐसी शंका हो तो।

भावार्थ—उक्त गुणों की प्राप्ति के अभाव के कारण विधि अर्थात् निषेधक विधि किस कारण न माननी इसका उत्तर अगले सूत्र में है।

न वाक्यशेषत्वाद्गुणार्थे च समाधानं नानात्वेनोपपद्यते ।२३।

पदार्थ—(न) विधि नहीं (वाक्यशेषत्वात्) वाक्य का शेष होने से (च) और (गुणार्थे) उक्त वाक्य को जो गुणविध्यर्थ मानने में आवे तो

(समाधानम्) समाधान (नानात्वेन उपपद्यते) अनेक वाक्यों से होता है।

भावार्थ—जो इध्माबर्हिष् के अभाव को गुणविध्यर्थ मानने में आवे तो इध्माबर्हिष् के निषेध का एक वाक्य, न प्रयाजा' यह अन्यवाक्य, 'नानुयाजा' यह तीसरा वाक्य 'आदित्यं चरुं निर्वपेत्' यह चौथा वाक्य इस प्रकार अनेक विधायक वाक्य मानने पड़ते हैं जो इध्माबर्हिष् के अभाव बोधक वाक्य को आदित्य याग विधि के स्तावक रूप में मानकर अनुवाद मानने में आवे तो एक वाक्य होता है। 'अतस्तेन सहैकवाक्यतां याति। तन्मध्ये च य इध्माद्यभाववचनास्तेऽपि तच्छेषा एवं समुच्चारणान्न्याय्याः' इस प्रमाण से शाबर भाष्य में भी इध्मा आदि भाववचनों की विधि का शेष रूप में गिनकर आर्यवाद रूप में ही मानने में आता है।

एषां वाऽपरयोर्होमस्तेषां स्यादविरोधात् ।२४।

पदार्थ—(वा) अथवा (एषाम्) पत्नीसंयाज, पिष्टलेप, फलीकरण होम रूप के (अपरयोः) गार्हपत्य तथा दक्षिणाग्नि का (होमः) होम है। (तेषाम्) उनकी धर्मप्राप्ति (स्यात्) होवे (अविरोधात्) विरोध न होने से।

भावार्थ—दर्विहोम में नारिष्ट होम के धर्मों की प्राप्ति उक्त दोषों के कारण भले न हो परन्तु गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि होम के धर्म प्राप्त होने में कोई बाधा प्रतीत नहीं होती कारण कि इनमें इध्मबर्हिष अंग रूप में नहीं अतः गार्हपत्य दक्षिणाग्नि के जो पत्नीसंयाज, पिष्टलेप और फलीकरण रूप होम हैं उनके धर्म की प्राप्ति दर्विहोम में मानना इसलिए दर्विहोम कोई अपूर्व कर्म नहीं यह सिद्ध होता है ऐसा पूर्वपक्षवादी का मन्तव्य है। इसका खण्डन अगले सूत्र में है।

तत्रौषधानि चोद्यन्ते तानि स्थानेन गम्येरन् ।२५।

पदार्थ—(तत्र) दर्विहोम विशेष में (औषधानि) औषधिद्रव्य व्रीहि आदि विधीयमान हैं (तानि) वे द्रव्य (स्थानेन) स्थान ने (गम्येरन्) उनके धर्मों को प्राप्त कर सकता है।

पदार्थ—दर्विहोम में व्रीहि आदि औषध द्रव्यों का विधान है जिस प्रकार कि 'प्रतिपुरुषमेककपालन्निर्वपेत्' इस वाक्य से पुरोडाश का विधान होता है वह व्रीहि आदि द्रव्य स्थान से उनके धर्मों की प्राप्ति कर सकता है। जैसे कि सौम्यं श्यामाकं चरुम् यह व्रीहि स्थान में विहित है। अतः व्रीहि के धर्म प्राप्त करने। व्रीहि के धर्म निर्वाप आदि हैं। इसी प्रमाण से त्र्यम्बक में जहाँ आज्य की प्राप्ति है वहां विहित पुरोडाश आज्यधर्मों को प्राप्त करे

यह बात अयोग्य है। यह 'ते न शक्यास्तत्रानुष्ठातुम्। अनुष्ठीयमाना वा अप्राकृत-कार्याः स्युः। शावर भाष्य।
अतः दर्विहोम में किसी से भी धर्म लेना नहीं होता।

लिंगाद् वा शेषहोमयोः ।२६।

भावार्थ—(वा) अथवा (लिंगात्) पिष्टलेप और फलीकरण होम के विधान रूप लिंग से (शेषहोमयोः) बाकी रहे होम के धर्म की प्राप्ति नहीं होती।

भावार्थ—पत्नी समाज की प्रवृत्ति दर्विहोम में भले न हो, परन्तु अन्य पिष्टलेप और फलीकरण रूप होम के धर्मों की प्रवृत्ति होने में क्या दोष है। ये दोनों होम औषधि द्रव्यक होने से ऊपर जो दोष बताये हैं, वे यहाँ लागू नहीं होते।

प्रतिपत्ती तु ते भवतस्तस्मादतद्विकारत्वम् ।२७।

पदार्थ—(तु) पूर्वपक्ष का निराकरण करने के लिये (ते प्रतिपत्ती भवतः) पिष्टलेप और फलीकरण रूप होम कर्म प्रतिपत्तिक कर्म है, अर्थात् शेष द्रव्य के संस्कार रूप हैं। (अतस्तद्विकारत्वम्) अतः उनकी विकृति दर्वि होम नहीं।

भावार्थ—पिष्टलेप और फलीकरण रूप होम कर्म तो गुण कर्म है अर्थात् शेष द्रव्य के संस्कार रूप में हैं। जो प्रतिपत्ति कर्म होता है। वे किसी की भी प्रकृति नहीं कहलाते। और उनसे उनके धर्म का अतिदेश किसी भी प्रकार देखने में नहीं आता। इस कारण से दर्विहोम अपूर्व कर्म है अर्थात् किसी भी प्रकृति की विकृति नहीं।

उपसंहार सूत्र—

सन्निपाते विरोधिनामप्रवृत्तिः प्रतीयेत विध्युत्पत्तिव्यवस्थानादर्थस्यापरिणेयत्वात् वचनादतिदेशः स्यात् ।२८।

पदार्थ—(विरोधिनाम्) दोषयुक्त वचनों को (सन्निपाते) साधकत्व रूप में उपन्यास किया हो तो भी (अप्रवृत्तिःप्रतीयेत) नारिष्ट होम धर्म प्राप्ति रूप की अप्रवृत्ति ही जाननी चाहिये। (विध्युत्पत्ति व्यवस्थानात्) नारिष्ट होम और उसके धर्मों की विधि का दर्शपूर्णमास प्रकरण में ही नियम होने से (अर्थस्य अपरिणेयत्वात्) नारिष्ट धर्म अतिदेश्य नहीं

(वचनात्) प्रत्यक्ष वचन हो तो (अतिदेशः स्यात्) अतिदेश हो सकता है।

भावार्थ—दोष वाले हेतुओं का उपन्यास किया हो तो भी नारिष्ट होम धर्म प्राप्ति रूप की प्रवृत्ति नहीं हो सकती। नारिष्ट होम और उसके धर्म की विधि का जो उत्पत्ति पाठ है वह तो दर्शपूर्णमास में ही नियमित है। दर्शपूर्णमास सन्निधि में पठित अन्य धर्मों को छोड़कर नारिष्ट धर्म का अतिदेश नहीं होता। इस कारण से दर्वि होम अपूर्व कर्म ही है। राष्ट्रभृत् आदि ज्योतिष्टोम की सन्निधि में पठित है अतः विवाह आदि में उनका अतिदेश होता है। इसका कारण यह है कि वहां तो प्रत्यक्ष वचन है। **'जयाभ्यातानान् राष्ट्रभृतश्च हुत्वा'** इत्यादि वचनों से किसी स्थान पर अतिदेश होता है, परन्तु जिसके लिये वचन न हो, वह तो केवल आनुमानिक अतिदेश कहलाता है। आनुमानिक अतिदेश दर्विहोम में मानने में नहीं आता।

इति मीमांसादर्शनभाष्ये अष्टमाध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥८।४॥

अथ नवमाध्यायस्य प्रथमपादः

अग्निहोत्रादि में कहे गये धर्म अपूर्व के लिये प्रयुक्त हैं—यह अधिकरण

यज्ञकर्म प्रधानं तद्धि चोदनाभूतं तस्य द्रव्येषु संस्कारस्तत्प्रयुक्तस्तदर्थत्वात् ।१।

पदार्थ—(यज्ञकर्म) दर्शपूर्णमास याग का कार्य जो अपूर्व है वह (प्रधानम्) मुख्य है। (हि) कारण कि (तत्) वह अपूर्व (चोदनाभूतम्) कार्य होने से विधिगम्य है। (तस्य) इससे इसके सम्बन्धी (द्रव्येषु) व्रीहि आदि द्रव्यों में (संस्कारः) जो अवहनन आदि संस्कार हैं वे भी (तत्प्रयुक्तः) अपूर्व प्रयुक्त हैं। (तदर्थत्वात्) यह संस्कार भी अपूर्व के लिये ही होने से।

भावार्थ—इस नवम अध्याय में अहू के सम्बन्ध में विचार किया जायेगा। प्रसंगोपात्त अन्य विषयों का भी वर्णन होगा। अहू का मुख्य उदाहरण अग्निहोत्र दर्शपूर्णमास तथा ज्योतिष्टोम है। इनमें जो पृथक्-पृथक् धर्म बताये गये हैं वे सब अपूर्व प्रयुक्त हैं। यजि प्रयुक्त नहीं। जो अपूर्व प्रयुक्त होते हैं उनमें ही अहू की सम्भावना होती है। अपूर्व तो पृथक्-पृथक् होता है। अतः तत्-तत् अपूर्व के लिये वे धर्म कर्त्तव्य बन सकते हैं। अपूर्व के लिये ही कथंभाव आकाँक्षा और किससे भावना करनी यह भावनाद्वय की आकाँक्षा सम्भव हो सकती है। याग तो प्रत्यक्ष क्रिया है और वह तो लोक-व्यवहार से जानी जाती है परन्तु अपूर्व प्रत्यक्ष नहीं। अतः उसके लिये 'केन भावयेत् कथं भावयेत् किं भावयेत्' ऐसी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिये शास्त्र की आवश्यकता होती है। ये जानने के लिये शास्त्र से अतिरिक्त अन्य उपाय नहीं। **ब्रह्मवर्चसापूर्बं सौर्ययागेन आग्नेययागवत्कर्त्तव्यम्** इस विधि वाक्य से आग्नेय याग तुल्य सौर्ययाग का अनुष्ठान प्राप्त होता है आग्नेय याग में **'अग्नये जुष्टं निर्वपामि'** इस वाक्य में अपूर्व सम्बन्धी देवता स्मरण है। कारण कि इसमें अग्निदेवता वाचक पद है। इस वाक्य का जब सौर्य याग में अतिदेश हो तब 'अग्नये' के स्थान पर 'सूर्याय' ऐसा अहू करना आवश्यक है इसी प्रमाण से व्रीहि के स्थान पर नीवार हो, तब व्रीहि सम्बन्धी अवहनन रूप धर्म का नीवार में भी अहू करना चाहिये। कारण कि संस्कार भी अपूर्व के लिये ही होता है। **'मन्त्रसामसंस्कारविषय ऊहः'** मंत्र साम तथा संस्कार सम्बन्धी ऊह होता है। 'ऊहो नाम वितर्कणा सा चैक रूपामन्त्रसामसंस्कारेषु

क्रियमाणा सैव सा' इस प्रकार तंत्र वार्तिक में तथा शाबर भाष्य में भी उल्लेख है। भाव यह है कि अपूर्व के लिये सकल धर्म याग में कर्त्तव्य होते हैं।

प्रोक्षण अपूर्व प्रयुक्त है। इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्षसूत्र—

संस्कारे युज्यमानानां तादर्थ्यात् तत्प्रयुक्तं स्यात् ।२।

(संस्कारे) अवहनन नामक संस्कार में (युज्यमानानाम्) प्रयुक्त होने वाले प्रोक्षण आदि धर्म (तादर्थ्यात्) अवहनन के लिये होने से (तत्प्रयुक्तम् स्यात्) उससे प्रयुक्त है।

भावार्थ—'प्रोक्षिताभ्यामुलूखलमुसलाभ्यामवहन्ति' दर्शपूर्णमास प्रकरण में इस वाक्य का श्रवण है। इसका भाव यह है कि अवहनन रूप संस्कार व्रीहि आदि में करना होता है। उससे पहले उलूखल तथा मूसल को प्रोक्षित करने के लिये कहा है। यह प्रोक्षण अवहनन रूप संस्कार के लिये होने से तत्प्रयुक्त है। प्रोक्षण उलूखल मूसल द्वारा अवघात के लिये ही प्रतीत होता है। इससे वह अन्य के लिये नहीं परन्तु अवहनन के लिये ही है।

सिद्धान्त सूत्र—

तेन त्वर्थेन यज्ञस्य संयोगाद्धर्मसम्बन्धस्तस्माद् यज्ञप्रयुक्तं स्यात् संस्कारस्य तदर्थत्वात् ।३।

पदार्थ—(तु) यह शब्द सिद्धान्त पक्ष को सूचित करता है। (तेन अर्थेन) अवहनन रूप कार्य से (यज्ञस्य संयोगात्) अपूर्व का सम्बन्ध है। (तस्मात्) इससे (यज्ञप्रयुक्तम् स्यात्) यज्ञ प्रयुक्त है। इस स्थान पर यज्ञ अर्थात् अपूर्व समझना। (संस्कारस्य) प्रोक्षण रूप संस्कार भी (तदर्थत्वात्) अपूर्व के लिये ही हैं।

भावार्थ—प्रोक्षण अवहनन के लिए है और अवहनन यज्ञ प्रयोग में अपूर्व के लिए ही होता है। जब अवहनन अपूर्व के लिए है तो उसके लिए उलूखल आदि में होने वाला प्रोक्षण भी अपूर्व के लिए है यह तो स्वतः ही सिद्ध हो जाता है। अतः प्रोक्षण अपूर्व के लिए ही है और उससे वह अपूर्व प्रयुक्त है।

फलदेवता सम्बद्ध धर्म भी अपूर्व प्रयुक्त हैं इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष—

फलदेवतयोश्च ।४।

पदार्थ—(च) और (फलदेवतयोः) फल और देवता मंत्र के उच्चारण के लिए हैं।

भावार्थ—अगन्म सुवः सुवरगन्म। अग्नेरहमुज्जितिमनूज्जेषम् यह दो मंत्र हैं। इनमें स्वर्ग रूप फल तथा अग्नि रूप देवता की प्रतीति होती है। ये दोनों मन्त्रोच्चारण के प्रयोजक हैं। इससे सौर्य याग में स्वर्गरूप फल तथा अग्नि रूप देवता न होने से प्रयोजन की निवृत्ति हो जाने से मत्रोच्चारण की निवृत्ति हो जाती है। अतः वहां अह की प्रसक्ति नहीं होती।

सिद्धान्त सूत्र—

न चोदनातो हि ताद्गुण्यम् ।५।

पदार्थ—(न) फल देवता के स्वरूप को प्रकाशित करने में मन्त्रोच्चारण प्रयोजन नहीं (हि) कारण कि (चोदनात्) फल तथा देवता के प्रकाश के द्वारा (ताद्गुण्यम्) अपूर्व प्रयुक्त बनता है।

भावार्थ—मंत्रों का उच्चारण फल और देवता के प्रकाश के लिए ही नहीं होता। स्वरूप से मात्र जो उसका प्रकाशन ही करना हो तो उसका कोई अर्थ नहीं, अतः फल देवता प्रकाश द्वारा अपूर्व को साधना होता है। इससे मंत्रोच्चारण भी अपूर्व प्रयुक्त है। अतः सौर्य याग रूप विकृति में भी प्रयोजक अपूर्व के लिए होने से मंत्र का अतिदेश सिद्ध होता है। इससे **'अगन्म ब्रह्मव चंसम्'** इत्यादि अह की भी सिद्धि है।

'धर्मों का देवता प्रयुक्तत्व नहीं' इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष का सूत्र—

देवता वा प्रयोजयेदतिथिवद् भोजनस्य तदर्थत्वात् ।६।

पदार्थ—(वा) पूर्वपक्ष को सूचित करता है। (देवता) इन्द्र आदि देवता (प्रयोजयेत्) सभी सांग के प्रधान रूप कर्मों को प्रयुक्त करता है। (भोजनस्य) देवता भोजन रूप याग (तदर्थत्वात्) देवता के लिए ही होने से (अतिथिवत्) जिस प्रकार अतिथि को दिया जाने वाला अन्न अतिथि के लिए ही होता है, उस प्रकार।

भावार्थ—जितने सांग प्रधान कर्म हैं उन सभी का प्रयोजक इन्द्र, अग्नि आदि देवता हैं कारण कि याग तो देवता का ही भोजन माना जाता है और

इसके लिए ही उद्दिष्ट कर हविष् अग्नि में डालने में आता है। जिस प्रकार अतिथि को देने के लिए अन्न अतिथि के लिए ही होता है और उस अन्न का प्रयोजक भी अतिथि ही होता है उसी प्रकार सभी यज्ञयागादि कर्मों के प्रयोजक अग्न्यादि देवता ही हैं। यज्ञ देवता के आराधन के लिए ही होता है और इसका फल भी यही देता है। 'तस्मात् न गुणभूता देवता, देवतां प्रति गुणभूते द्रव्यकर्मणी' अतः यागादि में देवता गौण नहीं, परन्तु देवता प्रति द्रव्य और कर्म गुणभूत है, ऐसा पूर्वपक्ष वादी का मानना है। पूर्वपक्षवादी के मत में इन्द्रादि देवता विग्रहवती अतः शरीर वाली है और वे खाती भी हैं। अद्धीन्द्र पिव च प्रस्थितस्य............अन्नरस भोजिनी देवता मधुकरीवत् अवगम्यते कथम् ? देवतायैः हविः प्रत्तं नीरसं भवति तस्मात् अन्नरसं भुंक्ते देवता इति गम्यते। इस प्रमाण से शावर भाष्य में उल्लेख है। इसका भाव यह है कि हे इन्द्र तू तुझे प्रदत्त हविष् खा तथा जल पी आदि। देवता अन्न के मात्र रस का ही भोजन करते हैं अतः उन्हें दिया हुआ अन्न कम नहीं होता परन्तु वह नीरस हो जाता है। यह सब पूर्वपक्ष का मानना है।

अर्थापत्या च ।७।

पदार्थ—(च) और (अर्थापत्या) अर्थ की स्वामिता होने से।

भावार्थ—यजमान जिस अर्थ की याचना करता है उसके प्रदाता देवता हैं। प्रसन्न होने वाली देवता यजमान की इच्छा पूरी करती है। **इन्द्रो-दिव इन्द्र ईशे पृथिव्याः** इत्यादि स्वर्ग का स्वामी इन्द्र है ऐसा उक्त मंत्र में सूचित भी किया है। देवता की कृपा के बिना स्वर्ग की प्राप्ति नहीं होती अतः कर्म में प्रधान रूप देवता है।

ततश्च तेन सम्बन्धः ।८।

पदार्थ—(च) और (ततः) उससे (तेन) स्वर्गादि के साथ (सम्बन्धः) सम्बन्ध होता है।

भावार्थ—सब फलों की स्वामिनी देवता ही है। अतः उससे ही कर्त्ता को स्वर्गादि का लाभ होता है। जिस-जिस फल की स्वामिनी जो देवता है उसका आराधन करने से तत् तत् फल की प्राप्ति होती है। **येन कर्मणा अग्नि-रराधितः तस्य फलस्य ईष्टे तत् कर्म न तत्सूर्यः प्रदातु मर्हति वचनादेतत् अवगम्यते कः किं प्रयच्छति यथा अग्नौ वचनं न तत्सूर्ये** इस प्रकार शावर भाष्य में लिखा है। इसका भाव यह है कि जिस कर्म से अग्नि का आराधन करने में आवे उस कर्म का फल अग्नि ही देता है सूर्य नहीं। यह सब वैदिक वचन से समझा जा सकता है। जो वचन अग्नि के लिए होता है वह सूर्य के लिए नहीं माना जा सकता।

सिद्धान्त सूत्र--

अपि वा शब्दपूर्वत्वाद् यज्ञकर्मप्रधानं स्याद्गुणत्वे देवताश्रुतिः ।९।

पदार्थ—(अपि वा) सिद्धान्त की सूचना देता है। (शब्दपूर्वत्वात्) शब्द से ही जाना जा सकने के कारण (यज्ञकर्म) याग का कार्य जो अपूर्व है (प्रधानं स्यात्) वही प्रधान है अतः (गुणत्वे) अपूर्व प्रत्ये गुण भूत होने से (देवताश्रुतिः) देवता का जो श्रवण होता है वह याग की अंगभूत है।

भावार्थ—'यागेन स्वर्गं भावयेत' ऐसा बोध होने से यागजन्य जो अपूर्व है वही प्रधान है और वह फल को देने वाला है। देवता तो अपूर्व प्रत्ये गुणभूत है।

अतिथौ तत्प्रधानत्वमभावः कर्मणि स्यात् तस्य प्रीतिप्रधानत्वात् ।१०।

पदार्थ—(अतिथौ) अतिथि भोजनादि के दान में (तत्प्रधानत्वम्) अतिथि प्रधानत्व हो (कर्मणि अभावः स्यात्) यज्ञादि कर्म में देवता प्रीति का अभाव होता है। (तस्य प्रीतिप्रधानत्वात्) आतिथ्य कर्म में अतिथि की प्रीति ही मुख्य होती है।

भावार्थ—अतिथि के सम्बन्ध में यह कहा गया है कि अतिथि को भोजन देना अतिथि की प्रीति का प्रयोजक होता है। जिससे अतिथि प्रसन्न हो वही अतिथि को देना चाहिए। यज्ञादि कर्म में देवता से प्रीति हो, ऐसा देना, यह कहीं भी वेदों में नहीं बताया गया। अतिथि के लिए तो शब्द प्रमाण है, जैसे कि—**अतिथिर्येन सन्तुष्टः तथा कुर्यात्प्रयत्नतः** जिससे अतिथि संतुष्ट हो वह अन्न प्रयत्नपूर्वक प्रदान करना। याग कर्म के सम्बन्ध में, अग्न्यादि देवता के सम्बन्ध में ऐसा कहीं भी विधान नहीं है। पुनः इन्द्र, अग्नि आदि देवता शरीर वाले हैं इसमें कोई प्रमाण नहीं है। शरीर परत्व जिन-जिन मंत्रों से जाना जाता है, वह सभी अर्थवाद हैं। **आम्नायस्य क्रियार्थत्वादानर्थक्यमतदर्थानाम्** १—२—१ यह मीमांसा का प्रमुख सूत्र है। **तस्मात् वाक्यात् इन्द्रस्य हस्त सत्ता न प्रतीयते।.........तस्मात् न किंचित् अन्यार्थदर्शनं पुरुषविधानां देवतायाम् इदं ख्यापयति। न च इदंभो जनं न हि देवता भुंक्ते। तस्मात् भोजनस्य तदर्थत्वात् इति तत् असद् वचनम्।** इत्यादि ९।१।९ के शाबर भाष्य को जिज्ञासुओं को देखना चाहिए तथा उस पर मनन करना चाहिए। परमात्मा से अतिरिक्त अन्य कोई उपास्य देवता नहीं है।

यज्ञादि कर्म में अपूर्व मुख्य है और अग्न्यादि जड़ देवता अपूर्व की तुलना में गौण हैं, यही मीमांसा का सिद्धान्त है। देवता रस का ही भोजन करते हैं अतः वह अन्न नीरस हो जाता है। कहना नहीं होगा कि यह असत्य है। कारण कि भाष्यकार स्वयं ही लिखते हैं कि—**नैष दोषः वातोपहतं नीरसं भवति शीतीभूतं च।** वायु के असर से अन्न नीरस हो जाता है और ठंडा हुआ अन्न भी नीरस हो जाता है। इसमें विग्रहवती चेतन देवता को मानने की कुछ आवश्यकता नहीं।

प्रोक्षणादि अपूर्व प्रयुक्त हैं इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष सूत्र—

द्रव्यसंख्या हेतुसमुदायं वा श्रुति-संयोगात् ।११।

पदार्थ—(वा) पूर्वपक्ष का सूचक है। (द्रव्यसंख्या हेतुसमुदायम्) व्रीहि आदि द्रव्य, परिधिगत त्रित्व आदि संख्या होम में शूर्प गत अन्न हेतुत्व चतुर्होत्राभिमर्शन में पौर्णमासी याग गत समुदायत्व यह चार प्रोक्षणादि के प्रयोजक हैं। (श्रुतिसंयोगात्) द्वितीया आदि श्रुति का सम्बन्ध होने से।

भावार्थ—दर्शपूर्णमास में सुनते हैं कि **'व्रीहीन् प्रोक्षति'** व्रीहि धान्य का प्रोक्षण करना। **'त्रीन् परिधींस्तिस्रः समिधः'** इस मंत्र में तीन समिधाओं का विधान है। **'शूर्पेण जुहोति तेन अन्नं क्रियते'** शूर्प से होम करना, कारण कि उससे अन्न शुद्ध किया जाता है। इस स्थान पर अन्न करण के हेतु रूप में बताया गया है। चतुर्होत्रा **'पौर्णमासीमभिमृशेत् पञ्चहोत्रा अमावस्याम्'** इस स्थान पर जो समुदाय बताने में आया है वह अभिमर्शन का प्रयोजक है, परिधिगत त्रित्व आदि संख्या, मंत्र बोलने में प्रयोजक है। होम करना है। इसलिए शूर्प को संस्कृत करना। यहाँ जो हेतु बताया गया है वह होम में प्रयोजक है। इस प्रकार प्रोक्षण, मंत्रोच्चारण, होम तथा अभिमर्शन रूप धर्मों का प्रयोजक व्रीहि स्वरूप आदि है। ऐसा पूर्वपक्ष का मन्तव्य है।

अर्थकारिते च द्रव्येण न व्यवस्था स्यात् ।१२।

पदार्थ—(च) और (अर्थकारिते) अपूर्व के लिए उक्त धर्म करने में आवें तो (द्रव्येण) मैत्रावरुण ग्रहण संयुक्त सोमरसादि द्रव्य के साथ (व्यवस्था न स्यात्) व्यवस्था नहीं हो सकती।

भावार्थ—जो अपूर्व को उक्त अर्थ में प्रयोजक मानने में आवे तो दश ग्रहों में और चमसों में अपूर्व साधनत्व समान है तो सर्वत्र पयः संयोग की प्राप्ति होनी चाहिए। परन्तु ऐसा नहीं, केवल **'मैत्रावरुणं पयसा श्रीणाति'**

मैत्रावरुण जो ग्रह और चमस हैं उन्हें पयस् से श्रवण करना होता है। अतः द्रव्य का स्वरूप ही प्रयोजक है, अपूर्व नहीं।

सिद्धान्त सूत्र—

अर्थो वा स्यात् प्रयोजनमितरेषामचोदनात् तस्य गुणभूतत्वात् ।१३।

पदार्थ—(वा) सिद्धान्त पक्ष को सूचित करता है। (अर्थः प्रयोजनम् स्यात्) अपूर्व रूप अर्थ ही प्रयोजक है। (इतरेषाम्) अन्य द्रव्य आदि (अचोदनात्) कर्त्तव्य रूप में विहित न होने से (तस्य) द्रव्यादि का अपूर्व प्रत्ये (गुणभूतत्वात्) गुणभूत तत्व है।

भावार्थ—द्रव्यादि में कर्त्तव्यता बताने में नहीं आई जिनमें कर्त्तव्यता बताने में आई हो उन्हीं को धर्म की आकांक्षा होती है। अतः द्रव्यादि कर्त्तव्यभूत अपूर्व प्रत्ये गुणभूत है। इसलिए कि व्रीहि अपने कर्त्तव्य न होने से वह प्रोक्षणजन्य अपूर्व प्रत्ये गुणभूत है, इसी प्रकार अन्य में भी समझना।

अपूर्वत्वाद् व्यवस्था स्याद् ।१४।

पदार्थ—(अपूर्वत्वात्) अपूर्व के कारण (व्यवस्था) व्यवस्था (स्यात्) होती है।

भावार्थ—ऊपर यह कहा गया है कि यदि अपूर्व को प्रयोजक मानें तो **पयसा श्रीणाति** इत्यादि में व्यवस्था नहीं हो सकती। इसका उत्तर यह है कि अपूर्व मानने से व्यवस्था हो सकती है मैत्रावरुण को उद्दिष्टकर जो श्रवण होता है उसका उद्देश्यतावच्छेदक अन्य में नहीं होता। इसलिए कि मैत्रावरुणपूर्वत्व अन्य ग्रहों में नहीं होता। इस कारण से अपूर्व मानने में ही व्यवस्था हो सकती है अतः प्रोक्षण आदि धर्म अपूर्व प्रयुक्त हैं।

तत्प्रयुक्तात्वे च धर्मस्य सर्वविषयत्वम् ।१५।

पदार्थ—(च) और (तत्प्रयुक्तत्वे) द्रव्य प्रयुक्त जो प्रोक्षण आदि धर्म मानने में आवे तो (धर्मस्य) प्रोक्षणादि धर्मों का (सर्वविषयत्वम्) सब विषय हो जाय।

भावार्थ—जो द्रव्य का स्वरूप प्रोक्षणादि धर्मों में प्रयोजक मानने में आवे तो बाजार में विद्यमान व्रीहि द्रव्यों में भी प्रोक्षण की प्राप्ति हो, कारण कि याग के सम्बन्ध में आये व्रीहि तथा बाजार की दुकानों में विद्यमान व्रीहि का स्वरूप तो एक ही है। अतः द्रव्य रूप को प्रयोजक न मानते हुए अपूर्व को ही प्रयोजक मानना चाहिए।

तद्युक्तस्येति चेत् ।१६।

पदार्थ—(तद्युक्तस्य) याग युक्त जो द्रव्य है वही प्रयोजक है (इति चेत्) जो ऐसा मानने में आवे तो इसका उत्तर अगले सूत्र में—

भावार्थ—याग युक्त जो व्रीहि है उनमें ही प्रोक्षणादि धर्म की उद्देश्यता है। बाजार की दुकान में जो व्रीहि है उनमें उद्देश्यता नहीं। जो ऐसी शंका करनें में आवे तो ? इसका समाधान अगले सूत्र में है।।

नाश्रुतित्वात् ।१७।

पदार्थ—(न) नहीं (अश्रुतित्वात्) प्रकृत व्रीहि ही उद्देश्य है, इसमें कोई शब्द प्रमाण नहीं।

भावार्थ—उद्देश्यतावच्छेदक धर्म निखिल व्रीहि के हैं, इसमें संकोच करने में प्रमाण का अभाव है।

अधिकारादिति चेत् ।१८।

पदार्थ—(अधिकारात्) अधिकार होने से (इति चेत्) जो ऐसी शंका हो तो —

भावार्थ—पुनः ऐसी शंका होती है कि भले ही श्रवण अविशेष रहा परन्तु याग का अधिकार है। इसलिए यागीय व्रीहि में ही प्रोक्षण होना उचित है। याग बाहर के समस्त व्रीहि में नहीं। इस शंका का उत्तर अगले सूत्र में है—

तुल्येषु नाधिकारः स्यात् अचोदितश्च सम्बन्धः पृथक् सत्तां यज्ञार्थेनाभिसम्बन्धस्तस्मात् यज्ञप्रयोजनम् ।१९।

पदार्थ—(तुल्येषु) समान में (अधिकारः न स्यात्) अधिकार संभव नहीं है इसलिए (सम्बन्धः) यज्ञार्थत्व का सम्बन्ध (अचोदितः) शास्त्र से निर्दिष्ट नहीं। (पृथक् सत्ताम्) भिन्न सत्ता को नहीं जान सकते अतः (यज्ञार्थेन अभिसम्बन्धः) सभी व्रीहि का यज्ञ के साथ सम्बन्ध है। (तस्मात्) इसलिए (यज्ञप्रयोजनम्) प्रोक्षण का प्रयोजन सर्व व्रीहि है।

भावार्थ—जहां सब समान होते हैं वहां अधिकार सम्भव नहीं होता। याग के सम्बन्ध में आये व्रीहि और बाहर के व्रीहि में क्या अन्तर है। यह समझ में नहीं आता, यागीय व्रीहि की तुलना में बाहर के व्रीहि की सत्ता पृथक् है ऐसा लोक व्यवहार से भी समझ नहीं सकते। जिस प्रकार यह अश्व है, यह

बैल है ऐसा स्पष्ट भेद समझ में आता है उसी प्रकार यागीय व्रीहि में और बाहर के व्रीहि में भेद स्पष्ट समझ में नहीं आता। इस कारण से जब तक शास्त्रीय अतिदेश करने में न आवे तब तक सब व्रीहि का यथार्थ के साथ सम्बन्ध है तथा इस सम्बन्ध के कारण निखिल व्रीहि प्रोक्षण का उद्देश्य है, ऐसा समझना चाहिए। इस कारण से व्रीहि के स्वरूप को प्रयोजक न मानते अपूर्व को ही प्रोक्षणादि का प्रयोजक मानना चाहिए। यह सिद्धान्तवादी का मत है। अग्नीषोमीय के पूर्वभाग रूप देश में अनुष्ठीयमान पदार्थों का जो उपांशुत्व है वह तत् तत् पदार्थों से उत्पन्न अपूर्व से प्रयुक्त है, इस अधिकरण के सूत्र—

सिद्धान्त सूत्र—

देशबद्धमुपांशुत्वं तेषां स्याच्छ्रुतिनिर्देशात् तस्य च तत्र भावात् ।२०।

पदार्थ—(देशवद्धम्) अग्नीषोमीय के पूर्व तरफ जो देश है, उस पर किए जाने वाला (उपांशुत्वम्) मौन अनुष्ठान (तेषां स्यात्) दीक्षणीय आदि है। (श्रुतिनिर्देशात्) वैदिक वाक्य का निर्देश होने से (तस्य तत्र भावात्) उस कर्म का उस देश में सम्बन्ध होने से।

भावार्थ—अग्निषोमीय के पूर्व भाग में जो-जो कर्म करने में आते हैं वे उपांशुत्व से किए जाते हैं। इससे यह उपांशुत्व यज्ञ के अवान्तर अपूर्व के उपकार कर्मों के लिए वैदिक वाक्य भी है—**त्सरा वा एष यज्ञस्य तस्मात् यत्किंचित् प्राचीनमग्नीषोमीयात् तेनोपांशु प्रचरन्ति।'** त्सरा का अर्थ छद्म गति होता है। इसलिए जो उपांशु कर्म करने में आता है वह यज्ञ की छद्मगति है। इस छद्मगति से प्रधान अपूर्व को सिद्ध किया जाता है। पूर्व देश में अनुष्ठीयमान होने वाले कर्म समझे जाने चाहिएं। और लक्षणा से इनका बोध होता है। कर्म और देश का आधाराधेयभाव सम्बन्ध है।

पूर्वपक्षसूत्र—

यज्ञस्य तत्संयोगात् ।२१।

पदार्थ—(वा) अथवा (यज्ञस्य) प्रधान अपूर्व में प्रयोजकत्व है (तत्संयोगात्) उस यज्ञ शब्द का वाक्य में सम्बन्ध होने से।

भावार्थ—यज्ञ शब्द का सम्बन्ध त्सरा के साथ नहीं परन्तु **'यज्ञस्य यत्प्राचीनम्'** ऐसा सम्बन्ध है। इसलिए इसका अर्थ निकलता है कि यज्ञ सम्बन्धी जो पूर्व भाग में किया जाता है वह उपांशु करना चाहिए। अतः उपांशुत्व का प्रयोजक परमापूर्व ही है, दीक्षणयादि नहीं। इस स्थान पर तंत्र

वर्तिककार लिखते हैं कि—यज्ञशब्दः त्सराशब्देन सम्बध्यते। अप्रवृत्तिविशेष-करत्वात् । यस्मात् प्राचीनशब्देन सम्बध्यमानः प्रवृत्तिविशेषकरो भवति । तेन यज्ञस्य यः प्राग्भागस्तस्यायं धर्म उपांशुत्वं विधीयते। इस संदर्भ से स्पष्ट होता है कि यज्ञ का सम्बन्ध पूर्वभाव में अनुष्ठीयमान धर्मों के साथ है अतः परमापूर्व प्रयुक्त उपांशुत्व है।

अनुवादश्च तदर्थवत् ।२२।

पदार्थ—(च) और (अनुवादः) अर्थवाद भी (तदर्थवत्) परमापूर्व प्रयुक्तत्व बताता है।

भावार्थ—यज्ञस्य त्सरा इस रीति से त्सरा का सम्बन्ध यज्ञ के साथ किया जावे तभी परमापूर्व प्रयुक्त उपांशुत्व हो सकता है। त्सरा नाम छद्मगतिः। यथा शकुनिग्राहकस्य शकुनिं जिघृक्षतश्छद्मना गतिर्भवति। शनैः पदन्यासो दृष्टि प्राणिधानम् अशब्दकरणं च। कथमनवबुद्धः शकुनिर्गृह्येतेति। एवमिहाप्यनवबुद्धमिव ग्रहीतुं यज्ञं प्रच्छन्नगतिरुपांशुत्वं नाम। इस प्रकार शाबर भाष्य में उल्लेख है। जिस प्रकार पक्षी को पकड़ने के लिए शिकारी प्रछन्न गति करता है दृष्टि को स्थिर करता है और शब्द भी नहीं होने देता, जिससे कि अनजान पक्षी सहज में पकड़ा जा सके। उसी प्रकार उपांशुत्वरूप धर्म से यज्ञ को प्राप्त कर सकता है। ऐसा आशीर्वाद है। शिकारी को चुपके से पांव रखना आदि उस देश के लिए नहीं है परन्तु पक्षी को पकड़ने के लिए ही होते हैं। उसी प्रकार यहां भी उपांशुत्व रूप धर्म देश के पदार्थों के लिए नहीं किया जाता, परन्तु अपूर्व रूप यज्ञ को प्राप्त करने के लिए किया जाता है। इससे सिद्ध होता है कि उपांशुत्व यह परमापूर्व प्रयुक्त है।

वाङ्ग नियम अवान्तर अपूर्व प्रयुक्त है। इस अधिकरण के सूत्र—

प्रणितादि तथेति चेत् ।२३।

पदार्थ—(प्रणीतादि) प्रणीता प्रणयन आदि सम्बन्धी वाङ्ग नियम भी (तथा इति चेत्) परमापूर्व प्रयुक्त है, जो ऐसा कहना है तो—

भावार्थ—यज्ञं तनिष्यन्तौ अध्वर्युयजमानौ वाचं यच्छतः तां वाचं हविष्कृता विसृजेयाताम्' इस वाक्य में प्रतिपादित जो वाणी का संयम है, वह परमापूर्व प्रयुक्त है। इसलिये मौन धारण कर अध्वर्यु और यजमान को यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिए; जिससे कि चित्त वृत्ति में विक्षेप न आ सके। जोर से बोलना या अप्रासंगिक बात करने से चित्त चंचल होता है, चित की चंचलता से यज्ञ में वैकल्य उत्पन्न होना सम्भव है। अतः मौन धारण करने का उक्त

वाक्य में विधान है। और यह परमापूर्व के लिए ही है। ऐसा पूर्वपक्षवादी का मन्तव्य है। यह मौन प्रणीताप्रणयन सम्बन्धी है।

सिद्धान्त सूत्र—

न यज्ञस्याश्रुतित्वात् ।२४।

पदार्थ—(न) नहीं (यज्ञस्य) यज्ञ की (अश्रुतित्वात्) विवक्षा न होने से।

भावार्थ—उक्त मौन अर्थात् उपांशुत्व परमापूर्व प्रयुक्त नहीं परन्तु अवान्तर अपूर्व से प्रयुक्त है। वाणी के नियम का उद्देश्य अध्वर्यु और यजमान है और यज्ञ तो इनका विशेषण है। अतः उद्देश्य का विशेषण अविवक्षित है।

तद्देशानां वा संघातस्याचोदितत्वात् ।२५।

पदार्थ—(वा) अथवा (तद्देशानाम्) पूर्वदेश सम्बन्धी पदार्थों से उपांशुत्व प्रयुक्त होता है। (संघातस्य अचोदित्वात्) ग्रह, यजि तथा अभ्यास आदि संघात का उपांशु भाग नहीं, ऐसा विधान न होने से।

भावार्थ—परमापूर्व में प्रयुक्त उपांशुत्व नहीं, पर अग्नीषोमीय का जो पूर्व देश है उनमें अनुष्ठीयमान होने वाले पदार्थों का सम्बन्ध रखने वाले उपांशुत्व हैं, इसलिए वह अवान्तरापूर्व प्रयुक्त ही हैं।

इष्टिकर्मों में एक समय विकर्षणादि का अनुष्ठान करना, इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष—

अग्निधर्मः प्रतीष्टकं संघातात् पौर्णमासीवत् ।२६।

पदार्थ—(अग्निधर्मः) कर्षण, प्रोक्षण आदि अग्नि के धर्म हैं। (प्रतीष्टकम्) अतः प्रति इष्टिकाओं में कर्षण करना चाहिए। (संघातात्) अग्निपद वाच्य इष्टिका समुदाय होने से। (पौर्णमासीवत्) जिस प्रकार आग्नेय, उपांशु और अग्नीषोमीय के संघात में पौर्णमासी शब्द व्यवहार में आता है।

भावार्थ—'इष्टकाभिरग्निं चिनुते' ऐसा सुनते हैं। इसमें इस प्रकार आम्नान है 'मण्डूकेनाग्निं विकर्षति' इस स्थान पर जो विकर्षण बताया है वह प्रत्येक इष्टका पर लागू होता है। कारण इष्टका के समुदाय को ही इस स्थान पर अग्नि कहा गया है। ऐसा पूर्वपक्षवादी का मत है।

सिद्धान्त सूत्र—

अग्नेर्वा स्यात् द्रव्यैकत्वादितरासां तदर्थत्वात् ।२७।

पदार्थ—(वा) अथवा (अग्नि:) इष्टिका से पृथक् अग्नि का विकर्षण है। (द्रव्यैकत्वात्) अग्नि रूप द्रव्य एक ही होने से। (इतरासाम्) इष्टका अर्थात् ईंटें (तदर्थत्वात्) अग्नि के लिए होने से।

भावार्थ—इष्टकाभिरग्निं चिनुते' इस स्थान पर इष्टका में तृतीया विभक्ति है और अग्नि शब्द में द्वितीया विभक्ति है। इसलिए इष्टका साधन है और अग्नि साध्य है। साध्य और साधन पृथक् ही होते हैं। अतः इष्टका और अग्नि का भेद मानना चाहिये।

चोदनासमुदायात्तु पौर्णमास्यां तथात्वं स्यात् ।२८।

पदार्थ—(तु) शब्द पूर्वपक्ष की व्यावृति का सूचक है। (चोदना-समुदायात्) विधान समुदाय परक होने से (पौर्णमास्यां) में (तथात्वम् स्यात्) वैसे मानने योग्य है।

भावार्थ—पौर्णमासी शब्द तो संघातपरक है। वैदिक विधान है। अतः पौर्णमासी शब्द को संघात परक मानना ठीक है, पर प्रकृत स्थल में अग्नि शब्द को इष्टका परक मानने में किसी भी प्रकार का प्रमाण नहीं। इससे सिद्ध होता है कि उक्त स्थल में एक ही समय विकर्षण है और यह अग्नि सम्वन्ध में ही है इष्टका सम्बन्ध में नहीं।

द्वादशाह यज्ञ में उत्तमाह सिवास अन्य अहन् में पत्नीसंयजान्तत्व है, इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष सूत्र—

पत्नीसंयाजान्तत्वं सर्वेषामविशेषात् ।२९।

पदार्थ—(पत्नीसंयाजान्तत्वम्) पत्नी से याजान्तत्व (सर्वेषां) सर्व अहन्नामक यागों में होता है (अविशेषात्) सबके लिये समान रूप से कहने में आया होने के कारण।

भावार्थ—अहर्गण याग विशेष है। 'द्वादशाहेन प्रजाकामं याजयेत्' प्रजा की इच्छा करने वाले को, द्वादशाह नामक अहर्याग करना चाहिये। इस स्थान

पर 'पत्नीसंयाजान्तानि अहानि संतिष्ठन्ते' अहन् नामक याग पत्नी संयाजक कर्म के पश्चात् समाप्त होता है। यह पत्नीसंयाजान्तत्व धर्म सब यागों में करना होता है या उत्तम अर्थात् अन्तिम से पहले के सभी यागों में ? इस संदेह में पूर्वपक्षी की ओर से यह कहा जाता है कि कोई किसी विशेष का श्रवण न होने से सभी अहन् यागों में पत्नीसंयाजान्तत्व धर्म अनुष्ठेय है। और इसे प्रत्येक यज्ञ के अन्त में करना होता है।

सिद्धान्त सूत्र—

लिंगाद्वा प्रागुत्तमात् ।३०।

पदार्थ—(उत्तमात् प्राक्) अन्तिम याग के पहले सर्व यागों में पत्नी संयाजान्तत्व होता है। (लिंगात्) लिंग वाक्य का समर्थन होने से। (वा) यह शब्द सिद्धान्त पक्ष को सूचित करता है।

भावार्थ—अर्थवाद रूप लिंग वाक्य में श्रवण होने से अन्तिम दिन के पहले के सभी अहनों में पत्नी संयाजान्तत्व है। **पत्नीसंयाजान्तानि अहानि संतिष्ठन्ते। न बर्हिरनुप्रहरति असंस्थितो हि यज्ञः।** उस लिंग वाक्य में असंस्थित शब्द का अर्थ असमाप्त होता है। इसलिये जो अहन् में यज्ञ असंस्थित रहे तो उनमें पत्नीसंयाजान्तत्व धर्म अनुष्ठेय है। इस प्रकार अहन् में यज्ञ संस्थित होने से उसमें पत्नीसंयाजान्तत्व नहीं।

अनुवादो वा दीक्षा यथा नक्तं संस्थापनस्य ।३१।

पदार्थ—(वा) अथवा (अनुवादः) अर्थवाद है (यथा) जैसे (दीक्षा) दीक्षा का उन्मोचन वचन (नक्तं च संथापनस्य) नक्त संस्थापन का विध्यर्थवाद है, इस प्रकार।

भावार्थ—इस सूत्र में पूर्वपक्षवादी की ओर से आक्षेप है। पत्नी-संयाजान्तत्व यह तो अर्थवाद है, इसलिये स्तुति के लिये है। असंस्थितो यज्ञ-श्चिरेण संस्थास्यते असंस्थित असमाप्त यज्ञ लम्बे समय में समाप्त होता है। असंस्था वचन पत्नी संयाजान्तता की प्रशंसा के लिये है। उक्त सभी यज्ञ संस्था वाले होते हैं। जिस प्रकार दीक्षा का उन्मोचन वचन नक्त संस्थापन के अर्थवाद के लिये है उसी प्रकार उक्त स्थल में असंस्था वचन अर्थवाद के लिये है। इसलिये पत्नीसंयाजान्तत्व सर्व अहन् योग में होता है।

सिद्धान्त सूत्र —

स्याद्वाऽनारभ्य विधानादन्ते लिग-विरोधात् ।३२।

पदार्थ—(वा) अथवा (स्यात्) अन्त्य अहन् याग पहले यागों में पत्नी-संयाजान्तत्व है। (अनारभ्यविधानात्) अन्तिम याग को उद्दिष्टकर विधान होने से (लिंगविरोधात्) लिंग वाक्य के साथ विरोध होने से।

भावार्थ—इस सूत्र का भाव यह है कि पत्नीसंयाजान्तत्व अन्तिम अहन् पहले के जितने याग हों, उन सभी में कर्त्तव्य है। पत्नी संयाज़ करने से किसो यज्ञ की समाप्ति नहीं होती परन्तु यज्ञ तो आगे चालू ही रहता है। अतः पत्नी संयाजान्तत्व अहन् याग समान रूप से श्रुत होने के कारण अन्तिम यज्ञ को छोड़कर उन्हें करना ऐसा संकोच करना न्याय्य है।

सामिधेनी का अभ्यास स्थान धर्मता के कारण है, इस अधिकरण के सूत्र

अभ्यासः सामिधेनीनां प्राथम्यात् स्थानधर्मः स्यात् ।३३।

पदार्थ—(सामिधेनीनाम्) सामिधेनी ऋचाओं का (अभ्यासः) बारंबार उच्चारण करने से (स्थान धर्मःस्यात्) स्थानधर्म है। (प्राथम्यात्) स्थान की प्रथम उपस्थिति होने से।

भावार्थ—दर्शपूर्णमास प्रकरण में इसका श्रवण होता है तथा वह सामिधेनी को उद्दिष्ट है। 'त्रिः प्रथमामन्वाह' इस स्थान पर तीन बार बोलना रूप अभ्यास सूचित होता है। इससे विकृति याग में 'प्र वो वाजा' ऋचा से भिन्न ऋचा का भी तीन बार अभ्यास इष्ट है। स्थान का अभ्यास अशक्य होने से स्थान में पठित ऋचायें ही लक्षणवृत्ति से 'प्रथमाम्' पद से बोधित होती हैं। 'प्रथमाम्' इस पद में प्रथम की उपस्थिति पहले है और इससे स्थान ही सूचित होता है। पीछे की ऋचा का तो उक्त रीति से बोध होता है। अतः अभ्यास की स्थानधर्मता है, यह सिद्ध होता है।

आरम्भणीया इष्टि के अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष सूत्र—

इष्ट्यावृत्तौ प्रयाजवदावर्तेता-ऽरम्भणीया ।३४।

पदार्थ—(इष्ट्यावृत्तौ) दर्शपूर्णमास की आवृत्ति में (आरम्भणीया)

आरम्भणीया इष्टि की भी (आवर्तेत) आवृत्ति करनी चाहिए। (प्रयाजवत्) प्रयाज की भांति।

भावार्थ—'आग्नावैष्णवमेकादशकलं निर्वपेद् दर्शपूर्णमासा वारिप्समानः' इस वाक्य से विहित आरम्भणीया इष्टि जब-जब दर्शपूर्णमास इष्टि करने में आवे तब-तब करनी चाहिए। कारण कि वे प्रयाज की भांति अंग है। जब तक जीवन चले तब तक दर्शपूर्णमास की आवृत्ति करनी चाहिए। कारण कि वे प्रयाज की भांति अंग है। जब तक जीवन चले तब तक दर्शपूर्णमास की आवृत्ति करनी चाहिए।

सिद्धान्त सूत्र—

सकृद्वाऽऽरम्भसंयोगादेकः पुनरारम्भो यावज्जीवप्रयोगात् ।३५।

पदार्थ—(वा) पूर्वपक्षी की व्यावृत्ति सूचित करता है। (सकृत्) एक समय (आरम्भसंयोगात्) आरम्भ का श्रवण होने से (आरम्भः पुनः एकः) एक ही आरम्भ करना चाहिए (यावज्जीवप्रयोगात्) जब तक जीव चले तब तक का प्रयोग होने से।

भावार्थ—'मैं जब तक जीऊंगा तब तक यज्ञ करूंगा' ऐसा संकल्प होने से आरम्भ के साथ ही आरम्भणीया इष्टि का श्रवण है। प्रत्येक दर्श-पूर्णमास के याग में उसकी आवृत्ति नहीं करनी चाहिए। प्रयाजादि की भाँति यह साक्षात् अंग भी नहीं, परन्तु आरम्भ द्वारा यह अंग बनता है।

'निर्वाप मंत्र में असमवेतार्थक सवितृ आदि पदों का ऊह नहीं होता इस अधिकरण के सूत्र—

अर्थाभिधानसंयोगान्मन्त्रेषु शेषभावः स्यात्तत्राचोदितमप्राप्तं चोदिताभिधानात् ।३६।

पदार्थ—(मन्त्रेषु) मंत्रों में (शेषभावः) अंगत्व (स्यात्) प्राप्त है। (अर्थाभिधानात् संयोगात्) अर्थप्रकाशन सम्बन्ध होने से (तत्र) दर्शपूर्णमास में (अचोदितं) अविहित है। (अप्राप्तम्) अतः अप्राप्त है। (चोदिताभि-धानात्) मंत्र में विधि विहित अर्थ का प्रकाशन होने से।

भावार्थ--कर्म समवेत अर्थ का मंत्र स्मरण कराता है। और इस कारण से ही मंत्र अंग रूप याग में समाम्नात होता है। 'देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यांपूष्णो हस्ताभ्यामग्नये जुष्टं निर्वपामि' दर्शपूर्णमास में

यह निर्वाप मंत्र है। इस मंत्र में सवित्रादि जो देवता वाचक शब्द हैं वे कर्म-समवेत देवता रूप अर्थ के प्रकाशक हैं। इस मंत्र की सौर्य याग में जब प्राप्ति होती है तब सवितृ पद के स्थान में सूर्य आदि पद का प्रक्षेप रूप ऊह करना चाहिए। ऐसा पूर्वपक्षवादी का मन्तव्य है। सिद्धान्त यह है कि प्रकृति में मंत्र लिंग से कल्पित देवता के साथ अग्नि आदि का विकल्प है, ऐसा नहीं कहा जा सकता, कारण कि एकवाक्यता का भंग होता है। उत्पत्तिशिष्ट अग्न्यादि की प्रबलता भी है, इससे इसका बाध संभव नहीं अतः सौर्यादि विकृति याग में भी उन्हीं शब्दों से निर्वाप करना सम्भव है, इसलिए सवितृ पद के स्थान में सूर्यादि पदों का ऊह नहीं करना।

ततश्चावचनं तेषामितरार्थं प्रयुज्यते ।३७।

पदार्थ—(ततः) इस कारण से (तेषाम्) उनका (अवचनम्) अश्रुत का वचन करने में नहीं आता। (इतरार्थम् प्रयुज्यते) निर्वाप की स्तुति के लिए इसका प्रयोग करने में आता है।

भावार्थ—**'देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे'** इत्यादि मंत्र में सवितृ, अश्विन तथा पूषन् आदि निर्वाप की स्तुति के लिए है और निर्वाप 'आग्नये जुष्टं निर्वपामि' इस मंत्र गत वाक्य से करना चाहिये। अतः सवित्रादि शब्द के स्थान में सूर्यादि शब्द का ऊह नहीं करना चाहिए।

'अग्नये जुष्टं' इत्यादि वाक्य गत अग्निपद का ऊह विकृति में करना चाहिए—इस अधिकरण के सूत्र—
पूर्वपक्ष सूत्र—

गुणशब्दस्तथेति चेत् ।३८।

पदार्थ—(गुणशब्दः) गुणभूत अग्नि आदि अर्थ का वाचक शब्द भी (तथा) सवित्रादि पद की भाँति स्तावक है (इति चेत्) जो ऐसा मानने में आवे तो इसका उत्तर अगले सूत्र में है।

भावार्थ—**देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे'** इत्यादि मंत्र में जो गुणीभूत अग्नि-वाचक शब्द है वह भी सवितृ आदि शब्द की भाँति स्तावक ही है, अतः विकृति याग में उसका ऊह न करना, जो ऐसा कहा जाय तो उसका उत्तर अगले सूत्र में दिया गया है—
सिद्धान्त सूत्र—

न समावायात् ।३९।

पदार्थ—(न) स्तावक शब्द नहीं (समवायात्) अर्थ का बाध न होने से।

भावार्थ—'**अग्नये जुष्टं निर्वपामि**' उक्त मंत्र में जो यह वाक्य है उसका अर्थ यह है कि अग्नि के साथ जुष्ट जिस रीति से हो, उसी रीति से मैं निर्वाप करता हूं। अत: अर्थ का बाध न होने से अग्नि शब्द स्तावक नहीं इससे विकृति याग में अग्निपद का ऊह करना चाहिए।

इडोपह्वान मंत्रों में जो यज्ञपति शब्द पठित है उसका ऊह नहीं होता, इस अधिकरण के मंत्र—

चोदिते तु परार्थत्वाद्विधिवदविकार: स्यात् ।४०।

पदार्थ—(चोदिते तु) यज्ञपति शब्द का पाठ होने पर भी (परार्थत्वात्) इडा की स्तुति के लिए होने से (विधिवत्) अन्वारम्भरण की भांति (अविकार: स्यात्) ऊह नहीं होता।

भावार्थ—दर्शपूर्णमास प्रकरण में इस प्रकार मंत्र है—'**ये यज्ञपति वर्धान्**' इस स्थान पर '**वर्धान्**' का अर्थ '**वर्धयन्तु**' होता है। अब बहुयजमान वाले सत्र में यज्ञपति शब्द का अतिदेश होने से यज्ञपति शब्दोत्तर बहुवचन का प्रयोग करना या नहीं ? इस विषय में पूर्वपक्षवादी का मानना है कि बहुवचन का ऊह करना चाहिए और सिद्धान्तवादी का कथन है कि बहुवचन का ऊह न करना चाहिए। यज्ञपति शब्द तो केवल इडा स्तुति के लिए प्रयुक्त हुआ है और इससे वह असमवेत है। एक वचनान्त यज्ञपति शब्द से भी इडा स्तुति सम्भव हो सकती है। इस प्रकार सिद्धान्ती का सहेतुक मानना है।

सूक्तवाक में यजमान शब्द का ऊह है, इस अधिकरण का सूत्र—

विकारस्तत्प्रधाने स्यात् ।४१।

पदार्थ—(तत्प्रधाने) यजमान प्रधान मंत्र में (विकार: स्यात्) ऊह करना चाहिए।

भावार्थ—पूर्व सूत्र का यह अपवाद सूत्र है। दर्शपूर्णमास प्रकरण में जो सूक्तवाक् मंत्र उसमें '**यजमान आयुराशास्ते सुप्रजस्त्वमाशास्ते उत्तरां देवयज्यामाशास्ते भूयो हविष्करणमाशास्ते**' इत्यादि वाक्यों में जो यजमान शब्द है उसका सत्र में बहुवचन रूप में ऊह करना चाहिए। कारण कि जितने होते हैं वे सभी फल की इच्छा करते हैं और फल विवक्षित है अत: ऊह करना चाहिए।

सुब्रह्मण्याह्वान के निगद में हरिवत् शब्द का ऊह नहीं होता यह अधिकरण—

असंयोगात् तदर्थेषु तद्विशिष्टं प्रतीयेत ।४२।

पदार्थ—हरिवत् आदि शब्दों को (तदर्थेषु) हरिवद् आदि के अर्थों में (असंयोगात्) सम्बन्ध होने से (तद्विशिष्टम्) हरिवदादि शब्द विशिष्ट ही विकृति में (प्रतीयेत) प्रतीत होते हैं।

भावार्थ—ज्योतिष्टोम में सुब्रह्मण्याह्वान में 'इन्द्रागच्छ हरिव आगच्छ मेधातिथेः' इत्यादि मंत्र समाम्नात है। अग्निष्टुत नामक विकृति याग में इसका अतिदेश नहीं। यहाँ हरिवत् आदि का जो शब्दार्थ है उसका इन्द्र के साथ सम्बन्ध न होनें से हरिवत् शब्द का ऊह मानने में नहीं आता। केवल अविद्यमान गुणों से इन्द्र की स्तुति की जाती है।

कर्माभावादेवमिति चेत् ।४३।

पदार्थ—(एवम्) जो ऊह न किया जाय तो (कर्माभावात्) हरिवदादि शब्द प्रयोग निमित्त कर्म का सम्बन्ध इन्द्र में न हो तो हरिवदादि शब्द असमेवतार्थक हो जायें (इति चेत्) जो ऐसा मानने में आवे तो उत्तर अगले सूत्र में है—

भावार्थ—हरिवत् शब्द का अर्थ इन्द्र में है। जिस प्रकार 'अहोरात्रे वा इन्द्रस्य हरी' रात और दिन इन्द्र के हरि हैं, कारण कि 'ताभ्यामेव सर्वं हरति' उनसे ही इन सबका हरण होता है। इस कारण से हरिवत् शब्द की प्रवृत्तिनिमित्तक जो क्रिया है वह इन्द्र में है। इससें हरिवत् शब्द समवेतार्थक है। और इस कारण से हरिवद् आदि शब्दों का भी ऊह होना चाहिये। इसका उत्तर अगले सूत्र में है—

न परार्थत्वात् ।४४।

पदार्थ—(न) नहीं (परार्थत्वात्) केवल स्तुति के लिए होने से।

भावार्थ—'अहोरात्रे इन्द्रस्य हरी' यह वाक्य तो केवल अर्थवाद ही है। और इससे इन्द्र की स्तुति ही प्रतीत होती है। अतः हरिवत् शब्द असमवेतार्थ है और इससे उन शब्दों का ऊह नहीं होता।

सारस्वती मेषी में अध्रिगुवचन का अभाव है। इस अधिकरण के सूत्र—

लिंगविशेषनिर्देशात् समानविधानेष्वप्राप्ता सारस्वती स्त्रीत्वात् ।४५।

पदार्थ—(समानविधानेषु) पशु सामान्य को उद्दिष्ट कर पशु सम्बन्धी

धर्म विधियों में (सारस्वती) सरस्वती देवताक मेषी द्रव्यक याग (अप्राप्त) प्राप्त नहीं होता । (लिंगविशेषनिर्देशात्) पुलिंग का निर्देश होने से और मेषी तो (स्त्रीत्वात्) स्त्री होने से ।

भावार्थ—अध्रिगु नामक एक ऋत्विक् है, उसे उद्दिष्टकर प्रैष मंत्र बोले जाते हैं। **'दैव्यः शमितारः आरभध्वम्'** अतिरात्र याग में सवनीय पशु का आम्नान इस प्रकार है—**'सारस्वती मेष्यमतिरात्रे'** इस मेषी में उक्त मंत्र लागू नहीं होता कारण कि मेषी स्त्रीलिंग है और **'प्रास्मा अग्नि भरत'** इस स्थान पर अस्मै पद पुल्लिग वाचक है। अतः सारस्वती अध्रिगु प्रैष को प्राप्त नहीं। इस कारण से सारस्वती मेषी जो अतिरात्र में देय है उसमें **दैव्यः शमितारः** इत्यादि मंत्र की निवृत्ति होती है।

पूर्वपक्ष—

पश्वभिधानाद्वा तद्धि चोदनाभूतं पुंविषयं पुनः पशुत्वम् ।४६।

पदार्थ—(वा) अथवा (पश्वभिधानात्) पशु का अभिधान होने से (तत् हि) नहीं (चोदनाभूतम्) विधि का विषय है (पुंविषयम्) अतः पुंपशु भी मेषी को उद्दिष्ट करके है। (पुनः पशुत्वम्) मेषी में पशुत्व तो है ही।

भावार्थ—अध्रिगु प्रैष पठन में पुंल्लिग का कोई विरोध नहीं। **'अग्नीषोमीये पशुमालभेत'** इस स्थान पर पशु शब्द का ही पाठ है। **'प्रास्मा अग्नि भरत'** इस स्थान पर अस्मै पद उक्त वाक्य में जो पशु पद है उसी को उद्दिष्ट कर है। मेषी भी पशु है। वस्तु मात्र तीन लिंगों में प्रयुक्त होती है। किसी समय पुरुष को उद्दिष्ट कर कहा जाता है कि **'इदं वस्तु दुर्लभम्'** यहाँ वस्तु का तात्पर्य पुरुष में नपुंसक का निर्देश हुआ है। व्यक्ति के तात्पर्य से स्त्रीलिंग का निर्देश भी हो सकता है। अतः पुल्लिग वचन में कोई विधि नहीं। इसलिए कि सारस्वती मेषी अध्रिगु प्रैष को प्राप्त होती है।

पूर्वपक्ष दूषक सूत्र—

विशेषो वा तदर्थनिर्देशात्।४७।

पदार्थ—(वा) अथवा (विशेष) है (तदर्थनिर्देशात्) पुंस्त्व की विवक्षा होने से।

भावार्थ—खास पुल्लिग का कथन होने से और उसकी विवक्षा होने से सारस्वती मेषी अध्रिगु के प्रैष का विषय नहीं ।

पशुत्वं चैक्यशब्द्यात् ।४८।

पदार्थ—(च) और (पशुत्वम्) पशुत्व का जो निर्देश मेषी में होता है वह तो (ऐक्यशब्द्यात्) मेषी और पशु की एकता होने से।

भावार्थ—मेषी पशु है, यहाँ पशु विशेष रीति से है परन्तु इससे जहाँ मेषी की जरूरत हो वहाँ चाहे जो पशु नहीं चल सकता।

यथोक्तं वा सन्निधानात् ।४६।

पदार्थ—(वा) अथवा (सन्निधनात्) सन्निधान होने से (यथोक्तम्) अध्रिगु प्रैष मेषी को प्राप्त नहीं होता।

भावार्थ—जहाँ सारस्वती मेषी का दान देना हो वहाँ विधि कथित मेषी ही प्रथम बुद्धि गोचर होती है, पशु नहीं। इससे सिद्ध होता है कि अध्रिगु प्रैष मबी को प्राप्त नहीं। यज्ञायज्ञीय सामगान में गिर पदा के स्थान में इस पद की ही कर्त्तव्यता है!

इस अधिकरण के सूत्र

सिद्धान्त सूत्र—

आम्नातादन्यदधिकारे वचनाद् विकारः स्यात् ।५०।

पदार्थ—(अधिकारे) इस अधिकार में (आम्नातात्) आम्नात साम से (अन्यद् विकारः) अन्य आदेशभूत विकार होता है। (वचनात्) विशेष का विधान होने से।

भावार्थ—ज्योतिष्टोम याग में यज्ञायज्ञीय स्तोत्र है। उसमें यह ऋचा है—**यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरा गिरा च दक्षसे। प्र प्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम्।** ऋग्वेद ६।४८।१। इस ऋचा में जहां 'गिरा गिरा' पद हैं वहां 'इरा इरा' पद स्थापित कर सामगान करना। कारण कि **ऐरं कृत्वोद्गायेत्** ऐसा विशेष विधान है। अतः प्रयोग के समय पठित वर्ण के बाधक रूप में 'इरा इरा' ऐसा विकार कर गान करना।

पूर्वपक्ष सूत्र—

द्वैधं वा तुल्यहेतुत्वात्सामान्याद् विकल्पः स्यात् ।५१।

पदार्थ—(वा) अथवा (द्वैधम्) दोनों रीति का पाठ रख कर गान करना

(तुल्यहेतुत्वात्) समान हेतु होने से (सामान्यात्) समानता होने से (विकल्पः स्यात्) विकल्प होता है।

भावार्थ—मंत्र में पाठ 'गिरा गिरा' आता है इससे उसी का गान होना चाहिए। और 'इरा इरा' ऐसा विधान है अतः उसका भी गान होना चाहिए। इसलिए परिणाम विकल्प में आता है। प्रयोग के समय दोनों में से कोई भी पद रखकर गान करना, ऐसा पूर्वपक्षवादी का मानना है।

उपदेशाच्च साम्नः ।५२।

पदार्थ—(च) और (साम्नः) साम का (उपदेशात्) उपदेश होने से।

भावार्थ—'गिरा' पद मंत्र में पठित होने से उसकी विधि अनुमेय है। और इरा की विधि प्रत्यक्ष है। कारण कि ऐरं कृत्वोद्गायेत्। ऐसा स्पष्ट विधान है। अतः दोनों का समान बल होने से विकल्प मानना योग्य है। यह पूर्वपक्ष का ही सूत्र है।

सिद्धान्त सूत्र—

नियमो वा श्रुतिविशेषादितरत् साप्तदश्यवत् ।५३।

पदार्थ—(वा) पूर्वपक्ष का निराकरण करता है (श्रुतिविशेषात्) विशेष वचन से (नियमः) 'इरा' पद का ही नियम है (इतरत्) मंत्र घटक 'गिरा पद' साप्तदश्यवत्) पांचदश्य से साप्तदश्य की प्रकृति में बाध होता है, उसी प्रकार यहां भी वाध होता है।

भावार्थ—जब ऐरं कृत्वोद्गायेत्' ऐसा बाधक वचन है तो पुनः गिरा पद से गान न करना यही विधान के अनुकूल है। अतः जब 'यज्ञायज्ञीयेन स्तुवीत' इस प्रकार कहा जाये तो मंत्र घटक पद 'गिरा' के वदले इरा इरा वोलकर गाना चाहिए। विकल्प मानने की कुछ भी जरूरत नहीं। 'आयीरा' ऐसा पदन्यास सामग लोग गान के समय करते हैं। अधिकरणमाला में भी स्पष्ट है।

'इरा' पद का प्रगीतत्त्व है।

इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष के सूत्र—

अप्रगाणाच्छब्दान्यत्वे तथाभूतोपदेशः स्यात् ।५४।

पदार्थ—(शब्दान्यत्वे) इरा पद गिरा शब्द से भिन्न होने के कारण

(अप्रगाणात्) अप्रगीत शब्द ही विहित इरा पद है (तथाभूतोपदेशः स्यात्) इसलिए जिस प्रमाण से विहित है उसी प्रमाण से पाठ करना चाहिये।

भावार्थ—इरा और गिरा दोनों शब्द पृथक् ही हैं। गिरा शब्द का पाठ है। अतः जिस प्रकार मंत्र में पाठ है उसी प्रकार गान करना चाहिए। अतः इरा पद में अप्रगीतत्व है। ऐसा पूर्वपक्ष का मानना है।

सिद्धान्त सूत्र—

यत्स्थाने वा तद्गीतिः स्यात् पदान्यत्व-प्रधानत्वात् ।५५।

पदाथ—(वा) अथवा (यत्स्थाने) जिस स्थान में जिस शब्द का आदेश हो (तद्गीतिः स्यात्) उसका गान करना चाहिये (पदान्यत्वप्रधानत्वात्) भिन्न पद की प्रधानता होने से।

भावार्थ—गिरा पद के स्थान में इरा पद का विधान किया है। और यह आदेश है। स्थान की अपेक्षा से आदेश प्रधान होता है। अतः इरा का ही गान होना चाहिए, 'ऐरं कृत्वोद्गायेत्' इस विधि के तात्पर्य का विषय भी इरा के गान में ही है। इरा से तद्धित प्रत्यय 'अण्' लगा कर ऐरम् ऐसा पाठ किया है।

गानसंयोगाच्च ।५६।

पदार्थ—(च) और (गानसंयोगात्) गान का संयोग होने से।

भावार्थ—उद्गेयमा इरा चा दाक्षासा' इत्यादि वर्ण गान संयुक्त भी पाठ है, अतः इरा पद गान विशिष्ट होना चाहिए। गान सहित इरा पद का प्रयोग नहीं करना।

वचनमिति चेत् ।५७।

पदार्थ—(वचनम्) वचन किसलिए है (इति चेत्) यदि यह शंका हो तो उत्तर अगले सूत्र में है।

भावार्थ—गान प्रतिपादक शास्त्र होने पर भी उक्त वचन किसलिए विधान किया है ? जो ऐसी शंका हो तो उसका उत्तर अगले सूत्र में है।

न तत्प्रधानत्वात् ।५८।

पदार्थ—(न) नहीं (तत्प्रधानत्वात्) इरा पद प्रधान होने से।

भावार्थ—गान विशिष्ट इरा पद का विधान नहीं। विधान में केवल इरा पद प्रधान है। विधि का विषय इरा पद ही है, गान तो गान विधायक शास्त्र से ही सिद्ध है। इस कारण से सिद्धान्त यह निकला कि इरा पद प्रगीत है अर्थात् इरा पद का ही गान करना चाहिए।

इति मीमांसादर्शनभाष्ये नवमाध्यायस्य प्रथमः पादः।९।१॥

अथ नवमाध्यायस्य द्वितीयः पादः

'गीति ही साम है' इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष सूत्र—

सामानि मन्त्रमेके स्मृत्युपदेशाभ्याम् ।१।

पदार्थ—(मन्त्रम्) मन्त्रों को (सामानि) साम (एके) कितने ही आचार्यों ने माना है (स्मृत्युपदेशाभ्याम्) उनमें स्मृति तथा उपदेश के लिए रीति वर्णित करते हैं।

भावार्थ—कितने ही आचार्य रथन्तर, बृहद्वैरूप, वैराज, शाक्वर, रैवत आदि शब्दों के वाच्य गान विशिष्ट ऋचायें ही हैं, यह मानते हैं। इसका प्रमाण यह है कि 'प्रगीते मन्त्रः, साम' गाये हुये मंत्र साम हैं, यह स्मृति है। अन्यत्र गुरु शिष्य को उपदेश देता है कि 'रथन्तरं पठ' रथन्तर साम पढ़, इस उपदेश से शिष्य गान विशिष्ट ऋचा को ही पढ़ता है। अतः स्मृति और उपदेश रूप दो हेतुओं से गान विशिष्ट ऋचाओं को ही साम कहा जाता है।

सिद्धान्त सूत्र—

तदुक्तदोषम् ।२।

पदार्थ—(तत्) यह पक्ष (उक्तदोषम्) दोषयुक्त है, यह पीछे कहा गया है।

भावार्थ—गान विशिष्ट मंत्रों को साम कहने के दोष सप्तम अध्याय के द्वितीय पाद में कहे गये हैं। अतः शुद्ध गान का नाम ही साम है। और यह गान जिन मंत्रों में किया जाता है वे सामयोनि कहलाते हैं। जो मंत्रों को साम कहा जावे तो 'कवतीषु रथन्तरं गायति। कया नश्चित्र' आदि मंत्र में रथन्तर गाना चाहिए। ऐसा आधाराधेय भाव का उपदेश नहीं हो सकता, अतः केवल गीति ही साम है।

साम ऋचा का संस्कार करने वाला कर्म है, इस अधिकरण के सूत्र में—पूर्वपक्ष—

कर्म वा विधिलक्षणम् ।३।

पदार्थ—(वा) पूर्वपक्ष सूचित करता है (कर्म) साम प्रधान कर्म है। (विधिलक्षणम्) द्वितीय विभक्ति का श्रवण होने से।

भावार्थ—'रथन्तरं गायतीत्यत्र प्रयाजान् यजतीतिवत् प्रधानकर्म-

लक्षणम्' जिस प्रकार प्रयाज में द्वितीया विभक्ति लगी है उसी प्रकार 'रथन्तरम्' में भी द्वितीया विभक्ति है, अतः प्रयाज की भाँति साम भी प्रधान कर्म है, ऐसा पूर्वपक्षवादी का मत है।

तदृग्द्रव्यं वचनात् पाकयज्ञवत् ।४।

पदार्थ—(तत्) वह(ऋग्द्रव्यम्) ऋङ्मंत्र रूप द्रव्य है (वचनात्) 'ऋचि साम गायत' इत्यादि वचन होने से (पाकयज्ञवत्) पाक यज्ञ में जिस प्रकार लाजा आदि द्रव्य याग अंग हैं उसी प्रकार ऋग्द्रव्य भी गुणभूत है।

भावार्थ—पाक यज्ञ में जैसे लाजा आदि गुणद्रव्य गिने जाते हैं उसी प्रकार सामगान की योनिभूत ऋचा रूप द्रव्य भी गुणभूत है और सामगान प्रधान कर्म है।

तत्राविप्रतिषिद्धो द्रव्यान्तरे व्यतिरेकः प्रदेशश्च ।५।

पदार्थ—(तत्र) ऋतु विशेष में (द्रव्यान्तरे) अन्य ऋचाओं में (प्रदेशः) अतिदेश शास्त्र (व्यतिरेकः) अभाव (अप्रतिषिद्ध) अविरुद्ध है।

भावार्थ—'**अभि त्वा शूर नोनुमः**' इस ऋचा में रथन्तर साम गाने का विधान है तो पुनः '**कवतीषु साम गायति**' आदि अतिदेश निरर्थक हो जाते हैं तो इसका उत्तर यह है कि किसी वस्तु विशेष में '**कवतीषु साम गायति**' इत्यादि अतिदेश लागू होता है। इसलिए कि '**अभि त्वा शूर नोनुमः**' में जो रथन्तर साम गाने के लिए कहा है वह सामान्य शास्त्र है और 'कवती' में रथन्तर साम गाने को कहा है वह विशेष शास्त्र है। इसलिए स्थान भेद में दोनों चरितार्थ हो सकते हैं।

सिद्धान्त सूत्र—

शब्दार्थत्वात् तु नैवं स्यात् ।६।

पदार्थ—(तु) पूर्वपक्षवादी का निरास सूचित करता है। (शब्दार्थत्वात्) रथन्तरादि गान ऋचाओं के लिए होने से (न एव स्यात्) गान प्रधान कर्म नहीं।

भावार्थ—गान से ऋचाओं के वर्णों का संस्कार होता है और वर्ण अभिव्यक्त और इसलिए अधिक स्पष्ट होते हैं। अतः गान क्रिया का फल दृष्ट है, अदृष्ट नहीं। इस कारण गान प्रधान कर्म नहीं परन्तु गुण कर्म है।

परार्थत्वाच्च शब्दानाम् ।७।

पदार्थ—(च) और (शब्दानाम्) रथन्तरादि शब्दों का (परार्थत्वात्) स्तुतिपाकत्व होने से।

भावार्थ—रथन्तर सामगान से ऋचा के अक्षरों की अभिव्यक्ति होती है और इन अक्षरों से देवता की स्तुति होती है। अतः साम का फल दृष्ट है अदृष्ट नहीं।

असम्बद्धश्च कर्मणा शब्दयोः पृथगर्थत्वात् ।८।

पदाथ—(च) और (कर्मणा असम्बद्धम्) जो ऋचा के अंग रूप में मानने में आवे तो उसके साथ साम का सम्बन्ध नहीं हो सकता। (शब्दयोः पृथगर्थत्वात्) एक गीतिवाचक और दूसरा शब्द स्तोत्र वाचक होने से।

भावार्थ—स्तुति और गान एकार्थक नहीं, तो पुनः 'रथन्तरं पृष्ठं भवति' इस स्थान पर रथन्तर और पृष्ठ का अभेद अन्वय किस रीति से सम्भव हो सकता है, कारण कि रथन्तरगान है और पृष्ठ स्तोत्र है। इस प्रकार दोनों शब्दों के अंश के पृथक्-पृथक् होने से उनमें अभेद सम्बन्ध नहीं बनता। परन्तु सिद्धान्त पक्ष में 'रथन्तर' शब्द का अर्थ रथन्तर गुण वाला स्तोत्र है। तथा स्तोत्र और पृष्ठ का एक ही अर्थ होने से अभेद सम्बन्ध हो सकता है। अतः साम को ऋक् संस्कारज कर्म मानना चाहिए।

संस्कारश्चाप्रकरणेऽग्निवत्स्यात् प्रयुक्तत्वात् ।९।

पदार्थ—(च) और (अप्रकरणे) प्रयोग के बाहर अध्ययन के समय (प्रयुक्तत्वात्) प्रयुक्त होने से (संस्कारः) संस्कार हो चुकने से पुनः संस्कार नहीं रहता। (अग्निवत् स्यात्) जिस प्रकार अग्नि प्रयोग बाहर आधान से संस्कृत होने से पुनः इसके संस्कार की आवश्यकता नहीं रहती।

भावार्थ—जिस प्रकार अग्न्याधान के समय अग्निसंस्कार प्राप्त होता है पुनः ज्योतिष्टोम प्रयोग समय में इसका संस्कार करना नहीं पड़ता, उसी प्रकार अध्ययन काल में ऋचाओं के गान से संस्कृत हुये प्रयोग के समय संस्कार की आवश्यकता नहीं रहती। यह एक पृथक् पक्ष उठाया गया है।

अकार्यत्वाच्च शब्दनामप्रयोगः प्रतीयेत ।१०।

पदार्थ—(च) और (अकार्यत्वात्) जो मंत्र प्रथम से ही संस्कृत हुआ हो तो उसके प्रयोग के समय पाठ नहीं करना चाहिए। (शब्दनाम्) शब्द का (अप्रयोग: प्रतीयेत) अप्रयोग होना चाहिये।

भावार्थ—यदि अध्ययन के समय सामगान से मंत्र संस्कृत हुए हों तो प्रयोग के समय उस मंत्र का पाठ व्यर्थ हो जाता है, कारण कि उस समय गान का प्रयोजन मंत्रों में संस्कार उत्पन्न करना है और संस्कार तो उत्पन्न हुए होते ही हैं। तव पुनः मंत्रों का गान किस लिये ? जब मंत्रों के गान प्रयोग के समय होने से प्रयोग के समय ही सामगान मंत्रों का संस्कारक होता है।

आश्रितत्वाच्च ।११।

पदार्थ—(च) और (आश्रितत्वात्) औदुम्बरी के स्पर्श को आश्रित कर गान का विधान होने से।

भावार्थ—'औदुम्बरीं स्पृष्ट्वोत्गायेत' इस वाक्य में औदुम्बरी का स्पर्श कर सामगान करने का विधान है। अतः प्रयोगकाल में गान संस्कार है, यह सिद्ध होता है।

प्रयुज्यत इति चेत् ।१२।

पदार्थ—(प्रयुज्यते) जो प्रयोग के समय सामगान का प्रयोग होता हो तो (इति चेत्) प्रयोग के वाहर का पाठ व्यर्थ हो जाय।

भावार्थ—जो प्रयोग में सामगान की विधि हो तो अध्ययन के समय जो सामगान होता है वह व्यर्थ हो जाय, इसका उत्तर अगले सूत्र में है—

ग्रहणार्थं प्रतीयेत ।१३।

पदार्थ—(ग्रहणार्थम्) अभ्यास के लिए (प्रतीयेत) प्रतीत होता है।

भावार्थ—अध्ययन के समय जो गान होता है वह तो अभ्यास के लिये होता है। अध्ययन के समय गान करने से गान में पटुता आती है जिससे प्रयोग के समय विना भूले गान हो सकता है।

तृच में जो सामगान होता है वह प्रत्येक ऋचा में समाप्य करना चाहिए।

पूर्वपक्ष सूत्र—

तृचे स्याच्छ्रुतिनिर्देशात् ।१४।

पदार्थ—(तृचे) ऋचाओं में (स्यात्) सामगान होता है (श्रुतिनिर्देशात्) श्रुति में ऐसा कथन होने से।

भावार्थ—तीन ऋचाओं को 'तृच' कहा जाता है। सामगान तृच में करना चाहिए कारण कि ,एके साम तृचे क्रियते' ऐसा विधान है। एक ही सामगान तीन ऋचाओं में सम्पूर्ण होना चाहिए। एक अथवा दो ऋचाओं से पूर्ण न करना, यह पूर्वपक्षवादी का मानना है।

शब्दार्थत्वाद् विकारस्य ।१५।

पदार्थ—(विकारस्य) सामगान रूप विकार (शब्दार्थत्वात्) तीन ऋचाओं के अक्षरों के साथ सम्बन्ध रखने से।

भावार्थ—सामगान ऋचाओं के अक्षरों को संस्कार प्रदान करता है। अतः जिस गान का आरम्भ किया उसी गान से तीनों ऋचाओं के अक्षर संस्कृत होने चाहियें। अतः ऋचाओं के ऊपर एक ही सामगान है, जिस प्रकार तीन खूँटियों के ऊपर एक घड़ा रखना चाहिए। यहां एक ही घड़ा तीन खूंटियों से सम्बन्ध रखता है उसी प्रकार एक ही साम तीन मंत्रों में समाप्त होना चाहिये। एक मंत्र में नहीं। भाव यह है कि एक सामगान तीन ऋचाओं में व्यासजयवृत्ति से होना चाहिये।

दर्शयति च ।१६।

पदार्थ—(च) और (दर्शयति) अर्थवाद भी ऐसा ही बताता है।

भावार्थ—अर्थवाद भी तीन ऋचाओं में व्यासजयवृत्ति से एक ही सामगान होता है, यह बताता है। अर्थवाद इस प्रकार है—**ऋक् सामो वाचः, आवां मिथुनी संभवावेति, सोऽब्रवीत् न वै त्वं प्रमालमसि जायार्थम्। ततस्ते द्वे भूत्वोचतुः स भवामेति सोऽब्रवीत् न युवां ममालमिति। ततस्तिस्रो भूत्वोचुर्मिथुनी संभवामेति सोऽब्रोत् संभवामेति।**' इस अर्थवाद से भी सिद्ध होता है कि तीन ऋचाओं में एक ही साम गाया जाता है।

सिद्धान्त सूत्र—

वाक्यानां तु विभक्तत्वात्प्रतिशब्दं समाप्तिः स्यात् संस्कारस्य तदर्थत्वात् ।१७।

पदार्थ—(प्रतिशब्दम्) हर एक ऋचा में (समाप्तिः) सामगान की

समाप्ति (स्यात्) करनी चाहिए (संकारस्य) अक्षराभिव्यक्ति (तदर्थत्वात्) ऋचा के लिये होने से (वाक्यानां विभक्तत्वात्) ऋग् रूप वाक्य पृथक्-२ होनें से।

भावार्थ—एक ऋचा से स्तुति पूर्ण होती है, अत: प्रत्येक ऋचा का सामगान सम्पूर्ण होना चाहिए। तभी ऋचा के अक्षरों की अभिव्यक्ति हो सकेगी। दूसरी तथा तीसरी ऋचा में पुन: वही सामगान करना और तत्-तत् ऋचा के अक्षरों का अभिव्यक्तिरूप संस्कार करना चाहिए। जो तीन ऋचाओं में एक साम व्यासजयवृत्ति से करने में आवे तो एक ऋचा में साम का अवयव आयेगा तथा साम के अवयव से ऋचा के अक्षरों की अभिव्यक्ति नहीं होती। ऋचा का उपकारक साम है, साम का अवयव नहीं। अत: तृच में प्रत्येक ऋचा में सामगान पूर्ण होना चाहिये।

तथा चान्यार्थदर्शनम् ।१८।

पदार्थ—(तथा च) और उसी प्रकार (अन्यार्थदर्शनम्) अन्य देखने में आता है।

भावार्थ—एक ही ऋचा में साम सम्पूर्ण करना होता है, इससे ही अन्य अर्थ की भी सिद्धि होती है। अन्य अर्थ है इसलिये प्रस्ताव का भेद है। यह प्रस्ताव भेद इस प्रकार बताया जाता है। '**अष्टाक्षरेण प्रथमायामृचि स्तौति द्व्यक्षरेणोत्तरयो:**' ऋक् पाद में भी सामगान सम्पूर्ण करने के लिये कहा है। जो तीनों ऋचाओं में व्यासजयवृत्ति से सामगान हो तो उक्त प्रस्ताव उपपन्न नहीं हो सकता।

अनवानोपदेशश्च तद्वत् ।१९।

पदार्थ—(च) और (तद्वत्) उसी प्रमाण से (अनवानोपदेश:) अन-वान का उपदेश है।

भावार्थ—जो एक ही साम तीन ऋचाओं में व्यासजयवृत्ति से करने में आये तो अनवानता सिद्ध नहीं हो सकती। जो एक सामगान एक ऋचा में सम्पूर्ण हो तो अनवानता सिद्ध होती है।

अभ्यासेनेतरा ।२०।

पदार्थ—(अभ्यासेन) आवृत्ति से (इतरा) अन्य ऋचा इसी साम से सम्बद्ध होती है।

भावार्थ—एक ऋचा में सामगान पूर्ण करना और दूसरी ऋचा में पीछे से उसी सामगान की आवृत्ति करनी। 'जिस प्रकार तीन घरों में देव-दत्त को भोजन कराना', इस वाक्य का अर्थ देवदत्त को बारी-बारी से तीन घरों

में जिमाना ऐसा होता है। इसी प्रमाण से एक ही साम तीन ऋचाओं में गाना। पुनः अभ्यास करते समय सामग लोगों ने एक ऋचा में सम्पूर्ण सामगान का अभ्यास किया है। उससे प्रयोग के समय भी इसी प्रकार सामगान करना चाहिये। इससे सिद्ध होता है कि प्रत्यृच में सामगान सम्पूर्ण करना चाहिये।

साम गाने के लिये तीन ऋचायें समान छन्द वाली होनी चाहियें—इस अधिकरण के सूत्र—

तदभ्यासः समासु स्यात् ।२१।

पदार्थ—(तदभ्यासः) उस साम का अभ्यास (समासु स्यात्) समान छन्दवाली तीन ऋचाओं में करना चाहिये।

भावार्थ—तृच में सामगान करना चाहिए और वह साम प्रत्येक ऋचा में समाप्त होना चाहिये, इस विषय में उपर्युक्त सूत्र में सिद्ध किया है। अब इस सूत्र में ऐसा कहने में आया है कि तृच में तीन ऋचायें होती हैं और ये तीन ऋचायें समान छन्द वाली अर्थात् एक ही छन्द वाली होनी चाहियें। तीनों के पृथक्-पृथक् छन्द न होने चाहियें, कारण कि संशर तथा निलेश नाम के दोष बताने में आये हैं। संशर अर्थात् लोप अर्थात् एक ऋचा अल्पाक्षर छन्दवाली हो तो शेष साम का लोप होता है और अधिक अक्षर वाली छन्द की ऋचा हो तो साम की तुलना में अक्षर अधिक पड़ते हैं और ये अधिक हुये अक्षर असंस्कृत रह जाते हैं। अतः तीन ऋचाओं का एक ही छन्द होना चाहिये।

लिंगदर्शनाच्च ।२२।

पदार्थ—(च) और (लिंगदर्शनात्) उक्त अर्थ में लिंगवाक्य भी है।

भावार्थ—**स्थाल्यां सक्त्ववधीयते यद् बृहद् गायत्रीषु क्रियते।** इस वाक्य में बहु अक्षर वाले छन्द के साथ सम्बन्ध रखते हुये सामगान जो अल्पाक्षर छन्द वाली ऋचा में गाने में आवे तो दोष बताया है। अतः समान छन्दवाली तीन ऋचाओं में सामगान करना चाहिये।

'उत्तरयोर्गायति' इस स्थान पर उत्तरा नामक ग्रन्थ में पठित दो ऋचाओं का ग्रहण करना चाहिए, इस अधिकरण के सूत्र—

नैमित्तिकं तूत्तरात्वमानन्तर्यात् प्रतीयेत ।२३।

पदार्थ—(तु) यह शब्द सिद्धान्त सूचक है—(नैमित्तिकम्) 'यद्योन्यां तदुत्तरयोः' इत्यादि में जो उत्तरा पद है इससे उत्तरा नामक ग्रन्थ में बताई दो ऋचाओं का ग्रहण करना (उत्तरात्वम्) उत्तरात्व (आनन्तर्यात्) सम्बन्ध निकट में वही (प्रतीयेत) प्रतीत होते हैं।

भावार्थ—सामगान करने वालों के दो ग्रन्थ हैं। एक छन्द और दूसरे उत्तरा छन्द नामक ग्रन्थ में सूक्तों का पाठ होता है। अब 'यद्योन्यां तदुत्तरयोः' इस स्थान पर योनिभूत ऋचा का गान करने के पश्चात् उत्तरा पद से सूक्त गत अन्य दो ऋचाओं का ही ग्रहण करना चाहिए। सूक्त की प्रथम ऋचा योनिभूत होती है और अन्य दो उत्तरा कहलाती हैं तथा यह उत्तरा नामक ग्रन्थ में होती हैं। चाहे जिस सूक्त की अन्तिम दो ऋचायें न समझनी चाहियें, परन्तु जिस सूक्त को प्रथम ऋचा योनिभूत हो, उसी सूक्त की अवशिष्ट दो ऋचायें समझनी चाहियें।

ऐकार्थ्याच्च तदभ्यासः ।२४।

पदार्थ—(च) और (ऐकार्थ्यात्) तीन ऋचाओं की एक अर्थ में संगति होने से (तदभ्यासः) उसका अभ्यास करने में आता है।

भावार्थ—तीन ऋचायें एक ही अर्थ में संगत होती हैं। जो पृथक्-पृथक् उनका अर्थ हो तो एक ही सूक्त में उनका पाठ न होना चाहिये। अतः प्रथम योनिभूत ऋचा का गान करने के पश्चात् उसी सूक्त के पीछे दो ऋचाओं का गान करना चाहिये। ऐसा अभिप्राय इस अधिकरण का है।

'बृहती तथा पंक्ति छन्दों का प्रग्रथन कर रथन्तर का गान करना' इस अधिकरण के सूत्र—

प्रागाथिकं तु ।२५।

पदार्थ—(तु) पूर्वपक्ष की व्यावृत्ति को सूचित करता है (प्रागाथिकम्) प्रागाथिक सामगान भी करने में आता है।

भावार्थ—पूर्वाबृहती तथा उत्तरा पंक्ति इन दो छन्दों का प्रग्रथन कर सामगान करना। ज्योतिष्टोम में माध्यन्दिन सवन में बृहद् रथन्तर सामगान करने का विधान किया है। इस सम्बन्ध में विशेष जानने की इच्छा रखने वालों को शाबर भाष्य देखना चाहिये।

स्वे च ।२६।

पदार्थ—(च) और (स्वे) ककुभ् आदि छन्द में भी गान होता है।

भावार्थ—प्रग्रथन अर्थात् एक छन्द में दूसरे छन्द के पाद को मिलाने से ककुभ् आदि छन्द बनते हैं। तथा इनमें गान करने से ककुभ् में ही गान हुआ, ऐसा कहा जाता है।

प्रगाथे च ।२७।

पदार्थ—(च) और (प्रगाथे) प्रगाथ में।

भावार्थ—एवं' चात्र प्रगाथशब्द उपपन्नो भवति। प्रकर्षं हि प्रशब्दो द्योतयति : प्रकर्षेण यत्र गानं स प्रगाथ कश्च प्रकर्षः। यत्किञ्चित्पुनर्गीयति तस्मादपि प्रकृतयोः प्रग्रथनं कर्त्तव्यम्' शाबर भाष्य। प्रकर्ष का आश्रय कर गान करना चाहिए, इसका नाम प्रगाथ है। पृथक्-पृथक् छन्द हो, इनमें एक अथवा दो पाद लेकर एक पृथक् ही छन्द ककुभ् आदि उत्पन्न कर ॠग्वर्णों को पुनः-पुनः गाना, इसका नाम प्रगाथ है। इस रीति से प्रगाथ में भी गान होता है। यह पद्धति सामगान करने वालों से जाननी चाहिये।

लिंगदर्शनाव्यतिरेकाच्च।२८।

पदार्थ—(च) और (लिंगदर्शनाव्यतिरेकात्) लिंग वाक्य का अतिरेक होने से।

भावार्थ—'एषा वै प्रतिष्ठिता बृहती यत्पादं पुनरारभते' इत्यादि बृहती के अर्थवाद में पादारम्भ लिंग दर्शन का अन्य उपाय नहीं है, अर्थात् प्रग्रथन करने का कथन है। इस प्रकार समान छन्दस्क ऋचाओं में और भिन्न-भिन्न छन्दों के पाद की मिलावट से गीति सम्पादक अक्षर विकार आदि का विकल्प है, इस अधिकरण के सूत्र—

अर्थैकत्वात् विकल्पः स्यात्।२९।

पदार्थ—(अर्थैकत्वात्) प्रयोजन के एक होने से (विकल्पः स्यात्) विकल्प है।

भावार्थ—सामवेद में गीति के उपाय बहुत हैं। 'सामवेदे सहस्रं गीत्युपायाः' गीति के एक हजार उपाय सामवेद में कहे है। ऐसा शाबर भाष्य में कहा है। गीति एक प्रकार की क्रिया है, और वह आभ्यन्तर प्रयत्न जनित स्वर विशेष की अभिव्यञ्जिका है। सभी गीतियों का प्रयोजन एक ही है। अतः किसी भी एक गीति का प्रयोग होता हो, तो पीछे अन्य गीतियों का प्रयोग करने की आवश्यकता नहीं रहती। अतः गान में गीतियों का विकल्प है, समुच्चय नहीं।

'साम्ना स्तुवते' इस वाक्य से साम में ही विधित्व है।

पूर्वपक्ष—

अर्थैकत्वाद् विकल्पः स्याद् ॠक्सामयो-स्तदर्थत्वात्।३०।

पदार्थ—(अर्थैकत्वात्) एक प्रयत्न होने से (ॠक्सामयोः) ॠचा और साम (तदर्थत्वात्) तुल्यता के कारण स्तुत्यर्थ के लिये ही श्रवण होने से (विकल्पः स्यात्) विकल्प होता है।

भावार्थ—'ऋचा स्तुवते, साम्ना स्तुवते, यदृचा स्तुवते तदसुरा अन्ववायन् यत्साम्ना स्तुवते तदसुरा नान्ववायन्' इस वाक्य से यह समझ में आता है कि ऋचा और साम दोनों से स्तुति हो सकती है। अतः ऋचा और साम का विकल्प है कारण कि दोनों का स्तुति रूप एक ही प्रयोजन है।

सिद्धान्तसूत्र—

वचनाद् विनियोगः स्यात् ।३१।

पदार्थ—(वचनात्) उक्त वचन से (विनियोगः स्यात्) विनियोग है, अर्थात् दोनों में से एक का ही नियम है।

भावार्थ—उक्त वाक्य से विकल्प नहीं परन्तु एक का नियम बंधता है। अर्थात् साम से ही स्तुति करनी, ऋचा से नहीं। कारण कि ऋचा से स्तुति करने में इसी वाक्य में निंदा बताई है और साम से स्तुति करने में निंदा नहीं बताई, अतः साम से ही स्तुति करनी। 'यदसुरा अन्ववायन्' यह निंदा सूचित करता है। स्तुति में असुरों का सम्बन्ध होना, यह निंदा है। अतः साम से ही स्तुति करनी, ऐसा विनियोग है।

'रथन्तरमुत्तरयोर्गायति' इस स्थान में उत्तरा के जो वर्ण हों, उसी के अनुसार गान करना, इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष सूत्र—

सामप्रदेशे विकारस्तदपेक्ष-
त्वाच्छास्त्रकृतत्वात् ।३२।

पदार्थ—(सामप्रदेशे) सामगान का अतिदेश करना हो वहाँ (विकारः) आई भाव आदि लक्षण विकार (तदपेक्षत्वात्) योनि अपेक्षा कृत होने से उसी प्रकार होता है। (शास्त्रकृतत्वात्) 'यद्योन्यां तदुत्तरयोः' इत्यादि शास्त्र से प्रतिपादित होने से।

भावार्थ—योनिभूत ऋचा वर्णों का जो विकार कर गान किया जाता है वही विकार कर उत्तर ऋचा में भी गान करना, ऐसा करने से योनिवद् गान हो सकता है। जिस प्रकार 'कया नश्चित्र आभुवत्' यहाँ 'कया' यह प्रथम भाग है और नश्चित्र आभुवत् यह दूसरा भाग है। पहले भाग में दो अक्षर हैं। और दूसरे भाग में ६ अक्षर हैं। अब दूसरे भाग के दूसरे 'च्' के आगे रही 'इ' का 'आई' भाव गान करना चाहिये इसी प्रकार उत्तरा ऋचा 'कस्त्वा सत्यो मदानाम्' यहां भी चौथे वर्ण 'य्' केआगे वाले अकार और उकार का लोप कर उसके स्थान में आ ई, भाव कर गान करना चाहिये। इसी प्रकार 'अभीषुणः' इस दूसरी उत्तरा ऋचा में 'ण' के उत्तरवर्ती अकार का

लोप कर आई भाव करना। इस प्रकार वर्ण विकार कर गान करने से शास्त्र प्रमाणानुसार गान हो सकता है। यह पूर्वपक्षवादी का मानना है।

सिद्धान्त सूत्र—

वर्णे तु बादरिर्यथा द्रव्यं द्रव्यव्यतिरेकात्।३३।

पदार्थ—(तु) पूर्वपक्ष की व्यावृत्ति के लिए है (वर्णे) उत्तरा ऋचा में जहाँ एकार आता हो वहां आई भाव करना। (यथाद्रव्यम्) संध्यक्षर का विवरण होता है। (द्रव्यव्यतिरेकात्) वर्णों का व्यतिरेक होने से (बादरिः) ऐसा बादरि आचार्य मानते हैं।

भावार्थ—योनिभूत ऋचा में चकार के आगे इ होता है। वह वृद्ध हो, तो एकार हो जाता है। इसलिये एकार में पहला अक्षर अ है और दूसरा अक्षर इ है। अतः स्वाभाविक रीति से ही आ ई होता है। शास्त्र भी है कि **'वृद्धतालव्यमायीभावः'** तालव्य अक्षर इ से वृद्धि पाकर आई भाव होता है। पर उत्तरा अन्य ऋचाओं में चौथा अक्षर इ नहीं आता, अतः उसके चौथे अक्षर को आ ई भाव न करना परन्तु जहां इ आवे वहां आई भाव कर गान करना। **'अभीषु णः सखीनाम् अविता जरितृणाम्'** यहां रेफ के आगे जो इ है उसका आई भाव अतिदेश नहीं। ऐसा बादरि आचार्य मानते हैं और यह सिद्धान्त पक्ष है। आई भाव यह संध्यक्षर एकार गत वर्णों का अभिव्यञ्जक है।

उत्तरा ऋचाओं में स्तोभ अक्षरों का भी अतिदेश है—इस अधिकरण के सूत्र--

पूर्वपक्ष सूत्र--

स्तोभस्यैके द्रव्यान्तरे निवृत्तिमृग्वत्।३४।

पदार्थ—(एके) कई आचार्य (स्तोभस्य) स्तोभाक्षरों की भी (द्रव्यान्तरे) उत्तरा ऋचाओं में (निवृत्तिम्) निवृति मानते हैं (ऋग्वत्) ऋचा के अकरों के तुल्य।

भावार्थ—योनिभूत ऋचा को सामगान के समय जो स्तोभाक्षर हैं वे अक्षर ऋचा के गान में नहीं लेने चाहियें, जिस प्रकार योनिभूत ऋचा के अक्षर उत्तरा ऋचाओं में नहीं बोले जाते, उसी प्रकार स्तोभाक्षरों का भी उत्तरा ऋचाओं में उपयोग नहीं करना चाहिये, ऐसा अनेक आचार्य मानते हैं। **'वामदेवसाम्नो योनौ द्वयोरर्धयोर्मध्ये ओकारद्वयेन होशब्देन हायीशब्देन च निष्पन्नः स्तोभ एव आम्नातः'** दो अर्धों के बीच दो ओकार से हो शब्द और हायी शब्द जो बोले जाते हैं वे वामदेव्य गान में स्तोभ में गिने जाते हैं। ये स्तोभ अक्षर योनिभूत ऋचा में बोलने, परन्तु उत्तर की ऋचाओं में नहीं।

सिद्धान्त सूत्र—

सर्वातिदेशस्तु सामान्याल्लोकवद् विकारः स्यात् ।३५।

पदार्थ—(तु) पूर्वपक्ष की निवृत्ति सूचित करता है (सर्वातिदेशः) स्तोभ सहित साम का अतिदेश होता है (सामान्यात्) सामान्य होने से (लोकवत्) लोक व्यवहार के तुल्य (विकारः स्यात्) अतिदेश होता है ।

भावार्थ—स्तोभाक्षर सहित उत्तरा ऋचाओं में भी सामगान करना जैसे लौकिक गान में गवैये गान को शोभा के लिये अनर्थक वर्णों का प्रयोग करते हैं उसी प्रकार उत्तरा ऋचाओं में भी स्तोभ वर्ण का प्रक्षेप रूप विकार करना चाहिये । यहां शाबर भाष्य में बताया है कि 'ऋक्स्तोभस्वरकालाभ्यासविशिष्टाया गीतेः सामशब्दो वाचकः' ऋचा, स्तोभ, स्वर, काल, अभ्यास, ये सब मिलकर जो विशिष्ट गीति होता है उसका नाम साम है । स्तोभ की निवृत्ति मानने में आवे तो उसके लिये गान में जो विशिष्टता उत्पन्न होती है वह न हो । अतः स्तोभ अक्षर की भी आवृत्ति उत्तरा ऋचा में करनी चाहिये ।

अन्वयं चापि दर्शयति ।३६।

पदार्थ—(च) और (अन्वयम्) अन्वय (अपि) भी (दर्शयति) बताता है ।

भावार्थ—'स्तोभा गेह्याश्चानुयन्ति' इस वाक्य में स्तोभाक्षर और स्वरों की अनुवृत्ति बताई है । गेह्याः अर्थात् स्वर । अतः अन्य ऋचाओं में भी स्तोभाक्षरों का प्रयोग करना चाहिये ।

निवृत्तिर्वाऽर्थलोपात् ।३७।

पदार्थ—(वा) अथवा (निवृत्तिः) स्तोभाक्षर की निवृत्ति है (अर्थलोपात्) अर्थ का लोप हो जाने से ।

भावार्थ—स्तोभाक्षरों का कुछ भी अर्थ न होने से उनका उत्तर ऋचा में लोप मानना चाहिये । यह सूत्र सिद्धान्त पर आक्षेप करता है ।

अन्वयो वाऽर्थवादः स्यात् ।३८।

पदार्थ—(वा) अथवा (अन्वयः) अनुवृत्ति माननी ही चाहिये । (अर्थवादः स्यात्) अर्थवाद स्वार्थ में प्रमाण न होने से ।

भावार्थ—स्तोभाक्षरों की अनुवृत्ति माननी चाहिए । अर्थवाद स्वार्थ

में प्रमाणभूत नहीं होते अर्थात् वे निर्थक होते हैं। उसी प्रकार स्तोत्र अक्षर चाहे निरर्थक रहें परन्तु गान में उनकी आवश्यकता होने से उनका प्रयोग अवश्य करना चाहिए।

स्तोभ का लक्षण—इस अधिकरण के सूत्र—

अधिकं च विवर्णं च जैमिनिः स्तोभशब्दत्वात् ।३९।

पदार्थ—(अधिकं च) और अधिक (विवर्णं च) ऋगक्षर से विलक्षण जो वर्ण हो तो (स्तोभशब्दत्वात्) स्तोभ अक्षर कहलाते हैं (जैमिनिः) ऐसा जैमिनि आचार्य मानते हैं।

भावार्थ—ऋचा में जितने अक्षर हों उनसे जो अधिक अक्षर हों और ऋचा के अक्षरों से विलक्षण हों तो स्तोभ अक्षर कहलाते हैं ऐसा जैमिनि आचार्य मानते हैं। लोकव्यवहार में भी **'प्रकृतार्थानन्वितं कालक्षेपमात्रहेतुं शब्दराशिं स्तोभ इत्याचक्षते'** प्रकृत अर्थ में जिनका सम्बन्ध न हो और केवल कालक्षेप के लिए जिन अक्षरों का प्रयोग किया जाता हो उन्हें स्तोभ अक्षर कहा जाता है। जैसे कि 'इ' के स्थान पर 'आ' 'ई' वर्ण का प्रयोग गीति में होता है वह स्तोभ अक्षर कहलाता है।

नीवार आदि में प्रोक्षण अवघात आदि धर्मों का अनुष्ठान हुआ है इस अधिकरण के सूत्र—

धर्मस्यार्थकृतत्वाद् द्रव्यगुणविकारव्यतिक्रमप्रतिषेधे चोदनानुबन्धः समवायात् ।४०।

पदार्थ—(धर्मस्य) विधीयमान प्रोक्षण आदि धर्म का (द्रव्यगुणविकारव्यतिक्रमप्रतिषेधे) द्रव्य, गुण, विकार, व्यतिक्रम और प्रतिषेध में (चोदनानुबन्धः) विधि प्रमाण सम्बन्ध है। (समवायात्) व्रीहि आदि के स्थान में सम्बन्ध होने से (अर्थकृतत्वात्) धर्म अर्थात् प्रोक्षणादि अपूर्व अर्थ प्रयुक्त होने से।

भावार्थ – **'नैवारश्चरुं निर्वपेत्'** इत्यादि व्रीहि स्थानापन्न नीवार में भी प्रोक्षण आदि जो स्थानिधर्म हैं, वे कर्त्तव्य हैं अर्थात् व्रीहि का जैसे प्रोक्षण करना पड़ता है उसी प्रकार उसके स्थान में प्राप्त हुए नीवर में भी प्रोक्षण, अवहनन आदि धर्म कर्त्तव्य हैं इस प्रकार गुणादि स्थानिधर्म आदेश में भी कर्त्तव्य है।

'परिधि में यूप धर्मों का अनुष्ठान कर्त्तव्य है' इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष सूत्र—

तदुत्पत्तेस्तु निवृत्तिः तत्कृतत्वात् स्यात् ।४१।

पदार्थ—(तु) पूर्वपक्ष का सूचक है (तदुत्पत्तेः) आह्वनीय के परिधान के लिए (निवृत्तिः) यूप धर्मों की निवृत्ति है। (तत्कृतत्वात् स्यात्) यूप के धर्म केवल पशुनियोजन के लिए होते हैं।

भावार्थ—यूप के जो धर्म हैं वे तो केवल पशु नियोजन के लिए ही होते हैं। यूप की ऊंचाई पशु को बांधने के लिए ही होती है। वह परिधि में कर्त्तव्य नहीं, ऐसा पूर्वपक्षवादी का मानना है।

सिद्धान्त सूत्र—

आवेश्येरन् वाऽर्थवत्वात् संस्कारस्य तदर्थत्वात् ।४२।

पदार्थ—(वा) सिद्धान्त को सूचित करता है (आवेश्येरन्) यूप के धर्म परिधि में भी होते हैं (संकारस्य) संस्कार (तदर्थत्वात्) पशु बंधन रूप कार्य में जो नियुक्त होता है उसके लिए ही वे धर्म होने से (अर्थ-वत्वात्) और उनसे ही उनकी सफलता होने से (आवेश्येरन्) यूप के धर्म परिधि में भी करने चाहियें।

भावार्थ—यूप के धर्म जो उछ्राय आदि हैं वे पशुनियोजन के लिए हैं अतः यूप स्थानीय परिधि में भी यूप के जो-जो सम्भावित धर्म होते हैं उन-उन को अवश्य करना चाहिए।

आख्या चैवं तदावेशाद् विकृतौ स्यादपूर्वत्वात् ।४३।

पदार्थ—(आख्या च एवम्) यूप शब्द भी इसी प्रकार है (तदावेशात्) परिव्याण, और अञ्जन रूप संस्कार के आवेश के कारण (विकृतौ) विकृति में भी यूप शब्द है। (अपूर्वत्वात् स्यात्) अपूर्व का निमत्त होने से।

भावार्थ—परिधि में संस्कार रूप शक्यता अवच्छेदक होने से परिधि में यूप शब्द की प्रवृत्ति है ही। इसलिए कि संस्कार निमित्त यूप शब्द परिधि में भी मुख्य है। इससे 'यूपयाज्यमानायानुब्रूहि' इस प्रैष मंत्र में 'परिधये याज्यमानाय' इस प्रकार का ऊह नहीं करना चाहिए। भावार्थ यह है कि

यूप के जो धर्म शक्य हों वे परिधि में करने, परन्तु यूप शब्द के स्थान में परिधि शब्द का प्रयोग नहीं करना।

शृतादि में प्रणीता धर्म का अनुष्ठान करना होता है, इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष सूत्र—

परार्थे न त्वर्थसामान्यसंस्कारस्य तदर्थत्वात् ।४४।

पदार्थ—(परार्थे) प्रधान याग के लिए दधि में और शृत में (न) प्रणीता धर्म नहीं (अर्थसामान्यात्) प्रणीता कार्यकारित्व (तु) भी नहीं (संस्कारस्य) उत्पवनादि संस्कार (तदर्थत्वाद्) हविः श्रपण के लिए होने से।

भावार्थ—अभ्युदयेष्टि में **'शृते चरुम्' 'दधनि चरुम्'** इस प्रकार आम्नान है। शृत तथा दही इन दोनों में प्रणीता धर्म कर्त्तव्य है नहीं, कारण कि वे धर्म हविः श्रपण के लिए होते हैं। **'उत्पवनादिधर्मसंस्कृता आपः प्रणीताः'** उत्पवन आदि धर्म से जो पानी संस्कृत होता है वह प्रणीता कहलाता है। दही और पय(दूध) यह श्रपण के लिए नहीं होते परन्तु ये तो हविष् हैं अतः ये प्रदान के लिए होते हैं। इससे साम्य न होने के कारण उत्पवनादि धर्म दही और घृत में कर्त्तव्य नहीं।

सिद्धान्त सूत्र—

क्रियेरन् वाऽर्थ निर्वृ तेः ।४५।

पदार्थ—(वा) सिद्धान्त पक्ष को सूचित करता है (क्रियेरन्) उत्पवनादि धर्म भी करने चाहियें।(अर्थनिर्वृत्तेः)हविः श्रपण भी दही और पय से निष्पन्न होने से।

भावार्थ—हविः श्रपण भी उन दोनों से होता है, अतः शृत और दही ये दोनों प्रधान याग के लिये होने पर भी उनमें उत्पवनादि धर्म कर्त्तव्य हैं।

बृहद् और रथन्तर धर्म की व्यवस्था है—इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष सूत्र—

एकार्थत्वादविभागः स्यात् ।४६।

पदार्थ—(एकार्थत्वात्) एक ही प्रयोजन होने से (अविभागः स्यात्) अविभाग है।

भावार्थ—ज्योतिष्टोम में विकल्पित पृष्ठस्तोत्र का विधान है। **'बृहत्पृष्ठं भवति रथन्तरं पृष्ठं भवति'** इन दोनों स्थानों पर पृथक्-पृथक् धर्मों

का आम्नान है। जैसे कि **बृहति स्तूयमाने मनसा समुद्रं ध्यायेत् रथन्तरे स्तूयमाने समीलयेत्** बृहस्तोत्र के समय समुद्र का ध्यान करना और रथन्तर स्तोत्र में समलीन करना। इन दोनों धर्मों का एक में समावेश है। कारण कि दोनों स्तोत्रों का कार्य पृष्ठ स्तोत्र रूप एक ही है, ऐसा पूर्वपक्षवादी का कथन है।

सिद्धान्त सूत्र—

निर्देशाद् वा व्यवतिष्ठेरन् ।४७।

पदार्थ—(वा) अथवा (निर्देशात्) निर्देश का भेद होने से (व्यवतिष्ठेरन्) धर्मों की व्यवस्था है।

भावार्थ—निर्देश का भेद है, इससे धर्म की व्यवस्था है। अर्थात् बृहत् के धर्म बृहत् में ही होने चाहियें, रथन्तर में नहीं, और रथन्तर के धर्म रथन्तर में ही होने चाहियें बृहत् में नहीं। **उच्चैर्गेयम् बलवद्गेयम्** उच्चैगान और बलवद् गान यह बृहत् का धर्म है और उच्चैस् न गाना और बलवद् गान न करना यह रथन्तर का धर्म है। इन विरुद्ध धर्मों का एक में समावेश नहीं हो सकता अतः बृहत् और रथन्तर में धर्मों की व्यवस्था है।

काण्व रथन्तर में बृहद् और रथन्तर के धर्मों का समुच्चय है, इस अधिकरण के सूत्र—

अप्राकृते तद्विकाराद् विरोधाद् व्यवतिष्ठेरन् ।४८।

पदार्थ—(अप्राकृते) विकृतिभूत काण्व रथन्तर में (तद्विकारात्) बृहत् और रथन्तर का विकार होने से (विरोधात्) जहां विरोध आवे वहां (व्यवतिष्ठेरन्) व्यवस्था समझनी चाहिये।

भावार्थ—बृहद् और रथन्तर साम के स्थान में काण्व रथन्तर का विधान है उसमें दोनों के धर्मों का समावेश है, परन्तु जहां दोनों के धर्म अशक्य हों, वहां दोनों में से एक के धर्म ही स्वीकार करने चाहियें जैसे कि रथन्तर का 'धीमे से गान' रूप धर्म और बृहद् का उच्चैर्गान रूप धर्म एक में समाविष्ट नहीं हो सकते अतः वहां विकल्प नहीं होना चाहिए।

द्विसामक याग में बृहद् और रथन्तर धर्मों की व्यवस्था है, इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष सूत्र—

उभयसाम्नि चैवमेकार्थापत्तेः ।४९।

पदार्थ—(उभयसाम्नि) दोनों साम जिनमें हैं ऐसे क्रतु में (च) और

(एवम्) काण्व रथन्तरवत् हर एक में धर्मद्वय की प्राप्ति है (एकार्थापत्तेः) पृष्ठ स्तोत्र रूप एक कार्य में प्राप्त होने से।

भावार्थ—गोसव आदि ऋतु में दोनों साम अर्थात् बृहत् और रथन्तर साम की प्राप्ति होती है। अतः प्रत्येक स्तोत्र में दोनों धर्मों की प्राप्ति है।

सिद्धान्त सूत्र—

स्वार्थत्वाद् वा व्यवस्था स्यात् प्रकृतिवत् ।५०।

पदार्थ—(वा) अथवा (स्वार्थत्वाद्) बृहद् और रथन्तर रूप साम के लिए दोनों धर्म होने से (व्यवस्था स्यात्) व्यवस्था है (प्रकृतिवत्) जैसे प्रकृति में अर्थात् ज्योतिष्टोम में साम प्रयुक्त व्यवस्था है, उसी प्रकार यहां भी व्यवस्था समझनी।

भावार्थ—जैसे ज्योतिष्टोम याग में बृहद् के धर्म बृहद् में और रथन्तर के धर्म रथन्तर में ही होते हैं, उसी प्रकार द्विसामक याग में भी व्यवस्था ही समझनी। दोनों धर्मों का सांकर्य नहीं।

सौर्य आदि में पार्वण होम का अनुष्ठान नहीं होता, इस अधिकरण के सूत्र—

पार्वणहोमयोस्त्वप्रवृत्तिः समुदायार्थ-संयोगात् तदभीज्या हि ।५१।

पदार्थ—(पार्वणहोमयोः) वैकृतकर्म में पार्वण होम की (अप्रवृत्तिः) प्रवृत्ति नहीं। (तु) यह शब्द सिद्धान्त पक्ष को सूचित करता है (समुदायार्थ-संयोगात्) दर्शत्रिक और पौर्णमासत्रिक रूप जो अर्थ समुदाय है उसके साथ सम्बन्ध होने से (हि) कारण कि (तदभीज्या) समुदाय को उद्दिष्ट कर इज्या अर्थात् याग कर्त्तव्य है।

भावार्थ—सौर्य याग—यह विकृति याग है। इसमें पार्वण होम कर्त्तव्य नहीं, कारण कि दर्शपूर्णमास रूप प्रकृति याग में तीन का समुदाय पूर्णमास याग में और अन्य तीन का दर्श याग में होता है और इसे उद्दिष्ट करके ही याग किये जाते हैं। सौर्य याग में उक्त त्रिक् न होने से उसमें पार्वण होम कर्त्तव्य नहीं। पर्व शब्द आग्नेय आदि त्रिक रूप संपरक है। दानार्थक पृणाति धातु से पर्व शब्द निष्पन्न होता है। सौर्य याग समुदाय का विकार नहीं परन्तु मात्र अग्नि का ही विकार है, अतः उसमें पार्वण होम कर्त्तव्य नहीं।

कालस्येति चेत् ।५२।

पदार्थ—(कालस्य) पर्वशब्द काल वाचक है। (इति चेत्) जो ऐसी शंका करने में आवे तो इसका उत्तर अगले सूत्र में है।

भावार्थ—'पर्व' शब्द काल वाचक है। तो इसका अनुसरण करते हुए सौर्य याग में पार्वण होम क्यों नहीं करना ? उसका उत्तर आगामी सूत्र में।

नाप्रकरणत्वात् ।५३।

पदार्थ—(न) नहीं (अप्रकरणत्वात्) प्रकरण न होने से।

भावार्थ—काल का यह प्रकरण नहीं, अतः कालवाचक शब्द नहीं। **यथा सैन्धवशब्दस्य नानार्थत्वेऽपि भोजनादिप्रकरणं लवणादितात्पर्यग्राहकं तथा यागत्रिके तात्पर्यग्राहकं प्रकरणम्, कालस्य न प्रकरणम्।** जैसे सैन्धव शब्द भिन्न-भिन्न अर्थ वाला होने पर भी भोजनादि प्रकरण में उसका अर्थ नमक ही होता है, उसी प्रकार पर्व शब्द भिन्न-भिन्न अर्थ वाला होने पर भी प्रकरण से यागत्रिक का ही अर्थ बतलाता है। अतः सौर्य याग में पार्वण होम कर्त्तव्य नहीं।

मन्त्रवर्णाच्च ।५४।

पदार्थ—(च) और (मन्त्रवर्णात्) मंत्र वर्ण भी अनुगृहीत होते हैं।

भावार्थ—'ऋषभं वाजिनं वयं पूर्णमासं यजामहे' यह मंत्र भी पर्व-शब्द का अर्थ समुदाय वाचक करने से अनुकूल होता है।

तदभावेऽग्निवदिति चेत् ।५५।।

पदार्थ—(तदभावे अपि) उसके अभाव होने पर भी (अग्निवत्) सन्निहित अथवा असिन्निहित अग्नि का याग के लिये आवाहन होता है (इति चेत्) जो ऐसा मानने में आवे तो।

भावार्थ—समीप हो या न हो तो भी अग्नि का याग के लिये आवाहन होता है, उसी प्रकार सौर्य याग में त्रिक के अभाव में भी इस नामवाली देवता मानने में आवे तो ? इस शंका का समाधान अगले सूत्र में है—

नाधिकारिकत्वात् ।५६।

पदार्थ—(न) नहीं (अधिकारिकत्वात्) त्रिक के संस्कार के लिए ही पार्वण होम का अधिकार है।

भावार्थ—पार्वण होम प्रकृतिगत त्रिक के संस्कार के लिए ही होता है। त्रिक को उद्दिष्ट करके ही पार्वण होम है। जिसका जहां अधिकार होता है, वहीं, वह उपकार कर सकता है। इसलिये सौर्य याग में पार्वण होम का अधिकार नहीं, अतः वह भी वहां कर्त्तव्य नहीं।

दर्शपूर्णमास में दोनों होमों की व्यवस्था है। इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष सूत्र—

उभयोरविशेषात् ।५७।

पदार्थ—(उभयो:) दोनों में (अविशेषात्) अविशेष करना चाहिए।

भावार्थ—दोनों पार्वण होम पूर्णमास में भी करने तथा दर्शयाग में भी करने। अमुक में अमुक याग ही करना ऐसा कोई नियामक हेतु नहीं जाना जाता, अतः याग करने में व्यवस्था नहीं है, इससे उपर्युक्त रीति से प्रत्येक में दोनों पार्वण होम करने, ऐसा पूर्वपक्ष का मानना है।

सिद्धान्त सूत्र—

यद्भीज्या वा तद्विषयौ ।५८।

पदार्थ—(वा) अथवा (यदभीज्या) जिस नाम का यज्ञ हो (तद्विषयौ) उसका ही उपकारक होता है।

भावार्थ—पौर्णमासी याग में पौर्णमासत्रिक स्मरणात्मक संस्कार होने से 'पूर्णमासाय स्वाहा' कह कर पूर्णमास के लिए पार्वण होम करना और 'अमावस्यायै स्वाहा' कह कर अमावस्या के लिए पार्वण होम करना। इस प्रकार व्यस्थापूर्वक पार्वण होम करना चाहिए।

पूर्वपक्ष—

प्रयाजेऽपीति चेत् ।५९।

पदार्थ—(प्रयाजे अपि) प्रयाजे में भी याग संस्कार रूप है। (इति चेत्) जो ऐसा मानने में आवे तो।

भावार्थ—**'समिधो यजति'** यहाँ समिधादि देवता हैं और याग से देवता संस्कृत होते हैं। **'विष्णुं यजति'** यहां जैसे विष्णु आदि देवता हैं और उनके संस्कार के लिए याग होते हैं, उसी प्रकार समिधादि में भी समझना।

नाचोदितत्वात् ।६०।

पदार्थ—(न) नहीं (अचोदित्वात्) विहित न होने से।

भावार्थ—जिस प्रकार अग्न्यादि यागत्रय हर एक वाक्य से विहित है, और समुदाय का स्मरण है, उसी प्रकार समिधादि देवता का विधान नहीं, इसलिए उसके संस्कार के लिए याग का विधान संभावित नहीं। देवता का

कथन चतुर्थी विभक्ति से अथवा तद्धित प्रत्यय से होता है जैसे कि **यदग्नये सायं जुहुयात्** अथवा **अग्न्योऽष्टाकपालः** इस रीति से समिध में चतुर्थी विभक्ति नहीं उसी प्रकार समिधशब्द के पीछे तद्धित प्रत्यय भी नहीं। अतः समिध देवता का नाम नहीं परन्तु याज का नाम है। इसलिए **'समिधो यजति'** इस वाक्य से केवल याग का ही विधान है। देवता संस्कार का विधान नहीं।

इति मीमांसादर्शनभाष्ये नवमाध्यायस्य द्वितीयः पादः।

अथ मीमांसा दर्शन भाष्ये
नवमाध्यायस्य तृतीयः पादः

विकृति में मंत्रागत व्रीहि आदि शब्दों के ऊह का अधिकरण—

प्रकृतौ यथोत्पत्तिवचनमर्थानामुत्तरस्यां तत्प्रकृतितत्वादर्थे चाकार्यत्वात् ।१।

पदार्थ—(प्रकृतौ) दर्शपूर्णमास में (यथोत्पत्तिवचनम्) जिन पद घटित मंत्रों की उत्पत्ति हो उन पद घटित मंत्रों से ही (अर्थानाम्) अग्न्यादि देवताओं का अभिधान (उत्तरस्याम्) सौर्यादि इष्टि में करना (तत्प्रकृतत्वात्) प्रकृति प्रमाण से विकृति करनी ऐसा अतिदेश शास्त्र होने से (अर्थे) सूर्य प्रकाशन रूप कार्य में (च) और (अकार्यत्वात्) प्रकृति पठित अग्निपद घटित मंत्र का असामर्थ्य होने से सूर्य पद का ऊह करना आवश्यक है।

भावार्थ—**'अग्नये जुष्टं निर्वपामि'** यह देवता विषयक मंत्र है और **व्रीहीणां मेधः सुमनस्यमानः** यह द्रव्य विषयक मंत्र है। विकृति याग में **'सूर्याय जुष्टं निर्वपामि** इस देवता विषयक का **नीवाराणां मेधः सुमनस्यमानः** इस द्रव्य विषयक मंत्र का इस प्रमाण से ऊह न करना चाहिए। इस प्रकार आधे सूत्र से पूर्वपक्ष किया है और आधे में उत्तर इस प्रकार है। सूर्य प्रकाशन रूप कार्य में प्रकृति पठित अग्निपद घटित मंत्र का असामर्थ्य होने से सूर्य पद का ऊह अवश्य करना चाहिए।

लिंगदर्शनाच्च ।२।

पदार्थ—(च) और (लिंगदर्शनात्) लिंग का दर्शन होने से।

भावार्थ—ऐसे लिंग वाक्य भी हैं जिनसे सिद्ध होता है कि सूर्य पद का ऊह करना चाहिए जैसे कि **न माता वर्धते न पिता न भ्राता न स्वसा।** इस इस मंत्र में न वर्धते का अर्थ **'ऊहं न प्राप्नोति'** ऐसा करने में आया है। माता आदि शब्दों का ऊहन नहीं होता यह उपर्युक्त अर्थापत्ति द्वारा ऐसे समझा

जाता जाता है कि अन्य शब्दों का ऊह होता है। अर्थात् सूर्यादि पदों का ऊह जरूर होता है।

पौण्डरीकों में हविः प्रस्तरण मंत्र का ऊह कर्त्तव्य है इस अधिकरण के सूत्र—

जातिनैमित्तिकं यथास्थानम् ।३।

पदार्थ—(जातिनैमित्तिकम्) जाति वाचक दर्भ शब्द में विशेषण भूत 'हरितैः' इस पद का (यथास्थानम्) यथा योग्य ऊह करना चाहिए।

भावार्थ—मौद्गं चरुं निर्वपेत् श्रीकामः इस इष्टि में पौण्डरीकं बर्हिर्भवति इस प्रमाण से श्रवण होता है। प्रकृति याग में बर्हिस्तरण मंत्र अतिदेश से प्राप्त इस प्रकार है—"दर्भैः स्तृणीतं हरितैः सुपर्णैः" यहाँ दर्भ के स्थान में पुण्डरीक शब्द का ऊह हो सकता है और 'हरित' शब्द के स्थान में 'रक्त' शब्द का भी ऊह होता है।

लिंगदर्शनाच्च ।४।

पदार्थ—(च) और (लिंगदर्शनात्) लिंग वाक्य भी है।

भावार्थ—'विश्वेषां देवानामुस्त्राणां छागानां मेदसोऽनुब्रूहि' यहां ऊह से ही मंत्र पाठ है। विशेषण वाचक पद से उत्तर में वचन का पाठ भी ऊह से ही है।

अविकार मेके ऽनार्षत्वात् ।५।

पदार्थ—(एके) कई आचार्य (अविकारम्) ऊह को स्वीकार नहीं करते (अनार्षत्वात्) अपौरुषेयत्व के कारण।

भावार्थ—प्रथम सूत्र के आधे भाग में जो पूर्वपक्ष किया है, उसे दृढ़ करने के लिये यह सूत्र है। ऊह नहीं करना, कारण कि ऐसा करने से मंत्र का अपौरुषेयत्व नष्ट होता है। ऊह अपौरुषेय होता है, अतः प्रकृति प्रमाण से ही पाठ करना चाहिए।

लिंगदर्शनाच्च ।६।

पदार्थ—(च) और (लिंगदर्शनात्) लिंग वाक्य होने से।

भावार्थ—आग्नेय पशु में अग्नये छागस्य वपाया मेदसोऽनुब्रूहि जो ऊह होता हो तो ऊह से ही मंत्र के स्वरूप की सिद्धि होती, तो पीछे अग्नि घटित मंत्र पाठ करना व्यर्थ था। ऊपर के हेतुओं को दोषयुक्त ठहराते हैं।

विकारो वा तदुक्तो हेतुः ।७।

पदार्थ—(वा) सिद्धान्त पक्ष को सूचित करता है अथवा (विकारः)

ऊह करना चाहिए। (तदुक्तः हेतुः) उसके लिए प्रथम सूत्र के अर्थ में हेतु दिया है।

भावार्थ—ऊह तो अवश्य करना चाहिए। उसके लिए प्रथम सूत्र में भी हेतु दिया है। मंत्र भंग से इष्टापत्ति है। ऐसा सिद्धान्तवादियों का मन्तव्य है।

लिंगं मन्त्रचिकीर्षार्थम् ।८।

पदार्थ—(लिंगम्) पूर्वपक्षवादी ने जो लिंग वाक्य बताया है उसका उद्देश्य (मंत्रचिकीर्षार्थम्) मंत्र करने की इच्छा से।

भावार्थ—ऊह अवश्य करना चाहिए। पूर्वपक्षवादी ने जो लिंग वाक्य बताया है उसका उद्देश्य मंत्रत्व करने की इच्छा अर्थात् 'अग्नये छागस्येति' यह मंत्र पाठ है। ऐसा बताने के लिये उक्त लिंग वाक्य है।

नियमो वोभयभागित्वात् ।९।

पदार्थ—(वा) अथवा (नियमः) नियम करने के लिये (उभयभागित्वात्) विकल्प से दोनों मंत्रों के साथ सम्बन्ध होने से।

भावार्थ—जो एक यूप का स्पर्श करे तो 'एष ते वायो इति ब्रूयात् यदि द्वौ एतौ' जो दो यूप हों तो 'ते वायू इति ब्रूयात्' ऐसा द्विवचनान्त पाठ करना। अब ऊह से ही द्विवचनान्त की सिद्धि हो तो 'ऐतौ इति ब्रूयात्' यह वाक्य व्यर्थ हो जाता है और इससे ऊह के अभाव की सिद्धि होती है। इस शंका के समाधान में ऐसा कहा जाता है कि जो यह विधान न हो तो एक वचनान्त और द्विवचनान्त मंत्र पाठ में एक यूप का स्पर्श उभय मंत्रगामी बनता, इसलिए कि विकल्प से दोनों मंत्रों का उपयोग होता है। परन्तु इस विधि से ऐसा नियम बनाने में आता है कि जो एक वचनान्त पाठ हो तो एक यूप का स्पर्श करने और जो द्विवचनान्त पाठ हो तो दो यूपों का स्पर्श करने के लिए विधान व्यर्थ नहीं। भावार्थ यह है कि पौण्डरीकीय हविः प्रस्तरण मंत्र का ऊह आवश्यक है।

अग्नीषोमीय पशु में लौकिक यूप का स्पर्श में प्रायश्चित है इस अधिकरण के सूत्र—

लौकिके दोषप्रसंगाद् अपवृक्ते हि चोद्यते निमित्तेन प्रकृतौ स्यादभागित्वात् ।१०।

पदार्थ—(लौकिके) लौकिक स्पर्श में मंत्र पाठ करना होता है (दोष प्रसंगात्) दोष का सम्बन्ध होने से (अपवृक्ते) निषिद्ध स्पर्शरूप निमित्त में

(चोद्यते हि) मंत्र पाठ का विधान होने से (निमित्ते) निमित्त होने से (प्रकृतौ) प्रकृत में (अभागित्वात्) निषेध का भागी न होने से (न स्यात्) मंत्र पाठ नहीं होता।

भावाथ—ज्योतिष्टोम में अग्नीषोमीय पशुप्रकरण में यूप स्पर्श में प्रायश्चित का श्रवण होने से जैसे कि **'यदि एकयूयमुपस्पृशेत्' 'एष ते वायो इति ब्रूयात्'** यह मंत्र पाठ का रूप प्रायश्चित लौकिक स्पर्श करने में विहित है वैदिक स्पर्श में नहीं। वेद तो स्पर्श का विधान करता है। यदि विधान किया है तो पुनः प्रायश्चित किस रीति से सम्भव है ? अतः उक्त प्रायश्चित लौकिक स्पर्श विषयक है। क्रत्वर्थ—जहां स्पर्श विहित हो वहाँ निषेध प्राप्त नहीं हो सकता।

द्विपशुयाग में पाश सम्बन्धी दो मंत्रों में एकवचनान्त के स्थान पर द्विवचनान्त से ऊह करना चाहिए, इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष—

अन्यायस्त्वविकारेण दृष्टप्रतिघातित्वाद् अविशेषाच्च तेनास्य ।११।

पदार्थ—(तु) पूर्वपक्ष को सूचित करता है (अन्यायः) प्रकृतियाग में जहाँ मंत्र में एक पाश के लिये प्रयोग हेतु ऐसे बहुवचनान्त पद वाले मंत्र का पाठ है। विकृति याग में भी वह मंत्र (अविकारेण) विना विकार प्रयोग करना चाहिये। (दृष्टप्रतिघातित्वात्) कारण कि बाधित अर्थ प्रकृति में ही बताया है। अतः (अविशेषात् च) विकृति याग में भी विशेष न होने से (तेन अस्य) उसी वचन से प्रयोग करना।

भावार्थ—अग्नीषोमीय पशु प्रकरण में इस प्रकार मंत्र पाठ है—**'अदितिः पाशं प्रमोमोक्तु एतम्'** दूसरा मंत्र **'अदितिः पाशान् प्रमोमोक्तु एतम्'** यहां पाश शब्द एक वचन में भी प्रयुक्त है और वहुवचन में भी प्रयुक्त है। एक पशु के लिये एक पाश अर्थात् रशना होती है तो उसके लिए एक-वचन तो योग्य है परन्तु एक के लिये बहुवचन का प्रयोग अयोग्य है। प्रकृति में जहां एक के लिये बहुवचन का प्रयोग किया है तो विकृति याग में, कि जिसमें दो पशु होते हैं और उनके लिये दो रशनायें होती हैं। इसलिये दोनों के लिये भी बहुवचनान्त पद का प्रयोग करना और ऐसे पद वाले मंत्र का पाठ विकृति याग में करना चाहिए। जबकि प्रकृति याग में बाधित अर्थ का प्रतिघात किया है तो विकृति में भी बाधित अर्थ का प्रकृति होने में कोई दोष नहीं। इससे सिद्ध होता है कि दो रशना वाले विकृतियाग में भी **'अदितिः पाशान् प्रमोमोक्तु'** इस मंत्र का पाठ करना चाहिये।

विकारो वा तदर्थत्वात् ।१२।

पदार्थ—(वा) अथवा (विकारः) एकवचनान्त को द्विवचन में रखकर उसका पाठ विकृति में करना (तदर्थत्वात्) इस प्रकार योग्य अर्थ होने से।

भावार्थ—प्रकृति में एकवचनान्त पद वाले को द्विवचन में रखकर उसका पाठ विकृति याग करना। इसलिये दो अर्थ और उनके लिये द्विवचनान्त पद का प्रयोग भी उचित होगा। अतः **अदितिः पाशौ प्रमोमोक्तु** इस प्रकार पाठ करना चाहिये। दो रशनाओं के लिये पाशान् ऐसा वहुवचान्त पाठ करना निरर्थक है। इसलिये वहुवचनान्त पाश पद वाले मंत्र का पाठ न कर द्वित्वबोधक द्विवचनान्त का ऊह कर उसका पाठ करना ऐसा पूर्वपक्षवादी का मानना है।

पूर्वपक्ष—

अपि त्वन्याय्यसम्बन्धात् प्रकृतिवत् परेष्वपि यथार्थं स्यात् ।१३।

पदार्थ—(अपि तु) पूर्वपक्ष को सूचित करता है। (प्रकृतिवत्) प्रकृति के तुल्य (परेषु अपि) विकृति में भी (यथार्थं स्यात्) यथार्थ है (अन्याय्य-सम्बन्धात्) अन्याय्य का सम्बन्ध होने से।

भावार्थ—प्रकृति में एक के लिये जो वहुवचन का प्रयोग करो, यह अन्याय्य है तो उसी प्रकार विकृति में भी करना चाहिए। इसलिए प्रकृतिगत एकवचनान्त में ऊह कर द्विपशुक विकृति याग में मंत्र पाठ का ऊह करने में आता है। उसी रीति से बहुवचनान्त मंत्र का द्विवचनान्त में ऊह कर विकृति में विकल्प से ऊह कर पाठ करना। पाशम् और पाशान् दोनों पदों को पाशौ ऐसे पाठ का ऊह द्विपशुक विकृति याग में करना, ऐसा पूर्वपक्षवादी का मन्तव्य है।

सिद्धान्त सूत्र—

यथार्थं च न्यायस्याचोदितत्वात् ।१४।

पदार्थ—(यथार्थं च) दोनों मंत्रों के अर्थ का बाध न होने से द्विवचनान्त पद छोड़कर पाठ करना (अचोदित्वात्) विहित न होने से।

भावार्थ—पूर्वपक्षवादी विकल्प में दो मंत्रों में से एक-एक के पाठ के द्विवचन में ऊह करना मानते हैं, जबकि सिद्धान्त पक्ष दोनों मंत्रों का द्विवचन का प्रयोग प्रकृति में जैसे इष्ट है, उसी प्रकार दो पाशों में बहुवचनान्त

का पाठ नहीं। अतः उनका भी ऊह करना आवश्यक है अर्थात् बहुवचनान्त का द्विवचन में ऊह करना आवश्यक है।

छन्दसि तु यथादृष्टम् ।१५।

पदार्थ—(छन्दसि तु) वेद में तो (यथादृष्टम्) जैसा देखा जाए वैसा पाठ करने से।

भावार्थ—एक रशना के लिये बहुवचनान्त पाश शब्द का प्रयोग वेद में किसलिये किया ? ऐसा प्रश्न वेद के लिए व्यर्थ है। उसमें तो जिस प्रकार पाठ किया हो उसी प्रकार बोलना चाहिए। वेद के सम्बन्ध में ऐसा तर्क करना कुतर्क है।

अन्याय्यस्याचोदितत्वात् ।१६।

पदार्थ--(अन्याय्यस्य) अर्थ बाध (अचोदित्वात्) अविहित है।

भावार्थ—ऊह करते समय अर्थ का बाध नहीं करना चाहिये। यदि रशना दो हैं तो बहुवचनान्त पद का प्रयोग किसलिये किया जाय ? अर्थ प्रमाण में ऊह करना चाहिये। दो अर्थ हैं इसलिये द्विवचन में ही ऊह करना चाहिये। अग्नीषोमीय पशु में पाशैकत्व और पाश बहुत्व के अभिधायक मंत्रों का विकल्प है, इस अधिकरण के सूत्र—

सिद्धान्त सूत्र—

विप्रतिपत्तौ विकल्पः स्यात् तत्समत्वाद् गुणे त्वन्यायकल्पनैकदेशत्वात् ।१७।

पदार्थ—(विकल्पः स्यात्) विकल्प होता है (तत्समत्वात्)एक वचनान्त और बहुवचनान्त मन्त्रों का प्रकरण समान होने से (विप्रतिपत्तौ) विरोध में (एकदेशत्वत्) अप्रधान होने से (अन्यायकल्पना) विवक्षा के अभाव की कल्पना करनी योग्य है।

भावार्थ—अग्नीषोमीय प्रकरण में **'अदितिः पाशं प्रमोमोक्तु'** और **अदितिः पाशान् प्रमोमोक्तु**—ये दोनों मंत्र प्रकृति में विकल्प रूप में बोलने। पाश एक है और मंत्र गत पाश शब्द बहुवचन अविवक्षित है, ऐसी कल्पना करनी चाहिए। संख्या गौण है और प्रातिपदिक मुख्य है। मुख्यानुसारी कल्पना होनी यही न्याय है।

प्रकरणविशेषाच्च ।१८।

पदार्थ—(च) और (प्रकरणविशेषात्) प्रकरण दोनों मंत्रों के समान हैं। इसलिये एक भी मंत्र का त्याग नहीं होना चाहिये।

पूर्वपक्ष—

उत्कर्षो वा द्वियज्ञस्य ।१९।

पदर्थ—(वा) अथवा (उत्कर्षः) बहुवचनान्त गत पद वाले मंत्र का उत्कर्ष करना द्वियज्ञवत्) द्वियज्ञ में जैसे होता है, उसी प्रकार।

भावार्थ—बहुवचनान्त पद वाले मंत्र का बहु पशुक याग में उत्कर्ष करना अर्थात् वहां उसका पाठ करना। **युवं हि स्थःस्वःपती** इस मंत्र का जैसे **राजपुरोहितौ सायुज्यकामौ यजेतामिति'** इस वाक्य से प्रतिपादित दो यजमान वाले कुलाय नामक याग में उत्कर्ष होता है। वैसे ही यहां भी बहुवचन वाले पदगत मंत्र का उत्कर्ष करना।

अर्थाभावात्तु नैवं स्यात् गुणमात्रमितरत्।२०।

पदार्थ—(अर्थाभावात् तु) द्वित्व विशिष्ट रूप अर्थ बोध का प्रकृत में अभाव होने से (गुणमात्रम् इतरत्) दूसरा गुण मात्र है (नैवं स्यात्) इसलिए ऐसा नहीं होता।

भावार्थ—**'युवं हि स्थः स्वः पतो'** यह मंत्र इस प्रकार नहीं, इसलिये कि विनियोजक विधिहीन नहीं। अतः दृष्टान्त में विषमता है। इसलिये उक्त स्थान में तो उत्कर्ष होगा। पर पाशान् पद वाले उक्त मंत्र का उत्कर्ष नहीं होगा।

द्यावोस्तथेति चेत् ।२१।

भावार्थ—दर्शपूर्णमास प्रकरण पठित जो अनुमंत्रण है **द्यावापृथिव्योरहम्** इत्यादि दृष्टान्त जो देने में आवे तो वह अयोग्य है। इस सम्बन्ध में विशेष अगले सूत्र में बताया गया है।

नोत्पत्तिशब्दत्वात् ।२२।

पदार्थ—(न))नहीं (उत्पत्तिशब्दत्वात्) उत्पत्ति शब्द होने से।

भावार्थ—प्रकृति में **'रशनया यूपं परिव्ययति'** इस स्थान पर पाश का अर्थ बताने वाला शब्द है पर **'न हि दर्शपूर्णमासयोर्द्यावापृथिव्यादीनामुत्पत्तौ शब्दोऽस्ति'** दर्शपूर्णमास में द्यावापृथिवी आदि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में शब्द नहीं। इस प्रकार शबर भाष्य में उल्लेख है इसलिये द्यावा पृथिवी आदि अनुमंत्रण के साथ भी विषमता है। भावार्थ यह निकलता है कि उक्त दोनों मंत्रों का प्रकृति में विकल्प से पाठ करना।

'दर्शपूर्णमास याग में द्विपत्नीक प्रयोग में 'पत्नीं सन्नह्य' इत्यादि मंत्रों का ऊह नहीं। इस अधिकरण के सूत्र—

अपूर्वे त्वविकारोऽप्रदेशात् प्रतीयेत ।२३।

पदार्थ—(अपूर्वे) प्रकृति में (तु) सिद्धान्त सूचक है (अविकारः) अनूह (प्रतीयेत) प्रतीत होता है। (अप्रदेशात्) अस्थान में होने से।

भावार्थ—दर्शपूमासर्णं याग में पत्नी संनह्याज्येनोदेही यह मंत्र है। अब बहुपत्नीक दर्शपूर्णमास के प्रयोग में ऊह करना या नहीं ? इसके उत्तर में बताते हैं कि वहुपत्नीक प्रयोग में पत्नीम् शब्द को बहुवचन में ऊह नहीं करना, कारण कि ऐसा अतिदेश है ही नहीं। जहां अतिदेश होता हो वहाँ ही ऊह हो सकता है।

द्विपत्नीक विकृति याग में भी मंत्र का ऊह नहीं होता, इस अधिकरण के सूत्र—

विकृतौ चापि तद्वचनात् ।२४।

पदार्थ— (विकृतौ च अपि) विकृतिभूत सौर्ययाग में भी (तद्वचनात्) पत्नी मात्र तात्पर्य का विषय होने से ऊह कर्त्तव्य नही।

भावार्थ—विकृति याग अर्थात् सौर्ययाग में भी पत्नी शब्द का ऊह नहीं होता। सौर्ययाग बहु पत्नीक प्रयोग वाला भी होता है इसलिये पत्नी शब्द का द्विवचन में अथवा बहुवचन में ऊह नहीं करना चाहिये। इस स्थान पर संख्या अविवक्षित है केवल पत्नी में ही तात्पर्य है।

सवनीय पशुओं का समान विधान में **'प्रास्मा अग्निम्'** इस मंत्र में ऊह नहीं, इस अधिकरण के सूत्र

अध्रिगुः सवनीयेषु तद्वत्समान-विधानाश्चेत्।२५।

पदार्थ—(अध्रिगुः) अध्रिगु प्रैष मंत्र का भी (सवनीयेषु) सवनीय पशुओं में (तद्वत्) उस प्रकार ऊह नहीं होता (समानविधानाश्चेत्) जो समान विधान हो तो।

भावार्थ— **प्रास्मा अग्नि भरत,** इस मंत्र में अस्मै पद का स्त्रीलिंग और द्विवचन बहुवचन में ऊह नहीं करना। कारण कि यहां भी प्रातिपदिक विभक्ति ही विवक्षित है संख्या विवक्षित नहीं। और कदाचित् विवक्षित हो तो भी छान्दस व्यत्यय से द्विवचन बहुवचन का लाभ हो सकेगा। अतः उक्त पद का भी ज्योतिष्टोम की संस्थाओं में ऊह कर्त्तव्य नहीं।

नीवारों के व्रीहि प्रतिनिधित्व में व्रीहि शब्द का ऊह नहीं इस अधिकरण के सूत्र—

सिद्धान्तसूत्र—

प्रतिनिधौ चाविकारात् ।२६।

पदार्थ—(प्रतिनिधौ च) व्रीहि के अलाभ में नीवार प्रतिनिधि हुये पीछे उनमें (अविकारात्)ऊह किये विना मंत्र का पाठ करना।

भावार्थ—व्रीहि न मिले तो व्रीहि जैसे नीवारों का याग में उपयोग करना तथा मंत्र में नीवार ऊह किये विना ही पाठ करना। **तस्मिन् सीदामृते प्रतितिष्ठ व्रीहीणामेधः सुमनस्यमानः** इस मंत्र में व्रीहीणां' के स्थान पर 'नीवाराणां' यह पाठ करना आवश्यक नहीं।

पूर्वपक्ष—

अनाम्नानादशब्दत्वमभावाच्चेतरस्य ।२७।

पदार्थ— (आनाम्नानात्) जो मंत्र में व्रीहि शब्द का पाठ न होता तो ऊह न होता (इतरस्य अभावात् च अशब्दत्वम्) जो व्रीहि नीवार पद का वाच्य न होता।

भावार्थ—जो मंत्र में व्रीहि शब्द का पाठ न होता और वह नीवार का वाचक न बनता तो ऊह न करना पड़ता परन्तु यह दोनों नहीं अर्थात् व्रीहि शब्द का पाठ है और वह नीवार का वाचक बनता है अतः ऊह करना चाहिये।

तादर्थ्याद् वा तदाख्यं स्यात् संस्कारैरविशिष्टत्वात् ।२८।

पदार्थ--(वा) पूर्वपक्ष की निवृत्ति सूचित करता है (तादर्थ्यात्) नीवार व्रीहि के अर्थ में है (संस्कारैः च अविशिष्टत्वात्) प्रोक्षणादि संस्कार भी उसके द्वारा होते हैं अतः (तदाख्यं स्यात्)व्रीहि शब्द वाच्य है।

भावार्थ—नीवार व्रीहि के लिये है, प्रोक्षणादि संस्कार भी नीवार में कर्त्तव्य हैं अतः यह व्रीहि शब्द वाच्य ही है, जैसे अन्य धान्य व्रीहि वाच्य होते हैं उसी प्रकार नीवार भी। इसलिये ऊह किये विना ही व्रीहि शब्द का पाठ मंत्र में करना चाहिये।

उक्तञ्च तत्त्वमस्य ।२९।

पदार्थ— (च) और (अस्य) इसकी (तत्त्वम्) यथार्थता (उक्तम्) छठे अध्याय में कही गई है।

भावार्थ—छठे अध्याय में व्रीहिगत जो विशेष है वह नीवार में भी है अतः व्रीहि वाच्य नीवार हो सकता है इसलिये ऊह करने की आवश्यकता नहीं।

द्विपशुयाग में 'सूर्यंचक्षुर्गमयतात्' इत्यादि मंत्रों में ऊह नहीं होता, इस अधिकरण के सूत्र—

सिद्धान्त सूत्र—

संसर्गिषु चार्थस्यास्थितपरिमाणत्वात् ।३०।

पदार्थ—(संसर्गिषु) शरीर के साथ सम्बन्ध रखने वाले अर्थों में (अर्थस्य) तेजो रूप अर्थ का (अस्थितपरिमाणत्वात्) अस्थित परिमाणत्व होने से ऊह नहीं होता।

भावार्थ—जिस याग में दो पशुओं का दान होता है उसमें यह मंत्र है 'सूर्यं चक्षुर्गमयतात्' यहाँ दो पशुओं का दान होने से चक्षु शब्द का बहुवचन में ऊह करने की कुछ भी आवश्यकता नहीं। कारण कि गोलक का नाम चक्षु नहीं परन्तु देखने की शक्ति का नाम चक्षु है, वह तेज एक ही है और उसकी सूर्य के साथ उपमा दी जाती है। भावार्थ यह है कि सूर्य जिस प्रकार प्रकाश देता है उसी चक्षु को तेज प्रदानकर पदार्थों का ज्ञान कराता है। तेज एक ही होने से बहुवचन में ऊह करने की आवश्यकता नहीं।

लिंगदर्शनाच्च ।३१।

पदार्थ—(च) और (लिंगदर्शनात्) लिंग वाक्य का दर्शन होने से।

पदार्थ—न माता वर्धते न मज्जा न नाभिर्न प्राणः इत्यादि मंत्र में माता, मज्जा, नाभि और प्राण शब्द का ऊह नहीं होता अर्थात् वे द्विवचन या बहुवचन में ऊह को प्राप्त नहीं होते, उसी प्रकार चक्षु आदि शब्द भी ऊह नहीं प्राप्त करते।

द्विपशु याग में अध्रिगु प्रैष में एकधा शब्द का अभ्यास होता है इस अधिकरण के सूत्र—

सिद्धान्त सूत्र—

एकधेत्येकसंयोगादभ्यासेनाभिधानं स्याद-सर्वविषयत्वात् ।३२।

पदार्थ—(एकधा इति) एकधा इस शब्द का (अभ्यासेन अभिधानं स्यात्) अभ्यास से अभिधान करना चाहिये (एकसंयोगात्) एक समय के उच्चारण से (असर्वविषयत्वात्) सर्व पशुओं के साथ सम्बन्ध न हो सकने से।

भावार्थ—एकधाऽस्य त्वचमात्स्यात्' एक रीति से पशु की त्वचा का स्पर्श करना, जिस याग में बहुपशुओं का दान होता हो उसमें एकधा शब्द की आवृत्ति करनी चाहिये। अधिक पशुओं का स्पर्श एक मनुष्य एक ही साथ नहीं कर सकता।

पूर्वपक्ष का सूत्र—

अविकारो वा बहूनामेककर्मवत् ।३३।

पदार्थ—(वा) अथवा (अविकारः) अभ्यास करने की आवश्यकता नहीं (बहूनाम् एककर्मवत्) वहु का भी एक कर्म हो सकने से ।

भावार्थ—जिस प्रकार एक ही पुरुष एक ही समय में अनेक गायों, को एक रीति से पानी आदि जलाशय में पिला सकता है उसी प्रकार एक ही पुरुष अनेक पशुओं का एक क्षण में स्पर्श कर सकता है। अतः 'एकधा' शब्द का अभ्यास करने की आवश्यकता नहीं । भावार्थ यह है कि एकधा शब्द की आवृत्ति नहीं करनी ।

समाधान सूत्र—

सकृत्वं चैकध्यं स्यात् एकत्वात् त्वचोऽनभिप्रेतं
तत्प्रकृतित्वात् परेष्वभ्यासेनैव
विवृद्धावभिधानं स्यात् ।३४।

पदार्थ—(एकध्यं सकृत्वं च) एकध्य अर्थात् एक प्रकार और एक समय ऐसा बोध होता है, इससे काल का बोध नहीं होता (एकत्वम् त्वचः) त्वच एक होने से (अनभिप्रेतम्) काल की एकता सिद्ध होने से कष्ट नहीं (तत्प्रकृतित्वात्) प्रकृति याग में एकधा शब्द की आवृत्ति आवश्यक नहीं परन्तु (परेषु अभ्यासेन) विकृति याग में अभ्यास की आवश्यकता है। (विवृद्धौ अभिधानं स्यात्) कारण कि उसमें बहुपशुदेय होने से अभ्यास के अभिधान की आवश्कता है ।

भावार्थ—प्रकृति याग में एक पशु देय रूप होनें से उसमें एकधा शब्द की आवृत्ति करने की आवश्यकता नहीं पर विकृति याग में पशुओं की वृद्धि होने से एकधा शब्द की आवृत्ति करनी ही चाहिये । यह सिद्धान्त पक्ष है ।

द्विपश्वादि पशुविकृति याग में मेधपति शब्द का देवतानुसार ऊह करना, इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष सूत्र—

मेधपतित्वं स्वामिदेवतस्य समवायात् सर्वत्र च प्रयुक्तत्वात् तस्यान्यायनिगदत्वात्सर्वत्रैवाविकारः स्यात् ।३५।

पदार्थ—(मेधपतित्वम्) मेध का स्वामीपन (स्वामिदेवतस्य) यजमान और देवता का है (समवायात्) यजमान और अग्नीषोमौ दोनों देवता मिल कर तीनों में स्वामीपन विद्यमान होने से (सर्वत्र च प्रयुक्तत्वात्) सर्व देशों में यजमान और देवता में ही यज्ञ का स्वामीपन प्रयोग होने से (तस्य अन्याय-निगदत्वात्) एक यजमान और दो देवता मिलकर तीनों में एक वचन अथवा द्विवचन का प्रयोग होना अन्याय है। (सर्वत्र एव अधिकारः स्यात्) प्रकृति में और विकृति में ऊह किये विना ही प्रयोग करना चाहिये।

भावार्थ—मेध अर्थात् यज्ञ। मेध के स्वामी देवता और यजमान होते हैं। यजमान एक है और अग्नीषोम रूप देवता दो हैं। 'आशासाना मेधपतिभ्याम् मेधम्' यहाँ मेधपति शब्द को द्विवचन में रक्खा है। और किसी शाखा में आशासना मेधपतये मेधम् यहां मेधपति शब्द एक वचन में रक्खा है। ये दोनों प्रयोग ठीक नहीं कारण कि एकवचन से अथवा द्विवचन से तीन का बोध नहीं होता। इस प्रकार बन्धित अर्थ का कथन करने से निगद अन्याय्य ठहरता है, अतः प्रकृति में और विकृति में ऊह किये विना ही प्रयोग करना अर्थात् वचन को अविवक्षित समझना।

अन्य पूर्वपक्ष—

अपि वा द्विसमवायोऽर्थान्यत्वे यथासंख्यं प्रयोगः स्यात् ।३६।

पदार्थ—(अपि वा) अथवा (द्विसमवायः) द्विवचनान्त पद का प्रयोग (अर्थान्यत्वे) देवता तात्पर्य वाला होने से जो एकवचनान्त प्रयोग हो तो यजमान तात्पर्यक होने से (यथासंख्यं प्रयोगः स्यात्) संख्या प्रमाण से प्रयोग समझना चाहिये।

भावार्थ—अथवा देवता का तात्पर्य सखी द्विवचन का प्रयोग है, कारण कि प्रकृत में अग्नि और सोम दो देवता हैं। जो एकवचन का प्रयोग हो तो यजमान का तात्पर्य रखकर प्रयोग किया है ऐसा समझना, कारण यजमान एक है। देवता की वृद्धि अर्थात् दो से अधिक देवता हों तो बहुवचनान्त प्रयोग अर्थात् मेधपतिभ्यः ऐसा प्रयोग भी करना।

तीसरा पक्ष—

स्वामिनो वैकशब्द्यादुत्कर्षो देवतायां स्यात् पत्न्या द्वितीयशब्दः स्यात् ।३७।

पदार्थ— (वा) अथवा (स्वामिनः) दोनों मंत्रों में यजमान रूप स्वामी का ही ग्रहण है। (ऐकशब्द्यात्) एकार्थ प्रतिपादक शब्द का प्रयोग होने से (देवतायाम्) जो देवता वाच्य हो तो (उत्कर्षः स्यात्) एक वचनान्त पद का उत्कर्ष करना चाहिए (पत्न्या द्वितीयः शब्दः स्यात्) यजमान वाच्य हो तो द्विवचनान्तपद वाले मंत्र में पत्नी के साथ यजमान समझने से द्विवचन भी यथार्थ हो सकता है।

भावार्थ—मेधपति शब्द से यजमान का ही ग्रहण समझना। यजमान एक है अतः एकवचनान्त का प्रयोग योग्य है, और जहां द्विवचनान्त प्रयोग है, वहां पानी सहित यजमान का बोध होता है ऐसा समझना जो मेधपति से देवता का बोध हो तो एकवचनान्त पद वाले मंत्र में उत्कर्ष करना पड़ेगा अर्थात् एकवचन के बदले में द्विवचन का प्रयोग करना होगा।

सिद्धान्त सूत्र—

देवता तु तदाशीष्ट्वात्सम्प्राप्तत्वात्स्वामिन्यनर्थिका स्यात् ।३८।

पदार्थ—(देवता तु) मेधपति पद का वाच्य देवता (तदाशीष्ट्वात्) देवता को उद्दिष्टकर मे होने से स्वामिपरक मानने में आवे तो (सम्प्राप्तत्वात्) यजमान के स्वत्व का मेध में प्राप्त होने से (अनर्थिका स्यात्) मेधं-मेधपतिभ्यामाशासाना, यह वाक्यार्थ अनर्थक हो जाय।

भावार्थ—मेधपति शब्द का अर्थ देवता ही समझना। कारण कि देवता को उद्दिष्ट कर जो त्याग होता है, यजमान के स्व का त्याग यजमान को उद्दिष्ट कर सम्भव नहीं होता तथा मेधं मेधपतिभ्यामा शासाना यह वाक्य भी मेधपति का अर्थ यजमान करने से निरर्थक होता है। अतः मेधपति शब्द का अर्थ देवता भी होता है।

उत्सर्गाच्च भक्त्या तस्मिन् पतित्वं स्यात्।३९।

(पदार्थ) स्वर और (उत्सर्गात्) यजमान का देवता को उद्दिष्ट कर उत्सग करने से देवता ही मेधपति है। (तस्मिन्) यजमान में (भक्त्या) गौण-वृत्ति से (पतित्वं स्यात्) स्वामीपन है।

भावार्थ—देवता को उद्दिष्टकर यजमान उत्सर्ग करता है अतः देवता ही मेधपति है। यजमान में जो मेधपतित्व कहलाता है, वह तो अमुख्य वृत्ति से है। भावार्थ यह है कि देवता यह मुख्य मेधपति है और यजमान अमुख्य मेधपति है।

एकस्तु समवायात् तस्य तल्लक्षणत्वात् ।४०।

पदार्थ—(एकः तु) जो एकवचनान्त प्रयोग है उसका विकृति में उत्कर्ष करना नहीं पड़ता (समवायात्) एक से देवतागण बोधित होने से (तस्य) गण का (तल्लक्षणत्वात्) एक वचन से बोधित होना, यह लक्षण होने से।

भावार्थ—'मेधपतये' ऐसा एक वचनान्त पाठ है उससे देवता का गण बोधित होता है। इससे बहुदेवताक विकृति याग में एकवचनान्त पद का उत्कर्ष भी करने में नहीं आता।

संसर्गित्वाच्च तस्मात् तेन विकल्पः स्यात् ।४१।

पदार्थ— (च) और (तस्मात्) इसलिये (संसर्गित्वात्) दोनों मंत्रों का प्रकृति याग में सम्बन्ध होने से (तेन) एकार्थ वाचक भी होने से (विकल्पः स्यात्) दोनों मंत्रों का विकल्प है।

भावार्थ— मेधपति शब्द देवता परक होने से और देवता गण वाचक एक वचनान्त पद भी हो सकने से दोनों मंत्र प्रकृति के सम्बन्धी हैं और प्रकृति में उनका विकल्प है।

एकत्वेऽपि न गुणापायात् ।४२।

पदार्थ—(एकत्वे अपि) एकत्व की विवक्षा हो तो भी (न) प्रकरण में से उत्कर्ष नहीं होता (गुणापायत्) एकत्वरूप गुण की अविवक्षा से।

भावार्थ—एक वचनान्त पद से गुणरूप एकत्व की विवक्षा न करने से दोनों मन्त्रों का प्रकरण में निवेश हो सकता है। और एकत्व की विवक्षा करे तो भी उपर्युक्त रीति से उत्कर्ष करना नहीं रहता कारण कि बहुदेवताक विकृति याग में एकवचनान्त पद से देवता गण का बोध होता है। इससे देवता प्रमाण में मेधपति शब्द का ऊह करना यही सिद्धान्त पक्ष में रहस्य है। बहुदेवत्य पशु में एकवचनान्त मेधपति शब्द का ऊह होता है, यह अधिकरण पूर्वपक्ष सूत्र—

नियमो बहुदेवते विकारः स्यात् ।४३।

पदार्थ—(नियमः) द्विवचनान्त का ही अतिदेश होता है (बहुदेवते) बहुदेवताक विकृति याग में (विकारः स्यात्) ऊह होता है।

भावार्थ—बहुदेवताक विकृति याग में द्विवचनान्त मेधपतिभ्याम्' इस शब्द का ही ऊह होता है। इसका प्रकृति याग में अर्थ समवेत है। द्विवचनान्त का बहुवचनान्त में ऊह करना।

सिद्धान्त सूत्र—

विकल्पो वा प्रकृतिवत् ।४४।

पदार्थ—(वा) अथवा (विकल्पः) विकल्प से समावेश होता है प्रकृति-वत्) प्रकृति की भांति।

भावार्थ—प्रकृति में जैसे विकल्प से समावेश होता है वैसे विकृति में भी द्विवचनान्त का बहुवचनान्त रूप में ऊह होता है।

एकादशिनी में एक वचनान्त मेध शब्द का ऊह होता है यह अधिकरण

अर्थान्तरे विकारः स्यात् देवतापृथक्त्वात् एकाभिसमवायात् स्यात् ।४५।

पदार्थ—(अर्थान्तरे) भिन्न २ देवताक याग समुदाय में (विकारः स्यात्, ऊह होता है (देवतापृथकत्वात्) भिन्न २ देवता होने से (एकाभिसमवायात्) एक तद्धित प्रत्यय वाच्य देवता न होने से।

भावार्थ—बहुदेवताक याग में और वह देवता भिन्न २ तद्धित प्रत्यय से ही प्रतीत होनें से एकवचनान्त मेधपति वाले मंत्र का बहुवचनान्त में ऊह करना चाहिये।

इति मीमांसादर्शनभाष्ये नवमाध्यायस्य तृतीयः पादः' ९।३।

अथ नवमाध्यायस्य चतुर्थः पादः

षड्विंशतिरस्य वङ्क्रयः इत्यादि में समास का ऊह करना होता है, इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष—

षड्विंशतिरभ्यासेन पशुगणे तत्प्रकृतित्वाद्गुणस्य प्रविभक्तत्वादविकारे हि तासामकात्स्न्येंनाभिसम्बन्धो विकारान्न समासः स्यादसंयोगाच्च सर्वाभिः ।१।

पदार्थ—(पशुगणे) द्विपशुक याग में (षड्विंशतिः अभ्यासेन) षड्विंशति शब्द का अभ्यास करना चाहिये (तत्प्रकृतित्वाद् गुणस्य प्रविभक्तत्वात्) पशुगण की प्रवृत्ति अग्नीषोमीय याग होती है। और प्रकृति में एक पशु होता है तथा एक पशु के शरीर में २६ वंक्रियाँ होती हैं। हर एक पशु की अस्थि का २६ संख्यारूप गुण होता है। (तासाम् अकात्स्न्र्त्येन सम्बन्धः) जो अभ्यास करने में न आवे तो २६ संख्या रूप गुण का सम्बन्ध दो पशुओं में सम्पूर्ण नहीं हो सकता। (न समासः) दो पशुओं में ५२ शब्दों का समास नहीं करना। (विकारात्) ऐसा विचार करने से प्रकृतिगत शब्द की अपेक्षा अत्यन्त विलक्षण शब्द प्राप्त होता है। (असंयोगात् च सर्वाभिः) और किसी भी एक पशु के ५२ वंक्रियों का सम्बन्ध नहीं होता।

भावार्थ—इस अधिकरण में वंक्रि शब्द खास ध्यान खींचता है। वंक्रि शब्द का अर्थ अधिकरण मात्रा में भी माधवाचार्य ने इस प्रकार किया है—**'वंक्रयो वक्राणि पशवस्थीनि तानि अस्य पशोः षड्विंशतिसंख्यानि'** वंक्रि अर्थात् यज्ञ में देय पशु के पृष्ठ भाग की वक्र २६ अस्थियाँ। अग्नीषोमीय याग में एक पशु का दान होता है और विकृति याग में दो पशुओं का दान होता है अतः जब इन पशुओं का दान करने में आवे तो षड्विंशति शब्द दो समय उच्चारण करना चाहिये, कारण कि दो पशु हैं। दो पशुओं की ५२ वंक्रियाँ हैं परन्तु शब्द का प्रयोग नहीं करना, कारण कि ऐसा करने से प्रकृति से भिन्न ही शब्द बन जाता है। और यदि ऐसा समझा जाय कि एक पशु के

५२ वंक्रियाँ हैं, यह तो नितान्त असत्य है। अतः षड्विंशति शब्द का अभ्यास करना चाहिये ऐसा एक पूर्वपक्षवादी का मत है।

अभ्यासेऽपि तथेति चेत् ।२।

पदार्थ—(अभ्यासे अपि) अभ्यास में भी (तथेति चेत्) वही है जो ऐसा कहें तो—

भावार्थ—'षड्विंशतिरस्य वंक्रयः' इस वाक्य का अभ्यास करने से भी अप्राकृतत्व रूप दोष तो आता ही है, कारण कि प्रकृति में ऐसी रीति से उक्त वाक्य का दो समय पाठ नहीं ऐसी शंका करने में आवे तो उसका उत्तर अगले सूत्र में है—

न गुणादर्थकृतत्वाच्च ।३।

पदार्थ—(न) नहीं (अर्थकृतत्वात् च) अभ्यास करने से सभी वंक्रियों का सम्बन्ध दोनों पशुओं के साथ समझा जा सकता है (गुणात्) समास करने से ऐसा नहीं होता।

भावार्थ—अभ्यास करने से दो पशुओं की ५२ वंक्रियाँ समझी जा सकती हैं इसलिये अभ्यास सार्थक है। शब्द—यह धर्म है और अभ्यास करना शब्द का धर्म है। 'द्वापञ्चाशत्' ऐसा कहने से प्रधानभूत 'षड्विंशतिः' शब्द का बोध होता है। अभ्यास पक्ष में प्रधान की रक्षा होती है जबकि समास पक्ष में उसकी रक्षा नहीं होती। अतः अभ्यास करना ही उचित है।

समासेऽपि तथेति चेत् ।४।

पदार्थ—(समासेऽपि) समास में भी (तथाइति चेत्) वही है, जो ऐसा कहें तो—

भावार्थ—शब्द का मुख्य प्रयोजन अर्थ की स्मृति होनी ही है। अर्थ स्मरण के लिये ही शब्द का प्रयोग होता है। द्विपञ्चाशत्' शब्द के प्रयोग से भी अर्थ का स्मरण तो होता है और अतिदेश शास्त्र भी अनुकूल होता है। जो ऐसा कहने में आवे तो उसका उत्तर अगले सूत्र में है।

नासम्भवात् ।५।

पदार्थ—(न) नहीं (असंभवात्) संभवित न होने से।

भावार्थ—दोनों को जोड़कर 'द्विपञ्चाशद्' शब्द का प्रयोग करने से अतिदेशशास्त्र अनुकूल नहीं होता। 'प्रकृतिवद् विकृतिः कर्त्तव्या' उस शास्त्र प्रमाण से द्विपञ्चाशद्' शब्द प्रकृति प्रमाण नहीं अतः इस प्रमाण से कथन का सम्भव नहीं।

स्वाभिश्च वचनं प्रकृतौ तथेह स्यात् ।६।

पदार्थ—(प्रकृतौ) अग्नीषोमीय में (स्वाभिः वचनं च) स्व सम्बन्धी वंक्रि वचन है। (तथा इह स्यात्) उस प्रकार अभ्यास हो सकता है।

भावार्थ—प्रकृति में एक पशु के ६ वंक्रियाँ विशेषण रूप में बताईं गई हैं अभ्यास करने से यह भाव बराबर रहता है। समास पक्ष में तो समुदाय विशेष रूप में हो जाने से पशु के प्राधान्य का बोध होता है।

सिद्धान्त सूत्र—

वङ्क्रीणां तु प्रधानवत्वात् समासेनाभि-धानं स्यात् प्राधान्यमध्रिगोस्तदर्थत्वात् ।७।

पदार्थ—(वंक्रीणाम्) गिनने में वंक्रियों का प्राधान्य हैं। पशु का नहीं। (अध्रिगोः तदर्थत्वात्) अध्रिगुप्रैष का भी यही भाव है। (प्रधानवत्वात्) वंक्री को प्रधानत्व होने से त्समासाभिधानात्) समास का कथन करना इष्ट है।

भावार्थ-- २६ वंक्रियाँ लाते हैं, ऐसा गिनने में पशु का प्राधान्य नहीं परन्तु वंक्रियों का है और दो पशुओं की वंक्रियाँ ५२ हैं ऐसा समास कर कहने में भी वंक्री की प्रधानता सूचित होती है। अतः दोनों का अर्थात् दो षड्-विंशति का द्वापञ्चाशत् ऐसा समासकर उक्त वाक्य उच्चारण करना, यह सिद्धान्तवादी का मन्तव्य है।

तासां च कृत्स्नवचनात् ।८।

पदार्थ—(च) और (तासाम्) उन वंक्रियों का (कृत्स्नवचनात्) सम्पूर्णता से गणना वचन होने से।

भावार्थ—'ता अनुष्ठ्यो च्यावयतात्' इस वाक्य में ताः पद से वंक्रियों का परामर्श होता है अतः वंक्रियाँ ही प्रधान हैं।

अपि त्वसन्निपातित्वात् पत्नीवदाम्नातेन अभिधानं स्यात् ।९।

पदार्थ—(अपि तु) यह शब्द पक्षान्तर को वताता है (आम्नातेन) प्रकृति पाठ से (अभिधानं स्यात्) अभिधान होता है। (असन्निपातित्वात्) असंनि-कृष्ट होने से (पत्नीवत्) 'पत्नीं संनह्य इत्यादि की भांति।

भावार्थ—जैसे वहुपत्नीक प्रयोग में पत्नीं सन्नह्य' इस स्थान में वचन अविवक्षित है। उसी प्रकार प्रकृत स्थान में भी मंत्र पाठ प्रकृति में और विकृति

में अदृष्ट अर्थ के लिये ही है। कारण कि मंत्र से स्मृति में आने वाली क्रिया संनिकृष्ट नहीं मंत्रोच्चारण के समय ही वंक्रियों को गिनना नहीं होता।

विकारस्तु प्रदेशत्वाद् यजमानवत् ।१०।

पदार्थ—(तु) पूर्वपक्षान्तर का सूचक है (विकारः) ऊह (प्रदेशत्वात्) प्रदेश वृत्ति से (यजमानवत्) यजमान की भाँति।

भावार्थ—षड्विंशतिरस्य वंक्रयस्ता अनुष्ठ्योच्च्यावयतात्' इस वाक्य से वंक्रि की इयत्ता की प्रतीति होती है। २६ संख्या का ही वाचक यह शब्द नहीं अतः ऊह करना चाहिये द्वियजमानक प्रयोग में 'यजमानौ' ऐसा ऊह करना पड़ता है उसी प्रकार षड्विंशति शब्द का ऊह करना चाहिये।

अपूर्वत्वात् तथा पत्न्याम् ।११।

पदार्थ—(तथा) उसी प्रकार (अपूर्वत्वात्) अपूर्व अर्थ होने से (पत्न्याम्) पत्नी में ऊह करना नहीं होता।

भावार्थ—'पत्नीं संनह्य' उस स्थान पर पत्नी शब्दोत्तरवती एक वचन के प्रयोग में अपूर्व अर्थ होने से ऊह नहीं करना कारण कि केवल प्रकृति और केवल प्रत्यय का प्रयोग नहीं होता। अतः अविवक्षित एक वचन का प्रयोग किया है। परन्तु षड्विंशतिरस्य इत्यादि मंत्र का फल तो इष्ट है। इस मंत्र से २६ वंक्रियों का गिनना स्मरण होता है। भले ही भिन्न समय में यह मंत्र उच्चरित किया हो और भिन्न समय में गणना की जाय। जैसे राजा की आज्ञा कालान्तर में लोग सुनते हैं और इस आज्ञा का अनुष्ठान जब आवश्यकता हो तब उसी आज्ञा को स्मरण कर सकते हैं। अतः उक्त मंत्र का ऊह अवश्य करना चाहिये।

आम्नातस्त्वविकारात्संख्यासु सर्वगामित्वात् ।१२।

पदार्थ—(तु) शब्द पक्ष का उत्थापन करता है। (आम्नातः) प्रकृति में प्रातिपदिक शब्द जैसी रीति से आम्नात है। (अविकारात्) उसी रीति से ऊह किये विना षड्विंशति शब्द का पाठ करना (संख्यासु) संख्या वाचक वचन में विकार करना। (सर्वगामित्वात्) वैसा करने से सब वंक्रियों का कथन हो सकेगा।

भावार्थ—प्रकृति में षड्विंशति शब्द है वैसे ही विकृति में स्थिर रखना और उसके उत्तर में संख्या वाचक एक वचन में विकार करना इसलिये कि षड्विंशतिर्वंक्रयोऽस्य इस रीति से पाठ रखना। द्विवचन रखने से दोनों पशुओं की ५२ वंक्रियों का बोध हो सकता है।

संख्या त्वेवं प्रधानं स्याद् वंक्रयः पुनः प्रधानम् ।१३।

पदार्थ— (तु) पक्ष का दूषण सूचित करता है। (एवं संख्या प्रधानम् स्यात्) इस प्रकार संख्या का ऊह करने से संख्या प्रधान होगी। (वंक्रयः पुनः प्रधानम्) वास्तव में वंक्रि प्रधान हैं।

भावार्थ—संख्या का ऊह करने से संख्या प्रधान रूप से समझी जाती है और वास्तव में तो वंक्रियां ही प्रधान हैं। अतः वचन का ऊह करना उचित नहीं।

अभ्यासो वाऽविकारात् स्यात् ।१४।

पदार्थ—(वा) अथवा (अभ्यासः स्यात्) अयं पद का अभ्यास करना (अविकारात्) प्राकृत षड् विंशति शब्द के जो प्रत्यय विशिष्ट हैं उनका विकार न होने से।

भावार्थ—केवल 'अयम्' पद का ही अभ्यास करना प्रकृतिगत प्रत्यय विशिष्ट षड्विंशतिः पद का विकार नहीं करना। ऐसा करने से प्रकृति में श्रूयमाण वर्ण का बोध नहीं होगा।

पशुस्त्वेवं प्रधानं स्यादभ्यासस्य तन्निमित्तत्वात् तस्मात् समासशब्दः स्यात् ।१५।

पदार्थ—(तु) सिद्धान्त पक्ष को सूचित करता है (एवं पशुप्रधानं स्यात्) ऐसा अभ्यास करने से पशु प्रधान रूप में होगा (अभ्यासस्य) अभ्यास करने में (तन्निमित्तत्वात्) पशु निमित्त होने से (तस्मात्) अतः (समास शब्दः स्यात्) समास शब्द का पाठ करना ही योग्य है।

भावार्थ—'अयं' पद का अभ्यास करने से पशु की प्रधानता समझी जाती है। कारण कि 'योग्यः पशुः षड्विंशतिर्वंक्रीकः ऐसा वाक्यार्थ होता है। अभ्यास करने में भी पशु ही निमित्त बनता है। वास्तव में वंक्रियाँ प्रधान हैं अतः समास अर्थात् २६ का दुगना कर द्वापञ्चाशद् शब्द का पाठ करना ही उचित है। इसलिये इस अधिकरण का यही भावार्थ है कि षड्विंशति शब्द का समास करके ऊह करना।

चतुस्त्रिंशद्वाजिनः इत्यादि वचन से आश्वमेधिक सवनीय अश्व का चतुस्त्रिंशत् वंक्रि रूप विशेष वचन है।

पूर्वपक्ष का सूत्र—

अश्वस्य चतुस्त्रिंशत्तस्य वचनाद्वैशेषिकम्।१६।

पदार्थ—(अश्वस्य चतुस्त्रिशत्) यह मंत्र वाक्य (तस्य वचनात्) ३४ वंक्रियों का प्रकाश करने वाला होने से (वैशेषिकम्) खास अश्व के लिये ही है।

भावार्थ—अश्वमेध यज्ञ में एक अश्व और अन्य दो तूपर और गोमृग सवनीय पशु हैं। उनमें 'अश्वस्य चतुस्त्रिशत्' यह खास अश्व परक ही है और षड्विंशतिरस्य वंक्रयः ये जो अग्नीषोमीय में बताई हैं वह अतिदेश शास्त्र से यह भी प्राप्त है। तूपर और गोमृग इन दोनों पशुओं की वंक्रियां ५२ हैं। ऐसा प्रकाश समास कर कहना और अश्व की ३४ वंक्रियां उक्त वचन से प्रकाशित होती हैं।

आश्वमेधिक सवनीय अश्व के 'न चतुस्त्रिशत्' इस वचन से समस्त ऋचाओं का निषेध है।

सिद्धान्त सूत्र—

तत्प्रतिषिध्य प्रकृतिः नियुज्यते सा चतुस्त्रिशद्वाच्यत्वात् ।१७।

(तत्प्रतिषिध्य) वैशेषिक वचन का प्रतिषेध कर (प्रकृतिः) अतिदेश शास्त्र विहित सामासिक वचन (नियुज्यते) विहित किया जाता है (सा) वे (चतुस्त्रिशद्वाच्यत्वम्) चौंतीस संख्या का भी वाच्य होने से।

भावार्थ—'न चतुस्त्रिशद् इति ब्रूयात्' इस वचन से पूर्वोक्त विशेष वचन कहा जाता है अर्थात् ८६ वंक्रियां तीन पशुओं में मिलकर होती है अतः ८६ यह सामासिक बोलना। इनमें ३४ संख्या का वाच्यार्थ भी आ जायगा: अतिदेश शास्त्र एक पक्ष में अर्थात् विकल्प में वैशेषिक वचन का वारण करता है।

पक्षान्तर—

ऋग्वा स्यात् आम्नातत्वात् अविकल्पश्च न्यायः ।१८।

पदार्थ—(वा) अथवा (ऋक् स्यात्) समस्त ऋचा का विधान है (आम्नातत्वात्) प्रकरण में पाठ होने से (च) और (अविकल्पः) उचित है।

भावार्थ—प्रतिषेध किये पीछे जो वैशेषिक प्राप्त होता है वह सामासिक संख्या का प्रयोजन नहीं, परन्तु उस स्थान पर समस्त ऋचा का विधान है कारण कि प्रकरण में उस ऋचा का पाठ है। वैशेषिक वचन का विकल्प

मानना ठीक नहीं अतः अविकल्प ही मानना चाहिये। सम्पूर्ण ऋचा इस प्रकार शाबर भाष्य में उद्धृत की गई है— "चतुस्त्रिंशद्वाजिनो देवबन्धोर्वङ्क्रीरश्वस्य स्वधितिः समेति अच्छिद्रा गात्रा वयुना कृणोत परुष्परुरनुघुष्या विशस्ता

तस्यां तु वचनादैरवत् पदविकारः स्यात् ।१९।

पदार्थ—(तस्यां तु) वह ऋचा तो (वचनात्) उक्त निषेध वचन से (एरवद्)'न गिरेति ब्रूयात् एरं कृत्वोद्गापयेत्' इस स्थल की भांति (पदविकारः स्यात्) चतुस्त्रिंशत् पद के स्थान में षड्विंशति शब्द का प्रक्षेप करना चाहिये।

भावार्थ—उक्त निषेध वचन समस्त ऋचा का निषेध नहीं परन्तु उस ऋचा में जो चतुस्त्रिंशत् पद है उसका ही केवल निषेध है जैसे गिरा पद का निषेध कर उसके स्थान पर 'इरा' पद का प्रक्षेप किया है उसी प्रकार प्रकृत स्थान में भी समझना चाहिये। पद के निषेध से समस्त ऋचा का निषेध मानने में आवे तो लक्षणा माननी पड़ेगी। और इस प्रकार मानना अनुचित है।

सर्वप्रतिषेधो वा संयोगात्पदेन स्यात् ।२०।

पदार्थ—(वा) अथवा (सर्वप्रतिषेधः) समस्त ऋचा का प्रतिषेध हो सकता है। (संयोगात् पदेन स्यात्) ऋचा के प्रथम पद के साथ संयोग होने से

भावार्थ—समस्त ऋचा का भी निषेध हो सकता है कारण कि उक्त निषेध वा पद ऋचा के प्रथम पद रूप में सम्बन्ध रखते हैं और जो आपने दृष्टान्त दिया है वह गिरा पद ऋचा के प्रारम्भ का नहीं है अतः दृष्टान्त विषम है।

अग्नीषोमीय पशु में उरुक शब्द से द्रव्य का अभिधान है इस अधिकरण के सूत्र—

वनिष्ठु सन्निधानादुरुकेण वपाभिधानम् ।२१।

पदार्थ—(वनिष्ठुसन्निधानात्) वनिष्ठु के सामीप्य से (उरुकेण) उरुक शब्द से (वपाभिधानम्) वपा का अभिधान होता है।

भावार्थ—'वनिष्ठु' शब्द पशु शरीर में स्थित एक अवयव का वाचक है, उसके समीप उरुक भी है। उरुक शब्द से भो पशु शरीर का कोई अवयव समझना चाहिये। ऊरुविस्तीर्णमूको मेदो यत्र स उरूकः इस व्युत्पत्ति से भेदपूर्ण वपा विशेष का नाम ही उरूक है। उरूक और उलूक शब्दों के साम्य से उरूक अर्थ उलूक न समझना यह इस अधिकरण का भाव है।

अध्रिगु में जो प्रशंसा शब्द प्रयुक्त हुआ है उसका अर्थ प्रशंसा है इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष सूत्र—

प्रशंसास्यभिधानम् ।२२।

पदार्थ—(प्रशंसा) प्रशंसा शब्द (अस्यभिधानम्) असि के अर्थ का वाचक है।

भावार्थ—इस अग्नीषोमीय प्रकरण में प्रशंसा शब्द आता है उसका अर्थ असि—अर्थात् तलवार होता है।

सिद्धान्त सूत्र—

बाहुप्रशंसा वा ।२३।

पदार्थ—(वा) सिद्धान्त सूचक है (बाहुप्रशंसाः) बाहु की प्रशंसावाचक यह शब्द है।

भावार्थ—प्रशंसा शब्द असि वाचक नहीं, परन्तु प्रशंसा वाचक है 'प्रशस्तौ इति बाहुविशेषणम्' प्रशसा यह तृतीया विभक्त्यन्त पद नहीं कारण कि असि से कोई बाहु की प्रशंसा नहीं होती। प्रशंसौ यह द्वितीया के द्विवचन में रूप है।

अध्रिगुप्रैष में 'श्येनमस्य' इत्यादि वाक्य गत श्येनादि शब्दों का कात्स्न्यं वचन है इस अधिकरण के सूत्र—

श्येन-शला-कश्यप-कवष स्रेकपर्णेष्वाकृति-वचनं प्रसिद्धिसंनिधानात् ।२४।

पदार्थ—(श्येन, शला, कश्यप, कवष, स्रेकपर्णेषु) श्येन, शला, कश्यप कवष स्रेक पर्ण में (आकृति वचनम्) सादृश्य वचन है (प्रसिद्धसंनिधानात्) प्रसिद्ध श्येन आदि पद के संविधान से।

भावार्थ—यज्ञ में दान देने योग्य पशु के शरीरमें अनेक अवयव श्येन आदि पक्षी सदृश होते हैं।

कात्स्न्यं वा स्यात् तथाभावादध्रिगोश्च तदर्थत्वात् ।२५।

पदार्थ—(कात्स्न्यं वा स्यात्) सम्पूर्ण आकृति श्येनादि जैसी ही स्वाभाविक रीति से होती है।(तथाभावात्) तत् तत् पक्षियों के साथ उस भाग के मिलते होने से (अध्रिगोस्तदर्थत्वात्) अध्रिगु नामक ऋत्विक् को पशुओं के शरीर के अवयवों की आकृति का ज्ञान होना चाहिये।

भावार्थ—उक्त पशुओं के शरीर के वक्षस्थल की आकृति सम्पूर्ण रीति

से श्येन आदि पक्षियों जैसी होती है। और इसका ज्ञान अध्रिगु नामक ऋत्विज् को होना चाहिये। भावार्थ यह है कि अध्रिगु नामक ऋत्विज् को पशु के शरीर के भीतर व बाहर के अवयवों का सम्पूर्ण ज्ञान सूक्ष्म रूप से होना चाहिये।

दर्शयाग के लिए उद्धृत अग्नि का लोप हो तो प्रायश्चित रूप ज्योतिष्मती इष्टि का अनुष्ठान न करना, इस सम्बन्ध का अधिकरण—

प्रासङ्गिके प्रायश्चितं न विद्यते परार्थत्वात् तदर्थे हि विधीयते ।२६।

पदार्थ—(प्रासंगिके) दर्श और पूर्णमास के लिये उद्धृत अग्नि यदि शान्त हो जाय तो (प्रायश्चितं न विधीयते) प्रायश्चित ज्योतिष्मती इष्टि कर्त्तव्य नहीं। (परार्थत्वात्) ज्योतिष्मती इष्टि अन्य के लिये होने से तदर्थे हि विधीयते) अग्निहोत्र के लिये यह विहित है।

भावार्थ—अग्निहोत्र के लिये उद्धृत अग्नि यदि शान्त हो जाय तो उसके लिये ज्योतिष्मती इष्टि कर अग्नि प्रज्वलित करनी चाहिये। अर्थात् दर्श के लिये उद्धृत अग्नि शान्त हो जाय तो उसे पुनः प्रज्वलित करने के ज्योतिष्मती इष्टि का अनुष्ठान नहीं करना होता। **'अतोऽग्निहोत्रार्थोतोद्धृतानस्य निमित्तस्य अभावात् नैमित्तिकी इष्टिर्न प्रवर्तते'** इस प्रकार न्यायमाला विस्तार में भी माधवाचार्य ने लिखा है।

धार्य अग्नि के उद्वान में प्रायश्चितरूप में ज्योतिष्मती अग्नि का अनुष्ठान नहीं करना, इस अधिकरण के सूत्र—

धारणे च परार्थत्वात् ।२७।

पदार्थ—(च) और (धारणे) धार्यमाण अग्नि (परार्थत्वात्) सर्व कर्म के लिये होने से उसके उद्वान में ज्योतिष्मती इष्टि करनी चाहिये।

भावार्थ—आहवनीय यज्ञकुण्ड में से जो अग्नि लेने में आती है वह सर्व कर्म के लिए होने से अग्निहोत्र के लिये भी है ही, अतः जो वह अग्निहोत्र किये पूर्व ही बुझ जाय तो ज्योतिष्मती नाम की इष्टि करनी चाहिये।

क्रियार्थत्वादितरेषु कर्म स्यात् ।२८।

पदार्थ—(क्रियार्थत्वात्) पर्युक्षण परिसमूह-आदि क्रिया के लिए होने से (इतरेषु कर्म स्यात्) अन्य में अनुष्ठान होता है।

भावार्थ—आहवनीय में से जो अग्नि उद्धरण करने में आती है उसका निमित्त अग्निहोत्र नहीं पर **'धार्यो गतश्रिय आहवनीयः' अथो ह वै गतश्रियः—ब्राह्मणः**

शुश्रुवान् ग्रामणी राजन्यः । औवो गौतमो भारद्वाजः' इस कल्पसूत्र के आधार पर गतश्रीत्व धारण का निमित्त है । अग्निहोत्र निमित्त नहीं । अतः अग्निहोत्र किये पहले अग्नि का उद्वान हो जाय तो ज्योतिष्मती नामक इष्टि नहीं करनी चाहिये । 'निमित्ताभावात् नास्ति सेष्टिः' निमित्त विना वह कर्त्तव्य नहीं, इस प्रकार श्री माधवाचार्य ने भी लिखा है । द्रष्टव्य-न्यायमाला विस्तार का यह अधिकरण ।

न तूत्पन्ने यस्य चोदनाऽप्राप्तकाल-त्वात् ।२९।

पदार्थ——(उत्पन्ने) परार्थ उत्पन्न अग्नि में (यस्य चोदना) जो अग्निहोत्र का विधान है उसमें (न तु) मंत्र नहीं बोलना (अप्राप्तकालत्वात्) भिन्न काम होने से ।

भावार्थ—अग्निहोत्रं वाचा त्वाहोत्रा' इत्यादि नित्य उद्धरण के मंत्र हैं । अब जिन्होंने दर्शयाग के लिये उद्धरण किया हो उनके लिये उपर्युक्त मंत्र नहीं बोलना । अमंत्रक ही उद्धरण करना, कारण अग्निहोत्र और उद्धरण का समय भिन्न है ।

'प्रायणीयचरु में प्रदान धर्मों का अनुष्ठान नहीं । इस अधिकरण के सूत्र

पूर्वपक्ष—

प्रदानदर्शनं श्रपणे तद्धर्मभोजनार्थत्वात् संसर्गाच्च मधूदकवत् ।३०।

पदार्थ—(श्रपणे) पयस के श्रपण में (प्रदानदर्शनम्) देवता को उद्दिष्ट कर जैसे प्रदान देखने में आता है उसी प्रकार पयस का भी प्रदान करने में आता है । (मधूदकवत्) अतः मधु और उदकवत् (संसर्गात्) मिलित होने से (भोज-नार्थत्वात्) याग के लिए होने से (तद्धर्म) प्रदेय द्रव्य को जो धर्म कर्त्तव्य होते हैं वे धर्म प्रदेय पय के भी कर्त्तव्य हैं ।

भावार्थ—ज्योतिष्टोम में इस प्रकार का श्रवण है—'आदित्या प्रायणीयः पयसि चरुः' इस वाक्य से जैसे चरु प्रदेय द्रव्य है और उसी प्रकार पय भी प्रदेय द्रव्य है । ऐसा स्पष्ट समझते हैं । चरु का देवता जैसे आदित्य है, वैसे ही पय का देवता भी आदित्य है। अर्थात् देवता को उद्दिष्ट कर दोनों का त्याग कर्त्तव्य है, याग में त्याग आवश्यक होता है। अतः प्रदेय द्रव्य पय के जो धर्म वत्सापाकरण आदि हैं, वे भी कर्त्तव्य हैं।

संस्कार प्रतिषेधश्च तद्वत् ।३१।

पदार्थ—(च) और (संस्कारप्रतिषेधः तद्वत्) कई संस्कारों का भी प्रतिषेध है।

भावार्थ—कई एक प्रदेय द्रव्य के संस्कारों का भी प्रतिषेध है। इससे स्पष्ट होता है कि प्रदान के धर्म कर्त्तव्य हैं। जो कर्त्तव्य हीं हों तो उनका निषेध भी न हो तो जैसे कि 'अयजुषा वत्सानपाकरोति' यजुष् मंत्र द्वारा वत्सों का अपाकरण नहीं करना, यह वाक्य धर्म का निषेध बताया है।

तत्प्रतिषेधे च तथाभूतस्य वर्जनात् ।३२।

पदार्थ—(च) और (तत्प्रतिषेधे) उस पय का जो प्रदेयत्व रूप में प्रतिषेध मानने में आवे तो (तथाभूतस्यवर्जनात्) पयोमिश्रित चरु द्रव्य का भी निषेध हो जाय।

भावार्थ—जो पय में प्रदेयत्व का निषेध मानने में आवे तो पय में बनाये चरु का भी निषेध हो जाय। जैसे वैद्य किसी रोगी को दूध पीने के लिये मना करे तो उसे दूध वाले पदार्थ भी छोड़ने पड़ते हैं। इससे दूध में पकाये चरु का भी निषेध हो जाता है। जो दूध अर्थात् पय में प्रदेयत्व का निषेध मानने में आवे तो। सिद्धान्त सूत्र—

अधर्मत्वमप्रदानात् प्रणीतार्थे विधानाद-तुल्यत्वादसंसर्गः ।३३।

पदार्थ—(अधर्मत्वम्) प्रदेय द्रव्य धर्मत्व नहीं। (अप्रदानात्) पयस् विधि का विषय बनने से, कारण कि 'पयसि' यह सप्तमी विभक्ति है। जिसका विधान करना हो उसमें सप्तमी विभक्ति नहीं होती। (प्रणीतार्थे) प्रणीता के लिये (विधानात्) विधान होने से (अतुल्यत्वात्) तुल्य न होने से असंसर्गः) संसर्ग नहीं।

भावार्थ—पयसि चरुः यहाँ चरु तो प्रथमान्त होने से विधेय नहीं बन सकता। उसी प्रकार 'दधिमधु घृतमापो धानाः इत्यादि की भांति संसर्ग भी नहीं, कारण कि दृष्टान्त में सभी प्रथमान्त हैं, जब कि दार्ष्टान्तिक पयस् में सप्तमी विभक्ति लगी है और उससे पयस् चरु का अधिकरण है यह समझ में आता है।

परो नित्यानुवादः स्यात् ।३४।

पदार्थ—(परः) अन्य (नित्यानुवादः स्यात्) नित्य विधि का अनुवाद है।

भावार्थ—'अयजुषा वत्सानपाकरोति' इस वाक्य से वत्सापाकरण का निषेध प्रतीत होता है, यह तो मात्र अर्थवाद है।

विहितप्रतिषेधो वा ।३५।

पदार्थ—(वा) अथवा (विहितप्रतिषेधः) शाखान्तर में जो विहित है उनका प्रतिषेध है।

भावार्थ—शाखान्तर में 'यजुषा वत्सानपाकरोति' ऐसा विधान है, उसका उक्त स्थल में प्रतिषेध है, ऐसा समझा जाता है। अतः प्रधानधर्मों का अनुष्ठान कर्त्तव्य नहीं।

वर्जने गुणभावित्वात् तदुक्तप्रतिषेधात् स्यात् कारणात् केवलाशनम् ।३६।

पदार्थ—(तदुक्तप्रतिषेधात्) 'पयो वा भुङ्क्ष्व' ऐसा प्रतिषेध होने से (वर्जने) पयः संसृष्ट अन्न वर्जन में (गुणभावित्वात्) अप्रधान होने से (कारणात्) इस कारण के लिये (केवलाशनम्) केवल ओदन का अशन हो सकता है।

भावार्थ—तुम दूध का सेवन मत करो, ऐसा प्रतिषेध किसी रोगी को वैद्य ने किया हो तो दूधयुक्त भात का भी निषेध हो सकता है कारण कि दूध-भोजन में गौणवस्तु है और भात मुख्य है। अतः विना दूध केवल भात का भोजन हो सकता है, परन्तु दृष्टान्त में चरु दूध में ही रांधने का विधान है। इसलिये यह ओदन रूप चरु दूध में से पृथक् नहीं हो सकता इस कारण से चरु के साथ पयो मा भुङ्क्ष्व' का जो दृष्टान्त दिया है वह अनुचित है।

व्रतधर्माच्च लेपवत् ।३७।

पदार्थ—(च) और (व्रतधर्मात्) व्रत धर्म होने से (लेपवत्) लेप की भांति।

भावार्थ—ब्रह्मचारी के लिये मधु और मांस आदि त्याज्य हैं। अब जो जो मधु के लेप वाला या मांस के संसर्ग वाला पदार्थ खाये तो उसके व्रत का लोप हो जाता है, उसी प्रकार अप्रदेय पय के संसर्ग वाले चरु के देने में भी अदृष्ट का लोप होना चाहिये।

रसप्रतिषेधो वा पुरुषधर्मत्वात् ।३८।

पदार्थ—(वा) अथवा (रसप्रतिषेधः) रस का प्रतिषेध है। पुरुष धर्मत्वात्) पुरुष का धर्म होने से।

भावार्थ—पुरुष का धर्म राग है। इस राग से पुरुष मधु का (मदिरा का) उपयोग करता है। अतः पदार्थ में जब ब्रह्मचारी को मधु के रस का ज्ञान हो जाय, इसलिये लेप का निषेध है। मधु का किसी भी पदार्थ के साथ संसर्ग होना, इसमें कारण पुरुष की भूख है परन्तु चरु में जो पयस् का सम्बन्ध है वह तो शास्त्र प्राप्त है। शास्त्र प्राप्त संयोग का निषेध नहीं हो सकता। अतः उसमें 'प्रणीताधर्मउ त्पवनादयस्तत्र कर्त्तव्याः प्रणीता के धर्म उत्पवन आदि कर्त्तव्य हैं। वत्सापाकरण आदि प्रदेय धर्मों का अनुष्ठान कर्त्तव्य नहीं।

अभ्युदय इष्टि में दधि और शृत में प्रदेय धर्मों का अनुष्ठान करना होता है।

इस अधिकरण के सूत्र—

अभ्युदये दोहापनयः स्वधर्मा स्यात् प्रवृत्तत्वात् ।३९।

पदार्थ—(अभ्युदये) चन्द्रोदय निमित्तक अभ्युदय इष्टि में (दोहापनयः) दधिशृत रूप द्रव्य में से पूर्व देवता का विभाग और अन्य देवता के सम्बन्ध का विधान है। (प्रवृत्तत्वात्) याग के लिये पूर्व से दधि और पयस् प्रवृत्त होने से (स्वधर्मा स्यात्) प्रदेय द्रव्य धर्म वाले अपनय होते हैं।

भावार्थ—अभ्युदय इष्टि में शृत अर्थात् पाकाश्रय पयस् और दधि इन दोनों में से ही पूर्व देवता का विभाग और अन्य देवता का सम्बन्ध जोड़ने में आता है।

शृतोपदेशाच्च ।४०।

पदार्थ—(च) और (शृतोपदेशात्) शृत—पाकाश्रय इस प्रकार निर्देश होने से।

भावार्थ—शृत अर्थात् पाक का जो आश्रय हो तो वह। ऐसे सिद्धवत् जो निर्देश हैं वे प्रदेय धर्म में ही घट सकते हैं। अतः दही और पाकाश्रय पयस् में अभ्युदेय के समय इष्टि के धर्म करने उचित हैं। पशुकामेष्टि में दही और शृत में प्रदेय धर्मों का अनुष्ठान नहीं होता।

इस अधिकरण के सूत्र—

अपनयो वा अर्थान्तरे विधानाच्चरु-पयोवत् ।४१।

पदार्थ—(चरुपयोवत्) चरु और पयस् की भांति (अर्थान्तरे

विधानात्) श्रपण रूप कार्यान्तर में विधान होने से (अपनयः) इज्या के धर्म का अभाव है।

भावार्थ--'आदित्यः प्रायणीयः पयसि चरुः' यहाँ जैसे पयस् में प्रदेय धर्मों का अनुष्ठान नहीं होता उसी प्रकार पशुकामेष्टि में दही और शृत में इज्या के धर्म कर्त्तव्य नहीं कारण कि उनका उपयोग श्रपण में होता है।

ज्योतिष्टोम में प्रदेय धर्मों का अनुष्ठान नहीं, इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष—

श्रपणानां तु अपूर्वत्वात् प्रदानार्थविधानं स्यात् ।४२।

पदार्थ—(श्रपणानां तु) पयः आदि श्रपणों का (प्रदानार्थविधानं स्यात्) याग के लिये विधान है (अपूर्वत्वात्) अपूर्व कर्म होने से।

भावार्थ—'पयसा मैत्रावरुणं श्रीणाति' यहाँ पय में इज्या धर्म कर्त्तव्य है। उक्त वाक्य में सोम के साथ पयस् का मिश्रण करना बताया है। सोम प्रदेय है, अतः पयस् में सोम का जो क्रम आदि धर्म हैं वह पय में भी कर्त्तव्य है।

सिद्धान्त सूत्र—

गुणो वा श्रपणार्थत्वात् ।४३।

पदार्थ—(वा) अथवा (गुणः) सोमरस का गुणभूत पय है (श्रपणार्थत्वात्) पयस् का उपयोग श्रपण अर्थात् मिश्रण के लिये है।

भावार्थ—सोमरस प्रधान है, पयस् गौण है। कारण कि दूध तो केवल मिश्रण के लिये है।

अनिर्देशाच्च ।४४।

पदार्थ—(च) और (अनिर्देशात्) पयस् देवता के साथ निर्देश नहीं।

भावार्थ—मैत्रावरुण—यह सोम का विशेषण है। और इससे सोम द्रव्य का मित्र और वरुण के साथ का सम्बन्ध ज्ञात होता है। पयस् के साथ किसी देवता का सम्बन्ध ज्ञात नहीं होता, अतः पयस् गौण है, इससे उसमें प्रदेय के धर्म कर्त्तव्य नहीं।

श्रुतेश्च तत्प्रधानत्वात् ।४५।

पदार्थ—(च) और (श्रुतेः) द्वितीया विभक्ति की श्रुति होने से (तत्प्रधानत्वात्) सोम की प्रधानता स्पष्ट होती है।

भावार्थ—'पयसा सोमं श्रीणाति' यहाँ द्वितीया विभक्ति सोम के लिये है,

पयस् के साथ तो तृतीया विभक्ति है। द्वितीया विभक्ति प्रधानता सूचित करती है अतः सोम ही प्रधान है, पयस् नहीं। अतः सोम ही प्रदेय है पयस् नहीं इससे पयस् में प्रदेय के धम, जो क्रय आदि हैं वे कर्त्तव्य नहीं।

अर्थवादश्च तदर्थत्वात् ।४६।

पदार्थ—(च) और (अर्थवादः) अर्थवाद भी (तदर्थत्वात्) सोम की प्रधानता सूचित करता है।

भावार्थ—'पयसैव मे सोमं श्रीणातु' यह अर्थवाद वाक्य है इसमें भी सोम की प्रधानता और पयस् की अप्रधानता प्रतीत होती है। जो पयस् सोम तुल्य होता तो 'पयो मे देहि' ऐसे वरदान की याचना वाला अर्थवाद होता। इससे भी स्पष्ट होता है कि पयस् में प्रदेय के धर्म कर्त्तव्य नहीं।

संस्कारे प्रतिभावाच्च तस्मादप्य-प्रधानम् ।४७।

पदार्थ—(संस्कारं प्रति) संस्कार के लिये (भावात्) होने से (तस्मात् अपि) इससे भी (अप्रधानम्) पयस् अप्रधान है।

भावार्थ—पयस् तो सोम के संस्कार के लिये है, याग के लिये नहीं। इसलिये कि पयस् तो प्रदेय द्रव्य सोम का संस्कार द्रव्य है, इससे वह अप्रधान है। अतः इसमें प्रदेय के धर्म कर्त्तव्य नहीं।

अश्वमेध में 'ईशानाय परस्वतः' इस वाक्य से यागान्तर का विधान है।

इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्षसूत्र—

पर्यग्निकृतानामुत्सर्गे तादर्थ्यमुपधानवत् ।४८।

पदार्थ—(पर्यग्निकृतानाम्) पर्यग्निकृत परस्वतों को (उत्सर्गे) छोड़ देने से (तादर्थ्यम्) उसके लिये होता है (उपधानवत्) चरु के उपधान की भांति।

भावार्थ—अश्वमेध प्रकरण में इस प्रकार वाक्य है— 'ईशानाय परस्वतः आलभते, तं पर्यग्निकृतमुत्सृजति' यहाँ परस्वत्शब्द वन्य पशु विशेष का वाचक है। परस्वत् को अग्नि के पास लाकर उसे छोड़ देना, अर्थात् उसका उत्सर्ग करना। उसका त्याग अर्थात् किसी को दान में नहीं देना। जैसे चरुमुपदधाति' चरु का उपधान करने में आता है उसी प्रकार 'पर्यग्निकृतमुत्सृजति' पर्यग्नि हुये परस्वत् का उत्सर्ग करना।

सिद्धान्त सूत्र—

शेषप्रतिषेधो वार्थाभावादिडान्तवत् ।४९।

पदार्थं—(वा) सिद्धान्त सूत्र है (शेषप्रतिषेधः) पर्यग्नि किये पीछे प्राकृत अंग का प्रतिषेध है (अर्थाभावात्) कर्त्तव्य अर्थ न होने से (इडान्तवत्) आतिथ्य में इडान्त कर्म जैसे अन्य का निवर्तक है, वैसे।

भावार्थ—आतिथ्य में इडान्त कर्म अन्य प्राकृत कर्त्तव्य का निषेध करता है उसी प्रकार पर्यग्निकृत् कर्म किये पीछे अन्य कोई विधेय अंश न रहने से उक्त दो वाक्यों में उत्तर वाक्य निष्फल हो जाता है।

पूर्वत्वाच्च शब्दस्य संस्थापयतीति चाप्रवृत्तेनोपपद्यते ।५०।

पदार्थ—(च) और (शब्दस्य पूर्वत्वात्) पूर्व शब्द यज्ञ सूचक होने से (संस्थापयति इति) समाप्ति सूचक शब्द भी होने से (अप्रवृत्तेन च) जो पूर्वयाग प्रवृत्त न होता तो (उपपद्यं त) उत्सर्ग मात्र हो सकता।

भावार्थ—पूर्व जो वाक्य वताये हैं उनमें पहला वाक्य याग का प्रतिपादन करता है, कारण कि उसमें द्रव्य और देवता का उल्लेख है। द्रव्य और देवता यही स्वरूप है तो अन्य वाक्य भी याग का सूचक है कारण कि उसमें द्रव्य की सूचना है।

क्रिया वा स्यादवच्छेदादकर्मसर्वहानं स्यात् ।५१।

पदार्थ—(वा) अथवा (अकर्मसर्वहानं स्यात्) क्रिया मात्र का हान हो (अवच्छेदात्) पर्यग्निकरण किये पीछे उत्तरांग का व्यवच्छेद होने से (क्रिया) अर्थात् याग का विधान है।

भावार्थ—पूर्व वाक्य जैसे याग का प्रतिपादन करता है, वैसे 'तं पर्यग्निकृमुत्सृजति' यह वाक्य भी याग का प्रतिपादन करता है। यह वाक्य निरर्थक नहीं और 'परस्वत्' आरण्यक पशु विशेष का दान किया जाता है, ऐसा भाव इस अधिकरण का है।

'आज्येन शेषं संस्थापयति' इस वाक्य से कर्मान्तर का विधान है।

इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष—

आज्यसंस्थाप्रतिनिधिः स्यात् द्रव्योत्सर्गात् ।५२।

पूर्वपक्ष—(आज्यसंस्था) आज्य की समाप्ति (प्रतिनिधिः स्यात्) प्रतिनिधि होती है (द्रव्योत्सर्गात्) पूर्वद्रव्य का परित्याग होने से।

भावार्थ—आज्य की समाप्ति जो बताई है उसमें आज्य शब्द पूर्व द्रव्य के प्रतिनिधित्व का सूचक है। 'पत्नीवत्' देवता वाला है। द्रव्य आगे बताया है उसका प्रतिनिधि आज्य पद वाच्य है, ऐसा पूर्वपक्षवादी का मत है।

समाप्तिवचनाच्च ।५३।

पदार्थ—(च) और (समाप्तिवचनात्) समाप्ति का वचन होने से।

भावार्थ—'आज्येन शेषं समापयेत्' आज्य अर्थात् घृत से अवशिष्ट कर्म समाप्त, जो कर्मान्तर का विधान होता यो 'आज्येन कर्मारभेत' इस प्रकार वाक्य होना चाहिये था। अतः अन्य कर्म का विधान नहीं।

सिद्धान्त सूत्र—

चोदना वा कर्मोत्सर्गादन्यैः स्यादविशिष्ट-त्वात् ।५४।

पदार्थ—(चोदना वा) अपूर्व कर्म का विधान है (कर्मोत्सर्गात्) पूर्व कर्म की समाप्ति होने से (अन्यैः अविशिष्टत्वात् स्यात्) अन्य वाक्य के साथ समानता होने से।

भावार्थ—'पात्नीवतमालभते पर्यग्निवतमुत्सृजति आज्येन शेषं संस्थापयति' इस वाक्य में 'आज्येन शेषं संस्थापयति' इस भाग से एक दूसरे कर्म का ही विधान होता है यद्यपि इसमें यागवाचक कोई पद नहीं, फिर भी जैसे अन्य वाक्य हैं जैसे कि 'सौर्यं चरुं निर्वपेत्' यहाँ भी यागवाचक पद नहीं होने पर भी वह इस यागरूप कर्मान्तर का विधान करता है।

अनिज्यां च वनस्पतेः प्रसिद्धान्तेन दर्शयति ।५५।

पदार्थ—(प्रसिद्धान्तेन) प्रसिद्ध चरम अवयव से (वनस्पतेः) दशम प्रयाज का (अनिज्याम्) याग के अभाव को (दर्शयति) बताता है।

भावार्थ—यह सूत्र याग के अभाव को सूचित करता है। इसलिये

शेष कर्म की निवृत्तिहै, ऐसा समझना। यह कथन उपर्युक्त 'पात्नीवत्' याग सम्बन्धी है।

संस्था च तद्देवतात्वात् स्यात् ।५६।

पदार्थ—(संस्था च) संस्था यह शब्द समाप्ति का वाचक है (तद्-देवतात्वात् स्यात्) पत्नीवद् देवताक होने से।

भावार्थ—'आज्येन शेषम्' इत्यादि से कर्मान्तर का विधान है। इसमें भी देवता का श्रवण न होने से सन्निहित पत्नीवद् देवता का ही ग्रहण होता है। अतः दोनों-पूर्व और उत्तर कर्मों का साजात्य होने से पत्नीवद्देवताक जो कर्म आरम्भ किया है वह इस कर्म से अर्थात् 'आज्येन समापयेत्' इत्यादि से प्रतीत हुये कर्म से समाप्त करना चाहिये। इस उपर्युक्त अधिकरण में 'आज्येन शेषं संस्थापयति' इससे भिन्न याग विधान प्रतीत होता है।

इति श्री मीमांसादर्शनभाष्ये नवमाध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥९।४॥

अथ दशमाध्यायस्य प्रथमः पादः

विकृति में जिन अर्थों का लोप हो वैसे ही प्राकृत अर्थों का बाध होता है, अर्थात् ऐसे प्रकृति में कहे अर्थ विकृति में न करने— इस अधिकरण के सूत्र—

विधेः प्रकरणान्तरेऽतिदेशात् सर्वकर्म स्यात् ।१।

पदार्थ—(विधेः) प्रकृति याग के प्रकरण में जिन-जिन अर्थों का विधान हो, उनका (प्रकरणान्तरे) विकृति याग में प्रकृति के तुल्य सर्व कर्म अनुष्ठेय होने से (अतिदेशात्) अतिदेश सामान्य का कथन हो : से (सर्वकर्म स्यात्) प्रकृति में विहित सभी कर्त्तव्यों का अनुष्ठान होना चाहिये।

भावार्थ—प्रकृति में जो-जो कहा हो, उन सबका विकृति में भी अनुष्ठान होना चाहिये। कारण कि 'प्रकृतिवद् विकृतिः कर्त्तव्या' ऐसा सामान्य अतिदेश है। इसलिये प्रकृति में जितने अंग विहित होते हैं, वे सभी विकृति में भी करनें। कोई भी अंग का बाध विकृति में न होना चाहिये, ऐसा पूर्वपक्षवादी का मानना है।

सिद्धान्त सूत्र—

अपि वाऽभिधानसंस्कारद्रव्यमर्थे क्रियेत तादर्थ्यात् ।२।

पदार्थ—(अपि वा) यह शब्द पूर्वपक्ष को आवृत्ति सूचक है। (अभिधानसंस्कारद्रव्यम्) देवस्य त्वा······इत्यादि मंत्र रूप अभिधान से संस्कार रूप आदान आदि क्रियाकलाप जिनमें हैं (द्रव्यम्) वे द्रव्य (अर्थे) पुरुष प्रयास साध्य छेदन क्रिया हो तो (क्रियेत्) करने में आवे (तादर्थ्यात्) उस कार्य के लिये ही वह द्रव्य जानने में आता है।

भावार्थ—जिस-जिस मंत्र द्वारा जो-जो क्रियायें करनी विहित होती हैं, वे-वे क्रियायें द्रव्य का उपयोग हो, तभी उसमें वह क्रिया करनी, नहीं तो नहीं। इसलिये विकृति याग में आवश्यकता न हो तो प्रकृति में किये द्रव्य में क्रियायें विकृति में न करनी—राजसूय याग में मैत्राबार्हस्पत्य

हविष् में कहा गया है कि 'स्वयं दितं बर्हि स्वयं कृत इध्मः' इस वाक्य से समझाया गया है कि बर्हि और इध्म के लिये उन्हें काटने के साधन का उपयोग नहीं करना चाहिये। प्रकृति में जिस द्रव्य का जो क्लृप्त अर्थात् समर्थित है वह विकृति में किसी वाक्य से न करना बताया हो तो नहीं करना। अतः विकृति याग में बर्हि सवन के लिये परशु आदि का उपयोग न करना। कर्म का बाध होने से परशु आदि द्रव्य का ग्रहण भी मंत्र द्वारा करना अर्थात् प्रकृति में करना परन्तु विकृति में न करना, कारण कि उसका बाध है। प्रकृतिवद् विकृतिः कर्त्तव्या यह सामान्य अतिदेश नहीं परन्तु जो विकृति में प्रकृति के अंग अपेक्षित हों तो वे अंग प्रकृति तुल्य करने। यह इस सूत्र का अभिप्राय है।

तेषामप्रत्यक्षशिष्टत्वात् ।३।

पदार्थ—(तेषाम्) मंत्र, संस्कार, क्रिया तथा (अप्रत्यक्षशिष्टत्वात्) आनुमानिक शास्त्र से शिष्ट होने से अर्थात् अंग होने से।

भावार्थ – विकृति याग में जो कर्म कैसे करने ? जो वह न बताया हो तो उन कर्मों को प्रकृति याग के तुल्य करना। ऐसा जो अतिदेश है वह अनुमानिक अंग है। प्रत्यक्ष अंग नहीं जहां प्रत्यक्ष शिष्ट अंग हो वहां अनुमानिक अंगों का बाध होना उचित है। कारण कि प्रत्यक्ष की अपेक्षा अनुमान दुर्बल है। 'स्वयं दितं बर्हिः' यह प्रत्यक्ष विधान है अतः 'दात्रादि' से लवन के जो अनुमानिक हैं, उस लवन का बाध होना, यह न्याय्य है स्वयं काटे दर्भों का जो विकृति में उपयोग कहा गया है वहाँ दरांती से लवन बाधित है। प्रकृति याग में बर्हि लवन भले हो, परन्तु जहाँ तैयार दर्भ का विधान हो, उस विकृति में प्राकृत लवन का बाध स्वीकार करना ही चाहिये। लवण का बाध होने से दँराती की भी निवृत्ति होनी ही चाहिये इस प्रकार प्राकृत अंगों का विकृति में प्रत्यक्ष अर्थात् वाक्यदि से बाध होता है।

दीक्षणीया आदि इष्टियों में आरम्भणीया का बाध होता है, यह अधिकरण—

इष्टिरारम्भसंयोगाददंगभूतान्निवर्तेता-रम्भस्य प्रधानसंयोगात् ।४।

पदार्थ—(आरम्भसंयोगात्) आरम्भ शब्द का सम्बन्ध होने से (अंगभूतात्) अंगभूत दीक्षणीया में (इष्टिः) आरम्भणीया इष्टि की (निवर्तेत) निवृत्ति होती है (आरम्भस्य) आरम्भ का (प्रधानसंयोगात्) सम्बन्ध प्रधान याग के साथ होने से।

भावार्थ—ज्योतिष्टोम में दर्शपूर्णमास जिनकी प्रकृति है ऐसी

विकृतियाँ हैं। उनके अंगरूप में दीक्षणीयादि इष्टियाँ कर्त्तव्य हैं। उनमें सभी दर्शपूर्णमास के अंग—कलाप के साथ आरम्भणीया का अतिदेश है या नहीं? इसका विचार इस अधिकरण में किया है। इसमें यह सिद्धान्त निश्चित किया है कि अंगभूत दीक्षणीयादि में प्रधानोद्देश्यक आरम्भ न होने से आरम्भणीया इष्टि आदि का बाध है। अर्थात् यह इष्टि दीक्षणीयादि में कर्त्तव्य नहीं 'आग्नावैष्णवमेकादशकपालं निर्वपेद् दर्शपूर्णमासावारप्स्यमानः' इस वाक्य से आरम्भ का सम्बन्ध प्रधानभूत दर्श पूर्णमास याग के साथ है, ऐसा समझाते हैं। अतः दीक्षणीयादि में आरम्भणीया इष्टि की निवृत्ति है।

अनुयज्ञादि में आरम्भणीया इष्टि का बाध है। इस अधिकरण के सूत्र—

प्रधानाच्चान्यसंयुक्तात्सर्वारम्भान्निवर्तेता-नंगत्वात् ।५।

पदार्थ—(च) और (अन्यसंयुक्तात्) अन्य सोमादि रूप प्रधान से युक्त (प्रधानात्) इष्टि रूप प्रधान से इष्टि अर्थात् अन्वारम्भणीया रूप इष्टि की (निवर्तेत) निवृत्ति होती है। (सर्वारम्भात्) सर्व के आरम्भ होने से (अनंगत्वात्) केवल इष्टि का अंग नहीं।

भावार्थ—'अनुमत्यै पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपति' इस वाक्य से राजसूय यज्ञ में दर्शपूर्णमासेष्टि की विकृति रूप अनुमत्यादि याग विहित हैं। ये अनुमत्यादि याग दीक्षणीयादि यागों के तुल्य अन्य के अंग नहीं, प्रधाभूत हैं, तथापि एक-एक इष्टि का अलग-अलग आरम्भ नहीं। इष्टि पशु सोम बर्हि होम रूप अनेक प्रधानों का संघ यही राजसूय है, और संघ का आरम्भ है। अतः अनुमत्यादियागों में अन्वारम्भणीया इष्टि का बाध है। अनुमत्यादि इष्टि को ही अनुयज्ञादि कहा जाता है।

आरम्भणीया इष्टि में आरम्भणीया का बाध है। इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष सूत्र—

तस्यां तु स्यात् प्रयाजवत् ।६।

पदार्थ—(तु) आरम्भणीया के अतिदेश में संशय नहीं। यह अर्थ सूचित करने के लिये 'तु' शब्द है (तस्याम्) आरम्भणीया इष्टि में इष्टि (स्यात्) होनी चाहिये। (प्रयाजवत्) जैसे प्रयाजों का अतिदेश है वैसे।

भावार्थ—आरम्भणीया इष्टि में जैसे प्रयाजों का अतिदेश है, वैसे इष्टि का भी अतिदेश है। आरम्भणीया इष्टि है, अतः जैसे अन्य इष्टियों

में आरम्भणीया इष्टि कर्त्तव्य है, वैसे ही आरम्भणीया इष्टि में भी आरम्भणीया इष्टि कर्त्तव्य है। ऐसा पूर्वपक्षवादी का मानना है।

सिद्धान्त सूत्र—

न वांगभूतत्वात् ।७।

पदार्थ—(वा) शब्द सिद्धान्त ज्ञापक है। (न) आरम्भणीया इष्टि में आरम्भणीया इष्टि कर्त्तव्य नहीं (अंगभूतत्वात्) दर्शपूर्णमास याग का अंग होने से।

भावार्थ—'आरम्भो वरणं यज्ञे' यज्ञ में ऋत्विक् का वरण करना आरम्भ है। यह आरम्भ प्रधान को ही कराया जाता है जैसे ज्योतिष्टोम में प्रधान कार्य के लिये वरण किये गये ऋत्विकों का अंग कार्य में पृथक् वरण नहीं होता वैसे ही प्रधान कार्य में अर्थात् दर्शपूर्णमास के आरम्भ में इष्टि किये पश्चात् अंग कार्य में आरम्भणीया इष्टि कर्त्तव्य नहीं।

एकवाक्यत्वाच्च ।८।

पदार्थ—(च) और (एकवाक्यत्वात्) एक वाक्य होने से।

भावार्थ—दर्शपूर्णमास में अगत्व से विहित जो आरम्भ है उसके अंगत्व रूप में विधायक एक ही वाक्य है, अन्य नहीं। अतः आरम्भणीया इष्टि में इष्टि करने का विधान न होने से वह कर्त्तव्य नहीं।

खलेवाली में यूपाहुति का बाध है। इस अधकरण के सूत्र—

कर्म च द्रव्यसंयोगार्थमर्थाभावात् निवर्तेत तादर्थ्यं श्रुतिसंयोगात् ।९।

पदार्थ—(च) सिद्धान्त द्योतक है (कर्म) पूर्णाहुति रूप कर्म (द्रव्यसंयोगार्थम्) द्रव्य का संयोग कर्म की उत्पत्ति के लिये होने से (अर्थाभावात्) खले वाली में यूप पद वाच्य द्रव्योत्पत्ति न होने से (निवर्तेत) निवृति होती है (तादर्थ्यम्) कर्म द्रव्योत्पत्ति के लिये है ऐसा (श्रुतिसंयोगात्) श्रुतिवाक्य से ज्ञापित अंगत्व के ज्ञान से समझाते हैं।

भावार्थ—साद्यस्क नामक याग है। उसमें खलेवाली होती है। 'खले बलीवर्द बन्धनाय निखातो मेढ़िः' खला में बैल को बांधने के लिये खूंटा होता है। खलेवाली का ऐसा अर्थ माधवाचार्य ने किया है। उस खलेवाली के पास यूप के लिये आहुति रूप कर्म की निवृत्ति है। 'नहि खलेवाल्यां शास्त्रीयं छेदनमस्ति पूर्वमेव छिन्नस्य काष्ठस्य कृषीवलैः खले निखातत्वात्, तस्मात् छेदनद्वारलोपात् आहुतिर्न विद्यते' खलेवाली में शास्त्रीय छेदन नहीं, किसान पहले से काटी गई

लकड़ियों का खले में खूंटा रखता है अतः शास्त्रीय छेदन रूप द्वार का लोप होने से यूपाहुति भी उसके लिये नहीं। इससे यूपाहुति का बाध है, ऐसा सिद्ध होता है।

साद्यस्क याग में स्थाण्वाहुति का बाध है, इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष—

स्थाणौ तु देशमात्रत्वादनिवृत्तिः प्रसज्येत् ।१०।

पदार्थ— (तु) पूर्वपक्ष की व्यावृत्ति सूचित करता है (स्थाणौ) स्थाणु तो (देशमात्रत्वात्) केवल आहुति का देश बताने वाला होने से (अनिवृत्तिः प्रसज्येत) खलेवाली में आहुति की निवृत्ति नहीं।

भावार्थ— स्थाण्वाहुति यूप में संनिपत्य—उपकारक नहीं, वृक्ष को काटने से बाकी रहे भाव को स्थाणु (ठूंठ) कहते हैं। यूप स्थाणु से अलग हो जाने से स्थाणु को दी जाने वाली आहुति यूप के लिये उपकारक नहीं। इसलिये यह आहुति यूप के संस्कार के लिये नहीं। 'आव्रश्चने जुहोति' इस वाक्य से देश का नियम बंधा है। और खलेवाली में भी आहुति है ऐसा स्पष्ट समझाते हैं।

सिद्धान्त सूत्र—

अपि वा शेषभूतत्वात् संस्कारः प्रतीयते ।११।

पदार्थ—(अपि वा) यह शब्द सिद्धान्त को सूचित करता है (शेषभूतत्वात्) आहुति रूप कर्म का अंगभूत होने से (संस्कारः प्रतीयते) यूप का संस्कार है ऐसा समझना चाहिये।

भावार्थ—'आव्रश्चने जुहोति' यह स्थाण्वाहुति यूप की ही उपकारक है। जबकि स्थाणु से पृथक् हो गया है, इसलिये यह आहुतिरूप कर्म यूपसंस्कार ही है। गुरु अपने पहले वस्त्र उतार कर शिष्य को देता है, तब शिष्य अपने गुरु के वस्त्र हैं, ऐसा समझकर गुरु से पृथक् हुये वस्त्र को भी संभालकर उचित स्थान पर रखता है और यह उचित स्थान पर रखने रूप क्रिया वस्त्र की उपकारक है। इसी प्रकार स्थाणु से पृथक् हुआ यूप है, यतः स्थाणु का यूप है अतः उस कर्म का ही उपकारक है।

समाख्यानं च तद्वत् ।१२।

पदार्थ—(च) और (समाख्यानम्) भी (तद्वत्) जैसे अवान्तर प्रकरण यूप के अंगत्व का साधक है वैसे समाख्यान रूप प्रमाण भी अंगत्व का साधक है

भावार्थ—जैसे स्थाण्वाहुति के अंग रूप में सिद्ध करने वाला अवान्तर प्रकरण है, वैसे ही स्तुति, लिंग आदि ६ प्रमाणों में से समाख्यान रूप प्रमाण भी स्थाण्वाहुति को अंग रूप सिद्ध करता है। इससे स्थाणु संस्कार द्वारा यूप का ही संस्कार होता है।

मन्त्रवर्णश्च तद्वत् ।१३।

पदार्थ—(च) और (तद्वत्) समाख्या की भांति (मन्त्रवर्ण.) मंत्र वर्णन भी अंगत्व में प्रमाण है।

भावार्थ—'वनपस्ते शतबल्शो विरोह' इत्यादि मंत्र का जो वर्णन है वह भी आहुति रूप कर्म अंग रूप में है और उस यूप में संस्कार उत्पन्न करता है। यूप संस्कारक होने से स्थाण्वाहुति का वाध होता है।

'उत्तम प्रयाज संस्कार कर्म है, इस अधिकरण के सूत्र—

प्रयाजे च तन्न्यायत्वात् ।१४।

पदार्थ—(च) और (प्रयाजे) प्रयाज में (तन्यायत्वात्) वही प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण आदि न्याय है।

भावार्थ—दर्श पूर्णमास में इस प्रकार सुनते हैं—'उत्तमः प्रयाजः स्वाहाकारं यजति' यहाँ स्वाहाकार प्रधान कर्म का द्योतक नहीं, पर जैसे स्थाण्वाहुति यूप द्वारा सन्निपत्य उपकारक है वैसे ही यक्ष्यमाण अग्न्यादि संस्कार द्वारा उपकारक है।

लिंगदर्शनाच्च ।१५।

पदार्थ—(च) और (लिंगदर्शनात्) लिंग वाक्य होने से।

भावार्थ—चातुर्मास्य में इस प्रकार निगद है—'स्वाहा अग्निम्, स्वाहा सोमम्, स्वाहा सवितारं, स्वाहा सरस्वतीम्, स्वाहा पूषणम्' यह निगद देवता संस्कार पक्ष मानने में आवे तभी योग्य होते हैं। जो अतिदेश शास्त्र से प्राकृत निगद मानने में आवे तो उक्त पाठ निरर्थक हो जाय, अतः उत्तम प्रयाज संस्कार कर्म है।

अग्नियाग का आरादुपकारत्व है। इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष—

तथाऽऽज्यभागाग्निरपीति चेत् ।१६।

पदार्थ—(तथा) उत्तमं प्रयाजवत् (आज्यभागाग्नि) आज्य भाग के भीतर आया हुआ अग्नि याग (अपि) भी सन्निपत्य उपकारक निकट का उपकारक है (इति चेत्) जो ऐसा मानने में आवे तो—

भावार्थ—आज्यभाग में आया हुआ अग्नियाग भी सन्निपत्य उपकारक है। जो ऐसा मानने में आवे तो इसका उत्तर अगले सूत्र में है—

सिद्धान्त सूत्र—

व्यपदेशाद् देवतान्तरम् ।१७।

पदार्थ—(व्यपदेशाद्) निगद में निर्देश होने से (देवतान्तरम्) प्रधान देवता से भिन्न देवता है।

भावार्थ—निगद अर्थात् वाक्य पाठ इस प्रकार है—'**अग्निमग्न आवह सोममावह अग्निमावह**' इस प्रकार दो बार अग्नि का आवाहन है। लोक व्यवहार में जो ऐसे वाक्य हों जैसे कि—**ब्राह्मण आगतः। शूद्र आगतः। ब्राह्मण आगतः।** इस प्रकार दो बार ब्राह्मण आया ऐसा कहने से दो ब्राह्मण व्यक्तियों का बोध होता है, तो उपर्युक्त वैदिक वाक्यों में दो समय अग्नि का आवाहन है, इससे दो अग्नियों का ज्ञान भी स्वाभाविक है। इस कारण से मुख्य अग्नि-देवता से भिन्न अग्नि का याग होने से आरादुपकारक अर्थात् परम्परा सन्बन्ध से उपकारक है। मुख्य उपकारक नहीं।

समत्वाच्च ।१८।

पदार्थ—(च) और (समत्वात्) आरादुपकारक पंक्तियों में आज्य-भागाग्नि का पाठ होने से।

भावार्थ—आरादुपकारक पदार्थ जहाँ गिनाये जाते हैं वहीं आज्यभाग भी गिनाये हैं इससे ज्ञात होता है कि आज्यभागाग्नि याग भी आरादुपकारक है। पाठ इस प्रकार है—**अभीषु वा एतौ यज्ञस्य यदाघारौ चक्षुषी वा एते यज्ञस्य यदाज्यभागौ यत्प्रयाजानुयाजा इज्यन्ते धर्मैव तद्यज्ञाय क्रियते**' उपर्युक्त से सिद्ध होता है कि आधार आदि के तुल्य आज्यभागाग्नि, याग भी आरादु-पकारक है।

पशुपुरोडाश याग भी देवता संस्कारक है। इस अधिकरण के सूत्र—

पशावपीति चेत् ।१९।

पदार्थ—(पशौ अपि) आज्यभागाग्नि जैसे आरादुपकारक है वैसे पशु पुरोडाश में भी आरादुपकारत्व है। (इति चेत्) जो ऐसा मानने में आवे तो—

भावार्थ—आज्यभागाग्नि जैसे आरादुपकारक है वैसे पशु का दान जिसमें होता है तथा पुरोडाश का त्याग करने में आता है वह भी आरादु-पकारक है।

न तद्भूतवचनात् ।२०।

पदार्थ—(न) नहीं (तद्भूतवचनात्) एक देवता प्रतिपादक वचन होने से।

भावार्थ—यद् देवत्यः पशुः तद्देवत्य पुरोडाशः इस वाक्य से दोनों की देवता अर्थात् एक ही देवता का स्मरण कर दान और त्याग होने से आरादुपकारक नहीं परन्तु वह याग संस्कारक है।

लिंगदर्शनाच्च ।२१।

पदार्थ—(च) और (लिंगदर्शनात्) लिंगभूत वाक्य होने से।

भावार्थ—एक देवता होने के वाक्य भी हैं। जैसे कि इन्द्रं स्तुहि वज्रिणं स्तुहि आदि।

पुनः पूर्वपक्ष—

गुणो वा स्यात्कपालवद् गुणभूत-विकाराच्च ।२२।

पदार्थ—(वा) पूर्वपक्ष का द्योतक है (गुणः) देवता अंग हैं। (कपाल-वत्) एक ही कपाल हविः श्रपण में तथा तुष के उपवपन में अंग हैं, वंसे (च) और (गुणभूतविकारात्) गुणभूत अग्नीषोमीय का विकार होने से।

भावार्थ—जैसे एक कपाल श्रपण में और तुष के वपन में गुणभूत है वैसे अग्नीषोम देवता अभिन्न होकर पशु याग और पुरोडाश याग में गुणभूत होंगे, अतः पशु पुरोडाश आरादुपकारक है और देवता याग का अंगभूत है।

पूर्वपक्ष का खण्डन—

अपि वा शेषभूतत्वात्संस्कारः प्रतीयेत स्वाहाकारवदंगानामर्थसंयोगात् ।२३।

पदार्थ—(अपि वा संस्कारः) देवता संस्कार (प्रतीयेत) प्रतीत होता है। (शेषभूतत्वात्) याग देवता का अंग होने से (स्वाहाकारवत्) स्वाहा-कार यजननिष्प्रयोजन बताते जैसे वे देवता संस्कार के लिये मानने में आते हैं वैसे अंगानामर्थसंयोगात्) जो-जो अंग हैं उन्हें अर्थ अर्थात् प्रयोजक के साथ सम्बन्ध होता है।

भावार्थ—उक्त कर्म आरादुपकारक नहीं, अपितु देवता संस्कार के लिये है। देवता प्रयोजनवती है। स्वाहाकार शब्दोच्चारण जैसे देवता

संस्कार के लिये है वैसे उक्त कर्म भी देवता संस्कार के लिये है। जो-जो अंग होते हैं वे सभी प्रयोजन के साथ सम्बन्ध रखते हैं। अतः उक्त याग रूप आरादुपकारक नहीं, पर संस्कार है।

व्यृद्धवचनं च विप्रतिपत्तौ तदर्थत्वात् ।२४।

पदार्थ—(च) और (विप्रतिपत्तौ) पशु पुरोडाश और देवता की विप्रतिपत्ति के सम्बन्ध में (व्यृद्धवचनम्) व्यृद्ध—अंगलोप वचन (तदर्थत्वात्) संस्कार पक्षार्थक होने से।

भावार्थ—इस प्रकार वचन सुनते हैं—**यद्वै सौत्रामण्यै व्यृद्धं तदस्यै समृद्धं'** यह वचन संस्कार पक्ष में अनुकूल होता है। आरादुपकारक पक्ष में 'व्यृद्ध' कहना अनुपपन्न है। व्यृद्ध अर्थात् व्यङ्गत्व। आरादुपकारक पक्ष में अंग का लोप नहीं होता, अत. व्यृद्ध वचन का कथन ठीक नहीं। इसलिये संस्कार पक्ष मानना ही उचित है।

गुणेऽपि चेत् ।२५।

पदार्थ—(गुणे अपि) गुण पक्ष में भी दोष समान है। (चेत्) जो ऐसा कहने में आवे तो। उत्तर आगामी सूत्र में है—

भावार्थ—पुरोडाश याग में देवता के लिये गुणवाद मानने में आवे तो ? उक्त दोष समान हो जाता है, अर्थात् संस्कार पक्ष में व्यृद्ध वचन अनुचित है। अतः **'यथैव हि संस्कारपक्षे व्यृद्धवचनमर्थवाद एवमितरस्मिन्नपि'** ऐसा भाष्यकार कहते हैं। इसलिये कि जैसे संस्कार पक्ष में व्यृद्ध वचन अर्थवाद है, उसी प्रकार आरादुपकारक पक्ष में भी अर्थवाद ही है।

नासंहानात् कपालवत् ।२६।

पदार्थ—(न) नहीं (असंहानात्) हानि नहीं (कपालवत्) कपाल की भांति।

भावार्थ—आरादुपकारक पक्ष में वैषम्य बताते हैं। जैसे एक कपाल से तुष का उपवपन करने से अन्य कपाल की कोई हानि नहीं उसी प्रकार अन्य देवता से पुरोडाश याग करने में पशु याग देवता को हानि नहीं। इसलिये आरादुपकारक पक्ष में व्यृद्ध वचन निरर्थक हो जाता है और संस्कार पक्ष में सार्थक होता है। अतः देवता पक्ष ही योग्य है।

ग्रहाणां च सम्प्रतिपत्तौ तद्वचनं तदर्थत्वात् ।२७।

पदार्थ—(च) और (ग्रहाणाम्) ग्रह नायक पात्र की (संप्रतिपत्तौ)

देवता विषयक संप्रतिपत्ति में (तद्वचनम्) वह वचन है। (तदर्थत्वात्) देवता संस्कारक होने से।

भावार्थ—सौत्रामणि में ग्रहों के देवता में विवाद नहीं, और इन ग्रहों में पुरोडाश सम्बन्धी वचन है। 'ग्रहपुरोडाशा ह्येते पशवः' इसलिये कि ग्रह और पशु दोनों देवता संस्कार के लिये हैं। अतः संस्कार पक्ष ही योग्य है।

ग्रहाभावे च तद्वचनम् ।२८।

पदार्थ—(च) और (ग्रहाभावे) ग्रह के अभाव में (तद्वचनम्) वह वचन है।

भावार्थ—जो ग्रह देवता के संस्कार के लिये हैं तो पुरोडाश देवता के संस्कार के लिये है। 'नैतस्य पशोर्ग्रहं गृह्णन्ति' यह वाक्य ग्रह के अभाव का सूचन करता है और इस अभाव का प्रयोजन यह है कि ग्रह और पुरोडाश का प्रयोजन एक ही है।

देवतायाश्च हेतुत्वं प्रसिद्धं तेन दर्शयति ।२९।

पदार्थ—(च) और (देवतायाः हेतुत्वम्) देवता हेतु रूप हैं यह (प्रसिद्धम्) प्रसिद्ध है। (तेन दर्शयति) उससे बताते हैं।

भावार्थ—अग्निदेवताक पशु होते हैं और पुरोडाश भी अग्निदेवताक हैं। 'आग्नेया हि पुरोडाशा भवन्ति। आग्नेया हि पशवः' इससे सिद्ध होता है कि पुरोडाशों की देवता संस्कारार्थता है। अग्निस्वरूप परमात्मा का नाम स्मरण कर पशु का दान दिया जाता है। इसी परमात्मा का स्मरण कर पुरोडाश का होम किया जाता है, यह भाव है।

अविरुद्धोपपत्तिरर्थापत्तेः शृतवद्गुणभूत-विकारः स्यात् ।३०।

पदार्थ—(उपपत्तिः) प्रधानभूत अग्नीषोमीय धर्मों की उपपत्ति (अविरुद्धा) अविरुद्ध है। (अर्थापत्तेः) प्रधानभूत होने पर भी प्राकृत कार्य याग सिद्ध न करने वाले धर्मों के साथ संयुक्त होंगे। (शृतवत्) जैसे दही और शृत प्रणीता कार्य करते हुये धर्म के साथ संयुक्त होते हैं। वैसे ही (गुणभूत-विकारः स्यात्) प्राकृत अग्निषोमीय का विकार पशु याग है।

भावार्थ—अग्नि और सोम प्रधान होने पर भी प्राकृत अर्थात् प्रकृति याग कार्य करने में द्वारभूत होता है। अभ्युदयेष्टि में प्रधान द्रव्य के सस्कार के लिये की जाती प्रणीता के धर्म प्रधान कर्म में ही होते हैं। भाव यह है कि जो गुणीभूत हो उसके धर्म प्रधान के भी हो सकते हैं।

सद्व्यर्थः स्यादुभयोः श्रुतिभूतत्वाद् विप्रतिपत्तौ तादर्थ्याद् विकारत्वमुक्तं तस्यार्थ-वादत्वम् ।३१।

पदार्थ—(सः) याग (द्व्यर्थः) दो प्रयोजन वाला (स्यात्) होता है। (उभयोः) दोनों अर्थ (श्रुतिभूतत्वात्) वेदविहित हैं। (विप्रतिपत्तौ) संशय में (तादर्थ्यात्) उभयार्थ याग समझना (विकारत्वम् उक्तम्) विकृति याग भी उसी के लिये है (तस्य अर्थवादत्वम्) पशोरेव इत्यादि वाक्य अर्थवाद है।

भावार्थ—पशु याग दो प्रयोजनों के लिये है। एक तो पशुओं का जिन्हें दान किया जाता है उन पर उपकार होता है, अर्थात् उनकी आत्मा में संतोष रूप संस्कार होता है और दूसरे याग करने में त्याग शक्ति आने से उनकी आत्मा की शुद्धि होती है।

विप्रतिपत्तौ तासामाख्याविकारः स्यात् ।३२।

पदार्थ—(विप्रतिपत्तौ) जहाँ संदेह हो वहाँ (तासाम्) देवताओं के (आख्याविकारः) नाम का विकार (स्यात्) होता है।

भावार्थ—इन्द्रादि पशु शब्द देवताओं के ही वाचक हैं। सरस्वती देवताक निगद में बताया है कि—'**विश्वस्य वृसयस्य मायिनः**' इस स्थान पर 'वृसय' शब्द वृहत् शब्द के अर्थ को बताता है। पशु आदि का कोई पृथक् देव नहीं। इन्द्रादि परमेश्वर स्वरूप देव के नाम हैं अतः सबका देवता भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा जाने वाला एक ही है।

अभ्यासो वा प्रयाजवदेकदेशोऽन्यदेवत्यः ।३३।

पदार्थ—(वा) अथवा (अभ्यासः) पुरोडाश याग का अभ्यास होगा (प्रयाजवत्) प्रयाज के तुल्य। (एकदेशः) एक देश (अन्यदेवत्यः) भिन्न देवता वाला है।

भावार्थ—देवता संस्कार पक्ष में आख्यानों का विकार करने की आवश्यकता नहीं। '**अभ्यास एव पुरोडाश यागस्य भविष्यति**' पुरोडाश याग का अभ्यास होगा। उस याग में अतिदेश शास्त्र से देवता और पुरोडाश की प्राप्ति होती है। '**पशुदेवतया अन्यद् द्रव्यं विधीयते ग्रहः**' पशु देवता के ग्रह रूप अन्य द्रव्य का विधान है और **पुरोडाशस्य अन्या देवताः** पुरोडाश के भिन्न देवता हैं। पशु याग में पांच प्रयाज वर्णित हैं। उन्हें ११ किया जाता है तो उन पांच का अभ्यास किये बिना ग्यारह की संख्या नहीं होती। अतः जैसे प्रयाजों का अभ्यास कर ग्यारह की संख्या की जाती है वैसे ही याग का अभ्यास कर

भिन्न देवता और भिन्न द्रव्य का सम्बन्ध कर सकते हैं। इस सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिये शाबर भाष्य आदि ग्रन्थों का अभ्यास करना चाहिये।

सौर्य याग में 'चरु' शब्द का अर्थ 'ओदन' है। इस अधिकरण के सूत्र—

चरुर्हविर्विकारः स्यादिज्यासंयोगात् ।३४।

पदार्थ—(चरुः) चरु शब्द का अर्थ (हविर्विकारः स्यात्) हविष् का विकार है। (इज्यासंयोगात्) याग का सम्बन्ध होने से।

भावार्थ—'सौर्यं चरुं निर्वपेत्' इस वाक्य में जो 'चरु' शब्द आया है, उसका अर्थ हविष् का विकार होता है। इसलिये कि जो कार्य पुरोडाश करता है, वही काम चरु करता है। प्रकृति याग में पुरोडाश बताया है जब कि सौर्य याग रूप विकृति में 'चरु' बताया है। भाव यह है कि धान्य में से बनाये कोई भी खाने योग्य पदार्थ का नाम चरु है। 'चर्यते भक्ष्यते स चरुः'।

प्रसिद्धिग्रहणाच्च ।३५।

पदार्थ—(च) च शब्द पूर्वपक्ष का सूचक है। (प्रसिद्धिग्रहणात्) प्रसिद्धि से 'चरु' शब्द का अर्थ मानना चाहिये।

भावार्थ—लोक व्यवहार में चरु शब्द का अर्थ स्थाली अर्थात् पतली होता है 'उखास्थाली चरुः, इत्यादि समानार्थक हैं। इस कारण से चरु शब्द का अर्थ 'स्थाली' करना ही उचित है।

सिद्धान्त पक्ष—

ओदनो वाऽन्नसंयोगात् ।३६।

पदार्थ—(वा) अथवा (ओदनः) चरु शब्द का अर्थ ओदन होता है। (अन्नसंयोगात्) अन्न अर्थात् अदनीय पदार्थ का सम्बन्ध होने से।

भावार्थ—चरु शब्द का अर्थ ओदन अर्थात् भात ही इस स्थान पर समझना। खाने लायक पदार्थ से ही शिष्ट पुरुष याग करते हैं।

न द्व्यर्थत्वात् ।३७।

पदार्थ—(न) नहीं (द्व्यर्थत्वात्) चरु शब्द से हविर्विकार नहीं समझना चाहिये। ऐसा समझने से चरु शब्द के अनेक अर्थ मानने पड़ेंगे।

भावार्थ—जो चरु शब्द का अर्थ हविर्विकार अर्थात् अदनीय पदार्थ मानने में आवे तो उसके दो अर्थ मानने होंगे। कारण कि प्रसिद्धि तो स्थाली में ही है। एक शब्द का एक से अधिक अर्थ मानना अन्याय है।

कपालविकारो वा विशयेऽर्थोपपत्तिभ्याम् ।३८।

पदार्थ—(वा) अथवा (कपालविकारः) कपाल विकार है (विशये) संशय होनें से (अर्थोपपत्तिभ्याम्) अर्थ और उपपत्ति इनमें होने से ।

भावार्थ—चरु शब्द के अनेक अर्थ मानने के भय से उसका अर्थ कपाल का विकार मानना उचित है। सूर्योद्देशक हवि के आधार रूप की उपपत्ति होने से और श्रपण की योग्यता होने से चरु शब्द का अर्थकपाल का विकार र्थात् कपाल जैसा कोई पदार्थ मानना चाहिये।

गुणमुख्यविशेषाच्च ।३९।

पदार्थ—(च) और (गुणमुख्य विशेषात्) गुण मुख्य का विशेष होने से।

भावार्थ—प्रकृति याग में कपाल और पुरोडाश दोनों का विधान है। सौर्य याग रूप विकृति याग में अतिदेश शास्त्र से दोनों की प्रवृत्ति होती है। परन्तु विकृति याग में चरु शब्द का प्रयोग है, इसलिए दोनों में से एक का बाध जरूर होना चाहिये। या तो कपाल के स्थान में चरु रूप अर्थ होना चाहिए या पुरोडाश के स्थान पर चरु शब्द का अर्थ होना चाहिए। जो कपाल का बाध मानने में आवे तो अंग का बाध होता है और पुरोडाश का बाध हो तो प्रधान का बाध होता है। कारण कि कपाल और पुरोडाश इनं दोनों में पुरोडाश ही प्रधान है। अब प्रधान का बाध करने की अपेक्षा अंग का बाध करना उचित है। अतः कपाल के स्थान पर उसके जैसा कोई अर्थ चरु शब्द का वाच्य होना चाहिए। यह भी पूर्वपक्ष का मत है।

तच्छ्रुतौ चान्यहविष्ट्वात् ।४०।

पदार्थ—(तच्छ्रुतौ) उनकी श्रुति में (च) और (अन्यहविष्ट्वात्) अन्य हविष् का सम्बन्ध है उससे भी चरु शब्द का अर्थ हविष् ही होता है।

भावार्थ—'प्राजापत्यं घृते चरुं निर्वपेत् शतंकृष्णलमायुष्कामः' वाक्य में कृष्णल शब्द हवि वाचक है, और चरु शब्द भी उसके साथ है, इससे चरु शब्द का अर्थ हविष् ही होता है।

लिंगदर्शनाच्च ।४१।

पदार्थ—(च) और (लिंगदर्शनात्) लिंग वाक्य भी इस सम्बन्ध में सुना जाता है।

भावार्थ—'पृश्नयं दुग्धे प्रैयङ्गवं चरुं निर्वपेद् मरुद्भ्यो ग्रामकामः' इस लिंग वाक्य में 'प्रैयंगव' यह चरु का विशेषण है जो प्रियंगु से बने वह

'प्रयंगव'। प्रियंगु शब्द धान्य विशेष का वाचक है। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रियंगु धान्य से बना हुआ चरु। यह चरु शब्द निश्चय से हविष् वाचक ही है प्रियंगु अर्थात् कांग। उससे होम के लिए बनाया गया पदार्थ।

ओदनो वा प्रयुक्तत्वात् ।४२।

पदार्थ—(वा) अथवा (ओदनः) चरु शब्द का अर्थ ओदन ही होता है (प्रयुक्तत्वात्) देवता वाचक तद्धित प्रत्यय का प्रयोग होने से।

भावार्थ—'सौर्य' इस शब्द में सूर्य शब्द में 'य' तद्धित प्रत्यय लगा है इसलिए जिस पदार्थ का देवता सूर्य है उस सूर्य को उद्दिष्ट करके ही हविष् का त्याग होता है। वह हविष् सौर्य हविष् कहलाती है।

अपूर्वव्यपदेशाच्च ।४३।

पदार्थ—(च) और (अपूर्वव्यपदेशात्) अपूर्व का व्यपदेश होने से।

भावार्थ—यः कामयेतामुष्मिल्लोके ऋध्नुयाम् स पुरोडाशं कुर्वीत यः कामयेतास्मिल्लोके ऋध्नुयामिति स चरुं कुर्वीत। इस वाक्य में पद लोक में ऋद्धि की इच्छा करने वाला पुरोडाश बनाए और इस लोक में ऋद्धि की इच्छा करने वाला चरु बनाए। उपर्युक्त से जाना जाता है कि पुरोडाश जैसा हविष चरु है।

तथा च लिंगदर्शनम् ।४४।

पदार्थ—(तथा च) उसी प्रकार (लिंगदर्शनम्) लिंगवाक्य भी है।

भावार्थ—'प्रायणीयेष्ट्यामादित्य प्रायणीश्चरुः' 'चतुराज्यभागान् यजेत' इस वाक्य में चरु शब्द का अर्थ ओदन ही है। इस प्रकार चरु शब्द का अर्थ कपाल नहीं होता। अतः इस पक्ष को इस अधिकरण में दूषित सिद्ध किया है। और चरु शब्द का अर्थ ओदन ही है यह सिद्धान्त निश्चित किया है।

सौर्य चरु का पाक स्थाली तपेली में करना, इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष सूत्र—

स कपाले प्रकृत्या स्यादन्यस्य चाश्रुतित्वात् ।४५।

पदार्थ—(सः) ओदन (कपाले) आठ कपालों में पकाना चाहिए। (प्रकृत्या) कारण कि दर्शपूर्णमास रूप प्रकृति में से कपालों की ही प्राप्ति होती है (च) और (अन्यस्य) अन्य कोई पात्र होना (अश्रुतित्वात्) शास्त्र विहित नहीं।

भावार्थ—हविष् की विकृति रूप ओदन का पाक पुरोडाश के तुल्य आठ कपालों में करना चाहिए कारण कि प्रकृति रूप जो दर्शपूर्णमास है

उसमें अतिदेश शास्त्र से सौर्य विकृति याग में इनको (कपालों की) प्राप्ति होती है।

एकस्मिन् वा विप्रतिषेधात् ।४६।

पदार्थ—(वा) अथवा (एकस्मिन्) एक ही कपाल में पाक करना चाहिए (विप्रतिषेधात्) आठ का बाध होने से।

भावार्थ—आठ कपालों की संख्या का बाध है। केवल ओदन बनाने के लिए एक ही कपाल का उपयोग करना चाहिए। जल का धारण एक ही पात्र में शक्य है। हविष् के लिए जो भात बनाने में आवे तो एक ही कपाल में तैयार होना चाहिए ऐसा द्वितीय पूर्वपक्षवादी का मन्तव्य है।

न वाऽर्थान्तरसंयोगादपूपे पाकसंयुक्तं धारणार्थं चरौ भवति तत्रार्थात् पात्रलाभः स्यादनियमो विशेषात् ।४७।

पदार्थ—(वा) अथवा (न) नहीं (अपूपे) अपूप में (अर्थान्तरसंयोगात्) अर्थान्तर का संयोग होने से (चरौ) चरु में (पाकसंयुक्तम्) पाक साधन उष्मा से संयुक्त जो हो तो (धारणार्थम्) जल के धारण के लिए (भवति) होता है (अर्थात्) अर्थापत्ति प्रमाण से (पात्रलाभः स्यात्) पात्र रखना चाहिए (विशेषात् अनियमः) कोई विशेष नियामक नहीं होने से।

भावार्थ—ओदन बनाने के लिए कपाल की आवश्यकता नहीं, कारण कि कपाल तो अपूप के लिए अर्थात् पुरोडाश के लिए आवश्यक है। कारण कि अपूप पुरोडाश आटे का बनता है और उसे बनाने के लिए कपाल की उष्मा की आवश्यकता है। जब ओदन बनाने के लिए जिसमें यह रांधा जाता है उस आधार में जल की उष्मा से भात तैयार होता है। अतः जिसमें उचित परिमाण में पानी रह सके, ऐसी किसी स्थाली अर्थात् तपेली की आवश्यकता है। अथवा इसके जैसा कोई अन्य कढ़ाई आदि पात्र होना चाहिये। कपाल तो लगभग तावडी के आकार का होता है इसमें भात नहीं पकाया जा सकता। अमुक पात्र ही लेना, ऐसा कोई खास नियम न होने से जिसमें भात रांधा जा सके, ऐसा कोई भी पात्र लेना चाहिए।

सिद्धान्त सूत्र—

चरौ वा लिंगदर्शनात् ।४८।

पदार्थ—(वा) अथवा (चरौ) चरु बनाने के लिए स्थाली ही चाहिए। (लिंगदर्शनात्) लिंग वाक्य का श्रवण होने से।

भावार्थ—चरु बनाने के लिए यज्ञ पात्र में प्रयुक्त स्थाली ही चाहिए। 'यासु स्थालीषु सोमास्ते चरवः स्युः' इस वाक्य का भावार्थ यह है कि सोमस्थाली में ही चरु बनाना चाहिए, इसलिए कि चरु का साधन स्थाली ही हैं। कपाल या कढ़ाई में चरु न बनाना चाहिए। 'तस्मात् स्थाल्यां चरुः पक्तव्य इति' इस प्रकार भाष्यकार ने भी सिद्ध किया है।

सौर्य चरु में पेषण का बाध है। इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष सूत्र—

तस्मिन् पेषणमनर्थलोपात् स्यात् ।४६।

पदार्थ—(तस्मिन्) चरु में (पेषणम् स्यात्) पेषण होना चाहिए (अनर्थलोपात्) पेषण रूप अर्थ का लोप उसमें नहीं है।

भावार्थ—चरु में पेषण होना चाहिए। कारण कि चावल में पेषण=चूर्णभाव शक्य है।

सिद्धान्त सूत्र—

अक्रिया वापूपहेतुत्वात् ।५०।

पदार्थ—(वा) अथवा (अक्रिया) चरु बनाने में पेषण कर्त्तव्य नहीं (अपूपहेतुत्वात्) कारण कि पेषण अपूप का कारण है।

भावार्थ—जो अपूप बनाना हो तो पेषण अर्थात् चूर्ण करना चाहिए। चरु अर्थात् भात बनाने में पेषण की जरूरत न होने से वह कर्त्तव्य नहीं।

सौर्य चरु में संयवन का बाध है।

पिण्डार्थत्वात् संयवनम् ।५१।

पदार्थ—(संयवनम्) पानी से संयवन करना यह (पिण्डार्थत्वात्) पिण्ड बनाने के लिए है, अतः वह भी कर्त्तव्य नहीं।

भावार्थ—'प्रणीताभिः संयौति' ऐसा जो प्रकृति में कहा गया है वह तो लोटमां से पिण्ड बनाने के लिए है। यहां चरु में उसका बाध है।

सौर्य चरु में संवपन का बाध है।

संवपनं च तादर्थ्यात् ।५२।

पदार्थ—(च) और (संवपनम्) संवपन (तादर्थ्यात्) पुरोडाश के लिए होने से यहां कर्त्तव्य नहीं।

भावार्थ—'देवस्य त्वा संवपामि' इत्यादि में जो संवपन किया जाता है, उसका भी चरु में बाध है।

संतापनमधः श्रपणात् ।५३।

पदार्थ—(संतापनम् अधः) संतापन भी निवृत्त होता है। (श्रयणात्) यहां श्रवण होने से।

भावार्थ—'भृगूणामङ्गिरसां तपसा तप्यध्वम्' इत्यादि से जो कपाल में संतापन किया जाता है, उसका भी चरु में वाध होता है।

सौर्य चरु में उपधान का बाध होता है।

उपधानं च तादर्थ्यात् ।५४।

पदार्थ—(च) और (उपधानम्) उपधान का बाध है (तादर्थ्यात्) हविष्पाक के लिए होने से।

भावार्थ—उपधान का भी चरु में बाध है। स्थाली में ही उपधान का निर्वाह हो जाता है।

सौर्य चरु में पृथु और श्लक्ष्ण का बाध है।

पृथुश्लक्ष्णे चानपूपत्वात् ।५५।

पदार्थ—(च) और (पृथुष्लक्षणे) प्रथन और श्लक्ष्णीकरण का बाध है। (अपूपत्वात्) कारण कि वे दोनों अपूप के लिए हैं।

भावार्थ—'उरु प्रथस्व' इससे प्रथन=विस्तार करना और श्लक्ष्णीकरण चिकना करना, ये भी अपूप के लिए होने से चरु में उनका बाध है।

सौर्य चरु में अभ्यूह का बाध है।

अभ्यूहश्चोपरि पाकार्थत्वात् ।५६।

पदार्थ—(च) और (अश्यूहः) अभ्यूह (उपरि पाकार्थत्वात्) ऊपर पाक के लिए होता है।

भावाथ—अभ्यूह अर्थात् अपूप के ऊपर अंगारों की भरती रखनी, यह अपूप के ऊपर के भाग में पाक के लिए है, इससे वह यहां चरु में कर्त्तव्य समूह से नहीं।

सौर्य चरु में ज्वलन का बाध है।

तथा च ज्वलनम् ।५७।

पदार्थ—(च) और (तथा) उसी प्रकार (ज्वलनम्) दर्भ की जूडी= ज्वलन करने का भी बाध है।

भावार्थ—दर्भ की जुट्टी=जूड़े से अपूप के ऊपर ज्वलन करना होता है, उसका भी यहाँ चरु में बाध है। कारण कि वह भी ऊपर के याग में पाक करने के लिये है।

सौर्यं चरु में व्युद्धृत्यासादन का बाध है।

व्युद्धृत्यासादनं च प्रकृतावश्रुतित्वात् ।५८।

पदार्थ—(च) और (व्युद्धृत्य आसादनम्) कपाल में से अपूप को पृथक् कर वेदी में रक्खा जाता है, यह क्रिया चरु में नहीं करनी (प्रकृतौ अश्रुतित्वात्) प्रकृति में श्रवण न होने से।

भावार्थ—कपालेभ्यो व्युद्धृत्य आसादयितव्यः पुरोडाशः ऐसा वाक्य प्रकृति याग में नहीं अतः यहाँ चरु में स्थाली में से निकालकर चरु को वेदी में रखना यह क्रिया भी कर्त्तव्य नहीं। अर्थात् व्युद्धरण रूप क्रिया चरु में कर्त्तव्य नहीं।

इति मीमांसादर्शनभाष्ये दशमाध्यायस्य प्रथमः पादः॥१०।१॥

अथ मीमांसादर्शनभाष्ये

दशमाध्यायस्य द्वितीयः पादः

कृष्ण चरु में पाकानुष्ठान अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष सूत्र—

कृष्णलेष्वर्थलोपादपाकः स्यात् ।१।

पदार्थ—(कृष्णलेषु) कृष्ण चरु में (अर्थलोपात्) पाकरूप अर्थ संभावित न होने से अर्थ का लोप होता है (अपाकः स्यात्) इसका पाक नहीं होता ।

भावार्थ—कृष्णल चरु अर्थात् स्वर्ण के छोटे-छोटे दाने होते हैं, इनमें पाक नहीं हो सकता । प्रकृतो हि पुरोडाशार्थः पाकः प्रकृति याग में पुरोडाश के लिये पाक विधान है। कृष्ण चरु में तो पाक बगैर भी कृष्णल तो कृष्णल ही रहते हैं । अतः कृष्णल में पाक नहीं करना ।

सिद्धान्त सूत्र—

स्याद्वा प्रत्यक्षशिष्टत्वात् प्रदानवत् ।२।

पदार्थ—(वा) अथवा (स्यात्) होता है (प्रत्यक्ष शिष्टत्वात्) प्रत्यक्ष विधान होने से (प्रदानवत्) प्रदान के तुल्य ।

भावार्थ—घृते श्नपयति प्राजापत्यं चरुं निर्वपेत् घृते शतकृष्णलमायुष्कामः' इस प्रकार कृष्णल में भी पाकका प्रत्यक्ष विधान है अतः करना चाहिये, जो कि इसमें पाक संभावित नहीं घृत श्रपण अष्दृष्टार्थ होगा। कृष्णल अदनीय नहीं इसलिये प्रदान करने में आते हैं वैसे ही पाकार्थ घृत में श्रपण करना। जो पाक का अर्थ उष्णता किया जाय तो कृष्णल में यह उत्तप्त कर सकता है। अतः पाक कर्त्तव्य है ।

कृष्ण चरु में उपस्तरण और अभिधारण का अभाव है, यह अधिकरण

सिद्धान्त सूत्र—

उपस्तरणाभिधारणयोरमृतार्थत्वादकर्म स्यात् ।३।

पदाथ—(उपस्तरणाभिधारणयोः) उपस्तरण और अभिधारण

(अमृतार्थत्वात्) स्वादुत्व के लियें होने से कृष्णल चरु में (अकर्म स्यात्) इनका असम्भव होने से दोनों कर्त्तव्य नहीं।

भावार्थ—कृष्णल चरु में उपस्तरण और अभिधारण कर्त्तव्य नहीं कारण कि यह तो हविष् में स्वादुत्व उत्पन्न करने के लिये है। कृष्णल चरु तो स्वर्ण के दाने है, और इसमें स्वादुत्व उत्पन्न करना सम्भव नहीं। उपस्तरण अर्थात् स्रुच् में हविष् डालने के पहले जो घी डालने में आवे वह और अभिधारण अर्थात् हविष् ऊपर जो घी डालना होता है वह।

पूर्वपक्ष सूत्र—

क्रियेत वाऽर्थवादत्वात् तयोः संसर्गहेतुत्वात् ।४।

पदार्थ—(वा) अथवा (क्रियेत) उपस्तरण और अभिधारण दोनों करने चाहिये (तयोः अर्थवादत्वात्) स्वादुत्वकरण यह तो मात्र अर्थवाद ही है। (संसर्गहेतुत्वात्) स्वादुत्वकरण बोध वाक्य से मात्र हविष् के साथ सम्बन्ध ही बताया जाता है।

भावार्थ—यदुपस्तृणाति, अभिधारयति अमृतामाहुतिमेवैनां करोति—यह स्वादुत्व बाधक वाक्य तो केवल अर्थवाद ही है। उपस्तरण और अभिधारण यह दोनों कर्म केवल हविष् के साथ सम्बन्ध करने के लिये ही होते हैं। दोनों पदार्थ करनें ही चाहिये।

सिद्धान्त सूत्र—

अकर्म वा चतुर्भिराप्तिवचनात्सहपूर्णं पुनश्चतुरवत्तम् ।५।

पदार्थ—(वा) अथवा (अकर्म) इसका अनुष्ठान कर्त्तव्य नहीं (चतुर्भिः आप्तिवचनात्) चार आप्ति वचनों का श्रवण होता है इससे (सह) उन दो के साथ (पूर्णम्) अवदान करने से चतुरवत् पूर्ण होता है (पुनश्चतुरवत्तम्) तो पुनः चार कृष्णल से अवदान करनें में उसका व्याघात होता है।

भावार्थ—उपस्तरण और अभिधारण कर्त्तव्य नहीं, कारण कि चार कृष्णल हैं और चार अवदान हैं। एक-एक कृष्णल लेने से चार अवदान हो जाते हैं। अतः उपस्तरण और अभिधारण की निवृत्ति होती है यदि ये दोनों क्रिया के साथ अवदान करने में आवें तो चत्वारि कृष्णलानि अवद्यति चतुरवत्तस्य आप्त्यै इस वचन का व्याघात हो जाय।

पूर्वपक्ष सूत्र—उत्थापन—

क्रिया वा मुख्यावदानपरिमाणात्सामान्यात् तद्गुणत्वम् ।६।

पदार्थ—(वा) अथवा (क्रिया) उपस्तरण और अभिधारण दोनों कर्म करने (मुख्यावदानपरिमाणात्) मुख्य हविष् का जो अवदान करने में आवे, उसका परिमाण बाधक होने से (सामान्यात्) आकांक्षापूरक साजात्य होने से (तद्गुणत्वम्) अंग है।

भावार्थ—उपर्युक्त सूत्र में जो चार कृष्णल बताये गये हैं वे तो परिमाण बोधक हैं इसलिये कि मुख्य हविष् में से कितना अवदान करना ? इसके उत्तर में बताया है कि चार कृष्णल जितना। परिमाण स्वयं गुण अर्थात् अंग होने से मुख्य द्रव्य का बाध नहीं कर सकता। इसलिये उक्त दोनों क्रियायें करनी चाहिये।

तेषां चैकावदानत्वात् ।७।

पदार्थ—(च) और (तेषाम्) चार कृष्णल जितना (एकावदानत्वात्) एक अवदान का विधान होने से।

भावार्थ—चार कृष्णल जितना एक अवदान करना, इस प्रकार 'चत्वारि कृष्णलानि' बताते हैं। अतः उक्त दोनों क्रियाओं की निवृत्ति नहीं।

आप्तिसंख्यासमानत्वात् ।८।

पदार्थ—(आप्तिः) आप्तिवचनसंख्या (समानत्वात्) दोनों पक्ष में चतुष्क तो समान है, इससे किसी उक्त दोनों क्रिया की निवृत्ति नहीं होती।

सतोस्त्वाप्तिवचनं व्यर्थम् ।९।

पदार्थ—(सतोः) विद्यमान होने से (तु) सिद्धान्त पक्ष को बताता है (आप्तिवचनम्) स्तुति वचन (व्यर्थम्) व्यर्थ है।

भावार्थ—जो उपस्तरण और अभिधारण अविद्यमान हो तो उस रूप में स्तुति समान हो सकती है, यहाँ तो वह विद्यमान है, अतः स्तुति सम्भव नहीं। जो वसिष्ठ न हो उसे वसिष्ठ कहना स्तुति है। वसिष्ठ को वसिष्ठ कहने में स्तुति नहीं।

विकल्पस्त्वेकावदानत्वात् ।१०।

पदार्थ—(तु) 'तु' शब्द पुनः पूर्वपक्ष का सूचक है। (एकावदानत्वात्)

एक अवदान का कथन होने से उक्त दोनों क्रियाओं की अनिवृत्ति बताते हैं। अतः (विकल्पः) विकल्प प्रतीत होता है।

भावार्थ—आप्ति वचन उपस्तरण और अभिधारण को निवृत्त करते हैं, उसी प्रकार एक अवदानवचन उक्त दोनों धर्मों को व्यवस्थापित करता है। अतः परिणाम में विकल्प ही प्राप्त होता है।

सर्वविकारे त्वभ्यासानर्थक्यं हविषो हीतरस्य स्यादपि वा स्विष्टकृतः स्यादितरस्या-न्याय्यत्वात् ।११।

पदार्थ—(तु) 'तु' शब्द पूर्वोक्त विकल्प की अनुपपत्ति बताता है। (सर्वविकारे) सर्व चार समय अवदान का विकार हो तो (अभ्यासनर्थक्यम्) 'चत्वारि-चत्वारि' यह अभ्यास निरर्थक हो जाय (इतरस्य हविषो हि स्यात्) सिद्धान्तवादी पक्ष में तो दूसरे हविष् के अवदान के लिये अभ्यास है, यह मानना है। (अपि वा) अथवा (स्विष्टकृतः स्यात्) स्विष्टकृत के लिये अभ्यास चरितार्थ होगा जो, ऐसा कहा जाय तो उचित नहीं कारण कि (उत्तरस्य अन्याय्यत्वात्) प्रधान प्रकरण का त्याग कर अन्य प्रकरण का स्वीकार करना अन्याय्य है।

भावार्थ—'चत्वारि चत्वारि' ऐसा जो अभ्यास है वह चार समय अवदान किया जाय तभी चरितार्थ होता है। स्विष्टकृत आहुति से जो यह अभ्यास चारितार्थ नहीं हो सकता, कारण कि स्विष्टकृत आहुति तो कृष्णल आहुति रूप प्रकरण से बाहर है। प्रधान प्रकरण का त्याग कर अन्य अर्थ स्वीकारना अन्याय है।

अकर्म व संसर्गार्थनिवृत्तित्वात् तस्मात् आप्तिसमर्थत्वात् ।१२।

पदार्थ—(वा) सिद्धान्त पक्ष का सूचक है (अकर्म) उपस्तरण और अवधारण कर्त्तव्य नहीं। (संसर्गार्थनिवृत्तित्वात्) संसर्ग की निवृत्ति के लिये होने से (तस्मात्) उसकी निवृति है और (आप्तिसमर्थत्वात्) 'आप्ति' वचन का समर्थन होने से।

भावार्थ—प्रकृत पुरोडाश के सूक्ष्म अवयव स्रु चमें जुड़े न रहें इसलिये उपस्तरण और अभिधारण क्रिया होती है। कृष्णल में जुड़ना सम्भव नही। कारण कि ये तो स्वर्ण के दाने हैं ये जुड़े नहीं रहते। अतः ये दोनो कर्म उपस्तरण और अभिधारण की निवृत्ति हैं। इनसे दूसरे समय अवदान भी

निवृत्ति सूचित नहीं होती। चार समय जो अवदान करने में आवे तो आप्ति वचन को स्तुति माननाभी ठीक नहीं, अतः कृष्णल आहुतियों के उपस्तरण और अभिधारण रूप कर्म कर्त्तव्य नहीं, यही सिद्धान्त है।

कृष्णलचरु में भक्षण कर्त्तव्यता का अधिकरण—

पूर्वपक्ष सूत्र—

भक्षाणां तु प्रीत्यर्थत्वादकर्म स्यात् ।१३।

पदार्थ—(तु) 'तु' शब्द पूर्वपक्ष को बताता है। (भक्षाणाम्) भक्ष्य (प्रीत्यर्थत्वात्) भक्षण जन्य प्रीति होने से (अकर्म स्यात्) कृष्ण चरु में भक्षण नहीं।

भावार्थ—प्रकृति याग में भक्षण विहित है। अर्थात् चरु का भक्षण ऋत्विजों को करना होता है। परन्तु यहां कृष्णल चरु में भक्षण बाधित है। अतः कृष्णल चरु में भक्षण अकर्त्तव्य है। यह तो स्वर्ण है, इसका भक्षण अशक्य है।

सिद्धान्त सूत्र—

स्याद्वा निर्धानदर्शनात् ।१४।

पदार्थ— (वा) अथवा (स्यात्) इसमें भी भक्षण है (निर्धानदर्शनात्) निर्धान शब्द से वह विहित है।

भावार्थ—'निरवधयन्तो भक्षयन्ति' इस वाक्य से कृष्णल चरु में भक्षण सिद्ध होता है। अतः कृष्णल चरु में भक्षण कर्त्तव्य है।

वचनं वाऽऽज्यभक्षस्य प्रकृतौ स्याद-भागित्वात् ।१५।

पदार्थ—(वा) अथवा (वचनम्) यह वचन (आज्यभक्षस्य) आज्य अर्थात् घी का भक्षण है (प्रकृतौ) प्रकृति में (स्यात्) होना चाहिये। (अभागित्वात्) आज्य भागी रूप में नहीं।

भावार्थ—आज्य का भक्षण शक्य तो है पर प्रकृति याग में आज्य का भक्षण करना नहीं कहा वहां तो चरु का भक्षण करने को कहा है और कृष्णल चरु का शक्य नहीं।

वचनं वा हिरण्यस्य प्रदानवत् आज्यस्य गुण-भूतत्वात् ।१६।

पदार्थ—(वा) अथवा (वचनम्) उक्त वचन (हिरण्यस्य) हिरण्य के

लिये है। (प्रदानवत्) जैसे अशनीय पदार्थ का प्रदान किया जाता है वैसे भक्षण करना भी होता है (आज्यस्य) आज्य (गुणभूतत्वात्) गुणभूत होने से।

भावार्थ—जैसे अशनीय पदार्थ का प्रदान किया जाता है वैसे भक्षण भी होता है। जो कि हिरण्य भक्ष्य के रूप में निर्दिष्ट नहीं पर आज्य तो गौण है अतः भक्षण में इसका ग्रहण नहीं चरु का ही भक्षण प्रकृति में बताया है। प्रधान का हो ग्रहण इष्ट है। 'यथा इष्टकाकूटे दण्डः तिष्ठति प्रहर चोरम्' ईंटों के ढेर पर लकड़ी है चोर को मार, उस वाक्य से लकड़ी से ही चोर को मारना समझाया जाता है, कारण कि वह प्रधान है। इसी प्रकार प्रधान चरु ही लक्षणीय है और उसका भक्षण किस रीति से करना वह रीति और उपाय दोनों ऊपर कहे गये हैं। अर्थात् घी वाले कृष्णल को मुंह में रखकर चाटना यही इनका भक्षण है। इस कारण से कृष्णल चरु में भक्षण का सहभाव है।

कृष्णल चरु में सहपरिहार विधान अधिकरण—

सिद्धान्त सूत्र—

एकाधोपहारे सहत्वं ब्रह्मभक्षाणां प्रकृतौ विहृतत्वात् ।१७।

पदार्थ—(एकधा उपहारे) 'उपहारो भक्षणाय समर्पणम्' इस स्थान पर उपहार का अर्थ खाने के लिये देना होता है। (एकधा) अर्थात् एक ही समय में प्राकृत इडा आदि हविष् के चार भाग कर देने में (सहत्वम्) सहत्व अर्थात् एक साथ है। ब्रह्मा नामक ऋत्विज् के भक्ष्य भागों का (प्रकृतौ) प्रकृति याग में (विहृतत्वात्) विहित होने से।

भावार्थ—प्रकृति याग में किये इडा रूप हविष् के चार भाग कर ब्रह्मा नामक होता को देना होता है ऐसा प्रकृति याग में बताया है। विकृति याग में भी अतिदेश शास्त्र से यह प्राप्त होता है। उसमें 'एकधा' बारी बारी से एक भाग ब्रह्मा को प्रदान करना या चार भाग एक साथ देने इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार दिया गया है कि चार भक्ष्य भाग एकधा अर्थात् एक साथ देने एकधा का अर्थ एक समय अथवा युगपत्। दोनों हो सकते हैं। एक समय यह भी अर्थ है और एक साथ यह भी है। बारी बारी से देने में अवशिष्ट तीन भागों का बाध होता है और एक साथ देने में बाकी बचे तीन काल का बोध होता है। भक्ष्य यह प्रधान है और काल अंग है। प्रधान का बाध करने की अपेक्षा अंग का बाध करना ठीक है अतः सहपरिहार का ही विधान है।

कृष्णल चरु में ब्रह्मा नामक ऋत्विक् को सर्वभक्ष भागार्पण इस अधिकरण के सूत्र—

सर्वत्वं च तेषामधिकारात्स्यात् ।१८।

पदार्थ— (च) और (तेषाम्) ब्रह्मा सम्बन्धी भागों का(सर्वत्वम्) सर्व-पना विहित है (अधिकारात्) उद्देश्य होने से ।

भावार्थ—कृष्णल चरु के जितने भाग होते हैं उन सभी अन्य ऋत्विजों का भी सम्बन्ध होता है पर सूत्र में बताये गाये भागों में ब्रह्मा नामक ऋत्विज् का ही सम्बन्ध है। इसलिये अध्वर्यु आदि ऋत्विजों को इन भागों का भक्षण कर्त्तव्य नहीं।

पुरुषापनयो वा तेषामवाच्यत्वात् ।१९।

पदार्थ—(पुरुषापनय: वा) अन्य पुरुषों का दूरी भवन होता है (तेषाम् अवाच्यत्वात्) उनका वाच्यत्व न होने से।

भावार्थ—बाकी रहे हविष् में ब्रह्मा का सम्बन्ध होने से अन्यों के सम्बन्ध की निवृत्ति होती है। अन्य ऋत्विज् तो अवाच्य हैं अर्थात् अश्रुत हैं।

भक्ष भागों का भक्षण इसे निश्चित समय में ब्रह्मा द्वारा ही किया जाना इस अधिकरण के सूत्र—

पुरुषापनयात्स्वकालम् ।२०।

पदार्थ—(पुरुषापनयात्) अन्य ऋत्विजों का सम्बन्ध दूर होने के पश्चात् (स्वकाल) तत् तत् समय में ब्रह्मा द्वारा ही उसका भक्षण किया जाना।

भावार्थ—भक्ष के सभी भाग ब्रह्मा द्वारा ही किये जाते हैं अन्य ऋत्विजों द्वारा नहीं जिस भाग का जो समय विहित है उस काल में उस भाग भक्षण करना। ब्रह्मा के द्वारा एक ही काल में सभी भागों का भक्षण नहीं करना। प्रकृति में ही काल का विधान किया है उसका भंग नहीं करना।

ब्रह्मभक्ष में चतुर्धाकरण आदि का अभाव है। इस अधिकरण के सूत्र—

एकार्थत्वादविभागः स्यात् ।२१।

पदार्थ—(एकार्थत्वात्) एक ब्रह्मा नामक ऋत्विज् के लिये ही सर्व होने से (अविभागः स्यात्) निर्देश करने की जरूरत नहीं।

भावार्थ—'इदं ब्रह्मणे' यह ब्रह्मा के लिये है ऐसा निर्देश भी करने की आवश्यकता नहीं है। प्रकृति में तो चार ऋत्विजों का भक्ष्य भाग के साथ सम्बन्ध था उससे, 'यह ब्रह्मा को' 'यह अध्वर्यु को' इस प्रकार निर्देश करने की आवश्यकता नहीं। परन्तु यहाँ तो सभी भाग ब्रह्मा के होने से उक्त निर्देश करने की आवश्यकता नहीं।

ऋत्विग्दान कीं आनति के अधिकरण के सूत्र—
पूर्वपक्ष सूत्र—

ऋत्विग्दानं धर्ममात्रार्थं स्याद् ददाति-सामर्थ्यात् ।२२।

पदार्थ— (ऋत्विग्दानम्) ऋत्विजों को जो दान देने में आता है वह (धर्ममात्रार्थम्) केवल धर्म के लिए इसलिए अदृष्ट के लिए (स्यात्) है (ददातिसामर्थ्यात्) ददाति का सामर्थ्य अदृष्ट के लिए होता है।

भावार्थ—ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां ददाति) ऐसा वचन प्रकृति याग में श्रुत है वह अदृष्ट के लिए है या आनति के लिए। आनति अर्थात् वेतन देकर किसी से काम लेना। ऋत्विजों को धन देकर जो काम कराना उसे आनति कहते हैं "भृत्या परिक्रीय वशीकार आनतिः" इसमें पूर्वपक्ष अदृष्ट के लिए दक्षिणा मानता है। अन्न और स्वर्ण आदि का जो दान किया जाता है। उसे अदृष्ट के लिए मानने में आता है। अर्थात् परलोक में सुख की प्राप्ति के विए दान होता है।

सिद्धान्त सूत्र—

परिक्रयार्थं वा कर्मसंयोगाल्लोकवत् ।२३।

पदार्थ—(वा) अथवा (परिक्रयार्थं) आनति के लिए है (कर्मसंयोगात्) कर्म के साथ संयोग होने से (लोकवत्) जैसे लोक व्यवहार में काम का बदला देने में होता है उस प्रकार।

भावार्थ—जो दक्षिणा देने में आती है वह जो कार्य किया उसका बदला है इसलिए भृति रूप अर्थात् वेतन रूप है लोक व्यवहार में जैसे किसी से काम करवा कर पीछ उसके बदले में निश्चित किया धन देने में आता है यह किसी अदृष्ट के लिए नहीं उसी प्रकार यज्ञ में दक्षिणा भी अदृष्ट के लिए नहीं पर दृष्ट कर्म के बदले के रूप में दी जाती है।

दक्षिणायुक्तवचनाच्च ।२४।

पदार्थ—(च) और (दक्षिणायुक्तवचनात्) 'दक्षिणायुक्ता वहन्त्यृत्वजः' ऐसा वचन होने से।

भावार्थ— दक्षिणा देने से ऋत्विज् कर्म करते हैं इससे स्पष्ट होता है कि दक्षिणा परिक्रय के लिए है। और उसका फल दृष्ट है अदृष्ट नहीं।

परिक्रीतत्वाच्च ।२५।

पदार्थ—(च) और (परिक्रीतत्वात्) परिक्रीत वचन भी होने से।

भावार्थ—"दक्षिणा परिक्रीता ऋत्विजो याजयन्ति" दक्षिणा देने का वचन देकर वरण किये हुए ऋत्विज् कर्म करते हैं यह वचन भी यही सूचित करता है कि दक्षिणा दृष्ट अर्थ के लिए ही है।

सनिवन्ये च भृतिवचनात् ।२६।

पदार्थ—(च) और (सनिवन्ये) याचना से प्राप्त धन में (भृतिवचनात्) भृति शब्द का प्रयोग होने से।

भावार्थ—"द्वादशरात्रीर्दीक्षितो भृतिं वन्वीत" दीक्षित हुये यजमान को बारह रात्रि पर्यन्त दूसरे से ऋत्विक् को देने की दक्षिणा रूप भृति मांगनी चाहिये। भृति शब्द परिक्रय अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। परिक्रय अर्थात् लौकिक सामान्य भाषा में इसे मजदूरी कहते हैं।

नैष्कर्तृकेण संस्तवात् ।२७।

पूर्वप—(नैष्कर्तृकेण) निष्कर्तृक शब्द से (संस्तवात्) प्रयोग होने से।

भावार्थ—यथा वै दारुहरो नैष्कर्तृको निष्कर्तनभृतः कर्मयोगे वर्तते एवं वा एते ऋत्विजः' 'जैसे लकड़ी ढोने वाला मजदूरी लेकर काम करता है लकड़ी काटने वाला मजदूरी लेकर काटता है उसी प्रकार दक्षिणा लेकर ऋत्विज् यज्ञ कराता है। अतः दक्षिणा शब्द का अर्थ दृष्ट है अदृष्ट नहीं।

पूर्वपक्ष सूत्र—

शेषभक्षाश्च तद्वत् ।२८।

पदार्थ—(च) और (शेषभक्षाः) हविशेष का भक्ष (तद्वत्) दक्षिणा की भांति दृष्टार्थक है।

भावार्थ—ज्योतिष्टोम में हविः शेषों का भक्षण दक्षिणा के तुल्य दृष्टार्थक होता है। इसलिए यह भक्षण परिक्रय रूप है।

सिद्धान्त सूत्र—

संस्कारो वा द्रव्यस्य परार्थत्वात् ।२९।

पदार्थ—(वा) अथवा (संस्कारः) संस्कार के लिये है। (द्रव्यस्य परार्थत्वात्) हव्य-द्रव्य परार्थक होने से।

भावार्थ—पुरोडाश द्रव्य ही परार्थ है अर्थात् वह याग के लिये है अतः इसके शेष का भक्षण पुरुष की आत्मा के संस्कार के लिये है अर्थात् अदृष्ट के लिए है।

शेषे च समत्वात् ।३०।

पदार्थ—(च) और (शेषे) हुतशेष में (समत्वात्) ऋत्विक् और यजमान समान होने से।

भावार्थ—देवता को उद्दिष्ट कर ऐसा कहा जाता है "अग्नये जुष्टं निर्वपामि' निर्वाप करने से यजमान का स्वत्व इसमें निवृत्त होता है। अतः इसमें पक्रिय नहीं परन्तु वे शेष भक्षण को अदृष्ट मानते हैं। जहाँ स्वत्व ही न हो वहाँ परिक्रय नहीं हो सकता।

स्वामिनि च दर्शनात् तत्सामान्यादितरेषां तथात्वम् ।३१।

पदार्थ—(च) और (स्वामिनिदर्शनात्) स्वामी को भी शेषभक्षण विहित है। (तत्सामान्यात् इतरेषां तथात्वम्) अन्य के शेष भक्षण के तुल्य ही है।

भावार्थ—यजमान के लिए शेष भक्षण विहित है और वह अदृष्टार्थ है उसी प्रकार अन्य ऋत्विजों का भक्षण भी अदृष्टार्थ ही है।

सत्र में ऋत्विक् वरण का अभाव है—इस अधिकरण के सूत्र—

वरणमृत्विजामानमनार्थत्वात्सत्रे न स्यात् स्वकर्मत्वात् ।३२।

पदाथ—(सत्रे) सत्र में (स्वकर्मत्वात्) अपने ही कर्म होने से (न स्यात्) ऋत्विज का वरण नहीं होता (ऋत्विजां वरणं) ऋत्विजों का वरण (आनमनार्थत्वात्) परिक्रय के लिए होने से।

भावार्थ—ऋत्विजों का वरण दक्षिणा देकर काम कराने के लिए होता है। सत्र में तो ऋत्विज् स्वयं ही यजमान रूप में होते हैं इसलिए सत्र ऋत्विजों का ही होता है। अतः अपने कर्म होने से उनमें ऋत्विक् वरण नहीं होता।

सत्र में परिक्रय का अभाव होता है—यह अधिकरण

परिक्रयश्च तादर्थ्यात् ।३३।

पदार्थ—(च) और (परिक्रयः) दक्षिणा भी (तादर्थ्यात्) उसके लिए होने से।

भावार्थ—सत्र अपने लिए ही होने से उसमें दक्षिणा नहीं दी जाती।

सिद्धान्तक्षेपक सूत्र—

प्रतिषेधश्च कर्मवत् ।३४।

पदार्थ—(च) और (प्रतिषेधः) प्रतिषेध (कर्मवत्) प्राप्तिपूर्व होने से ।

भावार्थ—जिस सत्र में दक्षिणा नहीं दी जाती तो भी दक्षिणा का निषेध भी न होना चाहिये ।

कारण, निषेध प्राप्तिपूर्वक होता है तो पीछे "अदक्षिणानि सत्राणि" इस निषेध वाक्य की उपपत्ति किस प्रकार होगी ?

एकदेशी समाधान—

स्याद्वा प्रासर्पिकस्य धर्ममात्रत्वात् ।३५।

पदार्थ—(वा) अथवा (स्यात्) प्रतिषेध की उपपत्ति हो सकती है (प्रासर्पिकस्य) दान का होना (धर्ममात्रत्वात्) यह अदृष्टार्थ होने से ।

भावार्थ—दक्षिणा होने पर भी सत्र में आन का होना सम्भव है। दान के निषेध से दक्षिणा के निषेध की उपपत्ति हो सकेगी।

सिद्धान्त सूत्र--

न दक्षिणाशब्दात्तस्मान्नित्यानुवादः ।३६।

पदार्थ—(न) प्रासर्पिक दक्षिणा का निषेध नहीं (दक्षिणाशब्दात्) कारण दान में ही दक्षिणा शब्द रूढ़ होने से (तस्मात् नित्यानुवादः) अतः नित्य का अनुवाद मात्र ही है।

भावार्थ—सत्र में प्रासर्पिदान रूप दक्षिणा का निषेध नहीं पर आनत्यर्थक दक्षिणा का अर्थात् कार्य कराने के बदले में ऋत्विजों को जो दान देने में आता है उस दक्षिणा का ही निषेध है। अतः दक्षिणा का निषेध तो मात्र नित्यानुवाद अर्थात् अर्थ वाद मात्र है।

उदवसानीययाग में दान परिक्रयार्थ है—इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष—

उदवसानीयः सत्रधर्मा स्यात् तदंगत्वात् तत्र दानं धर्ममात्रं स्यात् ।३७।

पदार्थ—(उदवसानीयः) सत्र समाप्त कर पृष्ठ शमनीय ज्योतिष्टोम सहस्त्र दक्षिणा वाले से याग करना। यह याग (सत्रधर्मा स्यात्) सत्र धर्म वाला है। (तदङ्गत्वात्) उक्त सत्र का अंग होने से (तत्र दानम् धर्ममात्रम् स्यात्) उसमें दान केवल अदृष्टार्थ है।

भावार्थ—उदवसानीय यह याग विशेष का नाम है "सत्रादुदवसाय पृष्ठशमनीयेन ज्योतिष्टोमेन सहस्रदक्षिणेन यजेरन्" इस वाक्य से ऐसा समझा जाता है कि सत्र समाप्त करने के पश्चात् जिसमें दक्षिणा होती है ऐसा पृष्ठशमनीय नामक सोमयाग करना अब इस याग में जो दक्षिणा देने में आती है वह ऋत्विजों से जो काम कराया उसके बदले में नहीं परन्तु केवल धर्म बुद्धि से ही इसलिए यह दक्षिणा अदृष्टार्थक है। कारण कि उक्त याग सत्र का ही अंग है। अतः उस सत्र के धर्म उसी पृष्ठशमनीय उदवसानीय याग में भी होने चाहिये।

सिद्धान्त सूत्र—

न त्वतत्प्रकृतिकत्वाद् विभक्तचोदितत्वात् ।३८।

पदार्थ—(न) नहीं (तु) सिद्धान्त सूचक है। (अतत्प्रकृतिकत्वात्) सत्र प्रकृति न होने से (विभक्तचोदितत्वात्) पृथक् विहित होने से।

भावार्थ—उदवसानीय याग सत्रप्रकृतिक नहीं, वैसे ही उस सत्र का अंग भी नहीं, कारण कि सत्र समाप्त किए पीछे, इसका अलग ही विधान है। इससे इसमें जो दक्षिणा दी जाती है, वह अदृष्टार्थक नहीं परन्तु ऋत्विजों से कर्म कराने के बदले में है। अर्थात् यह दक्षिणा दृष्टार्थक है।

सत्र के ऋत्विजों में से प्रत्येक ऋत्विज् को उदवसानीय याग करना चाहिए, इस अधिकरण का सूत्र—

पूर्वपक्ष सूत्र—

तेषां तु वचनाद् द्वियज्ञवत् सह प्रयोगः स्यात् ।३९।

पदार्थ—(तेषां तु वचनात्) सत्र करने वाले ऋत्विजों के लिए वचन होने से (द्वियज्ञवत्) राजपुरोहित कर्तृकयज्ञवत् (सह प्रयोगः स्यात्) सभी ऋत्विजों को साथ मिल कर उदवसानीय याग करना चाहिए।

भावार्थ—उदवसानीया इष्टि सत्र गत जितने ऋत्विज् होते हैं, वे सभी मिलकर करते हैं। प्रत्येक ऋत्विक् को पृथक्-पृथक् इष्टि करनी चाहिए। इस सम्बन्ध में पूर्वपक्ष का यह मानना है कि जैसे राजा और पुरोहित दोनों साथ मिलकर याग करते हैं वसे ही—उदवसानीया इष्टि सभी ऋत्विकों को संम्मिलित होकर करनी चाहिए। 'यजेरन्' यहाँ बहुवचन का निर्देश है। इससे सभी मिलकर उक्त याग करें, यह सूचना फलित होती है। इस पूर्वपक्ष का उत्तर ४१वें सूत्र में है। बीच के ४०वें सूत्र में दूसरा ही अधिकरण है।

उदवसानीया ऋत्विज् सत्रि ऋत्विजों से पृथक् होने चाहिएं। यह अधिकरण—

तत्रान्यान् ऋत्विजो वृणीरन् ।४०।

पदार्थ—(तत्र) उदवसानीया इष्टि में (अन्यान् ऋत्विजः) सत्र के ऋत्विजों से भिन्न ऋत्विजों का (वृणीरन्) वरण करना चाहिए।

भावार्थ—उदवसानीया इष्टि में जो ऋत्विज् सत्र में थे उनसे भिन्न ऋत्विजों का वरण करना चाहिए।

पृष्ठशमनीय में प्रत्येक की यष्टृता है। इस अधिकरण के सूत्र—

एकैकशस्त्वप्रतिषेधात् प्रकृतेश्चैक—संयोगात् ।४१।

पदार्थ—(एकैकशः) सत्र के ऋत्विजों में प्रत्येक ऋत्विज् पृष्ठशमनीय अर्थात् उदवसानीय याग कर सकते हैं (तु) कारण कि (अप्रतिषेधात्) प्रतिषेध न होने से (प्रकृतेः च एकसंयोगात्) प्रकृत में एक कर्ता का संयोग होने से।

भावार्थ—३९वें सूत्र में कथित उदवसानीय याग सभी मिलकर करें, इस सम्बन्ध में यह सिद्धान्तवचन है। इस सूत्र में यह कहा गया है कि उदवसानीय याग अर्थात् पृष्ठशमनीय याग प्रत्येक ऋत्विक् को करना चाहिए। कारण कि ऐसा करने में कोई बाधक वचन प्रतीत नहीं होता। द्वियज्ञ में तो वैषम्य है।

कामेष्टि में दान अदृष्टार्थक है—इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष सूत्र—

कामेष्टौ च दानशब्दात् ।४२।

पदार्थ—(च) और (कामेष्टौ) कामेष्टि में (दानशब्दात्) दक्षिणा विहित होने से क्रयार्थक है।

भावार्थ—सारस्वत सत्र में कामेष्टि करनी होती है। उसमें दक्षिणा विहित है। यह दक्षिणा परिक्रयार्थ है अर्थात् दृष्टार्थक है।

सिद्धान्त सूत्र—

वचनं च सत्रत्वात् ।४३।

पदार्थ—(वा) अथवा (वचनम्) परिक्रय के लिए वचन नहीं (सत्रत्वात्) सत्र का अंग होने से।

भावार्थ—कामेष्टि सत्र का अंग है। और सत्र में परिक्रयार्थक दक्षिणा

नहीं होती, इससे सत्र मध्य गत कामेष्टि में जो दक्षिणा है वह भी परिक्रयार्थक नहीं, पर अदृष्टार्थक है। अर्थात् धर्म के लिए है।

द्वेष्ये वा चोदनात् दक्षिणापनयात् ।४४।

पदार्थ—(वा) अथवा (द्वेष्ये) द्वेष्य को (चोदनात्) दक्षिणा देने का कथन होने से (दक्षिणापनयात्) दक्षिणा का अपनय होने से।

भावार्थ—निमित्त विशेष में दृष्टि का श्रवण है उसमें द्वेष्य ऋत्विज् को दक्षिणा देने का वचन है। 'द्वेष्याय दद्यात्' इस प्रकार वचन है। इसका समाधान यह है कि जो द्वेष्य हो उसे ऋत्विज् बनाना ही नहीं चाहिये। ऋत्विगाचार्यौ नातिचरितव्यौ ऋत्विक् तथा आचार्य का उल्लंघन नहीं करना, अतः ऋत्विक् द्वेष्य नहीं हो सकता। अतः उक्त वाक्य से जो दक्षिणा देने में आवे वह अदृष्टार्थक ही है।

अस्थियज्ञ—यह जीवित मनुष्य को करना होता है। इस अधिकरण के सूत्र—

अस्थियज्ञोऽविप्रतिषेधादितरेषां स्याद्विप्रतिषेधादस्थनाम् ।४५।

पदार्थ—(अस्थियज्ञः) अस्थि यज्ञ नाम से सूचित यज्ञ (इतरेषाम्) मृतभिन्नों का (स्यात्) है (अविप्रतिषेधात्) बाध न आने से (अस्थनां विप्रतिषेधात्) अस्थि का बाध होने से।

भावार्थ—सत्र में इस प्रकार उल्लेख है—"यदि संदीक्षितानामेकः प्रमीयेत तं दग्धा कृष्णाजिनेस्थीनि उपनह्य योऽस्य नेदिष्ठः तं तस्य स्थाने दीक्षयित्वा तेन सह यजेरन् ततः संवत्सरेऽस्थीनि याजयेत्)" सत्र में दीक्षित हुये ऋत्विजों में से जो कोई सत्र पूरा होने के पहले मर जाय तो उसका अग्निसंस्कार कर उसकी अस्थियों को मृगचर्म में बांध कर मृत का जो निकटस्थ व्यक्ति हो उसे उसके स्थान पर दीक्षित कर उसके साथ यज्ञ करना। पीछे एक वर्ष पश्चात् अस्थि यज्ञ करना। इस अस्थि यज्ञ से जो फल होता है वह मृत व्यक्ति को मिलता है ऐसा पूर्वपक्ष वायिदों का मानना है और सिद्धान्तवादी का मानना है कि जीवित को इसका फल मिलता है। अर्थात् जो अस्थियज्ञ करता है उसे फल मिलता है।

यावदुक्तमेतेषाम् ।४६।

पदार्थ—(यावत्) जितना (उक्तम्) कहा (एतेषाम्) उनका।

भावार्थ—अस्थि का अस्थि यज्ञ में उपयोग किसी स्थान पर होता है, जैसे कि—'अस्थिन कुम्भमुपनिधाय स्तुवीत' अस्थि के ऊपर घड़े को रखकर स्तुति करना। पर इतने से ही जिसकी अस्थि है, उस मृत पुरुष को यज्ञ का फल नहीं मिलता। यज्ञ की मुख्य क्रिया तो याग है। धन आदि का त्याग करना यह अस्थि के लिए सम्भव नहीं है। कारण कि अस्थि तो जड़ वस्तु है।

अस्थि भाग में अस्थि के लिए जप आदि अनुष्ठान संभव नहीं—यह अधिकरण—

यदि तु वचनात् तेषां जपसंस्कारमर्थलुप्तं सेष्टि तदर्थत्वात् ।४७।

पदार्थ—(तु) पर (यदि) जो (वचनात्) वचन से (तेषाम्) अस्थि के लिए (जपसंस्कारम्) जप और संस्कार मानने में आवे तो (सेष्टि) इष्टि सहित (लुप्तम्) लुप्त होता है तदर्थत्वात्) कर्तृ संस्कार के लिए होने से।

भावार्थ—जो कोई वैदिक वचन का भाव नहीं समझ कर अस्थि-कर्तृक अस्थि यज्ञ माने तो उसके मत में जप और केशश्मश्रुवपन आदि संस्कार तथा दीक्षणीय इष्टि का लोप मानना पड़ेगा। अस्थि जड़ होने से उसमें उक्त वस्तु सम्भव नहीं होती। जो यज्ञ करता है, उसके संस्कार के लिए उक्त बातें जरूर कर्त्तव्य होती हैं। अतः अस्थिकर्तृक अस्थि यज्ञ नहीं, इस लिए 'अस्थीनि याजयेत' यह लाक्षणिक प्रयोग है। जिसकी अस्थि है उसके निकट के सम्बन्धी को यह करना चाहिए और ऋत्विजों को उससे यज्ञ करवाना चाहिये, यही उक्त वाक्य का भाव है। इस बारे में सब कोई समझ सकते हैं कि जड़ पदार्थ यज्ञ नहीं कर सकते हैं इसलिए शास्त्रकार ने एक विस्तार किया है जिससे उनसे भी कोई विशेष ज्ञान हो। इस बारे में मीमांसा में क्रत्वा चिन्ता करते हैं।

क्रत्वर्थं तु क्रियेत गुणभूतत्वात् ।४८।

पदार्थ—तु (पर) (क्रत्वर्थम्) क्रतु को उपयोगी हो तो (क्रियेत) करना चाहिए (गुणभूतत्वात्) गौण होने से।

भावार्थ—जो क्रत्वर्थ हो वह करना, कारण कि यजमान का गुणभूत कर्त्तव्य है। जहाँ चेतन का अधिकार है, वहाँ जड़ अस्थि अधिकृत नहीं।

अस्थि यज्ञ में काम्य कर्म का अनुष्ठान नहीं किया जाता, इस अधिकरण के सूत्र—

काम्यानि न विद्यन्ते कामाज्ञानाद् यथेतरस्यानुच्यमानानि ।४९।

पदार्थ—(तु) और (काम्यानि न विद्यन्ते) काम्य कर्म भी कर्त्तव्य नही (कामाज्ञानात्) कामना का ज्ञान न होने से (तथा इतरस्य अनुच्यमानानि) दूसरों को अनुक्त का ज्ञान नहीं होता, इससे ।

भावार्थ—अस्थि यज्ञ में काम्य कर्म भी कर्त्तव्य नहीं, कारण कि अस्थि को कामना का ज्ञान नहीं होता । एक के मन में क्या है, वह दूसरे को जब तक कहने में न आये तब तक दूसरे को उसका ज्ञान नहीं होता, तो अस्थि तो केवल जड़ है, उसे तो कामना का ज्ञान हो ही नहीं सकता ।

अस्थि यज्ञ में सूक्तवाक गत शासन का अनुष्ठान नहीं, यह अधिकरण—

ईहार्थाश्चाभावात् सूक्तवाकवत् ।५०।

पदार्थ—(ईहार्थाः) आयुष आदि की प्रार्थना (च) भी (अभावात्) ज्ञान न होनें से कर्त्तव्य नहीं (सूक्तवाकवत्) सूक्तवाक में बताये गये हैं, इस प्रमाण से ।

भावार्थ—सूक्तवाक में आयुक्त का आशंसन आदि जो बताने में आये हैं वे भी अस्थि यज्ञ में कर्त्तव्य नहीं । कारण ईहा आदि अस्थि में असंभावित है । पूर्वपक्ष सूत्र—

स्युर्वाऽर्थवादत्वात् ।५१।

पदार्थ—(वा) अथवा (स्युः) उक्त कर्मों का अनुष्ठान करना और (अर्थवादत्वात्) केवल अर्थरूप गिना जायगा ।

भावार्थ—अर्थवादरूप तत् तत् कर्म करना कि जो सूक्तवाक में बताने में आया है और उन्हें अर्थवाद के रूप में गिनना।

नेच्छाभिधानात् तदभावादितरस्मिन् ।५२।

पदार्थ--(न) नहीं (इच्छार्थाभिधानात्) इच्छा का कथन होने से (इतरस्मिन्) अन्य जो अस्थि है, उसमें (तदभावात्) इच्छा न होने से ।

भावार्थ—अस्थि में इच्छा ही न होने से आयुराशंसन आदि कर्त्तव्य नहीं ।

अस्थि यज्ञ में होतृ काम का अभाव है । यह अधिकरण—

स्युर्वा होतृकामः ।५३।

पदार्थ—(वा) अथवा (स्युः) होना चाहिए (होतृकामः) होतृकाम।

भावार्थ—केवल विधान होने से जैसे जीवित को होतृकाम कर्त्तव्य होता है, वैसे ही अस्थि के लिए भी कर्त्तव्य है। ऐसा करने से विधिवाक्य चरितार्थ होगा।

न तदाशीष्ट्वात् ।५४।

पदार्थ—(ना) नहीं (तदाशीष्ट्वात्) यजमान की आशीः होने से।

भावार्थ—होतृकाम यजमान की आशी रूप है। अस्थि को ज्ञान की इच्छा चेतन की भांति कुछ न होने से चेतन के लिए किए जाने वाला कोई कर्त्तव्य अस्थि याग में नहीं होता।

यजमान का मरण हो तो भी सर्वस्वार याग की समाप्ति करनी चाहिए यह अधिकरण। पूर्वपक्ष सूत्र—

सर्वस्वारस्य दिष्टे गतौ समापनं न विद्यते कर्मणो जीवसंयोगात् ।५५।

पदार्थ—(दिष्टे) करण (गतौ) होने के पीछे (सर्वस्वारस्य) 'सर्वस्वार' नामक ऋतु की (समापनम्) समाप्ति (न विद्यते) नहीं। (कर्मणो जीवसंयोगात्) कर्म का जीवित यजमान के साथ सम्बन्ध होने से।

भावार्थ—'सर्वस्वार' नामक याग विशेष है, और वह ज्योतिष्टोम का विकार है। **'मरणकामो ह्येतेन यजेत'** मरण की कामना करने वाले यजमान को इस याग से यज्ञ करना। **'ब्राह्मणाः समापयत मे यज्ञम्' इति संप्रेष्याग्नौ संविशति।** हे ब्राह्मणो! मेरा यज्ञ समाप्त करो, ऐसा कह यजमान अग्नि में प्रवेश करे। इस प्रकार यजमान की मृत्यु के पश्चात् सर्वस्वार नामक ऋतु का अवशिष्ट भाग पूरा करना या नहीं? इसमें पूर्वपक्षवादी का मानना है कि याग रूप कर्म जीवित यजमान के याथ होने यजमान की मृत्यु के पश्चात् सर्वस्वार की समाप्ति नहीं करनी चाहिए। सिद्धान्त सूत्र—

स्याद्वा उभयोः प्रत्यक्षशिष्टत्वात् ।५६।

पदार्थ—(वा) अथवा (स्यात्) समाप्ति करनी चाहिए (उभयोः) ऋतु और समाप्ति (प्रत्यक्षशिष्टत्वात्) प्रत्यक्ष प्रैष से विधान किया होने से।

भावार्थ—मरते समय यजमान ने स्पष्ट कहा है कि हे ब्राह्मणो, मेरा यज्ञ समाप्त करो, इस वाक्य से ऋतु और समाप्ति दोनों के लिए यजमान का ऐसा स्पष्ट कथन है उससे समाप्ति करनी चाहिए।

'सर्वस्वार' में कार्यबाध्य व्यवस्था' नाम का अधिकरण।

गते कर्मास्थियज्ञवत् ।५७।

पदार्थ—(गते) यजमान के मृत्यु प्राप्त किये पश्चात् (कर्म) याग रूप कर्म करना चाहिए (अस्थियज्ञवत्) अस्थियज्ञ की भांति।

भावार्थ—जैसे यजमान की मृत्यु के पीछे अस्थि यज्ञ किया जाता है, वैसे सर्वस्वार नामक याग भी यजमान की मृत्यु के पश्चात् चालू रख कर उसकी समाप्ति करनी चाहिए।

सर्वस्वार में यजमान मृत्यु प्राप्त किए पीछे आयुष का आशंसन करना, इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष—

जीवत्यवचनमायुराशिषस्तदर्थत्वात् ।५८।

पदार्थ—(जीवत्यवचनात्) जीवन की कामना करने के वचन होने से (आयुः) आयु प्रार्थना के मंत्र न बोलना चाहिए (आशिषः) जीवन का आशंसन (तदर्थत्वात्) जीने की इच्छा रखने वाले के लिए होने के कारण।

भावार्थ—'अयं यजमान आयुराशास्ति' यह मंत्र सर्वस्वार में बोलना होता है; उसे बोलना या नहीं ? इसमें पूर्व पक्षवादी का मानना है कि यह मंत्र न बोलना कारण कि यजमान तो मरने की इच्छा रखता है तो पीछे जीवन की आशंसा रखना, यह कैसे बन सकता है।

सिद्धान्त सूत्र—

वचनं वा भागित्वात् प्राग्यथोक्तात् ।५९।

पदार्थ—(वा) अथवा (वचनम्) यह मंत्र बोलना चाहिए। (भागित्वात्) आर्भव पवमान स्तोत्र पूरा हो, वहां तक यजमान के जीवित रहने की इच्छा होने से (यथोक्तात् प्राक्) जैसे अन्य क्रिया करने में आती है वैसे आयु की आशा सूचक मंत्र का पाठ भी करना चाहिए।

भावार्थ—आर्भव पवमान स्तोत्र का पाठ पूर्ण हो तब तक यजमान को जीने की इच्छा होती है, इससे तब तक तो जीवन को यजमान द्वारा टिकाए रखना चाहिए, अतः उक्त मंत्र का अवश्य पाठ करना चाहिए।

द्वादशाह नामक सत्र में ऋतुयाज्यावरण का अनुष्ठान होता है, इस अधिकरण के सूत्र—

क्रिया स्याद् धर्ममात्राणाम् ।६०।

पदार्थ—(धर्ममात्राणाम्) अदृष्ट प्रयोजन वाले कर्त्तव्यों का (क्रिया स्यात्) अनुष्ठान होता है।

भावार्थ—'द्वादशाहभृद्धिकामा उपेयुः' इस सत्र में ऋतुयाज्यावरण का अनुष्ठान करना होता है, कारण कि केवल अदृष्ट के लिए होता है। जिस सत्र में वरण और दान की निवृत्ति होती है, वह तो आनति प्रयोजन वाले हों तो भी आनत्यर्थ न हो तो और अदृष्टार्थक हो तो वह करने में आपत्ति नहीं।

पवमान इष्टि में निर्वाप का अनुष्ठान होता है। इस अधिकरण के सूत्र

गुणलोपे तु मुख्यस्य ।६१।

पदार्थ—(गुणलोपे तु) गुण का लोप हो तो भी (मुख्यस्य) मुख्य जो निर्वाप है उसकी क्रिया तो होती है।

भावार्थ—अग्न्याधान में पवमानेष्टि कर्त्तव्य होती है। उसमें 'अग्निहोत्र-हवण्या हवींषि निर्वपेत्' अग्निहोत्र हवणी से हविष् का निर्वाप करना पर यह तो अग्न्याधान का समय है। अग्निहोत्र का समय तो उसके बाद होता है तो पीछे निर्वाप का साधन अग्निहोत्र हवणी किस प्रकार होगा? अर्थात् न होगा। इस कारण से निर्वाप न करना, ऐसा पूर्वपक्षवादी का मत है। सिद्धान्तवादी का मानना है कि निर्वाप मुख्य है और अग्निहोत्र हवणी गौण है। अतः मुख्य का लोप न कर अग्निहोत्र हवणी में उसकी साधनता की निवृत्ति माननी ही उचित है।

वाजपेय मुष्टिलोप का अधिकरण—

मुष्टिलोपात्तु संख्यालोपः तद्गुणत्वात् ।६२।

पदार्थ—(तु) अधिकरण का आरम्भ सूचित करता है। (मुष्टिलोपात्) मुष्टिलोप की अपेक्षा (संख्यालोपः) संख्या का लोप मानना योग्य है (तद्गुण-त्वात्) संख्या-मुष्टि का गुण होने से।

भावार्थ—वाजपेये नैवारस्सप्तदश शरावश्चरूर्भवति। तत्र चतुरो मुष्टी-न्निर्वपति। इन वाक्यों से ऐसा समझा जाता है कि अतिदेश से प्राप्त चार मुष्टियों का सप्तदश शराव से बाध होता है तो यहाँ यह प्रश्न होता है कि चार संख्या का बाध करना या मुष्टियों का? इसमें पूर्वपक्षवादी का मानना है कि मुष्टियों का बाध न करना पर चार संख्या का बाध करना। कारण कि संख्या मुष्टि प्रत्ये गुण है। मुख्य की अपेक्षा गुण का बाध होना उचित है।

न निर्वापशेषात् ।६३।

पदार्थ—(न) नहीं (निर्वापशेषात्) निर्वाप का शेष होने से।

भावार्थ—संख्या मुष्टि का शेष अर्थात् गुण नहीं परन्तु निर्वाप का गुण है। इसलिए संख्या का बाध मानना उचित नहीं, पर मुष्टि का बाध मानना चाहिए।

संख्यां तु चोदनां प्रति सामान्यात् तद्विकारः संयोगाच्च परं मुष्टेः ।६४।

पदार्थ—(तु) 'तु' शब्द पूर्वपक्ष को निवृत्त करता है। (चोदनां प्रति सामान्यात्) विधान प्रमाणे सादृश्य (तद्विकारः) चतुष्ट्व विकार (च) और (संयोगात्) द्रव्य का मान नहीं (परं मुष्टिः) मुष्टि विकार बाधित होता है।

भावार्थ—मुष्टि का लोप करने से संख्या का अनुग्रह नहीं होता, अर्थात् संख्या अवधित नहीं रहती। 'चार' यह संख्या को बताता है और 'सत्रह' यह शब्द भी संख्या को बताता है। अतः सादृश्य से चार संख्या का बाध सत्रह संख्या से होता है। मुष्टि द्रव्य है और शराव भी द्रव्य है। अतः शराव से मुष्टि का बाध होता है, इस प्रकार सादृश्य से संख्या और मुष्टि दोनों का बाध होता है। 'चतुरो मुष्टीर्न्निर्वपति' यह प्रकृति वाक्य है और सप्तदश शराब विकृतिगत वाक्य है। इससे प्रकृति में वर्णित पदार्थों का विकृति में कहे गए पदार्थों से बाध होता है। यह शास्त्रार्थ वाजपेय याग सम्बन्धी है।

सिद्धान्त सूत्र—

न चोदनाभिसम्बन्धात्प्रकृतौ संस्कार-योगात् ।६५।

पदार्थ—(चोदनाभिसम्बन्धात्) याग के साथ सम्बन्ध होने से (प्रकृतौ) प्रकृति में (संस्कारयोगात्) निर्वाप रूप संस्कार के साथ सम्ब्रन्ध होने से (न) दोनों का बाध नहीं होता।

भावार्थ—चार मुष्टि का सम्बन्ध प्रकृति में निर्वाप के साथ है और सत्रह शराव का सम्बन्ध याग के साथ है। इस रीति से भिन्न सम्बन्धी होने से दोनों का बाध नहीं होता। पर चार मुष्टि और सत्रह शराव इन दोनों का मेल न होने से शराव रूप द्रव्य से मुष्टि रूप द्रव्य का बाध अवश्य होना चाहिए। चार संख्या का बाध नहीं होता।

धेनु आदि शब्द गोवाचक है। इस अधिकरण के सूत्र—

औत्पत्तिके तु द्रव्यतो विकारः स्यादकार्यत्वात् ।६६।

पदार्थ—(औत्पत्तिके तु) उत्पत्ति के समय (द्रव्यतो विकारः) प्राकृत द्रव्य का बाध (स्यात्) होता है। (अकार्यत्वात्) उसका कार्य न होने से।

भावार्थ—'द्यावापृथिव्यां धेनुमालभते' इस वाक्य में धेनु शब्द है, वह

गुणवाचक है। जो एक समय वत्स प्रसव करे वह धेनु ऐसा पूर्व पक्षवादी का मन्तव्य है। सिद्धान्तवादी का मन्तव्य है कि धेनु शब्द गुणवाचक है नहीं पर गुण विशिष्ट जाति वाचक है। अतः एक समय प्रसूत हुई गाय को धेनु कहा जाता है। पूर्वपक्षवादी केवल गुणवाचक शब्द मानकर एक समय प्रसूत 'अजा' को धेनु वाचक मानता है, उसका इस अधिकरण में निराकरण किया जाता है।

वायव्य पशु से अज समझना, इस अधिकरण के सूत्र—

नैमित्तिके तु कार्यत्वात् प्रकृतेः स्यात्तदापत्तेः ।६७।

पदार्थ—(नैमित्तिके तु) केवल गुण को निमित्त मान कर प्रवृत्त हुए शब्द (कार्यत्वात्) कार्य होने से (प्रकृतेः स्यात्) प्रकृति में 'अज' का ग्रहण होता है (तदापत्तेः) अतिदेश शास्त्र की उपपत्ति होने से।

भावार्थ—'वायव्यं श्वेतमालभेत' यहां श्वेत शब्द केवल गुण का निमित्त होकर प्रवृत्त हुआ है। यहाँ जाति निमित्त नहीं, अतः प्रकृति में से अतिदेश शास्त्र से प्राप्त श्वेत अज का ग्रहण होता है और उसका दान किसी योग्य पुरुष को करना, ऐसा उसका अर्थ होता है।

खलेवाली और तंडुल में खादिर और वैहृत्व का नियमन नहीं।

विप्रतिषेधे तद्वचनात् प्राकृतगुणलोपः स्यात् तेन कर्मसंयोगात् ।६८।

पदार्थ—(विप्रतिषेधे) प्राकृत और वैकृत गुणों का विरोध हो तो (तद्वचनात्) वैकृत गुण का वचन मान्य होने से (प्राकृतगुणलोपःस्यात्) प्राकृत गुणों का बाध होता है। (तेन कर्मसंयोगात्) समीपवर्ती यूप के साथ भावना का अन्वय होने से।

भावार्थ—'खलेवाल्यां यूपो भवति' इस वाक्य से खलेवाली में यूप का विधान है, अतिदेश शास्त्र से खलेवाली खदिर से करनी चाहिए पर प्राकृत गुण खदिर का बाध होता है। अतः खदिर हो या अखदिर हो चाहे जिस वृक्ष से खलेवाली बनानी चाहिए। बगैर पशु आदि के वरण के लिए जैसा काष्ठ होता है उसे खलेवाली कहते हैं। शाबरभाष्य में लिखा है—खलेवाली शब्दश्च यः खले वारणे प्रवर्तते तस्य वाचकः। तथा 'चित्रायां श्रूयते' चित्रा याग में सुना जाता है कि 'दधि-मधु घृतं पयो धाना उदकं तत्संसृष्टं प्राजापत्यं भवति' यहां भी तंडुल से व्रीहि का ग्रहण नहीं होता।

खलेवाली में तक्षण आदि का अनुष्ठान नहीं, इस अधिकरण के सूत्र—

परेषां प्रतिषेधः स्यात् ।६९।

पदार्थ—(परेषाम्) अन्यों का (प्रतिषेधः स्यात्) प्रतिषेध होता है।

भावार्थ—खलेवाली में तक्षण तथा अष्टाश्रीकरण अर्थात् आठ कोने भी कर्त्तव्य नहीं। वगैर गढ़ा काष्ठ होना चाहिए, यह भाव है।

विप्रतिषेधाच्च ।७०।

पदार्थ—(च) और (विप्रतिषेधात्) विरोध होने से।

भावार्थ—यदि यह काष्ठ छीलने में आवे और आठ कोने वाले यूप बनाने में आवें तो वह खलेवाली ही कहने में नहीं आता, अतः ये पदार्थ कर्त्तव्य नहीं।

खलेवाली में पर्यु हण आदि संस्कार कर्त्तव्य हैं। इस अधिकरण के सूत्र

अर्थाभावे संस्कारत्वं स्यात् ।७१।

पदार्थ—(अर्थाभावे) तक्षण आदि अर्थों का अभाव होने पर भी (संस्कारत्वं स्यात्) जो संस्कारों का फल इष्ट है वह तो करना चाहिए।

भावार्थ—खलेवाली में यूपत्व के निमित्त तक्षण आदि कर्त्तव्य नहीं तो भी पर्यु हण आदि तो खलेवाली में करना चाहिए। पयु हण, अर्थात् जमीन में खड्डा खोद कर उसमें काष्ठ डाल कर तथा मिट्टी इत्यादि से उसे पूर देना। पीछे पानी के छींटे देना। इन क्रियाओं को करने से खलेवाली जमीन में खूब मजबूत हो जाती है। पशु भी यदि इसे खींचे तो यह सरलता से नहीं निकलती। अतः ये संस्कार खलेवाली में कर्त्तव्य हैं।

महापितृयज्ञ में अवघात का अनुष्ठान करना चाहिए। इस अधिकरण के सूत्र—

अर्थे न च विपर्यासे तादर्थात् तत्त्वमेव स्यात् ।७२।

पदार्थ—(विपयसे) विपरीत क्रम में (अर्थे) पदार्थ होने से (न च) धानत्व का भंग नहीं होता (तादर्थ्यात्) क्रम पदार्थ का शेष होने से (तत्त्वमेव स्यात्) क्रमरहितत्व और धानात्व संपादन अवहनन होना चाहिए।

भावार्थ—'महापितृयज्ञे बर्हिषद्भ्यो धानाः' धाना को हविष् के रूप में बताया है। धाना अर्थात्। अब यहां धाना का अवहनन करना या नहीं? इस प्रश्न पर विचारना है कि जो धाना पर अवहनन करता हो तो धाना का सत्तू अर्थात् चूर्ण ही हो जाए और धानात्व का भंग हो जाए और जो ऐसा हो तो धाना हविष् रूप में नहीं रहेंगे। अतः प्रथम अवहनन करना

और उसके बाद धानात्व सम्पादन करना, ऐसा सिद्धान्त पक्ष है। अवहनन भी उस रीति से करना, जिससे कि धाना का विघात न हो, ऐसी रीति से करना—'यथा न विघातकं भवति तथा करिष्यते' पहले अवघात और उसके बाद पाक करने में क्रम का बाध होता है, पर पदार्थ का नहीं होता। क्रम इस पद का अंग है। अतः अंग का बाध करना, यह पदार्थ के बाध करने की अपेक्षा ठीक है। इसलिए धाना में अवघात अवश्य करना चाहिए।

इति मीमांसादर्शनभाष्ये दशमाध्यायस्य द्वितीयः पादः १०।२॥

अथमीमांसादर्शनभाष्ये दशमाध्यास्य तृतीयः पादः

पश्वादि में सामिधेन्यादि प्राकृत इतिकर्त्तव्यता का अनुष्ठान है—यह अधिकरण--

पूर्वपक्ष—

विकृतौ शब्दवत्त्वात् प्रधानस्य गुणानामधिकोत्पत्तिः संनिधानात् ।१।

पदार्थ—(विकृतौ) प्राकृत गुण से विलक्षण गुण वाले प्राकृत अंग वाले अग्नीषोमीय पशु आदि में (शब्दवत्वात्) एकादशत्वादिविशिष्ट प्रयाजादि विधायक शब्द होने से (गुणानाम्) अप्राकृत गुणों की (अधिकोत्पत्तिः) स्वतन्त्रता से उत्पन्न है। (प्रधानस्य सन्निधानात्) मुख्य भावना के संनिधान होने से।

भावार्थ—अग्नीषोमीय विकृति याग में अप्राकृतगुण कर्त्तव्य होते हैं। कारण कि विकृति याग में एकादशप्रयाजान् यजति ऐसा विधान है। प्राकृत प्रयाजों का अनुवाद करना और संख्या मांत्र विहित है ऐसा मानने की आवश्यकता नहीं कारण कि मुख्य भावना अर्थात् धात्वर्थ की विधि योग्य है। इसलिए प्राकृत अंगों की उक्त याग में निवृत्ति है।

प्रकृतिवत्वस्य चानुपरोधः ।२।

पदार्थ—(च)और(प्रकृतिवत्वस्य) 'पशुमालभेत' इस वाक्य में प्रकृतिवत्व पद की (अनुपरोधः) कल्पना करने की नहीं रहती।

भावार्थ—'पशुमालभते' इस वाक्य में प्रकृतिवत्व इस प्राकृतपद की कल्पना नहीं करनी पड़ती कारण कि उक्त प्रयाज विधायक वाक्य से ही कथम् भावाकांक्षा की शान्ति हो जाती है।

चोदनाप्रभुत्वाच्च ।३।

पदार्थ—(च) और (चोदनाप्रभुत्वात्) प्रयाजादि विधि में उक्त वाक्य का प्रभुत्व है।

भावार्थ—'एकादशप्रयाजान् यजति' इस स्थान में प्रयाजादि के विधान में इस वाक्य का ही सामर्थ्य है। इस प्रकार प्राकृत अंगों की कर्त्तव्यता उक्त विकृति में नहीं, ऐसा पूर्वपक्षवादी का मन्तव्य है।

सिद्धान्त सूत्र—

प्रधानत्वंगसंयुक्तं तथाभूतमपूर्वं स्यात् तस्य विध्युपलक्षणात्सर्वो हि पूर्ववान् विधिरविशेषात् प्रवर्तितः ।४।

पदार्थ—(प्रधानं तु) प्राकृत कर्म (अङ्गसंयुक्तं) जैसे अंगों में संयुक्त हुए (तथाभूतं अपूर्वम् स्यात्) वैसे अंगों से उपलब्धि होने से (सर्वो हि पूर्ववान् विधिः) सभी विकृति याग भी प्रकृतिपूर्वक होते हैं (अविशेषात् प्रवर्तितः) सामान्य रूप से प्रवर्तित है।

भावार्थ—प्रकृति याग में जो कर्म होते हैं। जैसे अंग सहित होते हैं वैसे अंग सहित विकृति याग होता है। विकृति याग में प्राकृत अंगों की उपलब्धि होने से सभी विकृति याग प्रकृति याग से होते हैं अतः 'प्रकृतिवद् विकृतिःकर्त्तव्या' यह सामान्य रूप से प्रवर्तित होता है। विशेष किसी अमुक विकृति याग के लिए नहीं।

न चांगविधिरनंगे स्यात् ।५।

पदार्थ—(च) और (अनंगे) अंगरहित कर्म में (अंगविधिः) अंग की विशेष विधि (न स्यात्) नहीं होती।

भावार्थ—जो अंगरहित कर्म हो तो अंग की विशेष विधि भी नहीं होनी चाहिये।

(विशेषविधिराश्ववालः प्रस्तरः नहि असति प्रस्तरे प्रस्तरविशेषः शिष्येत्) जो प्रस्तर ही न हो तो आश्ववाल रूप प्रस्तर विशेष का विधान ही न हो जैसे कि जिसके पुत्र ही न हो उसके पुत्र के खेलने के लिए खिलौने नहीं बनाये जाते इसलिए गुणविधि है।

कर्मणश्चैकशब्दात्संनिधाने विधेराख्यासंयोगो गुणेन तद्विकारः स्यात् शब्दस्य विधिगामित्वाद् गुणस्य चोपदेश्यत्वात् ।६।

भावार्थ—(कर्मणः च एकशब्द्यात्) प्रधानकर्म और गुण कर्म प्रयोग

बाचक एक शब्द से कहलाते हैं। (संनिधाने) प्रधान वचन से अंग सन्निहित होते हैं। (निर्वं: आख्यासंयोग:) अंगविधि के साथ सम्बन्ध होता है। (गुणेन तद्‌विकारः स्यात्) एकादशत्व संख्यारूप गुण से विकार होता है। (शब्दस्य विधिगामित्वात्) गुण विधेय होने से—

भावार्थ—प्रकृति याग में से विकृति याग में इतिकर्त्तव्यता प्राप्त होती है। उसके होने पर एकादशप्रयाजान्यजति' विकृति याग में कहा गया यह वचन निरर्थक नहीं कारण कि उक्त वाक्य से एकादशत्व रूप संख्या का विधान है और संख्या गुण है।

अकार्यत्वाच्च नाम्नः ।७।

पदार्थ—(नाम्नः) नाम का (अकार्यत्वात् च) सम्बन्ध न होने से।

भावार्थ—प्रयाज ऐसा नाम याग में विधान किया ऐसा भी नहीं इस लिए प्रसिद्ध प्रयाजों का उच्चारण है और गुण विधान है। भाव यह है कि इतिकर्त्तव्यता प्रकृति में से प्राप्त होती है और गुणविधि भी है।

तुल्या च प्रभुतागुणे ।८।

पदार्थ—(च) और (प्रभुता) शक्ति (गुणे) गुण कर्म में और प्रधान कर्म में (तुल्या) तुल्य है।

भावार्थ—अपूर्व कर्म विधान में और गुण विशेष विधानमें विधि प्रत्यय की शक्ति समान होने से।

सर्वमेवं प्रधानमिति चेत् ।९।

पदार्थ—(एवं) इस प्रकार (सर्वम्) सर्वकर्म (प्रधानं इति चेत्) प्रधान होगा जो ऐसा मानने में आवे तो।

भावार्थ—जो ऐसा मानने में आवे कि आख्यात जो वाच्य हो वह प्रधान कर्म है तो सर्व विधान प्रधान ही होना चाहिए इस शंका का समाधान अगले सूत्र में है।

तथाभूतेन संयोगाद् यथाऽर्थविधयः स्युः ।१०।

पदार्थ—(तथाभूतेन) दूसरे अध्याय में बताए अनुसार (संयोगात्) संयुक्त होने से (यथा अर्थ विधयः स्युः) गुण कर्म विधि मानने में आती है।

भावार्थ—दूसरे अध्याय में गुण का लक्षण तथा प्रधान का लक्षण बताया गया है। उस प्रकार गुण कर्म और प्रधान कर्म की व्यवस्था जाननी चाहिए।

विधित्वं चाविशिष्टं वैकृतैः कर्मणा योगात् तस्मात् सर्वं प्रधानार्थम् ।११।

पदार्थ—(च) और (वैकृतैः अविशिष्टं विधित्वम्) वैकृत कर्म के साथ विधित्व समान है। (कर्मणा योगात्) अर्थवाद के साथ सम्बन्ध होने से (तस्मात् सर्वं प्रधानार्थम्) इसलिए सभी प्रधान के लिए हैं।

भावार्थ—श्रूयमाण प्रयाजादि विधि वैकृत अर्थवाद के साथ समान जानी जाती है। जैसे प्रकृति में बताया है कि 'यदाज्ययागौ यजति चक्षुषी एव तद् यज्ञस्य प्रतिदधाति' जो आज्य भागों का याग करने में आता है तो यज्ञ की चक्षु स्वरूप है वैसे ही विकृति याग में भी अर्थवाद कहने में आया है। अतः इस प्रकार के सभी विधान प्रधान के लिए ही होते हैं।

समत्वाच्च तदुत्पत्तेः संस्कारैरधिकारः स्यात् ।१२।

पदार्थ—(समत्वात् च) समान कर्म होने से (तदुत्पत्तेः) प्रयाजादि का (संस्कारैः अधिकारःस्यात्) संस्कार के साथ अधिकार होते हैं।

भावार्थ—प्रकृति में जो प्रधान प्रयाज के लिए प्रधान कर्म और पीछे अनुयाज ऐसा क्रम होता है वैसा ही क्रम निवृत्ति में होता है इसलिए सामिधेन्यादि प्राकृत इतिकर्त्तव्यता विकृति में भी कर्त्तव्य है ऐसा इस अधिकरण का भाव है।

'हिरण्यगर्भ' यह मंत्र उत्तर आधार में गुण रीति से विहित है, इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष सूत्र—

हिरण्यगर्भः पूर्वस्य मंत्रलिंगात् ।१३।

पदार्थ—(हिरण्यगर्भः) हिरण्यगर्भ इत्यादि मंत्र (पूर्वस्य) पूर्व आधार के गुण रीति से हैं (मंत्रलिगात्) मंत्र में प्रजापति देवता का स्तवन होने से।

भावार्थ—वायव्य पशु विशेष में 'हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे' इत्यादि मंत्र का श्रवण होता है। यह मंत्र प्रथम आधार का अंग है या उत्तर आधार का? इस प्रश्न के उत्तर में पूर्वपक्षवादी का यह मानना है कि प्रथम आधार का अंग उक्त मंत्र है, कारण कि प्रकृति में प्रजापति श्रवण है और इस मंत्र में भी प्रजापति देवता की स्तुति है।

सिद्धान्त सूत्र—

अपि वा तदधिकारात् हिरण्यविकारः स्यात् ।६७।

पदार्थ—(अपि वा) अथवा (तदधिकारात्) दक्षिणा का अधिकार होने से (हिरण्यवद् विकारः स्यात्) हिरण्य के जैसी उस दक्षिणा का ही विकार है।

भावार्थ—उक्त अश्वदक्षिणा सर्व का विकार है। अर्थात् सर्व का बाध करती है। दक्षिणा का सम्बन्ध ऋतु के साथ है। उक्त दक्षिणा बोधक वाक्य में दो भाग हैं। एक भाग से केवल दक्षिणा का विधान होता है और 'स ब्रह्मणे परिहरति' उससे पुरुषान्तर का दक्षिणा के साथ का सम्बन्ध निवृत्त करता है।

ऋतपेय नामक याग विशेष में सोम चमस की दक्षिणा से सम्पूर्ण ऋतु दक्षिणा का बाध होता है। इस अधिकणर के सूत्र—
पूर्वपक्ष—

तथा च सोमचमसः ।६८।

पदार्थ—(तथा च) उस प्रमाण से (सोमचमसः) सोमचमस दक्षिणा ब्रह्म भाग का बाध करती है।

भावार्थ—'ऋतपेये श्रूयते' ऋतुपेय नामक याग में सुनते हैं कि 'उदुम्बरः सोमचमसो दक्षिणा स ब्रह्मणे देयः' उदुम्बर नामक काष्ठ से बनाया सोम चमस ऋतपेय नामक याग में दक्षिणा रूप होता है और यह दक्षिणा ब्रह्मा नामक ऋत्विज् को दी जाती है। और वह प्राकाश दक्षिणा जैसे अध्वर्यु भाग का बाध करती है वैसे उक्त दक्षिणा ब्रह्मा के भाग का बाध करती है।
सिद्धान्त सूत्र—

सर्वविकारो वा क्रत्वर्थे पशूनां प्रतिषेधात् ।६९।

पदार्थ—(वा) अथवा (सर्व विकारः) सर्व का बाध करती है। (क्रत्वर्थे) क्रत्वर्थक दान में (पशूनां प्रतिषेधात्) पशुदान का प्रतिषेधात् है।

भावार्थ—'ऋतं वै सोमः अनृतं पशवः यत्पशून् दद्यात् सोऽनृतं करोति' इस वाक्य में ऋतपेय याग पशुदान की निंदा करता है और सोम चमस दक्षिणा को ही विहित मानता है और यह दक्षिणा ब्रह्मा को दी जाती है। अतः वह सर्व दक्षिणाओं का बाध करता है।

पूर्वपक्ष—

ब्रह्मदानेऽवशिष्टमिति चेत् ।७०।

पदार्थ—(ब्रह्मदाने) ब्रह्मा को दक्षिणा देनी (अवशिष्टम्) अन्य दक्षिणा बाकी रहती है। (इति चेत्) जो ऐसा माना जावे तो उसका उत्तर अगले सूत्र में है।

भावार्थ—केवल ब्रह्मा नामक ऋत्विजों की दक्षिणा बाकी रहती है। अतः इनको भी दक्षिणा देनी चाहिये, अतः यह दक्षिणा केवल ब्रह्मा का ही बाध करती है, अन्य ऋत्विजों को दी जाने वाली दक्षिणा का बाध नहीं होता।

सिद्धान्त सूत्र—

उत्सर्गस्य क्रत्वर्थत्वात् प्रतिषिद्धस्य कर्मत्वात् न च गौणः प्रयोजनमर्थः स दक्षिणानां स्यात् ।७१।

पदार्थ—(उत्सर्गस्य क्रत्वर्थत्वात्) दान क्रतु के लिये होता है, अतः एक ही दक्षिणा होनी चाहिये। (प्रतिषिद्धस्य कर्मत्वात्) क्रतु में जो पशुदान किया जाता है वह प्रकृत याग में निषिद्ध किया होने से सर्व के स्थान में चमस दक्षिणा ही है (न च गौणः प्रयोजनम् अर्थः स दक्षिणानां स्यात्) चमस रूप दक्षिणा का गौण अर्थ प्रयोजन नहीं।

भावार्थ—सोम चमस रूप एक दक्षिणा क्रतु के लिये होती है और ब्रह्मा को दी जाती है तो अब दूसरी दक्षिणा क्या देनी। पशुओं का दान तो याग में निषिद्ध है। दक्षिणा शब्द का गौण तो नहीं किया जा सकता अर्थात् सोम चमस तो दक्षिणा का एक भाग ही है, सम्पूर्ण दक्षिणा नहीं ऐसा अर्थ नहीं कर सकते। अतः सोमचमस रूप दक्षिणा सम्पूर्ण क्रतु दक्षिणा का बाध करती है।

यदि तु ब्रह्मणस्तदूनं तद्विकारः स्यात् ।७२।

पदार्थ—(यदि तु) जो (ब्रह्मणः) सोमचमस दान ब्रह्मा को ही तो (तदूनं तद्विकारः स्यात्) वह अल्प होगी, और केवल अमुक भाग का हो ही बाध करेगी।

भावार्थ—जो ब्रह्मा को ही उक्त दक्षिणा दी जावे तो अन्य ऋत्विजों की दक्षिणा जो प्रकृति याग में कही है वह बाकी रहती है और उक्त दक्षिणा

ब्रह्मा को दी जाने वाली अन्य दक्षिणा का बाध करती है, ऐसा पूर्वपक्ष का मत ठहरता है।

सर्वं वा पुरुषापनयात् तासां क्रतुप्रधान-त्वात् ।७३।

पदार्थ—((सर्वं वा) उक्त दक्षिणा की निवृत्ति करता है (पुरुषापनयात्) अन्य ऋत्विजों के भाग का अपनय करने में आता है (तासाम् क्रतुप्रधानत्वात्) दक्षिणा में क्रतु ही प्रधान होने से।

भावार्थ—अन्य ऋत्विजों का भाग दक्षिणा में दूर करने में आया है। क्रतु को उद्दिष्ट कर जो दक्षिणा देनी है वह तो ब्रह्मा को दी जाती है तो अन्य किसे उद्दिष्ट कर देनी ? क्रतु तो पुनः उदिष्ट होने के अयोग्य है। अतः ब्रह्मा को जो दक्षिणा दी जाती है, वह सर्व दक्षिणा का वाध करती है। अन्य ऋत्विजों के आगमन के लिये लौकिक दान देना योग्य है। क्रत्वर्थक नहीं, ऐसा सिद्धान्तवादी का मानना है।

वाजपेय याग में रथ का भाग नियामकत्व अधिकरण—

पूर्वसूत्र—

यजुर्युक्तोऽध्वर्योर्दक्षिणाविकारः स्यात् ।७४।

पदार्थ—(यजुर्युक्तः) यजुर्वेद युक्त रथ (अध्वर्योः) अध्वर्यु को जो देने में आवे तो वह (दक्षिणाविकारः स्यात्) अन्य दक्षिणाओं का बाध करता है।

भावार्थ—वाजपेय याग में रथ, शकट, दासी, निष्क आदि सत्तर द्रव्य प्राकृत गवाश्वादि द्रव्य के बाधक रूप में यहां विहित हैं। जितने द्रव्य जो दक्षिणा रूप में विहित हैं वे प्रत्येक सत्तर की संख्या में होते हैं। दक्षिणा देते समय यजुर्वेद मंत्रों से तैयार किया रथ अध्वर्यु को दिया जाता है। यह यजुर्युक्त रथ अध्वर्यु की अन्य दक्षिणा का बाध करता है। इसलिये कि इसके सिवाय अन्य द्रव्यों में अध्वर्यु का भाग नहीं होता।

सिद्धान्त सूत्र—

अपि वा श्रुतिभूतत्वात् सर्वासां तस्य भागो नियम्येत ।७५।

पदार्थ—(अपि वा) अथवा (श्रुतिभूतत्वात्) श्रूयमाण होने से (सर्वासाम्) सर्व दक्षिणा की प्राप्ति होने से (तस्य) अध्वर्यु के (भागः नियम्येत) भाग का नियम करने में आता है।

भावार्थ—सत्तर द्रव्य दक्षिणा रूप में दिया जाता है। उसमें किसे क्या द्रव्य देना इसका भी नियम बांधा जाता है। इसमें अध्वर्यु को यजुर्वेद के मंत्र बोलकर तैयार किया रथ अध्वर्यु को ही देना चाहिये। ऐसा नियम बनाया गया है। इसमें किसी अन्य दक्षिणा का बाध नहीं किया जाता, ऐसा सिद्धान्तवादी का मानना है।

इति मीमांसादर्शनभाष्ये दशमाध्यायस्य तृतीयः पादः। १०।३॥

अथ मीमांसादर्शनभाष्ये

दशमाध्यायस्य चतुर्थः पादः

अग्न्यादि में नारिष्ट होमादि के साथ नक्षत्रेष्ट्यादि का समुच्चय है। यह अधिकरण—

प्रकृतिलिंगासंयोगात् कर्मसंस्कारं विकृता-वधिकं स्यात् ।१।

पदार्थ—(प्रकृतिलिंगासंयोगात्) प्रकृति के कार्य के साथ संयोग न होने से (कर्मसंस्कारम्) अदृष्ट फलक है, इससे (विकृतौ) विकृति में (अधिकं स्यात्) समुच्चय होता है।

भावार्थ—इस पाद में प्राकृत तथा वैकृत कार्य के समुच्चय का विचार किया गया है। श्येन याग में 'लोहितोष्णीषा लोहितवसना निवीता ऋत्विजः प्रचरन्ति' लाल पगड़ी वाले लाल कपड़े वाले निवीत—गले में माला की भांति यज्ञोपवीत धारी ऋत्विज् यज्ञ में घूमते हैं। यहाँ निवीत का विधान है और 'उपव्ययते' इस वाक्य से उपवीत का भी विधान है। उपवीत, अर्थात् दाहिने कंधे पर जनेऊ धारण करना। निवीत और उपवीत एक साथ नहीं हो सकता अतः उपवीत का निवीत विधान से बाध होना चाहिये, ऐसा पूर्वपक्ष का मानना है। सिद्धान्त पक्ष यह है कि उपवीत और निवीत दोनों होने चाहिये। जनेऊ से उपवीत हो सकता है और उपवस्त्र से निवीत भी हो सकता है। ऐसे दोनों कार्य एक साथ हो सकते हैं। अतः उपवीत और निवीत का समुच्चय है। इस प्रकार अन्यत्र भी बाध न होकर समुच्चय समझना चाहिये।

चोदनालिंगसंयोगे तद्विकारः प्रतीयेत प्रकृतिसंनिधानात् ।२।

पदार्थ—(चोदनालिंगसंयोगे) प्राकृत विधि में संयोग होने से (तद्विकारः प्रतीयेत) उनके बाध की प्राप्ति होती है। (प्रकृतिसंनिधानात्) विधि घटक शब्द का संनिधान होने से।

भावार्थ—प्रकृति याग में जिनका विधान किया है जो बाधक लिंग

वाक्य हों तो विकृति में प्रकृति में विहित अर्थ का बाध होता है जैसे कि 'शरमयं बर्हिर्भवति' यह वाक्य बर्हि के स्थान पर शरनामक घास रखने का विधान है। इससे बर्हि का शर से बाध होता है पर उपर्युक्त उदाहरण में उपवीत का बाध निवीत करता है ऐसा कोई लिंग वाक्य नहीं, अतः वहाँ तो समुच्चय ही इष्ट है।

बृहस्पति सत्र आदि में बार्हस्पत्यादि ग्रहों के साथ ऐन्द्र वायवादि ग्रहों का समुच्चय है—इस अधिकरण के सूत्र—

सर्वत्र तु ग्रहाम्नातमधिकं स्यात् प्रकृतिवत् ।३।

पदार्थ—(सर्वत्र तु) सर्व स्थान पर (ग्रहाम्नातम्) ग्रहों का आम्नात हो वहाँ, (अधिकम्) प्राकृत ग्रहों से अधिक (स्यात्) समुच्चय होता है (प्रकृतिवत्) जैसे प्रकृति याग में 'ऐन्द्रवायवं गृह्णाति मैत्रावरुणं गृह्णन्ति' यहाँ समुच्चय है, वैसे।

भावार्थ—प्रकृति याग में 'ग्रहं गृह्णाति' ऐसे वाक्यों से जैसे समुच्चय मानने में आता है वैसे बृहस्पति सव में 'बार्हस्पत्यं ग्रहं गृह्णाति' इस वाक्य से भी प्राकृत ग्रहों के साथ समुच्चय ही है, बाध नहीं।

अधिकश्चैकवाक्यत्वात् ।४।

पदार्थ—(अधिकः च) और समुच्चय है (एक वाक्यत्वात्) एक व्याक्यता होने से।

भावार्थ—वाजपेय में 'सप्तदश प्राजापत्या ग्रह गृह्यन्ते सोमग्रहांश्च सुराग्रहांश्च गृह्णाति' इस वाक्य से प्रतीत हुई एक वाक्यता से भी समुच्चय होता है।

लिंगदर्शनाच्च ।५।

पदार्थ—(च) और (लिंगदर्शनात्) लिंग वाक्य के दर्शन से भी।

भावार्थ—'विरण्यो वा एष यज्ञक्रतुर्यद् वाजपेय इति' इस वाक्य का ऐसा अर्थ होता है कि ज्योतिष्टोमादि की अपेक्षा यह याग विरण्य है, इसलिये विस्तृत है। यह विरण्य शब्द भी समुच्चय को ही सूचित करता है।

वाजपेय याग में प्राजापत्य पशुओं के साथ ऋतु पशुओं का समुच्चय है। इस अधिकरण के सूत्र—

प्राजापत्येषु चाम्नानात् ।६।

पदार्थ—(च) और (प्राजापत्येषु) प्राजापत्य पशुओं के साथ भी समुच्चय है, (आम्नानात्) आम्नान होने से।

भावार्थ—वाजपेय में जब पशुओं का दान करना होता है। उसमें प्राकृत पशुओं का समुच्चय होता है। 'ब्रह्मवादिनो वदन्ति नाग्निष्टोमो नोक्थ्य इत्यारभ्य तान् पशुभिरेवावरुन्धे' इस वाक्य से समुच्चय स्पष्ट होता है।

सांग्रहणी इष्टि में आमन होम के साथ अनुयाजों का समुच्चय है।

आमने लिंगदर्शनात् ।७।

पदार्थ—(आमने) आमन में समुच्चय है (लिंगदर्शनात्) लिंग वाक्य होने से।

भावार्थ—आमनमस्यामनस्य देवा' इससे तीन आहुतियाँ दी जाती हैं। इन आहुतियों से अनुयाजों का बाध नहीं होता पर इनके साथ समुच्चय होता है। 'आत्मा वै प्रयाजानुयाजा आत्मा देवता यत्प्रयाजानुयाजानां पुरस्ताद् उपरिष्टाद्वा जुहुयाद् बहिरात्मानं सजातात्समादधीत यन्मध्यतो जुहोति मध्यत एवं सजातानात्मन्धत्ते' इस लिंग वाक्य से आमन होमों का अनुयाजों के साथ समुच्चय सूचित होता है।

महाव्रत में ऋत्विक् के उपगान का पत्न्युपगान के साथ समुच्चय है।

पूर्वपक्ष—

उपगेषु शरवत्स्यात्प्रकृतिलिंगसंयोगात् ।८।

पदार्थ—(उपगेषु) उपगान करने वालों में (शरवत् स्यात्) दर्भ में जैसे शर बाधक होता है। (प्रकृतिलिंगसम्बन्धात्) प्राकृत उपगान के साथ सम्बन्ध होने से।

भावार्थ—महाव्रत में इस प्रकार सुनते हैं—'पत्न्य उपगायन्ति' पत्नियाँ उपगान करती हैं। यह उपगान प्रकृति याग में ऋत्विज् के उपगान का बाधक है, ऐसा पूर्वपक्ष का मानना है।

आनर्थक्यात्त्वधिकम् ।९।

पदार्थ—(अधिकं स्यात्) ऋत्विगुपगान के साथ समुच्चय है (आनर्थक्यात् तु) नहीं तो वीणा आदि से उपगान का विधान निरर्थक हो जाय।

भावार्थ—ऋत्विक् के उपगान का बाध नहीं होता, परन्तु उसके साथ पत्नी उपगान का समुच्चय है। जो बाध मानने में आवे तो वीणा से जो उपगान का विधान करने में आया है वह अनर्थक हो जाय।

अंजन और अभ्यंजन संस्कार में नवनीताभ्यंजन का गौग्गुलवाभ्यंजनं के साथ समुच्चय है—इस अधिकरण के सूत्र—

संस्कारे चान्यसंयोगात् ।१०।

पदार्थ—(संस्कारे) अंजन और अभ्यंजन संस्कार में (अन्यसंयोगात्) दीक्षा काल और सुत्याकाल का संयोग होने से समुच्चय है। (च) सिद्धान्त को सूचित करता है।

भावार्थ—अजनाभ्यंजन संज्ञक पचास दिन में सिद्ध होने वाला एक सत्र है, उसमें 'गौग्गुलवेन प्रातःसवने समञ्जते' इस प्रकार के विधान से 'नवनीतेन अभ्यञ्जते' इस प्रकार प्राकृत नवनीताञ्जन का बाध होता है। इस प्रकार के पूर्वपक्ष के उत्तर में, इस सूत्र में कहा है कि प्राकृत नवनीताञ्जन का बाध नहीं होता पर उसका समुच्चय होता है। कारण कि एक दीक्षाकालिक है और दूसरा सुत्याकालिक है। इस प्रकार कालभेद होने से बाध का अवसर नहीं।

प्रयाजवदिति चेन्नार्थान्यत्वात् ।११।

पदार्थ—(प्रयाजवत् इति चेत्) प्रयाज जैसे भिन्न कालिक होने पर भी बाध होते हैं। वैसे यहाँ भी बाध होंगे जो ऐसा कहने में आवे तो (न अर्थान्यत्वात्) भिन्न कार्य होने से बाध नहीं हो सकता।

भावार्थ—नवनीत के अंजन से त्वक् में मृदुता उत्पन्न होती है और गौग्गुलव अंजन से शैत्य उत्पन्न होता है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न कार्य होने से प्रयाज का दृष्टान्त लेकर बाध नहीं माना जा सकता, परन्तु समुच्चय ही है। यह सिद्धान्त पक्ष है।

महाव्रत में अहतवासस् का तार्य आदि के साथ समुच्चय है। इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष—

आच्छादने त्वैकार्थ्यात्प्राकृतस्य विकारः स्यात् ।१२।

पदार्थ—(तु) पूर्वपक्ष सूचित करता है। (आच्छादने) आच्छादन में (ऐकार्थ्यात्) एक प्रयोजन होने से (प्राकृतस्य) प्राकृत अहतवासस् का (विकारः स्यात्) बाध होता है।

भावार्थ—महाव्रत में इस प्रकार सुनते हैं—'तार्यं यजमानं' 'परिधापयाते' यजमान को तार्य पहनाना चाहिये। तार्य अर्थात् घी से भीगा कम्बल 'घृताक्तकम्बलस्तार्यम्' प्रकृति में अहतवासस् के अर्थात् कोरा वस्त्र पहनने का

विधान है, अतः अतिदेशशास्त्र से प्राप्य अहतवासस् के साथ तार्य का महाव्रत में बाध होता है, ऐसा समझना चाहिये। कारण कि दोनों वस्त्रों को ढ़ांकना रूप एक ही प्रयोजन है, इसलिये एक की आवश्यकता है, दो की नहीं।

सिद्धान्त सूत्र—

अधिकं वाऽन्यार्थत्वात् ।१३।

पदार्थ—(वा) अथवा (अधिकम्) समुच्चय है (अन्यार्थत्वात्) भिन्न प्रयोजन होने से।

भावार्थ—दोनों वस्त्रों का प्रयोजन पृथक् है। एक गुह्य का आच्छादन करता है, जबकि दूसरा उपवस्त्र रूप में काम में आता है। तार्य का अर्थ, इस स्थान पर कौपीन समझना चाहिये। और वह घृताक्त होना चाहिये। ऐसा भाव घृताक्तकम्वलस्तार्यम् का है।

महाव्रत में रथन्तर साम का श्लोकादि साम के साथ समुच्चय है।

सामस्वर्थान्तरश्रुतेरविकारः प्रतीयेत ।१४।

पदार्थ—(सामसु) सामगान में (अर्थान्तरश्रुतेः) प्राकृत साम के साथ (अविकारः प्रतीयेत) समुच्चय की प्रतीति होती है।

भावार्थ—महाव्रत में इस प्रकार सुनते हैं—'**श्लोकेन पुरस्तात् सदसः स्तुवन्ति**' इस वाक्य से यह समझा जाता है कि श्लोक साम से प्राकृत रथन्तरादि साम का बाध होना चाहिये पर बाध न होकर समुच्चय ही है। कारण कि प्राकृत स्तुति रूप जो अर्थ है, उसका श्लोक साम के साथ अन्वय नहीं हो सकता। अतः सामश्लोक से नवीन ही स्तुति जानी जाती है। इससे रथन्तरादि के साथ इनका समुच्चय है, बाध नहीं।

विकृति विशेष में प्राकृत सामगान का कौत्सादि से बाध होता है। यह अधिकरण—

अर्थे त्वश्रूयमाणे शेषत्वात् प्राकृतस्य विकारः स्यात् ।१५।

पदार्थ—(तु) सिद्धान्त की सूचना देता है (अर्थे) (प्राकृतफल) (अश्रूयमाणे) श्रूयमाण न होने पर भी (प्राकृतस्य) प्राकृत सामगान का (विकारः स्यात्) बाध होता है।

भावार्थ—किसी प्रकृति विशेष में ऐसा सुनते हैं—'**कौत्सं भवति, भगेयशसी भवतः**' इस विकृति गत वाक्य से अतिदेश से प्राकृत सामगान का बाध होता है। जो कि '**स्तुवते**' ऐसा क्रिया पद उक्त वाक्य में नहीं, पर सामगान

पात्रक्रतु के अंगभूत ही होता है। अतः विकृति सामगान से ऋचा का संस्कार हो जाता है तो पीछे अतिदेशलब्ध प्राकृत साम का कुछ भी प्रयोजन नहीं रहता। अतः प्राकृत साम से जो कार्य करना होता है वह कार्य विकृति गत सामगान से हो जाता है, अतः विकृति सामगान से प्राकृत सामगान का बाध होता है। कौत्स आदि भी सामज है।

कौत्सादि सामगान से व्यवस्था पूर्वक बाध होता है। इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष सूत्र—

सर्वेषामविशेषात् ।१६।

पदार्थ—(सर्वेषाम्) सर्व साम के विकृति पठित साम निवर्तक हैं (अविशेषात्) विशेष कुछ भी न होने से।

भावार्थ—कोई भी एक साम विकृति पठित हो तो वह प्रकृति पठित सभी सामगानों का बाधक होता है। अमुक साम का ही निवर्तक है, ऐसा बताने वाला कोई भी प्रमाण उपलब्ध न होने से।

सिद्धान्त सूत्र—

एकस्य वा श्रुतिसामर्थ्यात्प्रकृतेश्चा-विकारात् ।१७।

पदार्थ—(वा) अथवा (एकस्य) एक साम एक का निवर्तक है (श्रुतिसामर्थ्यात्) एक वचनादि श्रुति के बल से (च) और (प्रकृतेः) प्राकृत सामों का (अविकारात्) ग्रहण होने से।

भावार्थ—विकृति गत एक वचन विशिष्ट साम हो तो एक ही प्राकृत साम निवृत्त होते हैं। जसे कि 'कौत्सं भवति' यहाँ एक वचन होने से एक की निवृत्ति समझनी चाहिये। 'शुद्धा शुद्धीये भवतः' यहाँ द्विवचन होने से दो की निवृत्ति समझनी और 'क्रौञ्चानि भवन्ति' यहाँ बहुवचन होने से तीन की निवृत्ति समझनी इस प्रकार दूसरे जो अवशिष्ट साम होते हैं, उनका विकृति में ग्रहण समझना और अतिदेश शास्त्र का भी ऐसा करने से अनुग्रह होता है, अर्थात् इस शास्त्र का भी यही उपयोग हो सकता है, अतः एक-एक का, दो-दो का तथा बहु-बहु का निवर्तक है, ऐसा समझना चाहिये।

विवृद्ध और अविवृद्ध नाम वाले क्रतुओं में क्रम प्रमाण से बाध अथवा समुच्चय होना चाहिये—इस अधिकरण के सूत्र—

स्तोमवृद्धौ त्वधिकं स्यादविवृद्धौ द्रव्यविकारः स्यादितरस्याश्रुतित्वात्।१८।

पदार्थ—(स्तोमवृद्धौ) स्तोम की वहाँ वृद्धि हो उस ऋतु में (तु अधिकं स्यात्) प्राकृत साम और विकृत साम का समुच्चय होता है (इतरस्य) दूसरों का (अश्रुतित्वात्) श्रवण न होने से आगम करना चाहिये। (अविवृद्धौ) जिस ऋतु में सोम की वृद्धि न बताई हो वहाँ (द्रव्यविकारः) स्यात्) साम रूप द्रव्य का वाध होता है।

भावार्थ—विवृद्ध स्तोमक और अविवृद्ध स्तोमक ऋतु होते हैं। उनमें जिस ऋतु में स्तोम की वृद्धि बताई हो वहाँ, उस प्राकृत साम का समुच्चय है, ऐसा समझना और जहाँ स्तोम की वृद्धि न बताई हो, वहाँ उस प्राकृत साम का बाध है ऐसा समझना चाहिये। इस सूत्र में साम को द्रव्य कहा गया है। इससे कई विद्वान् यह मानते हैं कि मीमांसकों के मत में शब्द द्रव्य है। **'मीमांसकमते शब्दस्य द्रव्यरूपत्वे गमकमिदम्'** इस प्रकार सुबोधिनी टीका में उल्लेख है विवृद्ध और अविवृद्ध स्तोम वाले ऋतुओं का पवमान स्तोत्रों में ही साम के आवाप और उद्वाप होते हैं। इस अधिकरण के सूत्र—

पवमाने स्यातां तस्मिन्नावापोद्वाप-दर्शनात् ।१९।

पदार्थ—(पवमाने) पवमान स्तोम में (स्याताम्) आवाप और उद्वाप होते हैं। (तस्मिन्) उनमें (आवापोद्वापदर्शनात्) आवाप और उद्वाप देखने में आने के कारण।

भावार्थ—विवृद्ध स्तोमक ऋतु में किसी स्थान पर आवाप—अर्थात् सामगान के मंत्र आरम्भ करने तथा उद्वाप—अर्थात् सामगान के मंत्रों की निवृत्ति करनी होती है। कारण कि अत्र ह्येव आवपन्ति और अतएव उद्वपन्ति ऐसे मंत्र हैं। अत्र अर्थात् पवमान स्तोत्र में और अतः पवमान स्तोत्र में से ऐसा अर्थ है। भावार्थ यह है कि आवाप अर्थात् समुच्चय और उद्वाप अर्थात् निवृत्ति—ये दोनों पवमान स्तोत्र में होते हैं।

वचनानि त्वपूर्वत्वात् ।२०।

पदार्थ—(वचनानि तु) वचन भी (अपूर्वत्वात्) न्याय के अभाव में निर्णायक हैं।

भावार्थ—उक्त वचन अर्थात् 'अत्र ह्येव आवपन्ति' इत्यादि निर्णायक हैं। यह वचन अर्थवाद नहीं, तथा अपूर्व के लिये होने से अनुवाद भी नहीं

अतः पवमान स्तोत्रों में ही गायत्री आदि छन्दों में सामगान के आवाप और उद्वाप समझना।

यागादि में विधिगत, देवता शब्द का ही उच्चारण करना, उनके पर्याय शब्दों का नहीं, इस अधिकरण के सूत्र--

विधिशब्दस्य मन्त्रत्वे भावः स्यात् तेन चोदना ।२१।

पदार्थ—(विधिशब्दस्य मन्त्रत्वे) मंत्र सम्बन्धी देवता वाचक शब्द का उच्चारण अवश्य होने से (भावः स्यात्) याग और निर्वाप में इसी शब्द का उच्चारण होना चाहिये। (तेन चोदना) उस विधिगत शब्द से ही विधान होने से।

भावार्थ—विधि वाक्य में देवता वाचक जो पद हो, उसी पद से याग में और निर्वाप में व्यवहार होना चाहिये, उसके पर्याप वाचक शब्दों से नहीं। जैसे कि—'**आग्नेयाष्टकपालो भवति**' यहाँ अग्नि शब्द का प्रयोग हुआ है। तो पुरोडाश याग में '**अग्नये स्वाहा**' ऐसा ही बोलना चाहिये। और '**इदमग्नये इदं न मम**' ऐसा ही कहना चाहिये। अग्नि के पर्याय वाचक वह्नि आदि शब्दों का प्रयोग न करना, इसलिये कि वह्नये स्वाहा तथा 'इदं वह्नये इदं न मम' ऐसा प्रयोग न करना। कारण कि अग्नि पद से अग्नि रूप अर्थ में जो बाध होता है, वह वह्नि आदि पद से नहीं होता। मंत्र में जो शब्द उच्चरित होता है, वह भी अंग रूप में माना जाता है वैदिक कर्म में पद वाच्य केवल अर्थ का उपयोग नहीं होता पर तद्वाचक शब्द का भी उपयोग होता है '**यत्र ह्यर्थे कर्ममासाद्यते तत्र शब्दोऽर्थप्रत्यायनार्थो भवति, यत्र अर्थेन प्रयोजनम्। यत्र पुनः शब्द एव कार्यं तत्र कार्यसम्बन्धार्थः शब्द एव प्रत्याययितव्यः**' (शावर भाष्य) इस वाक्य का भी उपर्युक्त भाव ही है। इस कारण से मंत्र गत शब्द को याग के समय और निर्वाप के समय बदलना नहीं चाहिये। विनियोग करते समय उसी शब्द की चतुर्थी विभक्ति प्रयुक्त करनी चाहिये। ब्रह्म रूप अर्थ एक ही है परन्तु उसके भिन्न-भिन्न गुण और क्रियावाचक शब्द अनेक हैं। ऐसा जिस शब्द से जो गुण अथवा क्रिया समझी जाती है वह गुण और क्रिया अन्य शब्द से नहीं समझी जा सकती। प्रत्येक अर्थ के लिये शब्द नियत होते हैं, चाहे रूढ़ अर्थ एक ही हो। इससे समझा जाता है कि वेद में '**तच्छब्दविशिष्टः अर्थः एवं देवतापदार्थः तत् तत् शब्दः** विशिष्ट अर्थ ही देवता पद का अर्थ है। उस कारण से पर्याय वाचक शब्दों का प्रयोग याग में या निर्वाप में नहीं हो सकता। ऐसा सिद्धान्त पक्ष है।

शेषाणां वा चोदनैकत्वात् तस्मात् सर्वत्र श्रूयते ।२२।

पदार्थ—(शेषाणाम् वा) शेष मंत्रों में भी (चोदनैकत्वात्) विधि की एक रूपता होने से (तस्मात् सर्वत्र श्रूयते) सभी स्थानों पर विधिगत शब्द का ही प्रयोग होना इष्ट है।

भावार्थ—उत्तम प्रयाज स्विष्ट कृत आदि निगदों में भी विधि की एक रूपता होने से विधिगत शब्द का ही सर्वत्र प्रयोग होना चाहिये, पर्याय वाचक शब्दों का नहीं। अतिदेशस्थल में भी विधिगत जो शब्द होता है, उससे ही देवता शब्द का अभिधान होता है—

तथोत्तरस्यां ततौ तत्प्रकृतित्वात् ।२३।

पदार्थ—(तथा) इस प्रकार से (उत्तरस्यां ततौ) सौर्यादि विकृति याग में भी शब्द का नियम है (तत्प्रकृतित्वात्) वे दर्शपूर्णमास प्रकृति वाले होने से।

भावार्थ—दर्शपूर्णमास की विकृति जो सौर्यादि याग है, उनमें भी शब्द का नियम है। सौर्यं चरुं निर्वपेत् इत्यादि में भी सूर्य शब्द का अभिधान होना चाहिये। पर्यायवाचक आदित्यादि शब्दों का नहीं। उक्त वाक्य में सूर्य का सम्बन्ध 'निर्वपेत्' के साथ है। इसलिये विधिगत शब्द सूर्य ही है। अतः प्रयोग में याज्या पुरोवाक्यादि में जहाँ प्रयोग करना हो वहाँ सूर्य शब्द का ही प्रयोग इष्ट है। जहाँ केवल अर्थ ही विवक्षित हो तो वहाँ पर्याय का प्रयोग होता है, पर जहाँ शब्द भी विवक्षित हो वहाँ तो शब्द परिवर्तित नहीं हो सकता।

आधान में अग्नि का सगुण में अभिधान है, इस अधिकरण के सूत्र—

प्राकृतस्य गुणश्रुतौ स गुणेनाभिधानं स्यात् ।२४।

पदार्थ—(प्राकृतस्य) प्राकृत अग्नि की (गुणश्रुतौ) गुण श्रुति में (सगुणेन अभिधानं स्यात्) सगुण का ही अभिधान होता है।

भावार्थ—'अग्नये पावकायाष्टाकपालम्' इत्यादि सुनते हैं। अग्नि के साथ पावक शब्द है और वह अग्नि का गुणवाचक शब्द है। इसलिए देवता का अभिधान पावक गुण विशिष्ट अग्नि से करना। केवल अग्नि शब्द से नहीं। जो देवता वाचक केवल अग्नि शब्द हो तो पावक शब्द का प्रयोग निरर्थक हो जायेगा।

पूर्वपक्ष सूत्र—

अविकारो वाऽर्थशब्दानुपायात् स्याद् द्रव्यवत् ।२५।

पदार्थ—(वा) अथवा (अविकारः) केवल अग्नि शब्द का प्रयोग करना (अर्थशब्दानपायात्) केवल अग्नि शब्द के प्रयोग से भी अर्थ का त्याग नहीं होता (द्रव्यवत्) द्रव्य की भाँति।

भावार्थ—गुणविशिष्ट अग्नि शब्द का देवता रूप में जहाँ प्रयोग हो वहाँ भी केवल अग्नि शब्द स्वयं ही देवता का अभिधान हो सकता है। इसलिए चाहे विधिगत गुण विशिष्ट अग्नि शब्द का प्रयोग हो पर जहाँ देवता का अभिधान हो वहाँ केवल अग्नि शब्द का प्रयोग भी चल सकता है। जैसे उत्पत्ति वाक्य में सगुण द्रव्य का अभिधान होता है पर त्याग आदि के समय केवल गुण रहित द्रव्य का अभिधान इष्ट मानने में आता है वैसे ही देवताभिधान में भी समझना चाहिये। द्रव्य सम्बन्ध में उत्पत्ति वाक्य में 'अजावशा वायव्या' ऐसे गुण विशिष्ट 'अजा' शब्द का प्रयोग है पर जब द्रव्य का दान करना होता है तब केवल 'अजा' शब्द का प्रयोग भी इष्ट है। ऐसा ही देवता के सम्बंध में भी समझना।

सिद्धान्त सूत्र—

आरम्भासमवायात् चोदितेनाभिधानं स्यादर्थस्य श्रुतिसमवायित्वादवचने च गुणशासनमनर्थं स्यात् ।२६।

पदार्थ—(आरम्भसामर्थ्यात्) केवल अग्न्यादि पद का अर्थ उत्पत्ति वाक्य में तिङ् वाच्य भावना में असम्बद्ध होने से (चोदितेन अभिधानं स्यात्) विधिविहित गुण विशिष्ट अग्न्यादि पद से ही अभिधान होना चाहिये। (अर्थस्य श्रुतिसमवायात्) उत्पत्ति वाक्य में गुण विशिष्ट अग्न्यादि का बोध हुआ होने से (च) और जो केवल अग्नि शब्द का प्रयोग स्वीकारने में आवे तो (गुणशासनम् अनर्थं स्यात्) गुण का शासन करना व्यर्थ हो जाय।

भावार्थ—विधि वाक्य में गुणविशिष्ट देवता वाचक पद हो तो देवता को उद्दिष्ट कर जहाँ हवि त्याग होता हो वहाँ गुण विशिष्ट देवता का अभिधान करना। उक्त स्थल में केवल अग्नि आदि शब्द का अर्थ देवता है ही नहीं, गुण विशिष्ट ही देवता है। ऐसे स्थान पर जो केवल अग्नि आदि देवता शब्दों का अभिधान किया जावे तो गुणवाचक पद निरर्थक हो जाये।

गुणवाचक जो पद देवता के साथ हो उस पद के साथ देवता के साथ हो उस पद के साथ देवता का कथन करना चाहिये ।

द्रव्येष्वारम्भगामित्वादर्थे विकारे सामर्थ्यात् ।२७।

पदार्थ—(द्रव्येषु) द्रव्यों में (आरम्भगामित्वात्) उत्पत्ति वाक्य में गुण रहित द्रव्य भावना के साथ सम्वद्ध होने से (अर्थे विकारे स्यात्) केवल गुण रहित द्रव्य का अभिधान इष्ट है ।

भावार्थ—द्रव्य के सम्बंध में तो केवल द्रव्य ही भावना के साथ सम्वद्ध होने से गुणरहित द्रव्य का भी अभिधान होना इष्ट है । पर देवता में ऐसा नहीं होता । इसलिए कि जो सगुण देवता सम्वद्ध भावना के साथ हो तो सगुण देवता का ही कथन करना । और केवल देवता का भावना के साथ सम्बंध हो तो केवल देवता का अभिधान करना । अतः वशा गुणरहित अजा द्रव्य का अभिधान इष्ट है । और पावक विशिष्ट अग्नि देवता का अभिधान ही इष्ट है ।

पवमान इष्टियों में, आज्य भागों में निर्गुण देवता पद का अभिधान करना ।

पूर्वपक्ष—

बुधन्वान् पवमानवद् विशेषनिर्देशात् ।२८।

पदार्थ—(पवमानवत्) पवमान इष्टि में जैसे : पवमानः अग्निः सगुण देवता का अभिधान होता है वसे ही (बुधन्वान्) बुधन्वान् आग्नेः इस स्थान पर बुधन्वान् अग्नि का विशेषण होने से (विशेषनिर्देशात्) अग्नि बुधन्वान् ऐसा विशेष निर्देश अर्थवान् हो सकता है । अतः सगुण अग्नि का अभिधान करना चाहिये ।

भावार्थ—बुधन्वान् पद अग्नि के गुण का कथन करने वाला होने से निगम में सगुण अग्निपद का अभिधान करना चाहिये । बुधन्वान् अग्नि का विशेषण है । अतः पवमान इष्टि में जो 'पावमानः अग्निः' उसी प्रकार आज्य भागों में भी बुधन्वान् अग्नि ऐसा अभिधान करना चाहिये । ऐसा पूर्वपक्ष का मन्तव्य है ।

सिद्धान्त सूत्र—

मन्त्रविशेषनिर्देशान्न देवताविकारः स्यात् ।२९।

पदार्थ—(मन्त्रविशेषनिर्देशात्) विशेष मन्त्र का वाचक होने से (देवता विकारः स्यात्) देवता का विशेषण बुधन्वान् नहीं ।

भावार्थ—बुधन्वान् पद अग्नि देवता का विशेषण नहीं पर मन्त्र का विशेषण है अतः पवमानः अग्नि यह जो दृष्टान्त दिया है वह असंगत है इस कारण से निर्गुण देवता का अर्थात् केवल अग्नि का अभिधान उचित है।

"आनुबन्ध्य और वनस्पति याग के नियमों में विधिगत उस्त्रा वनस्पति शब्दों से ही द्रव्य और देवता का अभिधान करना"=इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष—

विधिनिगमभेदात् प्रकृतौ तत्प्रकृतित्वा-द्विकृतावपि भेदः स्यात् ।३०।

पदार्थ—(प्रकृतौ) प्रकृति में (विधिनिगमभेदात्) विधि और निगम में भेद बताने वाला होने में (विकृतौ अपि) विकृति में भी (भेदः स्यात्) भेद होना चाहिये (तत्प्रकृतित्वात्) गौरनुबन्ध्यः इसकी प्रकृति अग्नीषोमीय पशु होने से।

भावार्थ—प्रकृति में विधि और निगम में भेद बताया है। विधि वाक्य में अर्थात् उत्पत्ति वाक्य में पशु शब्द प्रयुक्त है। अब ज्योतिष्टोम में 'गौरनुबन्ध्य' ऐसा पाठ है। यहाँ 'गो' शब्द विधिगत है। तो उसका विधान पर्यायवाचक शब्द से हो सकता है। ऐसा पूर्वपक्षवादी का मानना है।

सिद्धान्त सूत्र—

यथोक्तं वा विप्रतिपत्तेर्न चोदना ।३१।

पदार्थ—(वा) अथवा (यथोक्तम्) जिस प्रकार विधि में शब्द पाठ हो, उसी प्रकार ही अभिधान करना (विप्रतिपत्तेः न चोदना) विधि वाक्य श्रुत शब्द की बजाय अन्य शब्द का प्रयोग करना ऐसी कोई विधि नहीं।

भावार्थ—विधिगत जो शब्द हो, उसका ही प्रयोग निगद आदि में करना चाहिये। जो गो शब्द विधिगत हो तो गो के सिवाय उसके पर्याय वाचक शब्द का पाठ करना उचित नहीं। और ऐसी कोई विधि नहीं।

अवभृथ में अग्नीवरुण दोनों देवताओं का अभिधान स्विष्टकृत के साथ है—

पूर्वपक्ष सूत्र—

स्विष्टिकृद्देवतान्यत्वे तच्छाब्दत्वा-न्निवर्तेत ।३२।

पदार्थ—(स्विष्टकृद्देवतान्यत्वे) प्रकृति में स्विष्टकृत में जो देवता हैं

प्रकृत्यनुपरोधाच्च ।१४।

पदार्थ—(च) और (प्रकृत्यनुपरोधात्) प्राकृत मंत्र का उपरोध न होने से।

भावार्थ—पूर्व आधार के उक्त मंत्र गुण रीति से मानने में प्राकृत मंत्र का बाध न होने से। द्वितीय आधार में प्रकृति में 'ऊर्ध्वो अध्वरः' इत्यादि मंत्र है। जो द्वितीय मंत्र आधार में 'हिरण्यगर्भ' इत्यादि मंत्र गुण रीति से मानने में आवे तो 'ऊर्ध्वो अध्वर' इत्यादि मंत्र का बाध होगा।

सिद्धान्त सूत्र—

उत्तरस्य वा मन्त्रार्थित्वात् ।१५।

पदार्थ--(वा) अथवा (उत्तरस्य) उत्तर आधार के (मन्त्रार्थित्वात्) मंत्र की आवश्यकता होने से।

भावार्थ--पूर्व आधार के मंत्र की आवश्यकता नहीं। अन्य आधार के मंत्र की आवश्यकता है, अतः उत्तर आधार का ही 'हिरण्यगर्भ' यह गुण रीति से है।

विध्यतिदेशात् तच्छ्रुतौ विकारः स्याद् गुणानामुपदेश्यत्वात् ।१६।

पदार्थ—(विध्यतिदेशात्) आधार विधि का प्रकृति में से अतिदेश होने से (तच्छ्रुतौ विकारः स्यात्) उसके अनुवाद में अनुवाद्य के जो प्राकृत गुण होते हैं (गुणानामुपदेश्यत्वात्) उन गुणों का ही विधान होता है।

भावार्थ—प्रकृति में से आधार विधि का अतिदेश करना होता है। उससे 'हिरण्यगर्भ' इस मंत्र का उत्तर आधार में अतिदेश है। प्राकृत गुणों का जो विधान होता है, उक्त मंत्र प्राकृत गुण है अतः इसका ही विधान है और द्वितीय आधार में जो 'ऊर्ध्वो अध्वरः' इत्यादि मंत्र हैं उनका बाध होता है और हिरण्यगर्भः उत्तर आधार का गुण होता है।

पूर्वस्मिश्चामन्त्रदर्शनात् ।१७।

पदार्थ—(च) और (पूर्वस्मिन्) पूर्व आधार में (अमंत्रदर्शनात्) मंत्र दर्शन नहीं।

भावार्थ—पूर्व आधार में मंत्र की आवश्यकता नहीं। 'न स्वाहा करोति मंत्रं च नाहं, स्वाहा नहीं बोलते और मंत्र भी नहीं बोलते। अतः 'हिरण्यगर्भ' यह मंत्र उत्तर आधार का अंग है।

आसादन और नियोजन प्राकृत गुण विधि है। इस अधिकरण के सूत्र—
पूर्वपक्ष—

संस्कारे तु क्रियान्तरं तस्य विधायकत्वात् ।१८।

पदार्थ—(तस्य विधायकत्वात्) वाक्य पशु नियोजन का विधायक होने से (संस्कारे तु) परिधि के सम्बन्ध से पशु का संस्कार होने से (क्रियान्तरम्) प्राकृत कर्म की अपेक्षा यह कर्म भिन्न है और वह अदृष्टार्थक है।

भावार्थ - सौमिक चातुर्मास्य में इस प्रकार वाक्य का श्रवण होता है। 'उत्करे वाजिनमासादयति परिधौ पशुं नियुञ्जन्ति' इस वाक्य से ऐसा समझाते हैं कि परिधि में नियोजन करने से पशु का संस्कार होता है, इसलिए कि अदृष्ट कर्म है, अतः वे प्राकृत कर्म से भिन्न कर्म हैं। परिधि नियोजन का कोई इष्ट फल ज्ञात नहीं होता।

प्रकृत्यनुपरोधाच्च ।१९।

पदार्थ—(च) और (प्रकृत्यनुपरोधात्) इस प्रकार स्वीकार करने से प्राकृत धर्म का प्रापक जो अतिदेश है उसका उपरोध नहीं होता।

भावार्थ क्रियान्तर मानने से अतिदेश वाक्य का उपरोध भी नहीं होगा।

सिद्धान्त सूत्र—

विधेस्तु तत्र भावात् संदेहे यस्य शब्दस्तदर्थं स्यात् ।२०।

पदार्थ—(तु) 'तु' शब्द सिद्धान्त की सूचना देता है। (विधेः) नियोजन विषयक प्राकृत और प्रत्यक्ष विधि से (तत्र) ऋतु विशेष में भाव होने से (संदेहे) संदेह में (यस्य) जिसे उच्छिष्ट कर (शब्दः) परिधि रूप शब्द प्रयुक्त हुआ है वह (तदर्थम्) नियोजनार्थक (स्यात्) है।

भावार्थ—वाजिन का आसादन उत्कर में और पशु का नियोजन परिधि में करना होता है। उत्कर अर्थात् वेदी में से निकली धूल का ढेर इसके ऊपर वाजिन द्रव्य डाल देना और पशु भाग न जाए, इसलिए परिधि से बांधना। ये दोनों कर्म दृष्टार्थक होने से गुण विधि है कोई अपूर्व कर्म नहीं।

संस्कारसामर्थ्याद् गुणसंयोगाच्च ।२१।

पदार्थ—(संस्कारसामर्थ्यात्) संस्कार का सामर्थ्य होने से (च) और (गुणसंयोगात्) गुण का सम्बन्ध होने से।

भावार्थ—पशु के नाम का प्रतिबन्ध रूप सामर्थ्य परिधि में है और

स्थूलता गुण उत्कर में भी है। इससे उसके ऊपर वाजिन द्रव्य रखा जा सकता है। इस दृष्टाफलकत्व के कारण आसादन और नियोजन गुण विधि है। अपूर्व विधि नहीं।

विप्रतिषेधात् क्रियाप्रकरणे स्यात् ।२२।

पदार्थ—(प्रकरणे) सौत्रामणी प्रकरण में (विप्रतिषेधात्) दृष्टार्थकता सम्भावित न होने से (क्रिया) कर्म (स्यात्) अपूर्व कर्म है।

भावार्थ—सौत्रामणी प्रकरण में हविरासादन अदृष्टार्थक है, इससे उसमें जो आसादन कर्म है, वह अपूर्व कर्म है। परन्तु प्राकृत में तो दृष्टार्थक कर्म होने से गुण विधि है।

अग्निचयन में प्राकृत और वैकृत दोनों दीक्षाहुतियों का अनुष्ठान है—पूर्वपक्ष सूत्र—

षड्भिर्दीक्षयतीति तासां मन्त्रविकारः श्रुतिसंयोगात् ।२३।

पदार्थ—(तासाम्) प्राकृत और वैकृत दीक्षा आहुतियों का (मन्त्र विकारः) मंत्र विकार अर्थात् प्राकृत मंत्रों की अपेक्षा अन्य मंत्र होते हैं—षड्भिर्दीक्षयतीति श्रुतिसंयोगात्) षड्भिर्दीक्षयति—इस श्रुति का सम्बन्ध होने से।

भावार्थ—अग्निचयन में प्राकृत और वैकृत दीक्षाहुतियों का अनुष्ठान होता है (१) आकूतिमग्निं प्रयुजं स्वाहा (२) मनोमेधामग्निं प्रयुजं स्वाहा (३) चित्तं विज्ञातमग्निं स्वाहा (४) वाचो विधृतमग्निं स्वाहा (५) प्रजापतये मनवे स्वाहा (६) अग्नये वैश्वानराय स्वाहा—ये छः प्राकृत दीक्षाहुतियों के मंत्र हैं। (१) आकूत्यै प्रयुजेऽग्नये स्वाहा (२) मेधायै मनसेऽग्नये स्वाहा (३) दीक्षायै तपसेऽग्नये स्वाहा (४) सरस्वत्यै पूष्णेऽग्नये स्वाहा (५) आपो देवीर्बृहतीर्विश्व-शंभुवो द्यावापृथिवी उर्वन्तरिक्षं वृहस्पतिर्नो हविषा विधातु स्वाहा (६) विश्वे देवस्य नेतुर्मर्त्तो वृणीत सख्यं विश्वे राय इषुध्यसि द्युम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाहा। ये वैकृती दीक्षा के ६ मंत्र हैं। इनमें संदेह है कि वैकृती का प्रयोग करना और प्राकृती की निवृत्ति करनी ? या दोनों का समुच्चय करना। इसमें पूर्वपक्षवादी का मानना है कि वैकृत मंत्रों से प्राकृत मंत्र निवृत्त होने चाहियें। षड्भिर्दीक्षयति' यहां षड् शब्द से वैकृत मंत्र ग्राह्य हैं। अतः प्राकृत मंत्रों का वाध है। दोनों का समुच्चय नहीं।

अभ्यासात्तु प्रधानस्य ।२४।

पदार्थ—(तु) ।सद्धान्त सूचक है (प्रधानस्य) प्राकृत दीक्षाहुति की (अभ्यासात्) आवृत्ति होने से ।

भावार्थ—प्राकृत दीक्षा आहुति से आवृत्ति होने से दोनों की उपपत्ति है । अर्थात् प्राकृत दीक्षाहुति के मंत्रों का बाध नहीं । जो बाध किये बिना उपपत्ति होती हो तो बाध मानना उचित नहीं ।

आवृत्या मंत्रकर्म स्यात् ।२५।

पदार्थ—(आवृत्या) आवृत्ति से (मंत्रकर्म) मंत्र कर्म (स्यात्) होता है ।

भावार्थ—वैकृत ६ मंत्र हैं उनकी आवृत्ति करना और प्राकृत मंत्र हैं उनका बाध होना उचित है । वैकृत मंत्रों का प्रत्यक्ष विधान है और प्राकृत मंत्र अतिदेश से प्राप्त होने हैं । अतिदेश की अपेक्षा प्रत्यक्ष विधान बलवत् होता है । अतः प्राकृत मंत्रों का बाध होता है ।

पूर्वपक्ष की व्यावृत्ति करने वाला सूत्र—

अपि वा प्रतिमंत्रत्वात् प्राकृतानामहानिः स्यादन्यायश्च कृतेऽभ्यासः ।२६।

पदार्थ—(अपि वा) यह शब्द पूर्वपक्ष की व्यावृत्ति सूचित करता है । (प्रतिमंत्रत्वात्) प्रत्येक मंत्र में आहुति प्राप्त होने से (प्राकृतानाम् अहानिः स्यात्) प्राकृत मंत्रों की हानि नहीं होती । (कृते अभ्यासः अन्यायः) एक समय वैकृत मंत्रों का पाठ होता है, फिर से पाठ करना अन्याय है ।

भावार्थ—वैकृत मंत्रों का प्रत्यक्ष पाठ है । प्राकृत मंत्र अतिदेश से प्राप्त होते हैं । इस प्रकार दो मंत्रों का समुच्चय हो सकता है । तो पीछे वैकृत मंत्रों की आवृत्ति करनी यह उचित नहीं । पुनः वैकृत मंत्रों का पाठ करना और प्राकृत मंत्रों का पाठ न करना, इसमें कोई विनिगमक प्रमाण भी नहीं । अतः प्राकृत मंत्रों की हानि नहीं होती ।

पौर्वापर्यं चाभ्यासे नोपपद्यते नैमित्तिकत्वात् ।२७।

पदार्थ—(च) और (अभ्यासे) अभ्यास में (पौर्वापर्यम्) पूर्वापरी भाव (न उपपद्यते) सिद्ध नहीं होता (नैमित्तिकत्वात्) आगन्तुक नैमित्तिक होने से ।

भावार्थ—अभ्यास करने में पूर्वापरी भाव नहीं हो सकता । ६ मंत्र पूर्व

के और ६ उत्तर के, इस प्रकार श्रवण होता है। प्राकृत मंत्र आगन्तुक होने से नैमित्तिक कहलाते हैं वैकृत मंत्र का अभ्यास करने से या तो ६ मंत्र पूर्व या उत्तर यह समझ नहीं सकते। अतः प्राकृत मंत्रों की हानि नहीं होती।

तत्पृथक्त्वं च दर्शयति ।२८।

पदार्थ—(च) और (तत्पृथक्त्वम्) उन आहुतियों का पृथक्त्व (दर्शयति) बताता है।

भावार्थ—'उभयीर्जुहोति आग्निकीश्च आध्वरिकीश्च' आग्निकी और अध्वरिकी दोनों आहुतियाँ होमनी' जो प्राकृत मंत्रों से और वैकृत मंत्रों से आहुतियाँ होमनी हो तभी उपर्युक्त निर्देश चरितार्थ हो सकता है अतः प्राकृत और वैकृत दोनों मंत्रों का समुच्चय ही हैं।

न वा विशेषाद् व्यपदेशः ।२९।

पदार्थ—(न वा) अथवा नहीं (विशेषाद्) निमित्त के कारण (व्यपदेशः) व्यपदेश है।

भावार्थ—समुच्चय के विना निमित्त रीति से व्यपदेश नहीं हो सकता 'पूर्वमध्वरस्याथाग्ने' इस प्रकार व्यपदेश है। अतः दोनों प्रकार के मंत्रों का समुच्चय है, प्राकृत मंत्रों का बाध नहीं। अतः प्राकृत और वैकृत दोनों दीक्षाहुतियों का अनुष्ठान करना होता है।

पुनराधान में अग्न्याधान की दक्षिणा की निवृत्ति है, इस अधिकरण के सूत्र—
पूर्वपक्ष—

अग्न्याधेयस्य नैमित्तिके गुणविकारे दक्षिणादानमधिकं स्याद् वाक्यसंयोगात् ।३०।

पदार्थ—(नैमित्तिके) पुनराधेय में (गुणविकारे) दक्षिणा रूप गुण का विकार प्राप्त होने पर भी (अग्न्याधेयस्य) अग्न्याधान की (दक्षिणादानम्) दक्षिणा दान (अधिकम्) अधिक (स्यात्) है (वाक्यसंयोगात्) वाक्य का सम्बन्ध होने से।

भावार्थ—जिस किसी निमित्त के कारण पुनः अग्न्याधान करते हैं उससे पूर्व अग्न्याधान की और पुनः अग्न्याधेय की दक्षिणा देनी पड़ती है इसलिये दोनों दक्षिणा रूप गुणों का समुच्चय है। 'वैकृतदक्षिणा पुनर्निष्कृतोरथः' पुनः सुधारा हुआ रथ, यह पुनरग्न्याधान की दक्षिणा है। कारण कि उभयीर्ददाति अग्न्याधेयिकीः पुनराधेयिकीश्च ऐसा वाक्य दोनों दक्षिणा का समुच्चय बताता है।

शिष्टत्वाच्चेतरासां यथास्थानम् ।३१।

पदार्थ—(च) और (शिष्टत्वात्) विधान होने से (इतरासाम्) अन्य प्राकृत दक्षिणा का (यथास्थानम्) यथा क्रम ।

भावार्थ—प्राकृत दक्षिणा देने का विधान होने से क्रम से दोनों दक्षिणा देनी। अनुशासन इस प्रकार है—'अग्न्याधेयिकीर्दत्वा पुनराधेयिकीर्ददाति इस प्रमाण से दोनों दक्षिणाओं का समन्वय है। ऐसा पूर्वपक्षवादी का मत है। सिद्धान्त सूत्र—

विकारस्त्वप्रकरणे हि काम्यानि ।३२।

पदार्थ - (हि) कारण कि (तु) सिद्धान्त पक्ष का सूचक है (प्रकरणे) अप्रकृतिभूत विकृति याग में (काम्यानि) पुनराधेय की जो दक्षिणा होती है, वही देनी होती है। (विकारः) प्राकृत दक्षिणा का वाध होता है।

भावार्थ—पुनराधान में पुनराधेय की जो दक्षिणा विहित होती है, वही देनी होती है। पूर्व अग्न्याधान की दक्षिणा नहीं। अर्थात् दोनों दक्षिणाओं का समुच्चय नहीं। एक ही दक्षिणा देनी होती है।

शंकते च निवृत्तेरुभयत्वं हि श्रूयते ।३३।

पदार्थ—(च) और (शंकते) प्राकृत दक्षिणा सम्बन्धी शंका करते हैं (निवृत्तेः) पूर्व दक्षिणा की निवृत्ति होने से (हि) कारण कि (उभयत्वं श्रूयते) उभय दक्षिणा देते हैं, ऐसा सुनते हैं।

भावार्थ—प्राकृत दक्षिणा देनी या नहीं, ऐसी शंका ही बताई है—'यद्वै कृतीर्ददाति दक्षिणा उभयीरपि दक्षिणाः तेन प्रत्ता भवन्तीति श्रूयते' जो वैकृती अर्थात् पुनराधेय की दक्षिणा देते हैं वे दोनों दक्षिणा देते हैं ऐसा मात्र अर्थवाद ही है। वास्तव में दोनों दक्षिणाओं का समुच्चय नहीं केवल एक ही दक्षिणा देनी होती है। पूर्व अग्न्याधान की दक्षिणा की निवृत्ति होती है।

वासः और वत्स से अन्वाहार्य की निवृत्ति है। इस अधिकरण के सूत्र—

वासो वत्सं च सामान्यात् ।३४।

पदार्थ—(च) और (वासो वत्सम्) वास और वत्स पुनराधेय दक्षिणा के तुल्य बाध करते हैं (सामान्यात्) एक कार्यकारी होने से।

भावार्थ—आग्रयण में इस प्रकार सुनते हैं—'वासो दक्षिणावत्सः प्रथमजो दक्षिणा' और प्रकृति याग में अन्वाहार्य दक्षिणा है, वह यहाँ अतिदेश शास्त्र से प्राप्त होती है। इसमें संशय है कि वासोवत्स दक्षिणा अन्वाहार्य की निवर्तिका है या अनिवर्तिका ? इसमें सिद्धान्त पक्ष है कि अन्वाहार्य की निवर्तिका है।

जैसे पुनराधेय की दक्षिणा प्राकृत दक्षिणा की बाधिका है, वैसे यहाँ भी वासोवत्स दक्षिणा अन्वाहार्य की वाधिका है।

वासोवत्स में अन्वाहार्य के धर्मों का अनुष्ठान है, इस अधिकरण के सूत्र—

अर्थापत्तेस्तद्धर्मः स्यान्निमित्ता-ख्याभिसंयोगात् ।३५।

पदार्थ—(अर्थापत्तेः) प्राकृत मंत्र आदि की उद्देश्यभूत दक्षिणा की प्राप्ति होने से। (तद्धर्मः स्यात्) वासोवत्स में अन्वाहार्य के धर्म होते हैं। (निमित्ताख्याभिसंयोगात्) मंत्र निमित्त का दक्षिणा नाम के साथ संयोग होने से।

भावार्थ—वासः और वत्स ये अन्वाहार्य के धर्म हैं। वासः अर्थात् वस्त्र और वत्स अर्थात् वछड़ा ये दोनों दक्षिणा में देने योग्य आग्रयण में कहे हैं और वे अन्वाहार्य के धर्म हैं।

वत्स में पाक का अभाव है, यह अधिकरण—

दाने पाकोऽर्थलक्षणः ।३६।

पदार्थ—(अर्थलक्षणः) अर्थ लक्षण (पाकः) पाक होने से (दाने) दान साधन वत्स में उसकी निवृत्ति है।

भावार्थ—अन्वाहार्य धर्मों में पाक भी कर्त्तव्य होता है, परन्तु वह दान साधन वत्स में कर्त्तव्य नहीं। कारण कि वत्स में पाक करने से प्राणिवध होता है और प्राणिवध यह श्रौत कार्य नहीं अतः वत्स में पाक कर्त्तव्य नहीं।

वासस् में अर्थात् वस्त्र में भी पाक का अभाव है। इस अधिकरण के सूत्र—

पाकस्य चान्नकारित्वात् ।३७।

पदार्थ—(च) और (पाकस्य अन्नकारित्वात्) पाक यह अन्न में कर्त्तव्य होने से।

भावार्थ—पाक तो ओदन आदि में कर्त्तव्य है, अतः वस्त्र में भी पाक की निवृत्ति है।

वस्त्र में और वत्स में अभिधारण का भी अभाव है, इस अधिकरण के सूत्र—

तथाभिधारणस्य ।३८।

पदार्थ—(तथा) इस प्रकार (अभिधारणस्य) अभिधारण की भी निवृत्ति है।

भावार्थ—वस्त्र और वत्स में अभिधारण की भी निवृत्ति है। अन्वाहार्य का धर्म अभिधारण है, तो भी वस्त्र और वत्स में कर्त्तव्य नहीं। ओदन आदि में वह कर्त्तव्य है।

ज्योतिष्टोम में द्वादशशत (११२) जो दक्षिणा बताई है, वह गाय के साथ ही सम्बन्ध रखती है। इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष—

द्रव्यविधिसंनिधौ संख्या तेषां गुणत्वात् स्यात् ।३९।

पदार्थ—(द्रव्यविधिसंनिधौ) द्रव्य विधि की सन्निधि में (संख्या) जो संख्या शब्द है (तेषाम् गुणत्वात्) द्रव्य का गुण होने से (स्यात्) प्रत्येक द्रव्य के साथ उसका सम्बन्ध है।

भावार्थ—ज्योतिष्टोम प्रकरण में इस प्रकार पाठ है—**गौश्चाश्वाश्चाश्वतरश्च गर्दभश्चाजाश्चावयश्च व्रीहयश्च यवाश्च तिलाश्च माषाश्च तस्य द्वादशशतं दक्षिणा'** उस स्थान में जो 'द्वादशशत' का पाठ है, वह गवादि माषान्त जितने द्रव्य हैं उन सभी के साथ द्वादशशत का सम्बन्ध है अर्थात् सभी द्रव्य ११२ की संख्या में दान करने चाहियें। द्रव्य प्रधान है, और संख्या गौण है। **'प्रतिप्रधानमङ्गावृत्तिः'** जितने प्रधान हों उनके साथ अंग की आवृत्ति करनी चाहिये। अतः उक्त प्रत्येक द्रव्य के साथ संख्या का सम्बन्ध है।

पूर्वपक्ष में दोष—

समत्वात् तु गुणानामेकस्य श्रुतिसंयोगात् ।४०।

पदार्थ—(गुणानाम्) माषान्त गुण और संख्या का (समत्वात्) तुल्यत्व होने से (तु) पूर्वपक्ष निवृत्ति सूचक है (श्रुतिसंयोगात्) द्वादशशत शब्द का संख्या के साथ सम्बन्ध होने से।

भावार्थ—गवादि के साथ संख्या का सम्बन्ध नहीं, पर दक्षिणा के साथ गवादि का सम्बन्ध है। द्वादशशत संख्या समन्वित दक्षिणा होनी चाहिये। पीछे उक्त गुणों में से चाहे जो द्वादश शत हों।

यस्य वा सन्निधाने स्याद् वाक्यतो ह्यभिसम्बन्धः ।४१।

पदार्थ—(वा) अथवा (यस्य संनिधाने) जिसके संनिधान में संख्या शब्द हो। (तेन हि अभिसम्बन्धः) उसके साथ अभिसम्बन्ध जानना।

भावार्थ—जिसके सन्निधान में संख्या शब्द पड़ा है उसके साथ सम्बन्ध जोड़ना यही वाक्य का भाव है।

असंयुक्तास्तु तुल्यवदितराभिर्विधीयन्ते तस्मात् सर्वाधिकारः स्यात् ।४२।

पदार्थ—(तु) सान्निध्य पक्ष को दूषित करता है (असंयुक्ताः) केवल माष के साथ संयुक्त नहीं (इतराभिः) अन्य द्रव्य श्रुति के साथ (तुल्यवत्) समानता से (विधीयन्ते) विधान है (तस्मात्) अतः (सर्वाधिकारः स्यात्) सर्व के साथ सम्बन्ध है।

भावार्थ—गौ से लेकर माष पर्यन्त चकार का सम्बन्ध है और चकार समुच्चय को सूचित करता है। इससे सभी द्रव्यों के साथ संख्या का सम्बन्ध है।

असंयोगाद् विधिश्रुतावेकजाताधिकारः स्यात् श्रुत्या कोपात्क्रतोः ।४३।

पदार्थ—(असंयोगात्) सभी द्रव्यों के साथ संयोग न होने से (विधि-श्रुतौ) विधि वाक्य में (एकजाताधिकारः स्यात्) किसी एक द्रव्य के साथ संख्या का अन्वय है (श्रुत्या) विधि वाक्य का (कोपात्) व्याकोप होने से (क्रतोः) क्रतु का ही बोध कराता है।

भावार्थ—संख्या का सभी द्रव्यों के साथ सम्बन्ध नहीं, कारण कि तस्य द्वादशशतम् इस स्थान पर 'तस्य' एक वचन का प्रयोग है अतः एक द्रव्य के साथ ही सम्बन्ध है। यदि ऐसा न माना जाय तो श्रुति का व्याकोप हो, यह तो द्रव्य का बोधन न कराकर क्रतु का ही बोधन कराता है, अतः एक जातीय एक द्रव्य के साथ ही संख्या का सम्बन्ध है।

शब्दार्थश्चापि लोकवत् ।४४।

पदार्थ—(च) और (अपि) भी (लोकवत्) लौकिक भाषा के तुल्य (शब्दार्थः) वेद में भी शब्द का अर्थ है।

भावार्थ—लोक व्यवहार में 'शतं गावः' वाक्य से जैसे १०० गायें ही समझी जाती हैं, उसमें अश्वादि विजातीय अर्थ नहीं लिया जाता, उसी प्रकार वेद में भी एक ही प्रकार के अर्थ लिये जाते हैं। विजातीय अश्व आदि का ग्रहण नहीं हो सकता, अतः द्वादशशत किसी एक ही जाति के पदार्थ लेने और उस वाक्य में बताये 'गौश्चाश्वाश्च' इत्यादि में से ही एक जाति के लेने उचित हैं।

'तस्य द्वादशशत' इस वाक्य से केवल पशुगत संख्या का ही कथन है—

सा पशूनामुत्पत्तितो विभागात् ।४५।

पदार्थ—(सा) संख्या (पशूनाम्) पशुओं की (उत्पत्तितः विभागात्) लोक व्यवहार से ही विभाग होने से ।

भावार्थ—एक जातीय द्रव्य में ही संख्या का सम्बन्ध है और उन पशुओं के साथ ही सम्बन्ध है, कारण कि इस सम्बन्ध में लोक व्यवहार से ही समझा जा सकता है। लोक व्यवहार में इस प्रकार प्रयोग होता है—पांच घोड़े देकर अमुक वस्तु खरीदी, पर ऐसा प्रयोग नहीं होता—पांच उड़द के दाने देकर अमुक वस्तु खरीदी। इससे सिद्ध होता है कि पशुओं के साथ ही संख्या का सम्बन्ध है।

पशुओं में गाय का नियम है— इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष सूत्र—

अनियमोऽविशेषात् ।४६।

पदार्थ—(अनियमः) नियम नहीं (अविशेषात्) विशेष न बताने से।

भावार्थ—पशुओं में गायों का ही दान करना ऐसा कोई विशेष नियम ज्ञात नहीं होता। अतः गायों का ही दान करना, ऐसा नियम नहीं है।

भागित्वाद् वा गवां स्यात् ।४७।

पदार्थ—(वा) पूर्वपक्ष की निवृत्ति सूचित करता है। (गवां स्यात्) गायों का दान करना (भागित्वात्) महान् उपकारक होने से।

भावार्थ—गायें बहु उपकारक हैं, अतः गायों का ही दान करना चाहिये, और इससे गायों का नियम बनाने में आया है। अश्व का दान न करना, कारण कि उसके लिये निषेध है।

प्रत्ययात् ।४८।

पदार्थ—(प्रत्ययात्) विशेष्य की आकांक्षा में शास्त्र प्रथम गाय का ही प्रतिपादन करता है।

भावार्थ—'गौश्चाश्वाश्चाश्वतरश्चेत्यादि' शास्त्रीय वाक्य में गाय का स्थान प्रथम आता है, इससे गाय ही प्रथम प्रतीत होती है। जब तक कोई बाधक न जाना जाय, तब तक प्रथम का परित्याग नहीं करना चाहिये। 'असति बाधके तत्परित्यागोऽनुचितः' इससे गोदान का नियम प्रतीत होता है।

लिंगदर्शनात् ।४९।

पदार्थ—(लिंगदर्शनात्) शास्त्रान्तर में गोदान विहित होनें से।

भावार्थ—तैत्तिरीय शाखा के सप्तमाष्टक के प्रथम प्रपाठक में सहस्रदक्षिणार्थवाद में इस प्रकार वाक्य है—ते संवत्सर एकां गामसृजन्तेति सा त्रीणि च शतानि असृजत त्र्यस्त्रिशतं चेति भूयो भूयो गोमहिमैव श्रूयते'। यह शास्त्र प्रमाण भी गोदान में लिंग रूप है। इस कारण से गोदान का नियम है। अर्थात् ज्योतिष्टोम में गोदक्षिणा देनी चाहिये।

विभाग कर गायों की दक्षिणा देनी—इस अधिकरण के सूत्र—

तत्र दानं विभागेन प्रदानानां पृथक्त्वात् ।५०।

पदार्थ—(तत्र) उनमें (दानम्) गायों का दान (विभागेन) विभाग करके करना (प्रदानानाम्) प्रतिग्रहीता (लेने वाले) (पृथक्त्वात्) पृथक्-पृथक् होने से।

भावार्थ—लौकिक व्यवहार में लकड़हारों का स्वामी विभाग कर उनकी मजदूरी का धन देता है, वसे ही यजमान को ऋत्विजों का विभाग कर दान देना चाहिये। ऋत्विजों को स्वयं ही सामूहिक दान लेकर पीछे स्वयं ही अपने में विभाग नहीं करना चाहिये।

विभागं च दर्शयति ।५२।

पदार्थ—(च) और (विभागम्) विभाग को (दर्शयति) श्रुति बताती है।

भावार्थ—'तुथो वो विश्ववेदा विभजतु' यह मंत्र विभाग में कारण रूप है। 'अग्नीधे ददाति ब्राह्मणे ददाति' अग्नीध् नामक ऋत्विक् को दक्षिणा देता है। ब्रह्मा नामक ऋत्विक् को दक्षिणा देता है। इस प्रकार प्रतिग्रह करने वाले के लिये ऋत्विजों का नाम लेकर दक्षिणा देना लिखा है।

समाख्या प्रमाण से दक्षिणा का विभाग करना, इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष सूत्र—

समं स्यादश्रुतत्वात् ।५३।

पदार्थ—(समं स्यात्) सबको समान दक्षिणा देनी (अश्रुतत्वात्) वैषम्य का श्रवण न होने से।

भावार्थ—दक्षिणा का विभाग एक सा चाहिये। इसमें विषमता होने का कोई प्रमाण उपलब्ध न होने से।

अन्य पूर्वपक्ष—

अपि वा कर्मवैषम्यात् ।५४।

पदार्थ—(अपि वा) अथवा (कर्मवैषम्यात्) कर्म प्रमाण में वैषम्य होना चाहिये।

भावार्थ—लोक व्यवहार में जैसे कर्म प्रमाण से वेतन की न्यूनाधिकता होती है, वैसे यहाँ भी ऋत्विजों के कार्य के अनुसार दक्षिणा का विभाग नहीं होना चाहिये।

अतुल्याः स्युः परिक्रये विषमाख्याविधिश्रुतौ परिक्रयान्न कर्मण्युपपद्यते दर्शनाद् विशेषस्य तथाऽभ्युदये ।५५।

पदार्थ—(परिक्रये अतुल्याः स्युः) दक्षिणा दान में अतुल्य विभाग होना चाहिये (विषमाख्याविधिश्रुतौ) समाख्या प्रमाण से ऋत्विजों में दक्षिणा के विभाग के वैषम्य का (परिक्रयात्) निर्णय होने से (कर्मणि न उपपद्यते) कर्म में वैषम्य उत्पन्न नहीं होता (विशेषस्य दर्शनात्) विशेष का दर्शन होने से (तथाऽभ्युदये) अभ्युदय सत्र में ऐसी श्रुति है।

भावार्थ—अभ्युदय सत्र में दक्षिणा का विभाग अतुल्य होना बताया है। दक्षिणा के वैषम्य से कर्म में वैषम्य नहीं आता। अभ्युदय सत्र में इस प्रकार उल्लेख है—'**अर्धिनो दीक्षयति तृतीयिनो दीक्षयति पादिनो दीक्षयति**' जितनी दक्षिणा अध्वर्यु को देवे उससे आधी प्रतिप्रस्थाता को और उससे चतुर्थ भाग दक्षिणा नेष्टा नामक ऋत्विक् को देनी। इस प्रकार दक्षिणा में वैषम्य स्पष्ट होता है।

भूसंज्ञक एकाह याग में औपदेशिक धेनु दक्षिणा से अतिदेशिक तक सभी क्रतुदक्षिणा का बाध होता है। इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष—

तस्य धेनुरिति गवां प्रकृतौ विभक्तचोदितत्वात् सामान्यात् तद्विकारः स्याद्यथेष्टिगुणशब्देन ।५६।

पदार्थ—(तस्य धेनुः इति) भूनामक याग की एक धेनु दक्षिणा विहित है (गवाम्) वह अतिदेश प्राप्त गोरूप दक्षिणा का बाध करता है।

(विभक्तचोदितत्वात्) प्रकृति में 'गोश्च अश्वश्च' इस प्रकार भिन्न-भिन्न दक्षिणा बताने से (सामान्यात् तद्विकारः) अतः धेनु का गो के साथ सामान्य होने से उसका ही बाध (स्यात्) होता है। (यथा इष्टि गुणशब्देन) जैसे इष्टि में विहित द्रव्य सूर्यादि के साथ सम्बन्ध बताता है।

भावार्थ—(अर्थं ष भूः) उस प्रकार भूनामक एकाह याग विशेष का उपक्रम कर उसमें 'धेनुर्दक्षिणा' विहित की है। 'या गौः सा धेनुः' इस प्रकार विशेषण विशिष्ट कर सकते हैं। अश्वादि इस प्रमाण से विशेषित नहीं होते। 'योऽश्वः सा धेनुः' ऐसा प्रयोग नहीं हो सकता। अतः गोरूप धेनु से प्राकृत गो सामान्य का ही बाध होता है जैसे 'सौर्यं चरुं निर्वपेत्' यहाँ चरु रूप अर्थ का सूर्य के साथ सम्बन्ध निर्वाप द्वारा किया जाता है। 'सनिर्वपणकात् प्रयोगादनेन निर्वपण शब्देन एष्टिको विध्यन्तो नियम्यते।' इति भाष्यकार।

सिद्धान्त सूत्र—

सर्वस्य वा क्रतुसंयोगादेकत्वं दक्षिणार्थस्य गुणानां कार्यैकत्वादर्थे विकृतौ श्रुतिभूतं स्यात् तस्मात् समवायाद्धि कर्मभिः।५७।

पदार्थ—(सर्वस्य वा) अथवा सर्वक्रतु दक्षिणा का इससे बाध होता है। (क्रतुसंयोगात् एकत्वम्) सर्व दक्षिणा का क्रतु के साथ सम्बन्ध होने से एकत्व अर्थात् समुच्चय है। (गुणानाम् कार्यैकत्वात्) क्रतु में जितने गुण होते हैं उनका मुख्य कार्य के साथ सम्बन्ध होता है। (अर्थे विकृतौ श्रुतिभूतं स्यात्) विकृति में जो श्रुति होती है, वह प्राकृत अर्थ का बाध करती है। (तस्मात् समवायात् कर्मभिः) अतः समुच्चय कर्म के साथ होने से धेनु रूप दक्षिणा सर्व दक्षिणा की निवर्तिका है।

भावार्थ—भूनामक विकृति याग में जो धेनु रूप दक्षिणा विहित है, वह प्राकृत अखिल दक्षिणा का बाध करती है, केवल गाय रूप दक्षिणा का नहीं। गवादि माषान्त सभी द्रव्य एक दक्षिणा रूप है, कोई भिन्न-भिन्न दक्षिणा नहीं। इसलिये उक्त याग में धेनु दक्षिणा देने के पश्चात् अश्व आदि की दक्षिणा देने की आवश्यकता नहीं रहती।

चोदनानामनाश्रयाल्लिंगेन नियमः स्यात्।५८।

पदार्थ—(चोदनानाम्) प्राकृत अर्थ जो (अनाश्रयात्) अनाश्रय हो तो (लिंगेन नियमः स्यात्) लिंग से नियम होता है।

भावार्थ—प्राकृत अर्थ जो अनाश्रय हो तो लिंग से इसका नियम बधता है परन्तु यहाँ तो धेनु रूप दक्षिणा की स्पष्ट विधि है, इससे उसकी सर्व प्राकृत दक्षिणा का बाध होगा। इसके लिये लिंग वाक्य ढूंढ़ने की आवश्यकता नहीं रहती।

'एकां गामिति' प्राकृत संख्या का बाध होता है। इस अधिकरण के सूत्र—
पूर्वपक्ष—

एका पञ्च चेति धेनुवत् ।५९।

पदार्थ—(एका पञ्च इति) एक गाय की दक्षिणा देनी अथवा पांच गायों की दक्षिणा देनी, इससे सर्व दक्षिणा का बाध होता है। (धेनुवत्) जैसे अधिकरण में धेनु अन्य दक्षिणा की निर्वर्तिका बनती है।

भावार्थ—'यस्य सोममयहरेयुरेकां गां दक्षिणां दद्यात्' इत्यादि से जो गाय की दक्षिणा देनी कही है, वह प्राकृत गाय, अश्व आदि दक्षिणा की निर्वर्तिका हैं। जैसे उपर्युक्त अधिकरण में धेनु दक्षिणा सर्व दक्षिणा की निर्वर्तिका बनती है, वैसे, ऐसा पूर्वपक्षवादी का मन्तव्य है।

'साद्यस्क्र याग में 'त्रिवत्स' से सर्वक्रयार्थ का बाध होता है।

त्रिवत्सश्च ।६०।

पदार्थ—(त्रिवत्सः) तीन वर्ष का सांड (च) और।

भावार्थ—साद्यस्क्र याग में तीन बरस के सांड से सोम का क्रय होता है। तथा अजा, हिरण्य आदि जो क्रय के साधन बताये हैं, उन सभी का बाध होता है या केवल ऋषभ का ही बाध होता है। इस संदेह में पूर्वपक्ष का मत यह है कि केवल ऋषभ का ही बाध होता है, कारण कि सांड में और ऋषभ में प्रगवत्व रूप धर्म सामान्य है। सिद्धान्त पक्ष है कि 'त्रिवत्स' सांड क्रय के सर्व साधनों का बाध करता है। अतः वह कृत्स्न क्रयार्थ का निवर्तक है।

तथा च लिंगदर्शनम् ।६१।

पदार्थ—(तथा च) उस प्रकार (लिंगदर्शनम्) लिंग वाक्य भी है।

भावार्थ—साद्यस्क्रे स्त्री गौः सोमक्रयणी व्यावृत्ता ह्येषां स्पर्धा' साद्यस्क्र याग में जितने सोमक्रय के साधन हैं उनका बाध कर सर्व के बदले एक स्त्री गो होने से स्पर्धा की निवृत्ति होती है। इसलिये सोम के क्रय का साधन एक ही रहने से अन्य साधन से सोम का क्रय करना या नहीं, यह प्रश्न ही नहीं रहता।

एके तु श्रुतिभूतत्वात्संख्याया गवां लिंगविशेषेण ।६२।

पदार्थ - (एके तु) एकाम् यह द्वादशशत संख्या विशिष्ट गाय का बोधक है। (श्रुतिभूतत्वात्)ऐसा इस श्रुति का तात्पर्य होने से (गवां संख्यायाः) गोवृत्ति संख्या का (लिंगविशेषेण) स्त्रीलिंग गोगत एक संख्या का भाव है।

भावार्थ—'एकाम्' यह स्त्रीलिंग है, और गाय का विशेषण है, तथा इससे प्राकृत संख्या युक्त गायों की निवृत्ति करती है। 'एकाम्' इसका सम्बन्ध दक्षिणा के साथ नहीं, पर गाय के साथ है। अतः साद्यस्क याग में विहित एक गाय की दक्षिणा प्राकृत संख्या विशिष्ट गायों की ही निर्वतिका है, अश्वादि की नहीं।

अश्वमेध में 'प्राकाशौ' इत्यादि से अध्वर्यु के भाग का बाध होता है। पूर्वपक्ष—

प्रकाशौ च तथेति चेत् ।६३।

पदार्थ—(च) और (प्राकाशौ) सोना के दीप को प्राकाश कहा जाता हैं। इसका अध्वर्यु को दान दिया जाता है वह भी (तथेति चेत्) धेनु की भांति सभी दक्षिणाओं का बाध करता है।

भावार्थ—'प्राकाश' इस शब्द का अर्थ स्वर्णमय दीपस्तम्भ अथवा दर्पण है। इसे अध्वर्यु को दान में दिया है। यह दान विधि अश्वमेध याग में है। यह दान दिये पीछे कोई भी दक्षिणा देनी शेष नहीं रहती, ऐसा पूर्वपक्षी का मानना है।

अपि त्ववयवार्थत्वाद्विभक्तप्रकृतिकत्वाद्-गुणेदन्ता विकारः स्यात् ।६४।

पदार्थ—(अपि तु) सिद्धान्त पक्ष को सूचित करता है (अवयवार्थत्वात्) ऋत्विजों में एक देश अध्वर्यु होने से (तदर्थत्वात्) अध्वर्यु के लिये ही दक्षिणा होने से (विभक्तप्रकृतिकत्वात्) विभाग वाली दक्षिणा होने से (इदन्ताविकारः स्यात्) प्राकाशा दक्षिणा अध्वर्यु की ही होने से अन्यों की दक्षिणा बाकी रहती है।

भावार्थ—प्राकाशरूप दक्षिणा अध्वर्यु को ही देनी होती है। इसलिये इसकी दक्षिणा का इससे बाध होता है। अन्य ऋत्विकों की दक्षिणा का बाध नहीं होता है अर्थात् अन्यों को दक्षिणा देना रहता है।

उपहव्य में अश्व से सम्पूर्ण दक्षिणा का बाध होता है, इस अधिकरण के सूत्र—

धेनुवच्चाश्वदक्षिणा सब्रह्मण इति पुरुषापनयो यथा हिरण्यस्य ।६५।

पदार्थ—(धेनुवत् अश्वदक्षिणा) उपहव्य नामक एकाह याग में जो अश्वदक्षिणा है वह धेनुदक्षिणा की भांति सम्पूर्ण दक्षिणा निवारिका है। 'स ब्रह्मणे इति पुरुषापनय सब्रह्मणे परिहरति' इस वाक्य से जो अश्वदक्षिणा समझी जाती है, वह अन्य ऋत्विजों के सम्बन्ध को दूर करतो है। (यथा हिरण्यस्य) जैसे शतकृष्णल चरु में सोने की दक्षिणा केवल ब्रह्मा को देते हैं, ।

भावार्थ—उपहव्य नामक एक दिवस का याग होता है, उसमें 'श्यावः रुक्मललाटो,दक्षिणा सब्रह्मणे परिहरति' श्याम और स्वर्ण जैसे ललाट में जिसके बात हैं ऐसे अश्व की दक्षिणा दी जाती है। यह दक्षिणा केवल ब्रह्मा नामक होता को देनी चाहिये। यह दक्षिणा अन्य सभी दक्षिणा का बाध करती है। इसलिये कि अन्य को ऋतु दक्षिणा नहीं देनी होती। अन्य ऋत्विज् काम में लगे उसके लिये ऋतु के साथ सम्बन्ध रखना सम्भव नहीं, वह दान लौकिक दान की भांति देना, पर ऋतु दक्षिणा तो ब्रह्मा को ही देना, ऐसा सूत्र का भाव है।

पूर्वपक्ष—

एके तु कर्तृसंयोगात् स्रग्वत् तस्य लिंगविशेषेण ।६६।

पदार्थ—(एके तु) 'तु' शब्द पूर्वपक्ष का बोधन कराता है। दक्षिणा के कई भाग निवृत्त होते हैं सारी दक्षिणा निवृत नहीं होती। (कर्तृसंयोगात्) कर्म कराने वाले ब्रह्मा का सम्बन्ध होने से (स्रग्वत्) स्रग् (फूलमाला) जैसे उद्गाता नामक होता को दी जाती है और दूसरे की दक्षिणा कायम रहती है वैसे। (तस्य लिंगविशेषेण) कारण कि एक ही ऋत्विज् का सम्बन्ध होने से।

भावार्थ—यह दक्षिणा अतिदिष्ट सर्वदक्षिणा का बाध नहीं करती, परन्तु दक्षिणा के अमुक भाग की ही निवृत्ति करती है। ब्रह्मा को जो उक्त प्रकार के अश्व की दक्षिणा है तो अन्य ऋत्विजों को भी दक्षिणा होनी चाहिये और वह प्रकृति याग में बताई दक्षिणा होनी चाहिये, ऐसा सूत्र का भाव है।

उनसे भिन्न होने से (तच्छाब्दत्वात्) प्राकृत अग्नि अर्थ विशिष्ट शब्द होने से (निवर्तेत) स्विष्टकृत् शब्द की निवृत्ति होती है।

भावार्थ—'अवभृथे अग्नीवरुणौ स्विष्टकृतौ यजति' ऐसा वाक्य है। प्रकृति में स्विष्टकृत गुण विशिष्ट अग्नि देवता है। उसके ही एक देश से स्विष्टकृत शब्द से अनुवाद कर उस अग्नि के स्थान में 'अग्नोवरुण का विधान है और प्राकृत गुण का वाध किया है। इसलिये केवल अग्निवरुण का अभिधान करना चाहिये, स्विष्टकृत का नहीं। ऐसा भाव पूर्वपक्षवादी का है।

सिद्धान्त सूत्र—

संयोगो वा ऽर्थापत्तेरभिधानस्य कर्मजत्वात् ।३३।

पदार्थ—(वा संयोगः) अथवा स्विष्टकृत सहित अग्नीवरुण का अभिधान करना (अर्थापत्तेः) स्विष्टं करोति अथवा स्विष्टं कृतवान् ऐसे अर्थ की प्राप्ति होने से (अभिधानस्य कर्मजत्वात्) स्विष्टकृत शब्द क्रिया निमित्तक होने से।

भावार्थ—जैसे पाचक शब्द क्रिया निमित्तक है वैसे ही स्विष्टकृत शब्द भी क्रिया निमित्तक है इससे स्विष्टकृत शब्द के साथ ही अग्निवरुण देवता का अभिधान होना चाहिये—

पूर्वपक्ष सूत्र—

सगुणस्य गुणलोपे निगमेषु गुणस्थाने यावदुक्तं स्यात् ।३४।

पदार्थ—(सगुणस्य गुणस्थाने गुणलोपे) प्रकृति में गुण लोप प्राप्त होने से (निगमेषु) मंत्रों में (यावदुक्तं स्यात्) श्रुत के त्याग में जितने दोष हैं, उतने ही अश्रुत की कल्पना में दोष हैं। अतः याग में ही गुणों का लोप होना चाहिये, निगम आदि में नहीं।

भावार्थ—'अग्नि यजति' ऐसा पाठ स्विष्टकृत गुण का लोप कर सोम याग में किया है अतः याग में स्विष्टकृत का लोप कर अग्नि का अभिधान करना, अन्य स्थान में नहीं। यदि दूसरे स्थान में निगमादि का लोप किया जाय तो जो अश्रुत है उसकी कल्पना करनी पड़ेगी, और ऐसा करने में दोष है। अतः याग पूरा करते ही अग्नि शब्द का प्रयोग होना चाहिये।

सिद्धान्त सूत्र—

सर्वस्य वैककर्म्यात् ।३५।

पदार्थ—(वा) अथवा (सर्वस्य) स्विष्टकृत अग्नि शब्द के गुण का लोप होना चाहिये। (ऐककर्म्यात्) याग रूप एक ही प्रयोग होने से।

भावार्थ—सर्व स्विष्टकृत याग प्रयोग में गुण का लोप होना चाहिये, कारण कि याग रूप प्रयोग तो एक ही है, अतः निगदों और निगमों में भी गुणरहित अग्नि शब्द का अभिधान होना उचित है।

अनुयाज में स्विष्टकृत याग संस्कार कर्म है, इस अधिकरण का सूत्र—

स्विष्टकृदावापिकोऽनुयाजे स्यात् प्रयोजन-वदंगानामर्थसंयोगात् ।३६।

पदार्थ—(स्विष्टकृत्) अनुयाज के स्विष्टकृत (आवापिकः) आज्य भाग और स्विष्टकृत के बीच जो हो वह आवाप का सम्बंधी स्विष्टकृत (अनुयाजे स्यात्) अनुयाज में होता है (प्रयोजनवदङ्गानाम् अर्थसंयोगात्) समीपवर्ती अंग वाक्य में श्रूयमाण अर्थ के साथ संयोग प्राप्त करने से।

भावार्थ—आवापिक स्विटकृत याग संस्कार कर्म है। **'आज्यभागा-स्विष्टकतावन्तराऽऽवापस्थानम्'** आज्य भाग और स्विष्टकृत के बीच आचाप स्थान होता है इस प्रकार शाबरभाष्य में उल्लेख है—**'अपि च द्विविधान्यंगानि आराद्रुपकारकाणि सामवायिकानि च आराद्रुपकारकेभ्यः सामवायिकानि गरीयांसि'** शावर भाष्य। अंग दो प्रकार के होते हैं। अतः उक्त आवापिक स्विष्टकृत याग सामवामिक अर्थात् संस्कार कर्म है।

दर्श और पूर्णमास में याज्या और पुरोवाक्या ऋचायें संस्कार कर्म के लिये है।

पूर्वपक्ष सूत्र—

अन्वाहेति च शस्त्रवत्कर्म स्याच्चोदना-न्तरात् ।३७।

पदार्थ—(अन्वाह इति च) तिष्ठन् अन्वाह इत्यादि (शस्त्रवत्) शंसति इत्यादि वत् (कर्म स्यात्) प्रधान कर्म है। (चोदनान्तरात्) स्वतंत्र विधिविहित होने से।

भावार्थ—दर्शपूर्ण मास याग में **'तिष्ठन् अन्वाह'** इस वाक्य से याज्या ऋचा और पुरोवाक्या ऋचा का अनुवचन प्रधान कर्म है। जो संस्कार कर्म होता तो अन्वाह इस वचन की आवश्यकता नहीं पड़ती। मंत्र के स्वरूप से

देवता स्मरण समझा जा सकता है। जो प्रधान कर्म हो तभी 'अन्वाह' यह पद चरितार्थ हो सकता है, अतः प्रधान कर्म है।

सिद्धान्त सूत्र—

संस्कारो वा चोदितस्य वचनार्थत्वात् ।३८।

पदार्थ—(वा) अथवा (संस्कारः) संस्कार कर्म है (चोदितस्य शब्दस्य वचनार्थत्वात्) जो विहित वाचक शब्द है वह दृष्टार्थ होना सम्भव है।

भावार्थ—अन्वाह संस्कारक कर्म को सूचित करता है। अर्थात् देवता का स्मरण कराके संस्कार उत्पन्न करता है। जो विहित शब्द है वह दृष्ट अर्थ का ही वोधक है, अतः वह अपूर्व कर्म के लिये नहीं।

अवाच्यत्वान्नेति चेत् ।३९।

पदार्थ—(अवाच्यत्वात्) विधि न होने से (न इति चेत्) दृष्टार्थ नहीं, जो ऐसी शंका करने में आवे तो—

भावार्थ—जो ऐसी शंका करने में आवे कि दृष्ट अर्थ के लिये अपूर्व विधान न हो, तो उसका उत्तर अगले सूत्र में है।

स्याद् गुणार्थत्वात् ।४०।

पदार्थ—(गुणार्थत्वात्) गुणार्थ (स्यात्) होता है।

भावार्थ—गुणार्थक होने से इष्ट अर्थ के लिये ही यह पठन है, अर्थात तिष्ठन् अन्वाह यह प्रधान कर्म नहीं, पर संस्कार कर्म है।

मनोता मंत्र में ऊह नहीं—इस अधिकरण के सूत्र—

मनोतायां तु वचनादविकारः स्यात् ।४१।

पदार्थ—(मनोतायां तु) 'त्वं ह्यग्ने प्रथमो मनोता' मंत्र में (वचनात्) वचन होने से (अविकारः स्यात्) ऊह करना नहीं होता।

भावार्थ—'त्वं ह्यग्ने प्रथमो मनोता' इत्यादि प्रकृति गत मंत्र है। इस मंत्र का देवता अग्नि है, इसलिये कि यह आग्नेयी ऋचा है। वायव्य पशु में 'त्वं हि वायो' ऐसा ऊह करना, ऐसे पूर्वपक्ष के सम्बन्ध में कहा जाता है कि पशु अन्य देवत्य है इसलिये कि वायव्य पशु है और मनोता आग्नेयी है। पर वचन होने से ऊह करने में नहीं आता। अतः मनोता मंत्र में विकार किये बिना ही उसका पाठ करना चाहिये।

कण्वरथन्तर का गान स्वयोनि में होता है, इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष—

पृष्ठार्थेऽन्यद् रथन्तरात्तद्योनिपूर्वत्वादृचां प्रविभक्तत्वात् ।४२।

पदार्थ—(पृष्ठार्थे) पृष्ठ स्तोत्र कार्य में (रथन्तराद् अन्यत्) रथन्तर से भिन्न जो कण्वरथन्तर साम विहित किया है (तद्योनिपूर्वत्वात्) वह ज्योतिष्टोम प्रकृति होने से रथन्तर योनि में गाना चाहिये। (ऋचां प्रविभक्तत्वात्)बृहद्योनि भूत ऋचा की निवृत्ति होने से।

भावार्थ—वैश्य स्तोत्र 'कण्वरथन्तरं पृष्ठं भवति' कण्वरथन्तर साम गाना होता है। यह गान रथन्तर साम की जो योनि अर्थात् ऋचा होती है, उसमें गान करना चाहिये। बृहत्पृष्ठ की जो ऋचा हो, उसमें नहीं। ऐसा पूर्वपक्षवादी का मन्तव्य है।

पूर्वपक्ष का दूषण—

स्वयोनौ वा सर्वाख्यत्वात् ।४३।

पदार्थ—(स्वयोनौ वा) अथवा कण्वरथन्तर की जो योनि हो, उसमें गाना (सर्वाख्यत्वात्) कण्वरथन्तर शब्द सामविशेष में रूढ़ होने से।

भावार्थ—कण्वरथन्तर खास विशिष्ट साम में रूढ़ है, अतः उसकी जो योनि अर्थात् ऋचा होती है, उसमें ही कण्वरथन्तर नाम का सामगान करना चाहिये।

पूर्वपक्ष की शंका—

यूपवदिति चेत् ।४४।

पदार्थ—(यूपवत् इति चेत्) यूप शब्द के तुल्य संस्कार को निमित्त कर यह प्रवृत्त हुआ है। ऐसी शंका हो तो उसका उत्तर अगले सूत्र में है।

भावार्थ—जैसे यूप शब्द संस्कार के निमित्त से प्रवृत्त होता है चाहे जिस काष्ठ अथवा वृक्ष को यूप नहीं कहा जा जाता, वैसे ही प्राकृत रथन्तर सम्बन्धी जितने धर्म हैं, तद्विशिष्ट में रथन्तर शब्द प्रवृत्त है। अतः कण्व रथन्तर साम रथन्तर की योनि में ही गाना चाहिये। इस शंका का उत्तर अगले सूत्र में है।

न कर्मसंयोगात् ।४५।

पदार्थ—(कर्मसंयोगात्) कर्म के संयोग के कारण (न) प्रवृत्त नहीं हुआ।

भावार्थ—यूप के तुल्य कण्वरथन्तर क्रिया के लिये निमित्त रूप में

प्रवृत्त नहीं हुआ, परन्तु यह तो रूढ़ है। जैसे हस्तिनख शब्द पुरद्वार में रूढ़ है, वैसे ही कण्वरथन्तर शब्द साम विशेष में रूढ है। अतः उसकी जो ऋचा हो उसका गान करना, केवल रथन्तर ऋचा में नहीं।

कण्वरथन्तर साम की जो ऋचा हो, उसके पीछे अन्य दो ऋचा में गान करना—

पूर्वपक्ष—

कार्यत्वादुत्तरयोर्यथाप्रकृति ।४६।

पदार्थ—(कार्यत्वात्) सामगान रूप कार्य (उत्तरयोः) प्रथम के सिवाय दूसरी जो ऋचा में भी होने से (यथाप्रकृति) अन्य दो ऋचा प्रकृति में जो दो उत्तर ऋचा हो, उसका अतिदेश समझना।

भावार्थ—सामगान तीन ऋचा में करना होता है। अब कण्वरथन्तर सामगान के लिये एक ऋचा तो उसकी अपनी होती है, पर दूसरी उत्तर दो उत्तर ऋचायें जो अपेक्षित हैं, उन्हें प्रकृति में से लेकर उनमें कण्वरथन्तर सामगान करना। ये दो उत्तर ऋचायें गानाधिकरण होती हैं. वे रथन्तर और बृहत् साम की प्रकृति प्रमाण होती हैं, ऐसा करने से अतिदेश शास्त्र का बाध नहीं होता। इसलिये उत्तरा ऋचा रथन्तर अथवा बृहत्साम की होनी चाहिये।

सिद्धान्त सूत्र—

समानदेवते वा तृचस्याविभागात् ।४७।

पदार्थ—(वा) अथवा (तृचस्य अविभागात्) तीन ऋचायें अर्थात् तृच का विभाग नहीं होता। (समानदेवते) इस सम्पूर्ण तृच का देवता एक ही होता है।

भावार्थ—'**एकं साम तृचे क्रियते**' एक सामगान तृच में करना, तीन ऋचाओं का जो समूह होता है, उसे तृच कहते हैं। इन तीन ऋचाओं की देवता एक ही होती है और छन्द भी एक ही होता है। अतः उसमें विभाग नहीं गिना जाता। इन तीन ऋचाओं में कवण्रथन्तर साम गाया जाने से अन्य उत्तरा ऋचाओं की अपेक्षा नहीं रहती। उक्त वचन से अतिदेश शास्त्र का भी वाध होता है। '**समानच्छन्दसि समानदेवताके च अविशेषितस्तृचशब्दो भवति**' इस प्रकार शाबर भाष्य में तृच शब्द का विशदीकरण किया गया है।

अग्निष्टुद् याग में स्तुत और शस्त्र मंत्रों में ऊह नहीं, यह अधिकरण—

ग्रहाणां देवतान्यत्वे स्तुतशस्त्रयोः कर्मत्वा-दविकारः स्यात् ।४८।

पदार्थ—(ग्रहाणां देवतान्यत्वे) ग्रहों के देवता स्तुत शस्त्र मंत्र के

देवता से भिन्न होने पर भी (अविकारः स्यात्) ऊह नहीं होता (स्तुतशस्त्रयोः कर्मत्वात्) स्तुतशस्त्र अर्थात् स्तोत्र और शस्त्र प्रधान कर्म होने से।

भावार्थ—'अप्रगीतमन्त्रसाध्यास्तुतिः शस्त्रम्। प्रगीतमन्त्रसाध्यास्तुतिः स्तोत्रम्। मंत्रों का गान किये बिना जो स्तुति होती है वह शस्त्र कहलाती है और मंत्रों का गान कर जो स्तुति होती है, वह स्तोत्र कहलाता है। यह स्तोत्र और शस्त्र प्रधान कर्म होते हैं, संस्कारक कर्म नहीं। इसमें 'आग्नेया ग्रहा भवन्ति' इस में वाक्य ग्रहों की देवता अग्नि है, यह समझना चाहिये। स्तोत्र और शस्त्र के मंत्रों की देवता अग्नि से भिन्न है, इतना होने पर भी स्तोत्र और शस्त्र के मंत्र में अग्नि देवता का ऊह नहीं किया जाता। द्वितीय अध्याय के प्रथम पाद में स्तोत्र और शस्त्र प्रधान कर्म है, ऐसा सिद्धान्त रूप में स्थापित किया है।

चातुर्मास्य याग में आज्य शब्द को अविकार से ऊह किये बिना आवाहन करना—

पूर्वपक्ष सूत्र—

उभयपानात् पृषदाज्ये दध्नोऽप्युपलक्षणं निगमेषु पातव्यस्योपलक्षणत्वात् ।४६।

पदार्थ—(पृषदाज्ये) पृषदाज्य हविष् में (उभयपानात्) दही और घी दोनों का पान होने से (दध्नः अपि उपलक्षणम्) दही का भी उपलक्षण समझना। (निगमेषु पातव्यस्य उपलक्षणत्वात्) मंत्र में जो पीने योग्य वस्तु हैं, उसका उपलक्षण है।

भावार्थ—चातुर्मास्य में 'पृषदाज्ये अनुयाजान् यजति' प्रकृति में 'देवान् आज्यपान् आवह' इस प्रकार मंत्र है। 'आज्यं पिबतीति आज्यपः' इस प्रकार आज्यप शब्द की व्युत्पत्ति होती हैं 'पृषदाज्य' हविष् है। अतः उसके सम्बन्ध में 'आज्यपान् आवह' के साथ दधि शब्द का उपलक्षण समझना। इसलिये कि 'दध्याज्यपान्' ऊह करना चाहिये। कारण कि मंत्र में पातव्य मात्र का उपलक्षण हैं। दही और आज्य दोनों पातव्य है। कारण कि जो होम में आते हैं वे पीते हैं। 'यत् त्यज्यते तत्पीयते' इससे स्पष्ट होता है कि 'आज्यपान् आवह' इस मंत्र में पृषदाज्य हविष् देते समय दही शब्द का भी ऊह करना चाहिये। इसलिए 'दध्याज्यापान् आवह' ऐसा बोलना उचित है।

पूर्वपक्ष में दोष बताने वाला सूत्र—

न वा परार्थत्वात् ।५०।

पदार्थ—(न वा) अथवा दोनों का अर्थात् दही और आज्य का मंत्र में प्रयोग नहीं करना (परार्थत्वात्) पर प्रत्यायक होने से।

भावार्थ—आज्य शब्द के प्रयोग से दधि भी समझा जा सकता है। जैसे कम्बुग्रीवादिमत्वं घटत्वम्' अथवा 'कपालजन्यत्वं घटत्वम्' इन दो लक्षणों में से कोई भी एक बोलने से घट पदार्थ समझा जाता है। वैसे ही आज्य शब्द दही के लिये भी है। मंत्र में दधि शब्द का ऊह कर के प्रयोग की आवश्यकता नहीं। दोनों में से किसी भी शब्द के प्रयोग से देवता का स्मरण हो सकता है।

उपर्युक्त कथन को दूषित कर पूर्वपक्ष को दृढ़ करने वाला सूत्र—

स्याद् वा आवाहनस्य तादर्थ्यात् ।५१।

पदार्थ—(स्याद् वा) दही पद का प्रक्षेप करना चाहिये (आवाहनस्य तादर्थ्यात्) आवाहन पातृ और पेय दोनों का स्मरण होने से।

भावार्थ—आवाहन पातृ और पेय दोनों का स्मारक होने से दधि शब्द का भी प्रक्षेप मंत्र में करना चाहिये।

सिद्धान्त पक्ष का उद्भाव—

न वा संस्कारशब्दत्वात् ।५२।

पदार्थ—(न वा) दधि का उपलक्षण नहीं (संस्कारशब्दत्वात्) दही रूप अर्थ तो संस्कार के लिये है।

भावार्थ—आज्य जैसे मुख्य है वैसे दधि मुख्य नहीं। यह तो आज्य में चित्रतारूप संस्कार लाने के लिये है। इसलिए मंत्र में दधि शब्द का ऊह करके प्रयोग करने की आवश्यकता नहीं। जैसे आज्य का होम होता है वैसे पृषदाज्य में दही का होम नहीं होता।

फिर से पूर्वपक्ष—

स्याद् वा द्रव्याभिधानात् ।५३।

पदार्थ—(स्याद् वा) अथवा दधि शब्द का प्रयोग करना चाहिये (द्रव्याभिधानात्) दही भी द्रव्य रूप में अभिहित है।

भावार्थ—पृषदाज्यम् गृह्णाति' पृषदाज्य का ग्रहण करते हैं, जब ऐसा कहा जाता है तब 'सर्पिश्चैव दधि द्वन्द्वं वै मिथुनं प्रजननम्' इस प्रकार उल्लेख है। इससे समझा जा सकता है कि आज्य के समान दधि द्रव्य का भी अभिधान है। अतः दधि शब्द का प्रयोग करना चाहिये।

उक्त पक्ष का निराकरण—

'दध्नस्तु गुणभूतत्वादाज्यपा निगमाः स्युर्गुणत्वं श्रुतेराज्यप्रधानत्वात् ।५४।

पदार्थ—(दध्नः तु गुणभूतत्वात्) दधि गौण होने से (आज्यपा निगमाः

स्यु:) निगमों में आज्य शब्द का ही प्रयोग होना चाहिए। (गुणत्वम्) दधि का गुणत्व है। (श्रुतेः आज्यप्रधानत्वात्) आज्य की प्रधानता तो श्रुति से समझी जा सकती है।

भावार्थ—'पृषदाज्येन यजति' इस वाक्य में आज्य शब्द के उत्तर में तीसरी विभक्ति का श्रवण है। इससे आज्य याग का अंग है। यह स्पष्ट समझा जा सकता है। दधि तो आज्य के संस्कार के लिए उपयुक्त है। अतः आज्यतुल्य दधि नहीं इससे मंत्र में उसका ऊह नहीं करना चाहिए। पुनः दधि का प्राधान्य बताने वाला सूत्र—

'दधि वा स्यात्प्रधानमाज्ये प्रथमान्त्य-संयोगात् ।५५।

पदार्थ—(दधि वा स्यात् प्रधानम्) दधि प्रधान है। (आज्ये) आज्य के साथ (प्रथमान्त्यसंयोगात्) प्रथम और अन्त में संयोग होने से।

भावार्थ—उपस्तरण और अभिघारण में आज्य के साथ सम्बन्ध होने से दधि प्रधान है। 'यदि वसन्ते यजेत् द्विरुपस्तृणीयात् सकृदभिघारयेत्' इस प्रकार पुरोडशहविष में दो समय उपस्तरण और एक समय अभिघारण बताया है। उपस्तरण प्रथम होता है और अभिघारण पीछे से होता है। इस प्रधान संस्कार को बताने वाला होने से दही भी मुख्य है, गौण नहीं, अतः उसका भी प्रयोग करना चाहिए।

सिद्धान्त सूत्र—

'अपि वाऽज्यप्रधानत्वाद् गुणार्थे व्यपदेशे भक्त्या संस्कारशब्दः स्यात् ।५६।

पदार्थ--(अपि वा आज्यप्रधानत्वात्) अथवा आज्य ही प्रधान है। (गुणार्थे भक्त्या व्यपदेशे) गुणार्थ होने से उपस्तरण आदि भक्ति से अर्थात् लक्षणा से प्रयुक्त है। (संस्कारशब्दः स्यात्) अतः दधि संस्कार के लिए है। इससे वह मुख्य नहीं।

भावार्थ--उपस्तरण आदि शब्द अवदानार्थक हैं। इसलिए उसका प्रयोग लक्षणा से किया है। 'आज्यमवदानेन संस्कुर्यात्' ऐसा उक्त वाक्य का अर्थ है। इससे दधि गौण है और आज्य प्रधान है। इससे निगम में दधि शब्द का ऊह कर दधि का मंत्र में प्रक्षेप नहीं करना चाहिए।

उपर्युक्त से भिन्न ही पूर्व पक्ष निम्न सूत्र बताता है—

'अपि वाऽऽख्याविकारत्वात्तेन स्यादुपलक्षणम् ।५७।

पदार्थ—(अपि वा) अथवा (आख्याविकारत्वात्) संज्ञा का भेद होने से (तेन) उस संज्ञा का (उपलक्षणम् स्यात्) मंत्र में प्रयोग करना।

भावार्थ—आज्य में जब दधि डाला जाता है तब वह पृथक् द्रव्य हो जाता है। और उस द्रव्य को पृषत् नाम दिया जाता है। अतः मंत्र में पृषदाज्यपान् देवान् आवह ऐसा ऊह करना चाहिए।

सिद्धान्त सूत्र—

न वा स्याद्गुणशास्त्रत्वात् ।५८।

पदार्थ—(न वा स्यात्) भिन्न द्रव्य नहीं होता (गुणशास्त्रत्वात्) संस्कार जनक होने से।

भावार्थ—आज्य में दही डालने से कोई पृथक् द्रव्य नहीं बनता दही डालने से आज्य में केवल संस्कार होता है। पृषत् शब्द चित्र का वाचक है आज्य में दही डालने से चित्रता होती है। दही और आज्य इन दोनों के समुदाय को चित्राज्य कहते हैं। और वही पृषदाज्य है। यहां कोई नूतन द्रव्य पैदा नहीं होता इसलिए दही आज्य में संस्कार उत्पन्न करने के लिए होने से वह संस्कारक द्रव्य अर्थात् गौण द्रव्य है। इसलिए पृषदाज्यपान् ऐसा ऊह करने को भी जरूरत नहीं। भावार्थ यह है कि आज्यपान् में ऊह के बिना जैसा प्रकृति में पाठ है वैसा ही प्रयोग करना चाहिए। अर्थात् पृषदाज्य हविष् में 'आज्यपान् देवान् आवह' ऐसा ही प्रयोग करना चाहिए।

इति मीमांसादर्शनभाष्ये दशमाध्यायस्य चतुर्थः पादः ।१०।४।।

अथ मीमांसादर्शनभाष्ये
दशमाध्यायस्य पञ्चमः पादः

विकृति याग में जहां एक देश का ग्रहण करना हो वहां जितनी संख्या हो उसमें से आद्य संख्या का ग्रहण करना—इस अधिकरण के सूत्र—

सिद्धान्त सूत्र—

आनुपूर्व्यवतामेकदेशग्रहणेष्वागमवदन्त्य-लोपः स्यात् ।१।

पदार्थ—(आनुपूर्व्यवताम्) नियत क्रम वालों में (एकदेशग्रहणेषु) विकृति में जहाँ ऐक देश का अर्थात् अमुक एक भाग का ग्रहण करना हो, वहां (अन्त्यलोपः स्यात्) अन्त के पदार्थों का लोप होता है (आगमवत्) लोक समाज में जैसा होता है उसी प्रकार—

भावार्थ—इस दशम अध्याय के ५ वें पाद में प्राकृत धर्मों में से एक देश के बाध पर विचार चलता है । जैसे कि '**द्यावापृथिव्यामेककपालं भवति वैष्णवं त्रिकपालम्**' इस विकृति में प्रकृति में से आठ उपधान मंत्रों की प्राप्ति होती है । पर अर्थ आठ नहीं अतः कितने ही मंत्रों को निवृत्ति होनी चाहिए, अब शंका यह है कि प्रारम्भ के मंत्रों की निवृत्ति होनी चाहिए या चाहे जिस मंत्र की निवृत्ति हो, अथवा अन्तिम मंत्रों की निवृत्ति होनी चाहिए । इसका उत्तर इस सूत्र में सिद्धान्त रूप में है । जिसका क्रम नियत हो और उसमें जो एक देश का ग्रहण करना हो तो आद्य अर्थात् प्रारम्भ के पदार्थों का ग्रहण और अन्तिम की निवृत्ति करनी । लोक समाज में भी ऐसा नियम है कि समाज में लोग अपने-अपने स्थान में बैठ गये हों और पीछे कोई दूसरा आवे तो जो बैठे है उन्हें उठाये विना ही अन्य व्यवस्था की जाती है । वैसा ही यहाँ भी समझना । उपर्युक्त सूत्र में एक कपाल अथवा तीन कपाल विहित हैं तो उनके लिए प्रथम का एक मंत्र अथवा प्रथम के तीन मंत्रों का उपयोग करना और शेष की निवृत्ति करनी चाहिए ।

लिंगदर्शनाच्च ।२।

पदार्थ—(च) और (लिंगदर्शनात्) लिंग वाक्य का दर्शन होने से।

भावार्थ—'आग्नेयं पञ्चकपालमुदवसानीयम्' इस स्थान पर पांचवां कपाल लेना कहा है। इसलिए छठे कपाल का लोप होता है, यह स्पष्ट ही है। इस लिंग वाक्य से चरम निवृत्ति होती है यह स्पष्ट समझा जाता है।

पूर्वपक्ष सूत्र—

विकल्पो वा समत्वात् ।३।

पदार्थ—(वा) अथवा (विकल्पः) विकल्प है (समत्वात्) समान होने से।

भावार्थ—प्रथम अथवा अन्तिम के लोप में कोई विधान न होने से किसी समय प्रारम्भ का और किसी समय अन्तिम पदार्थ का लोप करना। इस प्रकार विकल्प में लोप करना ऐसा पूर्वपक्ष का मत है।

क्रमादुपसर्जनोऽन्ते स्यात् ।४।

पदार्थ—(क्रमात्) क्लृप क्रम होने से (उपसर्जनः) अप्रधान (अन्ते स्यात्) अन्त में होता है।

भावार्थ—लोक समाज का जो दृष्टान्त दिया वहाँ तो क्रमनिर्णीत होता है: इससे आगन्तुक अप्रधान होने से अन्तिम स्थान देना पड़ता है परन्तु जहाँ क्रम निर्णीत न हो, वहाँ लोक समाज का दृष्टांत लागू नहीं होता।

लिंगमविशिष्टं संख्यायाः हि तद्वचनम् ।५।

पदार्थ—(लिंगम्) लिंग वाक्य (अविशिष्टम्) साधक नहीं हो सकता (हि) कारण कि (संख्यायाः तद्ववचनम्) वह वचन तो मात्र संख्या का ही बोध कराता है।

भावार्थ--ऊपर जो लिंग वाक्य दिया वह भी साधक नहीं, कारण कि उससे तो मात्र संख्या ही समझी जाती है। अन्तिम संख्या ही होनी चाहिए ऐसा कोई नियम इससे विदित नहीं होता। जैसे, छः भाई हों और उनमें से कोई एक न दीख पड़े तो लोग कहते हैं कि तो पांच तो तुम हो, छठा कहाँ गया ? इनमें जो छठा कहां गया वह सबसे छोटा अथवा सबसे बड़े का ही वाचक है, ऐसा कुछ भी यहां नहीं। छठा-अर्थात् जो दिखाई नहीं देता उसके लिए छठे शब्द का प्रयोग होता है। अतः लिंग वाक्य भी अन्तिम की निवृत्ति करता है, ऐसा प्रतीत नहीं होता।

सिद्धान्त सूत्र—

आदितो वा प्रवृत्तिः स्यादारम्भस्य तदादित्वाद्वचनादन्त्यविधिः स्यात् ।६।

पदार्थ—(आदितः वाः प्रवृत्तिः) अथवा प्रारम्भ की प्रवृत्ति (स्यात्) होता है (तदादित्वात्) कपालोपधान में मंत्र करणक आरम्भ होने से (वचनाद् अन्त्यविधिः स्यात्) वचन से अन्त्यविधि होती है।

भावार्थ—कपालों के उपधान का आरम्भ होता है, तब क्रम में एक-एक मंत्र बोल कर एक-एक कपाल रखा जाता है, ऐसा प्रकृति में क्रम होता है। वैसा ही विकृति में भी रखना होता है। इसलिए तीन कपालों का उपधान हुये पीछे कपाल न रहने से उपधान भी नहीं रहता। इसलिए आरम्भ में उपयोग में आये तीन मंत्रों से अवशिष्ट रहे मंत्रों की निवृत्ति होती है, यह स्पष्ट है। परन्तु अवभृथ आदि में तो 'चतुरः प्रयाजान् यजति' ऐसे विधान में 'अपर्बाहिणः प्रयाजान् यजति' ऐसे वचन के प्रामाण्य के कारण अन्त्य विधि भी इष्ट है। परन्तु जहाँ ऐसा वचन न हो, वहाँ तो प्रारम्भ का ही विधि होता है, और अन्त्य का लोप होता है।

एकात्रक नामक याग में आद्यतृच में गान होता है, इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष—

एकत्रिके तृचादिषु माध्यन्दिनश्छन्दसां श्रुतिभूतत्वात् ।७।

पदार्थ—एकत्रिक नामक क्रतु में (तृचादिषु) तीन तृचों में प्रत्येक के प्रथम ऋक् में गान होता है (माध्यन्दिनः) माध्यन्दिन पवमान (छन्दसाम्) ऋचाओं के छन्दों का (श्रुतिभूतत्वात्) प्रकृति में श्रवण होने से।

भावार्थ—एकात्रिक नामक याग' है। इसमें माध्यन्दिन पवमान में प्रकृति में जो तीन तृच विहित हैं उनमें से एक तृच से प्राप्त अतिदेश शास्त्र होता है। अब एक तृच ऐसी रीति से प्राप्त करना कि प्रकृति में जो तीन तृच कहे हैं उनमें से प्रत्येक की प्रथम ऋचा लेनी। इसलिये एक तृच हो जायगी और तीसरी ऋचा त्रिष्टुप् छंद में आयगी जैसे कि 'उच्चा ते जातम्' इत्यादि। यह गायत्री छंद में है। पुनानः सोम इत्यादि यह बृहती छंद में है, और 'प्रतु द्रवः, यह त्रिष्टुप् छंद में है। इस प्रकार पृथक्-पृथक् छंद वाले जो तीन तृच

बने हैं उनमें से प्रत्येक की प्रथम ऋचा लेकर उनमें सामगान करना। यह पूर्व-पक्षवादी का आश्रय है।

सिद्धान्त सूत्र—

आदितो वा तन्न्यायत्वादितरस्यानुमानिक-त्वात् ।८।

पदार्थ—(वा) अथवा (आदितः) आद्य तृच में गान करना (तन्न्याय-त्वात्) पूर्वोक्त कपाल के त्याग से (इतरस्य) प्रत्येक तृच की प्रथम ऋचा लेकर त्रिक करना यह तो (आनुमानिकत्वात्) आनुमानिक है।

भावार्थ—प्रथम तृच अर्थात् तीन ऋचा जो कि तीन छन्दों में है इन्हीं तीन ऋचाओं में गान करना दूसरी और तीसरी तृच की बृहती छंद वाली तथा त्रिष्टुप् छंद वाली ऋचा लेकर तृच नहीं बनाना और उनमें गान भी नहीं करना। कारण कि प्रत्येक तृच् की प्रथम ऋचा लेकर उसमें गान करना ऐसा कोई श्रुति वचन नहीं है। यह तो मात्र आनुमानिक है। अतः पूर्वपक्ष ठीक नहीं। गायत्री छंद वाले प्रथम तृच में ही गान करना, यही सिद्धान्त है।

यथानिवेशं च प्रकृतिवत् संख्यामात्रविकार-त्वात् ।९।

पदार्थ—(च) और (प्रकृतिवत्) प्रकृति में जो क्रम है, उस प्रकार (यथा निवेशम्) और जिस प्रकार तृच का निर्देश है, उसी प्रकार (संख्या-मात्रविकारत्वात्) प्रकृति निर्दिष्ट अन्य दो ऋचाओं का बाध होने से।

भावार्थ—प्रकृति में तृचों का जो क्रमिक सन्निवेश है, उसी प्रमाणा-नुसार प्रथम संख्या में रक्खी तृच, उसके वाद दोनों तृचों का बाध करता है। इसलिये प्रथम गायत्री छंद वाला जो तृच अर्थात् तीन ऋचायें हैं, उन्हीं में गान करना।

एक ऋचा में धूर्गान करना, इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष—

त्रिकस्तृचे धुर्ये स्यात् ।१०।

पदार्थ—(धुर्ये) धूर्गान सम्पाद्य स्तोत्र में (त्रिकः) जो त्रिक स्तोत्र है (तृचे स्यात्) वह तीन ऋचाओं में होना चाहिये।

भावार्थ—एकत्रिक नामक क्रतु में किसी स्थान पर धूर्गान विहित है। वह तीनों ऋचा में गाना या एक ऋचा में, इसके सम्बन्ध में पूर्वपक्ष सम्बन्धी

यह सूत्र है और इसका अर्थ यह होता है कि धूर्गान तृच में अर्थात् तीन ऋचा में गाना चाहिये।

सिद्धान्त सूत्र—

एकस्यां वा स्तोमस्यावृत्तिधर्मत्वात् ।११।

पदार्थ—(वा) अथवा (एकस्याम्) एक ऋचा में (स्तोमस्य) स्तोत्र का (आवृत्तिधर्मत्वात्) आवृत्ति धर्म होने से।

भावार्थ—'आवृत्तं धूर्षु स्तुवते' इस वचन से समझा जा सकता है कि स्तोम अर्थात् स्तुति की आवृत्ति होती है। आवृत्ति स्तुति का विशेषण है जो स्तोम की ऋचायें पृथक्-पृथक् मानी जावें तो प्रत्येक ऋचा के अनुसार पृथक्-पृथक् अर्थ होने से स्तुति में भेद पड़ेगा और जो इस भेद को सहन किया जाय तो आवृत्ति का बाध होगा। अतः एक ही ऋचा में धूर्गान होना चाहिये।

द्विरात्रादि यागों में दशरात्र के विध्यन्त का अनुष्ठान होता है।

चोदनासु त्वपूर्वत्वाल्लिंगेन धर्मनियमः स्यात् ।१२।

पदार्थ—(चोदनासु) 'द्विराण यत्रोजयेत्' द्विरात्र नामक याग से याग करना। इस विधि विहित रात्रि में (तु अपूर्वत्वात्) द्वादशाह सम्बन्धी प्रथम और अन्तिम दिवस (अपूर्वत्वात्) प्रकृति होने से (लिंगेन) द्विरात्र समीप में जो लिंग वचन है उससे (धर्मनियमः) धर्म का नियम बंधता है।

भावार्थ—द्विरात्र याग द्वादशाह नामक याग की विकृति है। द्विरात्र याग में दो रात्रि अपेक्षित हैं। अब ये दो रात्रि द्वादशाह में से कौन सी दो गिननी, प्रथम दो या कोई अन्य दो? तो इस सम्बन्ध में यह कथन है कि द्वादशाह अर्थात् बारह दिनों में पूरा होने वाला याग। उसमें प्रथम दिन प्रापणीय और अन्तिम दिन उदयनीय संज्ञा वाला है। द्विरात्र संज्ञक याग में उक्त बारह दिनों के याग में प्रथम दिन छोड़कर दूसरे दो दिन लेने। अर्थात् इन दो दिनों में जो विधि होती है, वह द्विरात्र संज्ञक याग में विधि करना। लिंग वचन भी ऐसा है—'यत्प्रथमं तद् द्वितीयम् यद्द्वितीयम् तत् तृतीयम् जगतीमन्तर्यन्तीति' जो प्रथम वह द्वितीय, जो द्वितीय वह तृतीय और जगती अर्थात् चतुर्थ का त्याग करना। इस वचन के अनुसार जो द्वादशाह में से प्रथम दिवस का त्याग कर दूसरे दिन को द्विरात्र का प्रथम दिन मानने में आवे तभी सार्थक होता है। अतः प्रथम दिन के सिवाय दूसरे और तीसरे दिन का विधि शेष द्विरात्र में करना। ऐसा इस सूत्र का भाव है।

प्राप्तिस्तु रात्रिसम्बन्धात् ।१३।

पदार्थ—(प्राप्तिः तु) धर्म की प्राप्ति तो (रात्रिसम्बन्धात्) रात्रि का सम्बन्ध होने से समझी जाती है।

भावार्थ—'द्विरात्रम्' 'दशरात्रम्' इन दोनों स्थानों पर रात्रि का सम्बन्ध है, इसलिये द्वादश रात्र के धर्म द्विरात्र में प्राप्त होते हैं।

'सप्तभिराधुनोति' इस वाक्य से अग्नि में धुननादि अर्थों के मंत्रों का उपादान अनियम से है। इस अधिकरण के सूत्र—

अपूर्वासु तु संख्यासु विकल्पः स्यात् सर्वासा-मर्थवत्वात् ।१४।

पदार्थ—(अपूर्वासु तु) विधि विहित (संख्यासु) संख्याओं में (विकल्पः स्यात्) विकल्प है। (सर्वासाम् अर्थवत्वात्) सभी ऋचाओं का फल होने से।

भावार्थ—महाग्निचयन में 'या जाता' इत्यादि बीजावाप मंत्र चौदह से अधिक हैं। सात मंत्रों से अग्नि धुनन करना होता है। इन उक्त मंत्रों में से चाहे जिन सात मंत्रों से अग्नि धुनन रूप का अनुष्ठान हो सकता है। कारण कि सभी ऋचाओं का पाठ होने का फल है। निष्फल कोई नहीं।

विवृद्ध स्तोम में अप्राकृत साम मंत्रों का आगम होता है। इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष—

स्तोमविवृद्धौ प्राकृतीनामभ्यासेन संख्या-पूरणमधिकारात् संख्यायां गुणशब्दत्वा-दन्यस्य चाश्रुतित्वात् ।१५।

पदार्थ—(स्तोमविवृद्धौ) स्तोम अर्थात् स्तुति के साम मंत्रों की जहाँ वृद्धि होती है, वहाँ (प्राकृतीनाम्) प्रकृती में विहित किये साम ऋचाओं की (अभ्यासेन) आवृत्ति कर (संख्यापूरणम्) संख्या की पूर्ति की जाती है (अधिकारात्) संनिधान होने से (गुणशब्दत्वात्) एक विंशति संख्या शब्द गुणशब्द होने से (अन्यस्य च अश्रुतत्वात्) अप्राकृत ऋचा में अशास्त्रीय होने से।

भावार्थ—किन्हीं ऋतुओं में स्तोम की भी वृद्धि देखने में आती है। उस स्थान पर प्रकृति में साम की जो ऋचायें विहित की होती हैं उनकी

आवृत्ति कर संख्या की पूर्ति करनी चाहिये। प्रकृति साम ऋच'यें न हों, ऐसी कोई अन्य ऋचायें लाकर संख्या की पूर्ति नहीं करनी। अब प्रकृति में तो तीन, पन्द्रह अथवा सत्तर ऋचायें विहित हैं, तो संख्या की पूर्ति प्रकृतिगत किसी भी साम ऋचा की आवृत्ति करके करना अन्य कोई प्रकृति से बाहर के साम मंत्र नहीं बोलना, ऐसा पूर्वपक्षवादी का भाव है।

सिद्धान्त सूत्र—

आगमेन वा ऽभ्यासस्याश्रुतित्वात् ।१६।

पदार्थ—(वा) सिद्धान्त को सूचित करता है। (आगमेन) प्रकृति से बाहर के मंत्र लाकर संख्या पूरी करना (अभ्यासात्) आवृत्ति का (अश्रुतित्वात्) श्रवण न होने से।

भावार्थ—प्रकृति में से साम ऋचाओं की विकृति में अतिदिष्ट हुये पश्चात् भी जो संख्या पूर्ति न हो तो अन्य मंत्र लाकर संख्या की पूर्ति करनी चाहिये। प्रकृति ऋचा की आवृत्ति नहीं करनी, कारण कि आवृत्ति विहित नहीं है।

संख्यायाश्च पृथक्त्वे निवेशात् ।१७।

पदार्थ—(च) और)संख्यायाः) संख्या का (पृथक्त्वेन) पृथक्पन से (निवेशात्) निवेश होने से।

भावार्थ—संख्या की पृथक्-पृथक् संख्येय से पूर्ति करनी चाहिये। जैसे किसी को आठ घड़ों की आवश्यकता हो तो एक घड़े को आठ बार, बारी-बारी से ले जाने और लाने से आठ घड़े नहीं हो सकते, परन्तु वहाँ आठ घट व्यक्तियाँ ही चाहिये। इसी प्रकार साम मंत्र भी पृथक्-पृथक् ही चाहिये।

पराक्शब्दत्वात् ।१८।

पदार्थ—(पराक्शब्दत्वात्) पराक् शब्द का प्रयोग होने से।

भावार्थ—'पराक्' शब्द आवृत्ति का वाचक नहीं, जैसे कि 'पराग् बहिष्पवमानेन स्तुवीत' इस वाक्य से भी भिन्न-भिन्न साम ऋचाओं से संख्या का पूरण करना, यह सिद्ध होता है।

उक्ताविकाराच्च ।१९।

पदार्थ—(च) और (उक्ताविकारात्) निंदा का श्रवण होने से।

भावार्थ – 'जामि वा एतद् यज्ञस्य क्रियते यदेकं पुनः क्रियते' इस वाक्य से एक ही ऋचा का अभ्यास करने में निंदा की प्रतीति होती है। अतः आवृत्ति नहीं करना।

अश्रुतित्वादिति चेत् ।२०।

पदार्थ—(अश्रुतित्वात्) आगम का श्रवण नहीं होता (इति चेत्) जो ऐसा कहा जावे तो ?

भावार्थ—आगम करना। अर्थात् अन्य मंत्र लाकर संख्या की पूर्ति करनी, ऐसा भी विधान नहीं। जो ऐसी शंका हो तो ? इस प्रश्न का उत्तर अगले सूत्र में है।

स्यादर्थचोदितानां परिमाणशास्त्रम् ।२१।

पदार्थ—(अर्थचोदितानाम्) २१ ऋचायें बोलनीं, ऐसा स्पष्ट विधान है (परिमाणशास्त्रं स्यात्) अतः यह परिमाण बताने वाले शास्त्र प्रमाण में कार्य होना चाहिये।

भावार्थ—'एकविंशेन अतिरात्रेण प्रजाकामं याजयेत्' यहाँ स्पष्ट २१ का परिमाण विहित है। अतः २१ साम ऋचाओं की भिन्न-भिन्न व्यक्तियाँ चाहियें, तभी यह शास्त्र चरितार्थ होता है। इस कारण से बाहर से साम को ऋचायें लेकर २१ संख्या पूरी करनी चाहिये।

आवापवचनं वाऽभ्यासे नोपपद्यते ।२२।

पदार्थ—(वा) अथवा (अभ्यासे) आवृत्ति करने में (आवापवचनम्) आवाप मिलाने के वचन भी (नोपपद्यते) उपन्नन नहीं होते।

भावार्थ—:अत्र ह्येवावपन्ति' यहाँ आवाप करना, अर्थात् इसमें अन्य मंत्र बोलने, यह मंत्र पाठ अन्य मंत्रों को लाये विना नहीं हो सकता। पाठ और आवृत्ति एक नहीं है। अतः प्रकृति बाहर के साम मंत्र पाठ करने चाहियें।

साम्नां चोत्पत्तिसामर्थ्यात् ।२३।

पदार्थ—(च) और (साम्नाम्) अप्राकृत साम मंत्रों का (उत्पत्ति-सामर्थ्यात्) पाठ की सामर्थ्य होने से।

भावार्थ—जो सभी स्थान पर आवृत्ति से संख्या की पूर्ति मानने में आवे तो पाठ व्यर्थ हो जाय जैसे कि—

दश सामसहस्राणि शतानि च चतुर्दश।
साङ्गानि सरहस्यानि यानि गायन्ति सामगाः॥
अशीति शत माग्नेयं पावमानं चतुः शतम्।
ऐन्द्रं स्यात्सप्तविंशानि यानि गायन्ति सामगाः॥

जो आवृत्ति से ही संख्या की पूर्ति मानने में आवे तो इन साम मंत्रों की संख्या बनाना व्यर्थ हो जाय, अतः आगम करना चाहिये।

धुर्येष्वपीति चेत् ।२४।

पदार्थ—(धुर्येषु अपि इति चेत्) तो पीछे धूर्गान में आवृत्ति किस लिये होनी चाहिये, वहाँ भी आगम अर्थात् दूसरे मंत्र लाने चाहियें।

भावार्थ—धूर्गान में आवृत्ति मानी है। तो वहाँ भी तीन ऋचा में गान किसलिये न मानना ? देखो, इसी पाद का सूत्र ११वाँ।

नावृत्तिधर्मत्वात् ।२५।

पदार्थ—(न) नहीं (आवृत्तिधर्मत्वात्) आवृत्ति का धर्म होने से।

भावार्थ—धूर्गान में तो आवृत्ति का स्पष्ट विधान है। 'आवृत्तं धूर्षु स्तुवते पुनरावृत्तं पृष्ठैरुपतिष्ठते' यह वचन आवृत्ति करने के लिये प्रमाण है। ऐसा वचन विवृद्ध स्तोमक ऋतु में नहीं। अतः सामान्तर का आगम करना चाहिये आवृत्ति नहीं।

बहिष्पवमान में ऋचाओं का आगम करना पड़ता है, इस अधिकरण के सूत्र—

बहिष्पवमाने त्वृगागमः सामैकत्वात् ।२६।

पदार्थ—(तु) परन्तु (वहिष्पवमाने) वहिष्पवमान नामक स्तोम वृद्धि में (ऋगागमः) ऋचाओं का आगम करना पड़ता है (सामैकत्वात्) उसमें एक ही साम है।

भावार्थ—वहिष्पवमान नाम के स्तोम की वृद्धि आगन्तुक ऋचाओं से संख्या की पूर्ति करनी। कारण कि वहाँ एक ही साम का विधान कर अन्य साम का प्रतिषेध किया है।

अवशिष्ट सामिधेनियों में अन्य मंत्र लाकर संख्या पूरी करनी चाहिये—यह अधिकरण—

पूर्वपक्ष सूत्र—

अभ्यासेन तु संख्यापूरणं सामिधेनिष्वभ्यास-प्रकृतित्वात् ।२७।

पदार्थ—(अभ्यासप्रकृतित्वात्) प्रकृति में अभ्यास होने से (सामिधेनिषु) जहाँ २१ सामिधेनी मंत्र बोलने हों वहाँ (अभ्यासेन संख्यापूरणम्)

अभ्यास कर संख्या की पूर्ति करनी चाहिये।

भावार्थ—'एकविंशतिमनुब्रूयात्' २१ सामिधेनी मंत्र बोलने। अब यहाँ मूल प्रकृति में ११ सामिधेनी विहित हैं तो बाकी १० ऋचायें कहाँ से लानीं, तो उसका उत्तर पूर्वपक्ष की ओर से दिया जाता है कि बाकी संख्या ११ ऋचाओं में से किसी भी ऋचा का अभ्यास कर २१ की संख्या पूरी करनी त्रिःप्रथमामन्वाह त्रिरुत्तमाम्' ग्यारह ऋचाओं में प्रथम और अन्तिम तीन-तीन समय बोलनी। इस प्रकार १५ तो हो जाती हैं और इनका विधान भी स्पष्ट है, तो उसी रीति से अन्य ऋचाओं का भी अभ्यास कर २१ संख्या पूरी करना।

अविशेषादिति चेत् ।२८।

पदार्थ—(अविशेषात्) पञ्चदश सामिधेनी २१ सामिधेनी की प्रकृति है। इसमें कोई प्रमाण न होने से उक्त पद्धति जिसमें गिननी उचित नहीं (इति चेत्) जो ऐसी शंका हो तो उत्तर अगले सूत्र में है।

भावार्थ—जहाँ १५ सामिधेनियाँ बोलनी होती हैं, वह याग जहाँ २१ सामिधेनी बोलनी होती हैं उसकी प्रकृति नहीं है। जहाँ प्रकृति विकृति भाव होता है, वहाँ अभ्यास होता है। यदि ऐसी शंका हो तो इसका उत्तर अगले सूत्र में देखें—

स्यात्तद्धर्मत्वात् प्रकृतिवदभ्यस्येतासंख्या-पूरणात् ।२९।

पदार्थ—(तद्धर्मत्वात् स्यात्) २१ सामिधेनी बोलनी, यह पञ्चदश विकृति है, अतः (प्रकृतिवत्) पूर्व प्रकृति की संख्या की भांति (अभ्यस्येत) अभ्यास करना (आसंख्यापूरणात्) संख्या की पूर्ति हो, वहाँ तक।

भावार्थ——यहाँ भी प्रकृति विकृति भाव है.। पञ्चदश प्रकृति है, और २१ विकृति है। अतः जहाँ तक संख्या पूरी हो, वहाँ तक ऋचाओं का अभ्यास करना।

यावदुक्तं वा कृतपरिमाणत्वात् ।३०।

पदार्थ—(वा) अथवा (यावदुक्तं) शास्त्र में जितना कहा है उतना ही अभ्यास करना (कृतपरिमाणत्वात्) परिणाम किया होने से।

भावार्थ—११ में से १५ करने के लिये तो शास्त्र में विधान है, जैसे कि 'त्रिः प्रथमामन्वाह त्रिरुत्तमाम्' पर १५ में से २१ की संख्या पूरी करने के

लिये उपर्युक्त प्रमाण से शास्त्र में विधान नहीं। अतः जहाँ प्रत्यक्ष अभ्यास न हो वहाँ तो अन्य ऋचाओं को बोलकर संख्या की पूर्ति करनी चाहिये।

अधिकानां च दर्शनात् ।३१।

पदार्थ—(च) और (अधिकानां च दर्शनात्) अधिक ऋचाओं का पाठ करना (दर्शनात्) दर्शन भी है।

भावार्थ—अभ्यास की निवृत्ति करने के लिये अन्य भी साधक प्रमाण है। 'अग्नीषोमीयपशौ सप्तदशसामिधेनीके पृथुपाजाः तं संबाध इति ऋचोः अधिकयोर्दर्शनात्।" दो ऋचाओं का पाठ करने का विधान भी स्पष्ट है। अतः प्रकृति स्थल में ऋचाओं का पाठ करना चाहिये।

कर्मस्वपीति चेत् ।३२।

पदार्थ—(कर्म सु अपि) धूर्गान कर्म में भी अन्य ऋचाओं का पाठ करना (इति चेत्) जो ऐसी शंका हो तो।

भावार्थ—तो धूर्गान रूप कर्म में भी घटती ऋचाओं में अन्य ऋचाओं का पाठ किसलिये न करना ? इस प्रश्न का उत्तर अगले सूत्र में है—

न चोदितत्वात् ।३३।

पदार्थ—(न) उक्त शंका ठीक नहीं (चोदितत्वात्) कारण कि वहाँ स्पष्ट विधान है।

भावार्थ—धूर्गान में तो अभ्यास करने का स्पष्ट विधान है। जैसे कि 'आवृत्तं धूर्षु गायेत्' अतः वहाँ अन्य ऋचाओं का पाठ नहीं हो सकता। इससे स्पष्ट है कि "एकविंशतिमनुब्रूयात् प्रतिष्ठाकामस्य चतुर्विंशतिमनुब्रूयाद् ब्रह्मवर्चकामस्य" इत्यादि स्थल में अन्य ऋचाओं का आगम अर्थात् पाठ कर संख्या पूरी करनी।

पूर्वपक्ष—

षोडशिनो वैकृतत्वं तत्र कृत्स्न-विधानात् ।३४।

पदार्थ—(षोडशिनः) षोडशी का (वैकृतत्वम्) वैकृतत्व है अर्थात् षोडशीग्रह विकृति विहित पदार्थ है (तत्र) विकृति में उनका (कृत्स्नविधानात् सम्पूर्ण विधान होने से।

भावार्थ—'यस्यैवं विदुषः षोडशी गृह्यते' इससे षोड़शी नामक ग्रह विहित है। इसे प्रकृति विहित समझना या विकृति विहित ? यहाँ पूर्वपक्ष-वादी यह बताता है कि यह षोडशी ग्रह विकृति विहित है, कारण कि वहाँ ही उसके सभी अंग विहित हैं। द्विरात्र आदि विकृति याग हैं, और इनमें इनका विधान है।

प्रकृतौ चाभावदर्शनात् ।३५।

पदार्थ—(च) और (प्रकृतौ) प्रकृति में (अभावदर्शनात्) अभाव का दर्शन होने से।

भावार्थ—प्रकृति में षोडशी ग्रह करे अभाव का दर्शन होने से, इस-लिये कि प्रकृति में इसका निषेध भी है।

अयज्ञवचनाच्च ।३६।

पदार्थ—(च) और (अयज्ञवचनात्) किसी स्थान पर उसका अयज्ञ वचन भी है।

भावार्थ—'अयज्ञो वाव ज्योतिष्टोमो यत् षोडश्य हीनः' षोडशी से रहित ज्योतिष्टोम अयज्ञ है। इस वाक्य से षोडशी का अभाव ज्योष्टिोम रूप प्रकृति में है, ऐसा समझा जाता है।

सिद्धान्त सूत्र—

प्रकृतौ वा शिष्टत्वात् ।३७।

पदार्थ—(वा) अथवा (प्रकृतौ) प्रकृति में (शिष्टत्वात्) विहित होने से वह प्राकृत है।

भावार्थ—प्रकृति में अर्थात् ज्योतिष्टोम में षोड़शी आम्नात है। प्रकरण से ज्योतिष्टोम के साथ एक वाक्यता हो सकती है। विकृति में यह कहा गया है, इससे इसके प्रकृति में वर्णित होने का निषेध हो सके, ऐसा नहीं। अतः प्रकृति में शिष्ट का प्रतिषेध न होने से षोडशी प्राकृत है।

प्रकृतिदर्शनाच्च ।३८।

पदार्थ—(च) और (प्रकृतदर्शनात्) प्रकृति में भी वाक्य का दर्शन होने से।

भावार्थ—जो ऐसा कहा जाय कि षोडशी ज्योतिष्टोम का अंग होने में प्रकरण प्रमाण रूप में है और द्विरात्रादि विकृति का अंग होने में वाक्य प्रमाण रूप में है। प्रकरण की अपेक्षा वाक्य बलवान् होता है अतः वह वैकृत

है। इसका उत्तर यह है कि 'अप्यग्निष्टोमे राजन्यस्य गृह्णीयात्' यह प्रकृति का भी वाक्य है। और यह षोडशी से लगता है अतः षोडशी प्राकृत है।

आम्नानं परिसंख्यार्थम् ।३९।

पदार्थ—(आम्नानम्) आम्नान (परिसंख्यार्थम्) परिसंख्या के लिए है।

भावार्थ—प्रकृति में षोडशी का निमित्त राजन्यकर्तृत्व है। अतः विकृति में निमित्त होकर तभी षोडशी ग्रह प्राप्त हो, अतः निमित्त का परिसंख्यान करना। इसलिए विकृति में भी आम्नान है।

उक्तमभावदर्शनम् ।४०।

पदार्थ—(अभावदर्शनम्) अभाव का दर्शन (उक्तम्) कहा गया है।

भावार्थ—प्रकृति में जो अभाव देखा जाता है वह तो विकल्प के लिए है।

गुणादयज्ञत्वम् ।४१।

पदार्थ—(गुणात्) स्तुति के कारण (अयज्ञत्वम्) अयज्ञत्व कहा गया है।

भावार्थ—पक्ष में वह यज्ञ न होने से वह वैकल्पित है, पक्ष में अभाव होने से गौणवृत्ति में अयज्ञ कहने में आता है। अतः षोडशी ग्रह प्राप्त है।

षोडशी ग्रह में से जो सोम रस का ग्रहण करना उस षोडशी का ग्रहण आग्रयण में से करना चाहिए—इस अधिकरण के सूत्र—

सिद्धान्त सूत्र—

तस्याग्रयणाद् ग्रहणम् ।४२।

पदार्थ—(तस्य) उस षोडशी ग्रह का (ग्रहणम्) ग्रहण (आग्रयणात्) आग्रयण से करना चाहिए।

भावार्थ—आग्रयण में से षोडशी ग्रह का सोम रस लेना चाहिए।

उक्थ्याच्च ।४३।

पदार्थ—(च) और (उक्थ्यात्) उक्थ्य में से भी षोडशी का ग्रहण करना।

भावार्थ—'उक्थ्याद् गृह्णाति' इस वाक्य बल से उक्थ्य में से भी षोडशी

ग्रह का ग्रहण करना ऐसा भी जाना जाता है। इस प्रकरण को पूर्ण करने से पहले बीच में ही एक अन्य विचार प्रस्तुत करते हैं।

तीसरे सवन में षोडशी का ग्रहण करना—

तृतीयसवने वचनात्स्यात् ।४४।

पदार्थ—(वचनात्) वचन होने से (तृतीयसवने स्यात्) तीसरे सवन में ग्रहण करना।

भावार्थ—,तृतीये सवने गृह्णीयात्' इस वचन के बल से तीसरे सवन में षोडशी ग्रह का ग्रहण करना, यही सिद्धान्त पक्ष है। प्रत्येक सवन में ग्रहण करना, ऐसा जो वचन है वह तो मात्र स्तुति है।

इस प्रकरण को पूरा कर उपर्युक्त अधूरे प्रकरण को पुनः आरम्भ करते हैं—

अनभ्यासे पराक् शब्दस्य तादर्थ्यात् ।४५।

पदार्थ—(अनभ्यासे) एक समय ग्रहण करने में (पराक्शब्दस्य) पराक् शब्द का प्रयोग हुआ है। (तादर्थ्यात्) पराक् शब्द का ऐसा अर्थ होने से।

भावार्थ—पराक् शब्द दिग् वाचक है तथा 'एक ही समय' यह भी अर्थ है। 'पराञ्चमुक्थ्याद् गृह्णाति' इस वाक्य में पराक् शब्द 'एक ही समय' अर्थ देता है। उक्थ्यात्—यह पञ्चमी विभक्ति है वह अपादान अर्थ में है। पराक् शब्द के सम्बन्ध के कारण पञ्चमी नहीं, अर्थात् उपपद पञ्चमी नहीं, पर कारक पञ्चमी है।

पूर्व पक्ष—

उक्थ्यविच्छेददर्शनाच्च ।४६।

पदार्थ—(च) और (उक्थ्यविच्छेददर्शनात्) उक्थ्यों का विच्छेद होने से।

भावार्थ—जो उक्थ्य में से ग्रहण करने में आवे तो उक्थ्य साम मंत्र और षोडशी ग्रहण का विच्छेद हो जाय। अन्योन्य का असम्बन्ध हो अतः उक्थ्य में से ग्रहण करना चाहिए। ऐसा पूर्वपक्षवादी का मानना है।

सिद्धान्त सूत्र—

आग्रयणाद्वा पराक्शब्दस्य देशवाचित्वात् पुनराधेयवत् ।४७।

पदार्थ—(आग्रयणाद् वा) आग्रयण में से ग्रहण करना (पराक् शब्दस्य देशवाचित्वात्) पराक् शब्द देश वाची होने से (पुनराधेयवत्) पुनराधेय में उत्तरकाल रूप देश के अर्थ में इसका प्रयोग हुआ हैं ।

भावार्थ—'यथा पराञ्चमग्न्याधेयात् पुनरादधीत' इस स्थान में उत्तर दाल रूप देश वाचक पराक् शब्द प्रयोग हुआ है। इसलिए भावार्थ यह है कि उक्थ्य के पीछे आग्रयण में से षोडशी का ग्रहण करना ।

विच्छेदः स्तोमसामान्यात् ।४८।

पदार्थ—(विच्छेदः) विच्छेद वचन (स्तोमसामान्यात्) एकाविंशति स्तोम सामान्य के कारण—

भावार्थ—स्तोम सामन्य के लिए विच्छेद वचन कहा है । अतः आग्रयण में से षोडशी ग्रहण करना यही सिद्धान्त पक्ष है ।

षोडशी ग्रह स्तोत्र और शस्त्र के साथ है, इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष सूत्र—

उक्थ्याग्निष्टोमसंयोगादस्तुतशस्त्रः स्यात् सति संस्थान्यत्वम् ।४९।

पदार्थ—(अस्तुतशस्त्रः) यह षोडशी ग्रह स्तोत्र तथा शस्त्र से रहित समझना (अग्निष्टोमसंयोगात्) अग्निष्टोम का सम्बन्ध होने से (सति) जो स्तुत तथा शस्त्र माना जाये तो (संस्थान्यत्वम्) भिन्न संस्था माननी पड़ेगी।

भावार्थ—अग्निष्टोम आदि तत् तत् साम के ऋतु के निमित्त कर प्रवृत्त हुआ है। जो षोडशी भी सामयुक्त हो तो षोडशी साम से समाप्त होने से षोडशी नाम की एक ही पृथक् संख्या गिनी जायगी। पर अग्निष्टोमादि संस्था का ही श्रवण होता है। षोडशी नामक संस्था का श्रवण नहीं होता, अतः षोडशी स्तुत और शस्त्र से रहित है।

सिद्धान्त सूत्र—

सस्तुतशस्त्रो वा तदंगत्वात् ।५०।

पदार्थ—(वा) अथवा (सस्तुतशस्त्रः) षोडशी ग्रह स्तुत और शस्त्र सहित है। (तदङ्गत्वात्) स्तुत और शस्त्र ग्रह के अंग होने से।

भावार्थ—षोडशी ग्रह स्तुत और शस्त्र सहित है, कारण कि स्तुत और शस्त्र ग्रह के अंग हैं। अंग बिना अंगी नहीं हो सकता।

लिंगदर्शनाच्च ।५१।

पदार्थ—(च) और (लिङ्गदर्शनात्) लिंग वाक्य का श्रवण होने से।

भावार्थ—"उर्ध्वा वान्ये यज्ञक्रतवः सन्तिष्ठन्ते तर्यञ्चोन्ये ये होतारमभिसंतिष्ठन्ते ते उर्ध्वा येच्छवाकं ते तिर्यञ्च" इस वाक्य से क्रतु उर्ध्व और तिर्यक् भेद से दो प्रकार के बताये गये हैं। जो अस्तुत शस्त्र होता तो 'अध्वर्यु मधिसंतिष्ठेत' ऐसा तीसरा भेद भी होता परन्तु नहीं, अतः षोडशी ग्रह संस्तुत शस्त्र है।

वचनात् संस्थाऽन्यत्वम् ।५२।

पदार्थ—(वचनात्) वचन होने के कारण (संस्थाऽन्यत्वम्) पृथक् संस्था भी मान्य है।

भावार्थ—वचन होने से पृथक् संस्था होने की जो आपत्ति बताई है वह इष्टापत्ति है। वचन के कारण पृथक् संस्था भी है। 'वचनं यथेच्छं कर्तुं शक्नोति' जो वचन करना सो वह कर सकता है।

अंगिरसों के द्विरात्र याग में षोडशी की परिसंख्या है। इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष सूत्र—

अभावादतिरात्रेषु गृह्यते ।५३।

पदार्थ—(अभावात्) अंगिरसके द्विरात्र में अभाव होने से (अतिरात्रेषु) अंगिरस द्विरात्र में (गृह्यते) षोडशी का ग्रहण होता है।

भावार्थ—'वैखानसं पूर्वेऽहन् साम भवति षोडशी उत्तरे' इस वाक्य में आंगिरस द्विरात्र में ही षोडशी ग्रह प्राप्त होता है कारण कि अन्य द्विरात्र में तो विकल्प प्राप्त है ही ऐसा पूर्वपक्षवादी का मत है।

सिद्धान्त सूत्र—

अन्वयो वाऽनारभ्यविधानात् ।५४।

पदार्थ—(वा) अथवा (अन्वयः) सभी द्विरात्र म षोडशी ग्रह का सम्बन्ध होता है। (अनारभ्यविधानात्) अनारभ्याधीत वाक्य से।

भावार्थ—'उत्तरेऽहनिद्विरात्रस्य गृह्यते' इस सामान्य विधि वाक्य से सभी द्विरात्र में षोडशी ग्रह का सम्बन्ध है।

नानाहीन अर्थात् पृथक्-पृथक् अहीन यागों में षोडशी ग्रहण है—

यह अधिकरण—
पूर्वपक्ष सूत्र—

चतुर्थे चतुर्थेऽहन्यहीनस्य गृह्यते इत्यभ्यासेन प्रतीयते भोजनवत् ।५५।

पदार्थ—(अहीनस्य) एक ही अहीन याग में (चतुर्थे चतुर्थे अहनि) चौथे-चौथे दिवस में (गृह्यते) षोडशी का ग्रहण होता है (इति अभ्यासेन प्रतीयते) ऐसा चतुर्थ शब्द के अभ्यास से प्रतीत होता है। (भोजनवत्) भोजन के समान।

भावार्थ—अहीन याग के प्रति चतुर्थ दिन षोडशी का ग्रहण करना चाहिये। यहाँ एक ही अहीन याग के चौथे-चौथे दिन ऐसा अर्थ समझना चाहिये। प्रथम चौथे दिन षोडशी का ग्रहण किये पीछे आठवें दिन में ग्रहण करना, ऐसा अर्थ फलित होता है। यदि ऐसा अर्थ किया जावे तो 'चतुर्थे चतुर्थे' ऐसा अभ्यास चरितार्थ होता है। जैसे चौथे-चौथे दिन में भोजन करता है तो उसका यह अर्थ है कि जिस दिन भोजन किया हो, उसके पीछे आने वाले चौथे दिन पुनः भोजन करता है। अतः एक ही अहीन याग के चौथे दिन समझना चाहिये। अहीन याग करने में बहुत दिन लगते हैं।

सिद्धान्त सूत्र—

अपि वा संख्यावत्त्वान्नानाहीनेषु गृह्यते पक्षवदेकस्मिन् संख्यार्थभावात् ।५६।

पदार्थ—(अपि वा) अथवा (संख्यावत्त्वात्) चतुर्थ—संख्यावाचक होने से (नानाहीनेषु) पृथक्-पृथक् अहीन यागों में (गृह्यते) षोडशी का ग्रहण होता है। (एकस्मिन्) एक में (संख्यार्थभावात्) संख्या का अर्थ सफल होने से।

भावार्थ—'चतुर्थ' यह संख्यावाचक शब्द है। एक अहीन याग में दो, चतुर्थ दिवस नहीं आते, एक चतुर्थ पीछे उससे लेकर जो दूसरा चतुर्थ आता है वह तो अहीन याग का अष्टम दिवस कहलाता है। अतः चतुर्थ शब्द के अर्थ फलवत्ता के कारण पृथक्-पृथक् अहीन यागों का चतुर्थ दिवस लेना और इसमें वीप्सा भी चरितार्थ होगी। जैसे—'पञ्चम्यां पञ्चम्यां' पांचवें पाँचवें भोजन करता है, इससे पृथक्-पृथक् पक्षों का पांचवा दिन लेते हैं। एक ही पक्ष में कोई दो बार या तीन बार पञ्चमी नहीं आती। अतः पृथक्-पृथक् अहीन यागों में चतुर्थ-चतुर्थ दिवस षोडशी का ग्रहण करना, यही सिद्धान्त पक्ष है।

भोजने च तत्संख्यं स्यात् ।५७।

पदार्थं—(च) और (भोजने) भोजन में (तत्संख्यं स्यात्) वही संख्या होगी।

भावार्थं—चौथे-चौथे दिन भोजन करता है। यहाँ जो भोजन करने के पश्चात् का जो-जो चौथा दिन आता है, उसे चतुर्थ दिवस कहा जाता है। वह तो लोक व्यवहार के कारण है। एक चतुर्थ के बाद दूसरा चतुर्थ आता है, यह तो वस्तुतः अष्टम दिन ही गिना जायगा लोक व्यवहार वैदिक कर्मकाण्ड में प्रमाण रूप में नहीं लिया जा सकता। अतः सिद्धान्त पक्ष में पृथक्-पृथक् अहीन यागों के लिये चतुर्थ शब्द बताया है, वही वास्तविक है।

विकृति में ग्रहों का आग्रयणाग्रत्व है।इस अधिकरण के सूत्र—

जगत्साम्नि सामाभावादृक्तः साम तदाख्यं स्यात् ।५८।

पदार्थं—(जगत्साम्नि) जगत् सामपद घटित पूर्वोक्त श्रुति में (ऋक्तः) जगती छंद वाली ऋचा का सम्बन्ध होने से (तदाख्यं स्यात्) जगत्साम—इस आख्या वाला साम है। (सामाभावात्) सम्पूर्ण सामवेद में जगत्संज्ञक साम का अभाव होने से।

भावार्थं—'यदि जगत्सामा आग्रायणाग्रान्' ऐसा ज्योतिष्टोम प्रकरण में वाच्य है। इस वाक्य का प्रकृति याग में निवेश नहीं, कारण कि जगत्संज्ञक साम सम्पूर्ण सामवेद नहीं। अतः उक्त वाक्य का निवेश विकृति याग में है और इसका अर्थ ऐसा करना कि जगती छंद में जो ऋचा गाई जाती हो वह जगत्साम है, रथन्तर साम आदि की भांति जगत्साम सामवेद में नहीं है।

गोसव में 'उपवती' और 'अग्रवती' अभाव है, इस अधिकरण के सूत्र—

प्रथम पक्ष—

उभयसाम्नि नैमित्तिकं विकल्पेन समत्वात् स्यात् ।५९।

पदार्थं—(उभयसाम्नि) दोनों साम जिसमें प्राप्त होते हैं ऐसे 'गोसव' आदि ऋतु में (नैमित्तिकम्) जिसका निमित्त हो वह नैमित्तिक (विकल्पेन) विकल्प से प्राप्त होता है। (समत्वात्) नियामक कारण न होने से।

भावार्थ—प्रकृति में इस प्रकार आम्नान है "गोसवे उभे कुर्यात्। उपवतीं रथन्तरपृष्ठस्य प्रतिपदं कुर्यात् अग्रवतीं बृहत्पृष्ठस्य' इस प्रकार उपवती रथन्तर पृष्ठ की और अग्नवती बृहत्वृष्ठ की ऋचायें विहित हैं। अब दोनों को प्रथम स्थान एक साथ नहीं दिया जा सकता, अतः उनका विकल्प होना चाहिये और कोई खास नियामक कारण न होने से चाहे जिसे प्रथम स्थान दिया जा सकता है।

दूसरा पक्ष—

मुख्येन वा नियम्येत ।६०।

पदार्थ—(वा) अथवा (मुख्येन) प्रथम ऋचा (नियम्येत) का ही नियम बंधता है।

भावार्थ—उपवती ऋचा प्रथम है, अतः जहाँ दो साम मंत्र प्राप्त हों वहाँ रथन्तर साम की उपवती ऋचा को ही प्रथम स्थान देना चाहिये। अर्थात् इस ऋचा से रथन्तर साम का प्रथम गान करना चाहिये।

सिद्धान्त सूत्र—

निमित्तविघाताद्वा क्रतुयुक्तस्य कर्म स्यात् ।६१।

पदार्थ—(वा) अथवा (निमित्तविघाताद्) निमित्त का विघात होने से (क्रतुयुक्तस्य कर्म स्यात्) क्रतु निमित्त उससे भिन्न ही है।

भावार्थ—दोनों ऋचा प्राप्त करने के लिये तत् तत् पृष्ठ अर्थात् स्तोत्र निमित्त रूप से प्रकृति में होता है। जो रथन्तर साम निमित्त रूप से हो तो प्रथम उपवती ऋचा से सामगान प्रथम करना, जो बृहत्साम निमित्त रूप से हो तो अग्रवती इत्यादि ऋचा से सामगान करना। परन्तु प्रकृत गोसवादि में कोई भी निमित्त न होने से नैमित्तिक उपवती और अग्रवती इन दोनों में से एक ऋचा प्राप्त नहीं होती पर उससे कोई अन्य ही ऋचा प्राप्त है। इसलिये उक्त क्रतु में उपवती और अग्रवती ऋचाओं का अभाव है।

ऐन्द्रवायव ग्रह का सर्व की आदि में प्रतिकर्ष न करना। इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष सूत्र—

ऐन्द्रवायवस्याग्रवचनादादितः प्रतिकर्षः स्यात् ।६२।

पदार्थ—(ऐन्द्रवायवस्थ) ऐन्द्रवायव ग्रह का (अग्रवचनात्) अग्रवचन होने से (आदितः प्रतिकर्षः स्यात्) सबसे पहले इसका ग्रहण होना चाहिये।

भावार्थ—ज्योतिष्टोम में मन्त्रकाण्ड और विधिकाण्ड के ग्रहों का इस प्रकार पाठक्रम है—उपांशुग्रहः प्रथमः, अन्तर्यामग्रहो द्वितीयः, ऐन्द्रवायवग्रहस्तृतीयः मैत्रावरुणग्रहश्चतुर्थः' अब ऐन्द्रवायव में अग्रता का विधान होने से प्रथम उसका ग्रहण होना चाहिये।

सिद्धान्त सूत्र—

अपि वा धर्मविशेषात्तद्धर्माणां स्वस्थाने प्रकरणाग्रत्वमुच्यते ।६३।

पदार्थ—(अपि वा) अथवा (तद्धर्मविशेषात्) ऐन्द्रवायव प्रभृतित्व विशेष होने से (प्रकरणात्) प्रकरणगत होने वाले क्रम प्रमाण से (स्वस्थाने) स्वस्थान में (अग्रत्वम् उच्यते) अग्रत्व विधीयमान होता है।

भावार्थ—यहाँ अग्रता का विधान नहीं, पर मैत्रावरुण, अश्विन आदि सर्व ग्रहों का अनुवाद कर केवल ग्रहण का ही विधान है। अतः पाठ प्रमाण से अपनें-अपने स्थान में ही स्थित रहने वालों का अग्रत्व होता है।

धारासंयोगाच्च ।६४।

पदार्थ—(च) और (धारासंयोगात्) धाराग्रह यही अग्रता है।

भावार्थ—धाराग्रह यही अग्रता है, सर्व की अग्रता का विधान नहीं, अतः सर्व की आदि में प्रतिकर्ष नहीं करना।

कामसंयोग में भी ऐन्द्रवायव ग्रह का आदि में प्रतिकर्ष नहीं, यह अधिकरण।

पूर्वपक्ष सूत्र—

कामसंयोगे तु वचनादादितः प्रतिकर्षः स्यात् ।६५।

पदार्थ—(तु) पूर्ववचन को सूचित करता है। (कामसंयोगे) काम का संयोग ही वाक्य में बताया है वहाँ तो (वचनात्) वचन के कारण (आदितः) सर्व की आदि में (प्रतिकर्षः स्यात्) प्रतिकर्ष होता है।

भावार्थ—'ऐन्द्रवायवाग्रान् गृह्णीयात् यः कामयते यथापूर्वं प्रजाः कल्पेरन्'

इस वाक्य में 'कामयते' क्रिया पद से कामना सूचित होती है, अतः जहाँ कामना का संयोग बताया हो वहाँ तो सर्वथा पहला प्रतिकर्ष करना चाहिये नहीं तो 'कामयते' पद का कुछ भी अर्थ नहीं रहता।

सिद्धान्त सूत्र—

तद्देशानां वाऽग्रसंयोगात्तद्युक्ते कामशास्त्रं स्यात् नित्यसंयोगात् ।६६।

पदार्थ—(तद्देशानां) अपने-अपने देश में स्थित रहने वाले ग्रहों का ही ग्रहण होता है (अग्रसंयोगात्) अग्रता का सम्बन्ध होने से (तद्युक्ते) स्वस्थान युक्त में (कामशास्त्रं स्यात्) फलबाधक विधि है (नित्यसंयोगात्) नित्य संयोग होने से।

भावार्थ—कामना बोधक पद जो वाक्य में है वहाँ भी ग्रह के ग्रहण में अन्तर नहीं पड़ता अर्थात् पाठ के क्रमप्रमाण का ही ग्रहण होता है। कामना के संयोग से ऐन्द्रवायव ग्रह का प्रथम ग्रहण नहीं होता यही सिद्धान्त पक्ष का मानना है।

आश्विनादि ग्रह का प्रतिकर्ष होता है—इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष सूत्र—

परेषु वाऽग्रशब्दः पूर्ववत्स्यात् तदादिषु ।६७।

पदार्थ—(परेषु वा) ऐन्द्रवायव आदि ग्रहों में श्रूयमाण (अग्रशब्दः) अग्र शब्द (पूर्ववत्) स्यात्) पूर्व बताये अधिकरण तुल्य होता है (तदादिषु) तत्प्रभृति में।

भावार्थ—'शुक्राग्रान् गृह्णीत गतश्रीः प्रतिष्ठाकामः इस वाक्य से जिन शुक्रादि ग्रहों का ग्रहण करने का प्रतिष्ठा काम के लिये कहा है, उसमें भी पूर्व के तुल्य यथास्थान स्थित शुक्र ग्रह का ग्रहण होना न्याय्य है।

सिद्धान्त सूत्र—

प्रतिकर्षो वा नित्यार्थेनाग्रस्य तद- संयोगात् ।६८।

पदार्थ—(प्रतिकर्षो वा) ऐन्द्रवायव से चतुर्थ स्थान में रहने वाले शुक्र का ऐन्द्रवायव ग्रह पहले ग्रहण करना चाहिये। (नित्यार्थेन) पाठक्रम से नित्य प्राप्त प्रथम स्थान ऐन्द्रवायव ग्रह उससे सम्बद्ध है। (अग्रस्य) अग्रता का (तदसंयोगात्) फल के साथ सम्बन्ध न होने से।

भावार्थ—वाक्य में जिस शुक्राग्रता का वर्णन है, उसका फल के साथ सम्बन्ध है। अतः शुक्र ग्रह का स्वस्थान से भ्रंश कर उसका ऐन्द्रवायव ग्रह के पहले ग्रहण करना।

प्रतिकर्षं च दर्शयति ।६९।

पदार्थ—(च) और (प्रतिकर्षं दर्शयति) लिंग वाक्य प्रतिकर्ष बताता है।

भावार्थ—'धारयेस्तं यं कामाय गृह्णीयुः ऐन्द्रवायवं गृहीता सादयेत् तम्' इस वाक्य से शुक्रग्रह का ऐन्द्रवायव ग्रह की अपेक्षा पहले ग्रहण होता है ऐसी सूचना है। पहले शुक्र ग्रह का ग्रहण करना, पीछे ऐन्द्रवायव ग्रह को लेकर शुक्र ग्रह को नीचे रखना। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि शुक्र ग्रह का प्रतिकर्ष होता है, प्रतिकर्ष अर्थात् क्रम प्राप्त ग्रहण में फेर फार कर पूर्व ग्रहण करना।

आश्विन आदि ग्रहों का ग्रहण ऐन्द्रवायव ग्रह आदि के पहले होना चाहिये।

पुरस्तादैन्द्रवायवादग्रस्य कृतदेशत्वात् ।७०।

पदार्थ—(ऐन्द्रवायवात् पुरस्तात्) ऐन्द्रवायव ग्रह के पहले (अग्रस्य कृतदेशवात्) अग्रता का देश क्लृप्त अर्थात् निर्णीत होने से।

भावार्थ—ऐन्द्रवायव ग्रह के पहले अश्विन आदि ग्रहों का ग्रहण होना चाहिये। पर उपांशु और अन्तर्याम ग्रहों के पहले नहीं। कारण कि धारा ग्रह का अधिकार है। यदि धारा ग्रह हो तो उसके पहले वालों का ग्रहण होना चाहिए। जो आधार ग्रह हो तो उससे पहले नहीं। अतः उपांशु और अन्तर्याम ग्रह के पहले अश्विन आदि का ग्रहण न होना चाहिये।

तुल्यधर्मत्वाच्च ।७१।

पदार्थ—(च) और (तुल्यधर्मत्वात्) समानधर्मता होने से।

भावार्थ—धाराग्रहत्व रूप तुल्य धर्म होने से। अतः ऐन्द्रवायव से पहले अश्विन आदि का ग्रहण होना चाहिये।

तथा च लिंगदर्शनात् ।७२।

पदार्थ—(तथा च) इस प्रकार का (लिंगदर्शनात्) लिंग वाक्य भी है।

भावार्थ—लिंग वाक्य भी है—यह क्रम बताते हैं—देखो शाबर

भाष्य—धारयेयुस्तं यं कामाय गृह्णीयुः ऐन्द्रवायवं गृहीत्वा सादयेत् अथतं सादयेत् यं कामाय गृह्णीयुः इति काम्यस्य धारणानन्तरमैन्द्रवायवस्य ग्रहणं दर्शयति तस्मादैन्द्र-वायवस्य पुरस्तात्प्रतिकर्षः' भाष्य की इन पंक्तियों से स्पष्ट होता है कि अश्विन ग्रहों का ग्रहण ऐन्द्रवायव ग्रह से ही पहले होना चाहिये।

सादन का भी प्रतिकर्ष होना चाहिये। इस अधिकरण के सूत्र—

सादनं अपि शेषत्वात् ।७३।

पदार्थ—(सादनं च अपि) और सादन भी अपकृष्ट होता है (शेष-त्वात्) वह शेष का ग्रहण होने से।

भावार्थ—जहाँ ग्रहण का अपकर्ष होता है, वहाँ सादन का भी अपकर्ष करना चाहिए कारण कि सादन ग्रहण का शेष है। ग्रहण अर्थात् ग्रह पात्र को लेना, ग्रह तथा सादन अर्थात् पात्र को विहित स्थान पर रखना। ग्रहण अंगी है और सादन उसका अंग है। अंगी के अपकर्ष के साथ अंग का अपकर्ष होना ही चाहिये।

लिंगदर्शनाच्च ।७४।

पदार्थ—(च) और (लिंगदर्शनात्) लिंग वाक्य का श्रवण होने से।

भावार्थ—'ऐन्द्रवायवं गृहीत्वा सादयेत्' इस वाक्य से भी सादन का अपकर्ष सिद्ध होता है।

प्रदान का प्रतिकर्ष नहीं होता, इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष—

प्रदानं चापि सादनवत् ।७५।

पदार्थ—(प्रदानं च अपि) प्रदान अर्थात् याग भी (सादनवत्) आसादन के तुल्य प्रतिकृष्ट होता है।

भावार्थ—जैसे आसादन का प्रतिकर्ष होता है, उसी प्रकार प्रदान अर्थात् हविस्त्याग अर्थात् याग का भी प्रतिकर्ष होता है। ऐसा पूर्वपक्षवादी का मत है।

सिद्धान्त सूत्र—

न वा प्रधानत्वात् सादनं तथा ।७६।

पदार्थ—(न वा) अथवा नहीं (प्रधनत्वात्) प्रधान होने से (तथा सादनम्) सादन के तुल्य उसका प्रतिकर्ष नहीं होता।

भावार्थ—आसादन की भांति प्रदान का प्रतिकर्ष नहीं होता, कारण प्रदान तो प्रधान है, अर्थात् मुख्य कर्म है मुख्य का प्रतिकर्ष अमुख्य के लिये नहीं होता।

त्र्यनीका में ऐन्द्रवायव की उक्ति है वह समान विधि के लिये है—

पूर्वपक्ष—

त्र्यनीकायां न्यायोक्तेष्वाम्नानं गुणार्थं स्यात् ।७७।

पदार्थ—(त्र्यनीकायाम्) द्वादशाह गत पहले, अन्तिम तथा दसवें दिन का त्याग कर बाकी जो नौ दिन हैं, उन्हें त्र्यनीका नाम दिया गया है। उन त्र्यनीका में (न्यायोक्तेषु) अतिदेश शास्त्र से प्राप्त में (आम्नानम्) जो पुनः कथन किया गया है वह (गुणार्थं स्यात्) स्तुति के लिये है।

भावार्थ— द्वादशाह में प्रथम, दशम और द्वादश दिवस के अतिरिक्त अन्य रहे दो दिवसों के तीन त्रिक होते हैं। इन्हें त्र्यनीका नाम दिया गया है। इनमें क्रम से अग्रता सुनी जाती है—जैसे कि **'ऐन्द्रवायवाग्रं प्रथममहः अथ शुक्राग्रम् अथाग्रयणाग्रम्'** इनमें प्रथम त्रिक के क्रम प्रमाण से ही बाकी रहे दो त्रिक का भी यही क्रम अग्रता विधान के लिये है। अब अन्य दिवस में जो अग्रता कही है वह तो प्रकृति में से ही अतिदेश शास्त्र से प्राप्त होती है तो पीछे यह अपूर्व विधान है या अर्थवाद है। इसका उत्तर पूर्वपक्षवादी की ओर से यह दिया जाता है कि यह तो केवल अर्थवाद है।

सिद्धान्त सूत्र—

अपि वाऽहर्गणेष्वग्निवत्समानंविधानं स्यात् ।७८।

पदार्थ (अपि वा)अथवा(अहर्गणेषु)अहगेणों में (अग्निवत्) अग्नियजन के तुल्य (समानं स्यात्) समान विधान है अर्थवाद नहीं।

भावार्थ—**'अथातोऽग्निष्टोमेन यजेततं द्विरात्रेण,** इस प्रकार जैसे अग्निष्टोम में अग्नि का विधान हैं वैसे प्रकृत स्थल में भी अतिदेश शास्त्र से अग्रता की प्राप्ति प्रकृति में से होने पर भी पुनः से विधान ही है, अर्थवाद नहीं।

व्यूढ़ द्वादशाह—समूढ़ का विकार है—इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष सूत्र—

द्वादशाहस्य व्यूढसमूढत्वं पृष्ठवत् समान-विधानं स्यात् ।७६।

पदार्थ – (द्वादशाहस्य) द्वादशाह (पृष्ठवत्) पृष्ठ की भांति (व्यूढसमूढत्वम्) व्यूढ़ और समूढ के रूप में (समानविधानं स्यात्) समान विधि-वाला है।

भावार्थ—द्वादशाह याग दो प्रकार का है-एक समूढ़ रूप में और दूसरा व्यूढ रूप में। यहाँ पूर्वपक्षवादी का यह मानना है कि दोनों प्रकारों में समान विधि है अर्थात् कोई किसी की प्रकृति या विकृति नहीं, दोनों समान विधि हैं बृहद् और रथन्तर में जैसे समान विधान है वैसे द्वादशाह में भी समझना चाहिये। समूढ़ द्वादशाह की गणना इस प्रकार शाबर भाष्यादि में वर्णित है—समूढस्तावत् ऐन्द्रवायवाग्रौ प्रायणीयोदयनीयौ दशमं चाहः अथेतरेषां नवानामह्नाम् ऐन्द्रवायवाग्रं प्रथममहः अथशुक्राग्रम् अथाग्रयणाग्रम् । अथैन्द्रवायवाग्र, अथशुक्राग्रम् अथाग्रयणाग्रम् । अथेन्द्रवायवाग्रम् अथ शुक्राग्रम् अथाग्रयणाग्रम् । इति इस प्रकार समूढद्वादशाह अथ व्यूढः ऐन्द्रावायवाग्रौ प्रायणीयोदयनीयौ, अथेतरेषां दशानामह्ना मैन्द्रवायवाग्रं प्रथममहः अथ शुक्राग्रम् । अथ द्वे आग्रयणाग्रे । अथैन्द्रवाग्रम् अथ द्वे शुक्राग्रे । अथाग्रयणाग्रम् अथ द्वे ऐन्द्रवायवाग्रे । इस प्रकार व्यूढ द्वादशाह बताया है। दोनों स्वतंत्र विधि हैं। ऐसा पूर्व पक्षवादी का मत है।

सिद्धान्त सूत्र—

व्यूढो वा लिङ्गदर्शनात् समूढ-विकारः ।८०।

पदार्थ—(वा) अथवा (व्यूढ़ः) व्यूढ (समूढविकार समूढका विकार है (लिंगदर्शनात्) लिंग वाक्य का दर्शन होने से।

भावार्थ—व्यूढ द्वादशाह समूढ द्वादशाह याग का विकृति याग है। इसके लिये यह प्रमाण लिंग वाक्य है—ऐन्द्रवायवस्य वा एतदायतनं यच्चतुर्थमहः ऐसी व्यूढ़ में सुना जाता है। इस वाक्य की उपपत्ति, जो व्यूढ को समूढ की विकृति मानें तभी हो सकती है। इसके विशेष स्पष्टीकरण के लिये शाबर भाष्य देखना चाहिये।

कामसंयोगात् ।८१।

पदार्थ—(कामसंयोगात्) कामना का सम्बन्ध होने से।

भावार्थ—'यः कामयेत बहु स्यां प्रजायेय' ऐसा व्यूढ द्वादशाह में श्रवण होता है। जो वाक्य होता है वह नित्य की विकृति होता है यह तो प्रसिद्ध है, अतः व्यूढ समूढ की विकृति है।

प्रयोजन सूत्र—

तस्योभयथाप्रवृत्तिरैककर्म्यात् ।८२।

पदार्थ—(तस्य) दोनों प्रकार वाले द्वादशाह की (उभयथाप्रवृत्तिः) दोनों रीति से प्रवृत्ति होती है। (ऐककर्म्यात्) एक रूप में होने से।

भावार्थ—जहां व्यूढ द्वादशाह करने का लिंग वाक्य मिलता है वहीं व्यूढ को द्वादशाह की प्रवृत्ति समझनी चाहिए। और जहां लिंग वाक्य न हो वहां प्रकृतिभूत समूढ द्वादशाह की हो प्रवृत्ति है, यह समझना चाहिए।

सवत्सर सत्र में अनीकों की विवृद्धि है—इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष सूत्र—

एकादशिनवत् त्र्यनीकापरिवृत्तिः स्यात् ।८३।

पदार्थ—(एकादशिनवत्) एकादिशन प्रकरण में जैसी आवृति होती है, वैसी (त्र्यनीकापरिवृत्तिः) त्र्यनीकों को परिवृत्ति (स्यात्) होती है।

भावार्थ—'गवामयन' नामक एक ऋतु है, वह एक वर्ष पर्यन्त चलता है। यह ऋतु द्वादशाह की विकृति है। उसमें आगे आगे वर्णित अधिकरण में बताये त्र्यनीकों की आवृत्ति करनी होती है। यह आवृत्ति दो प्रकार की होती है। एक दण्डाकलित और दूसरी स्वस्थान वृद्धि। पूर्वपक्षवादी का मानना है कि गवामयन में त्र्यनीकों की आवृत्ति, जैसे दण्ड की आवृत्ति होती है, वैसे करनी। जैसे दण्ड के आदि, मध्य और अन्त्य भाग होते हैं, और प्रत्येक समय यह तीनों के साथ ही रहता है, इसी प्रकार एक समय तीन त्रिक का अनुष्ठान किये पश्चात् अन्य समय तीन त्रिक का अनुष्ठान करना। इस प्रकार ऋतु को समाप्ति हो तब तक करते जाना। अर्थात् वर्ष पूरा हो, तब तक करते जाना चाहिए।

सिद्धान्त सूत्र—

स्वस्थानविवृद्धिर्वा अह्नामप्रत्यक्षसंख्यत्वम् ।८४।

पदार्थ—(वा) अथवा (स्वस्थानविवृद्धिः) स्वस्थान विवृद्धि रूप आवृत्ति करनी (अह्नाम् अप्रत्यक्षसंख्यत्वात्) दिवसों की संख्या अप्रत्यक्ष है।

भावार्थ—'सिद्धान्त पक्षवादी का यह मानना है कि स्वस्थान विवृद्धि रूप आवृत्ति करनी चाहिए। कारण कि अहन् अर्थात् दिवस का अधिकार नहीं। केवल ऐन्द्रवायवाग्र का ही विधान है। अहन् का विधान नहीं। आग्रयणात् कृत्वा ऐन्द्रवायवाग्राः कर्त्तव्या इसलिये प्रथम आग्रयण करने के पश्चात् ऐन्द्रवायवाग्र करना। इस प्रकार स्वस्थान रूप आवृत्ति है। विशेष विस्तार के लिये द्रष्टव्य-शावर भाष्य आदि आकर ग्रन्थ।

पृष्ठ्यावृत्तौ चाग्रयणस्य दर्शनात् त्रयस्त्रिंशे परिवृत्तौ पुनरैन्द्रवायवः स्यात् ।८५।

पदार्थ—(च) और (पृष्ठ्यावृत्तौ) पृष्ठ्य की आवृत्ति में (आग्रयणस्य) आग्रयग्रता का (दर्शनात्) दर्शन होने से (त्रयस्त्रिंशे) तैंतीसवें दिवस (परिवृत्तौ) दण्डाकालित आवृत्ति में तो (पुनः ऐन्द्रवायवः स्यात्) ऐन्द्रवायव होता है।

भावार्थ—पृष्ठ्य आवृत्ति ३३ वें दिवस में आग्रयण का दर्शन होता है। इसका विशेष स्पष्टीकरण शाबर भाष्य आदि आकर ग्रन्थों में देखना चाहिए। इस सूत्र में स्वस्थान वृद्धि रूप आवृत्ति का ही समर्थन है।

वचनात्परिवृत्तिरेकादशिनेषु ।८६।

पदार्थ—(एकादशिनेषु) एकादशिन प्रकरण में (परिवृत्तिः) दण्डकालित आवृत्ति करने में आती है, उसमें तो (वचनात्) वचन के प्रमाण के लिये।

भावार्थ—एकादशिन प्रकरण में दण्डकलितरूप आवृत्ति स्वीकार की जाती है। उसमें यह वचन प्रमाण है—"वारुणमन्ततः पुनः पर्यावृत्तेषु आग्नेयमेव प्रथमेऽह्न्यालभेत।" इस वचन के प्रामाण्य से एकादशिन प्रकरण में दण्डकलित आवृत्ति स्वीकार की जाती है देखिये—शाबर भाष्य।

लिंगदर्शनाच्च ।८७।

पदार्थ—(च) और (लिंगदर्शनात्) लिंग वाक्य होनें से।

भावार्थ—"दण्डकलितवदैकादशिना आवर्तन्ते' ऐसा लिंग वचन भी है, ऐकादशिन प्रकरण में दण्डकलित आवृत्ति स्वीकार की जाती है।

व्यूहात्मक द्वादशाह में मंत्रों के ही छंदों में व्यतिक्रम होता है—यहँ अधिकरण—

छन्दोव्यतिक्रमाद् व्यूढे भक्षपवमानपरिधिकपालस्य मन्त्राणां यथोत्पत्तिवचनमूहवत् स्यात् ।८८।

पदार्थ—(व्यूढ़े) व्यूढ़ संज्ञक द्वादशाह याग में (छन्दोव्यतिक्रमात्) मुख्य छंदस का ही व्यतिक्रम श्रुत होने से (भक्षपवमानपरिधिकपालस्य) जैसा पाठक्रम है, उसी प्रकार बोलना (ऊहवत्) ऊह तो केवल छंद का ही है।

भावार्थ—व्यूढ द्वादशाह में केवल छंदों का ही व्यतिक्रम होता है। तत् तत् छंद वाले मंत्रों का वचन ही विपर्यस्त होता है। भक्षादि का व्यतिक्रम असम्भावित है। 'तस्मादसंभवो भक्षादीनां व्यतिक्रमणस्य' इस प्रकार शाबर भाष्य में पाठ है, देखो। अतः मंत्रगत छंदों का ही व्यतिक्रम होता है। ये दोनों अधिकरण शाबर भाष्य आदि आकर ग्रन्थ पढ़ने से अधिक स्पष्ट होंगे। अतः जिज्ञासुओं को उन्हें पढ़ने का प्रयत्न करना चाहिये।

इति मीमांसादर्शनभाष्ये दशमाध्यायस्य पञ्चमः पादः ॥१०।५॥

अथ मीमांसादर्शनभाष्ये

दशमाध्यायस्य षष्ठः पादः

रथन्तर आदि सामों का तृच में गान करना, इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष सूत्र—

एकर्चस्थानानि यज्ञे स्युः स्वाध्यायवत् ।१।

पदार्थ—(एकर्चस्थानानि) एक ही ऋचा जिसका आश्रय है, ऐसे साम (यज्ञे स्युः) प्रयोग के समय यज्ञ में गाने होते हैं (स्वाध्यायवत्) स्वाध्याय की भांति ।

भावार्थ—रथन्तर, बृहद्, बैरूप, वैराज, शाक्वर और रैवत ये सभी पृथक्-पृथक् सामगानों के नाम हैं । जब यज्ञ में ये गायें जावें तब एक ही ऋचा में गाने या तृच में ? यहाँ पूर्वपक्ष ऐसा है कि यज्ञ में एक ही ऋचा में सामगान करना, कारण कि अध्ययन करते समय एक ही ऋचा में सामगान किया होता है, और अध्ययन अनुष्ठान के लिए होता है। अतः जैसे अध्ययन के समय सामगान किया हो, वैसा यज्ञ में भी गाना । एक ही ऋचा में गाने से अध्ययन के प्रमाणानुसार प्रयोग में भी एक रूपता आती है । अतः एक ऋचा में गान करना उचित है ।

सिद्धान्त सूत्र—

तृचे वा लिंगदर्शनात् ।२।

पदार्थ— (वा) अथवा (तृचे) तीन ऋचाओं में सामगान करना (लिंगदर्शनात्) लिंग बोधक वाक्य होने से ।

भावार्थ—'अष्टाक्षरेण प्रथमाया ऋचः प्रस्तौति द्वयक्षरेणोत्तरयोः यहाँ तीन ऋचाओं में प्रस्तोता द्वारा गाये जाने योग्य भाग का निरूपण किया है । अतः तृच में सामगान करना 'ऋक्सामोवाच' इत्यादि अर्थवाद में भी तीन ऋचाओं

को ही स्वीकार किया है, अतः तृच में गान करना चाहिए।

स्वर्दृश शब्द से जो वीक्षण बताया है, वह कालार्थक है, इस अधिकरण के सूत्र—

स्वर्दृशं प्रति वीक्षणं कालमात्रं पदार्थ-त्वात् ।३।

पदार्थ—(स्वर्दृशं प्रति वीक्षणम्) स्वर्दृश शब्द को उद्दिष्ट कर वीक्षण कहा गया है वह (कालमात्रम्) काल का लक्षण है, (परार्थत्वात्) स्तुत्यर्थक होने से।

भावार्थ—रथन्तर साम गाने की यह ऋचा योनिभूत मानी जाती है— 'अभिवा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धनेवः ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः" ऋ० ६।३१।२२ इस ऋचा में स्वर्दृक् शब्द आया है। 'रथन्तरे प्रस्तूयमाने संमीलयेत् स्वर्दृशं प्रतिवीक्षेत्' रथन्तर की योनिभूत उक्त ऋचा जब गाई जाती है तब समीलन करना और जब उसमें स्वर्दृक् शब्द आवे तब वीक्षण करना, अर्थात् देखना। इस स्थान पर स्वर्दृक् पद वीक्षण का अग नहीं परन्तु वह तो काल का लक्ष्य है। स्वर्दृक् पद स्तुति के लिये है। स्तुति में विनियुक्त हुये पीछे वह वीक्षण का अंग नहीं हो सकता।

गवामयनिक में पृष्ठ्य षडह में बृहद् और रथन्तर साम का विभाग है।

पूर्वपक्ष सूत्र—

पदार्थ—(पृष्ठ्यस्य) पृष्ठ स्तोत्र का (युगपद्विधेः) एक साथ विधान होने से (एकाहवत्) एकाहतुल्य (द्विसामत्वम्) दोनों सामों का एक दिन में अनुष्ठान करना।

भावार्थ—इस प्रकार आम्नान है—'पृष्ठ्यः षडहो बृहद्रथन्तरसामा इति यहाँ ऐसा अर्थ निकलता है कि पृष्ठ स्तोत्र का एक साथ विधान है, इसलिये कि 'बृहत्' और 'रथन्तर' दोनों सामों का 'षडह' नामक याग में प्रत्येक दिन अनुष्ठान करना, अर्थात् दोनों सामों का गान प्रत्येक दिन होना चाहिये। ऐसा पूर्वपक्षवादी का मानना है। 'बृहद्रथंतरसामा यह द्वन्द्वगर्भित बहुव्रीहि समास है। इससे उक्त प्रकार का अर्थ निकलता है।

विभक्ते वा समस्तविधानात् तद्विभागेऽप्रतिषिद्धम् ।५।

पदार्थ—(वा) अथवा (विभक्ते) द्वन्द्व समास से उक्त पद शून्य होने से (समस्तविधानम्) केवल बहुव्रीहि समास का विधान होने से (तद्विभागे) बृहद् और रथन्तर के विभाग में (अप्रतिषिद्धम्) अबाधित है।

भावार्थ—बृहद्रथन्तरसामा' इसमें द्वन्द्व समास नहीं। केवल बहुव्रीहि समास ही है। अतः विभाग का प्रतिषेध नहीं होता। अर्थात् प्रकृति में जैसे एक-एक दिन एक-एक स्तोत्र का अनुष्ठान होता है, वैसे विकृतिभूत 'षडह' याग में भी प्रत्येक दिन एक-एक स्तोत्र का अनुष्ठान है। अर्थात् एक दिन रथन्तर का तो दूसरे दिन बृहत् साम का अनुष्ठान करना। यही क्रम है। छः दिन पूरे हों तब तक चालू रखना चाहिये।

प्रायणीय और उदनीय दिवसों में ऐकादशिन पशुओं का दान करना, यह अधिकरण—

पूर्वपक्ष सूत्र—

समासस्त्वैकादशिनेषु तत्प्रकृतित्वात् ।६।

पदार्थ—(तु) पूर्वपक्ष सूचित करता है। (ऐकादशिनेषु) ऐकादशिन पशुओं के दान के विषय में प्रायणीय और उदनीय दिवसों में दान करना। (समासः) सम्पूर्ण का अनुष्ठान करना (तत्प्रकृतित्वात्) उनकी विकृतिभूत द्वादशशाह में भी इन्हीं धर्मों का अनुष्ठान होना चाहिये। अतः एक ही दिन में सभी पशुओं का दान होना चाहिये।

विहारप्रतिषेधाच्च ।७।

पदार्थ—(च) और (विहारप्रतिषेधात्) असामानाधिकरण का प्रतिषेध होने से।

भावार्थ—यदि प्रतिदिन एक पशु का दान किया जाये तो उनका असामानाधिकरण्य हो जाय। 'प्रायणीयोदनीययोरालभेत' इस वाक्य में प्रायणीय और उदनीय दिवस में सभी पशुओं का दान देना बताया है। इससे असामानाधिकरण्य का प्रतिषेध स्पष्ट समझा जा सकता है। इस कारण से एक ही साथ पशुओं का दान रूप अनुष्ठान होना चाहिये।

सिद्धान्त सूत्र—

श्रुतितो वा लोकवद् विभागः ।८।

पदार्थ—(वा) अथवा (श्रुतितः) द्विवचन की श्रुति होने से (लोकवद्विभागः) लोकव्यवहार में जैसे विभाग समझे जाते हैं वैसे वैदिक वाक्य में समझने चाहिये।

भावार्थ—'प्रायणीयोदयनीययोः' इस स्थान में द्विवचन है। अतः लोक व्यवहार में जैसे 'चैत्रमैत्रयोः शतं देहि' इस लौकिक वाक्य में चैत्रमैत्र शब्द में द्विवचन है, और इससे उक्त वाक्य का ऐसा अर्थ होता है कि सौ रुपये चैत्र और मैत्र नामक आदमी को दे दो। अर्थात् ५० चैत्र को और ५० मैत्र को। इस प्रकार विभाग कर वांटना, यह समझा जाता है इसी प्रकार प्रायणीय और उदनीय इन दोनों दिवसों में पशुओं का देना करना ऐसे समझना चाहिये। प्रत्येक दिन एक-एक पशु का दान करना, ऐसा अर्थ ठीक नहीं, इसके लिये कोई प्रमाण भी नहीं है।

विहारप्रकृतित्वाच्च ।९।

पदार्थ—(च) और (विहारप्रकृतित्वात्) विहार अर्थात् प्रतिदिन एक-एक पशु का दान करना, ऐसा भी विधान होने से प्रतिदिन दान करना, ऐसा भी समझा जाता है।

भावार्थ—'अन्वहमेकैकमालभेत' यह वाक्य प्रतिदिन दान करना, यह भी अर्थ बताता है। अतः यह प्रमाण करना कि नहीं ? जो न करना हो तो वाक्य निरर्थक हो जायेगा।

यावच्छक्यं तावद्विहारस्यानुग्रहीतव्यं विशये च तदासत्तिः ।१०।

पदार्थ—(यावच्छक्यं) जहाँ तक शक्य हो वहाँ तक इस (विहारस्य अनुग्रहीतव्यम्) विहार वाक्य के अर्थ का ही अनुसरण करना (विशये) संशय हो तब (तदासत्तिः) प्रकृति प्रमाण से मुख्य प्रमाण का अनुसरण करना चाहिये।

त्रयस्तथेति चेत् ।११।

पदार्थ—(तथा) इस प्रकार (त्रयः) तीन भाग करने (इति चेत्) जो ऐसा मानने में आवे तो।

भावार्थ—यदि दो दिन में ही यह पशु दान में दिये जायें और तीसरे दिन में क्यों नहीं ? इसका उत्तर अगले वाक्य में है।

न समत्वात् प्रयाजवत् ।१२।

पदार्थ—(न) नहीं (समत्वात्) समान भाग होवे से (प्रयाजवत्) प्रयाज की भाँति।

भावार्थ—"एकादशमध्ये षडागन्तवः प्रयाजाः प्रथमोत्तमयोर्विकारभूताः साम्येन प्रविभज्यन्ते एवमिहापि" ग्यारह प्रयाजों में छः अगन्तुक प्रयाज प्रथम और उत्तम के विकार रूप होते हैं और उनका बराबर विभाग होता है। वैसे ही यहाँ भी प्रायणीय और उदनीय इन दो दिनों में सभी पशु देने। पाँच प्रायणीय दिवस और पाँच उदनीय दिवस एक बचा वह भी अन्तिम दिवस नजदीक होने से अन्तिम दिवस अर्थात् उदनीय दिवस में ही दे देने।

विश्वजित् सर्वपृष्ठ है, इस विधान में एक ही साम का पृष्ठ देश में निवेश करना होता है, इस अधिकरण के सूत्र—

सर्वपृष्ठे पृष्ठशब्दात् तेषां स्यादेकदेशत्वं पृष्ठस्य कृतदेशत्वात् ।१३।

पदार्थ—(तेषाम्) रथन्तर, बृहद्, वैरूप, वैराज, शाक्वर, और रैवत इन छः सामों का (एकदेशत्वम्) एक ही देश है। और पृष्ठ देश ही है। (पृष्ठ-शब्दात्) पृष्ठ शब्द से निर्देश होने से (पृष्ठस्य) पृष्ठ का (कृतदेशत्वात्) निर्णीत देश होने से।

भावार्थ—रथन्तर, बृहद्, वैरूप, वैराज, शाक्वर, और रैवत यह छः साम हैं। 'विश्वजित् सर्वपृष्ठो भवति' यहाँ विश्वजित् याग में सभी सामों का विनियोग है इन सभी सामों का एक ही देश है एक ही स्थान पर गाने होते हैं। 'ऊर्ध्वं माध्यन्दिनपवमानात् प्राङ. मैत्रावरुणसाम्नः इदमन्तरालं पृष्ठदेशः' माध्यंदिनपवमान पीछे और मैत्रावरुण साम पहले जिस समय है वह पृष्ठ देश कहलाता है। यह देश ही सर्व सामों के लिए है। ऐसा पूर्वपक्ष-वादी का मत है।

सिद्धान्त सूत्र—

विधेस्तु विप्रकर्षः स्यात् ।१४।

पदार्थ—(तु) पर (विधेः) विधि वचन से (विप्रकर्षः स्यात्) देश भेद होता है।

भावार्थ—न्याय से सभी सामों की एक देश में अर्थात् पृष्ठ देश में प्राप्ति होने पर भी प्रत्यक्ष वचन से भिन्न देश मानने चाहिये। शाबर भाष्य में इस प्रकार भिन्न-भिन्न देश बताये गये हैं। 'पवमाने रथन्तरं करोति आभवे बृहत्, मध्ये इतराणि, वैरूपं होतुः पृष्ठम् वैराजं ब्रह्म साम शाक्वरं मैत्रावरुण-साम रैवतमच्छावाकसाम' इस प्रकार पृथक्-पृथक् देश बताये गये हैं इससे सिद्ध होता है कि एक साम का ही पृष्ठ कार्य में निवेश है।

"वैरूप और वैराज सामों का पृष्ठ कार्य में निवेश है—इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष सूत्र—

वैरूपसामा क्रतुसंयोगात् त्रिवृद्वदेकसामा स्यात् ।१५।

पदार्थ—(वैरूपसामा) ज्योतिष्टोम की संस्था विशेष उक्थ्य क्रतु है इसमें एक ही साम कर्त्तव्य है। इस साम का (क्रतुसंयोगात्) समग्रक्रतु के साथ सम्बन्ध होने से (त्रिवृद्वत्) जैसे त्रिवृत् अग्निष्टोम समग्र क्रतु में त्रिवृत् सोम है वैसे (एकसामा स्यात्) एक ही साम वाला है।

भावार्थ—ज्योतिष्टोम की संख्या विशेष उक्थ्य क्रतु है इसमें एक ही सामविहित है। और उसका सम्बन्ध समग्र क्रतु के साथ है। जैसे अग्निष्टोम में केवल त्रिवृत सोम होता है वैसे यहाँ भी एक ही साम समझना ।

सिद्धान्त सूत्र—

पृष्ठार्थे वा प्रकृतिलिंगसंयोगात् ।१६।

पदार्थ—(वा) अथवा (पृष्ठार्थे) पृष्ठकार्य में वैरूप साम का निवेश है। (प्रकृतिलिंगसंयोगात्) प्रकृति में पृष्ठ साम विधान वाक्य में 'वैरूप सामा' बहुव्रीहि समास की प्रतीति होने से।

भावार्थ—वैरूप साम का क्रतु के साथ सीधा सम्बन्ध नहीं है। पर इस साम का सम्बन्ध पृष्ठ में है और उसके द्वारा क्रतु के साथ सम्बन्ध प्राप्त करता है।

त्रिवृद्वदिति चेत् ।१७।

पदार्थ—(त्रिवृद्वत्) त्रिवृत् जैसे क्रतु के साथ सम्बन्ध पाता है यहाँ भी होना चाहिये (इति चेत्) जो ऐसी शंका हो तो।

भावार्थ—जैसे त्रिवृत् समग्र क्रतु से सीधा सम्बन्धित है यहाँ किसलिये नहीं। इसका उत्तर अगले सूत्र में है।

न प्रकृतावकृत्स्नसंयोगात् ।१८।

पदार्थ—(प्रकृतौ) प्रकृति में (अकृत्स्नसंयोगात्) सम्पूर्ण क्रतु के साथ सम्बन्ध न होने से (न) क्रतु के साथ सम्बन्ध नहीं।

भावार्थ-- प्रकृति में साम विधायक जो वाक्य है उन सभी में बहुव्रीह

का योग नहीं। परन्तु किसी ही पृष्ठ स्तोत्र के स्थान पर बहुव्रीहि समास होता है। अतः कितने ही सामों का बाध होता है।

विधित्वान्नेति चेन्न ।१६।

पदार्थ—(विधित्वात्) धनुर्दक्षिणा यहाँ जैसे ऋतु के साथ सम्बंध है वैसे उक्त स्थान पर भी ऋतु के साथ सम्बन्ध होना चाहिये (इति चेन्न) ऐसी शंका भी नहीं करनी चाहिये।

न स्याद् विशये तन्न्यायत्वात् कर्मा-विभागात् ।२०।

पदार्थ—(न स्यात्) धेनु समान यह विधि नहीं (विशये) संशय में (तन्न्यायत्वात्) न्याय्य होने से (कर्माविभागात्) एक कार्य होने से।

भावार्थ—धेनु दक्षिणा रूप कार्य एक होने से उसका समग्र ऋतु के साथ सम्बन्ध माना जा सकता है। पर यहाँ तो सामों का भेद होने से विषमता है।

प्रकृतेश्चाविकारात् ।२१।

पदार्थ—(प्रकृतेः च) अतिदेश शास्त्र के अन्य साम का (अविकारात्) बाध न होने से।

भावार्थ—प्रकृतिगत साम के अतिदेश शास्त्र का अन्य सामों में बाध न होने से अन्य सामों को भी प्राप्ति हो सकती है, इससे वैरूप साम के ही पृष्ठ द्वारा उक्थ्य ऋतु में सम्बंध है **'वैरूपसामाक्रतुरुक्थ्यः'** यहाँ पृष्ठ कार्य में ही वैरूप साम का निवेश है।

त्रिवृत् अग्निष्टोम इस स्थान में स्तोमगत संख्या का विकार होता है यह अधिकरण—

पूर्वपक्ष सूत्र—

त्रिवृति संख्यात्वेन सर्वसंख्याविकारः स्यात् ।२२।

पदार्थ—(त्रिवृति) त्रिवृत्पद में (संख्यात्वेन) त्रैगुण्यरूप संख्या का बोध होने से (सर्वसंख्यायाः) ज्योतिष्टोम साधनभूत द्रव्यों की परिच्छेदक संख्या का (विकारः स्यात्) बाध होता है।

भावार्थ—ज्योतिष्टोम याग में त्रिवृत् पद होनें से उसके जो-जो साधन हों वे सभी तीन की संख्या में होने चाहियें, ऐसा प्रतीत होता है, कारण कि त्रिवृत् का अर्थ तीन गुना। जैसे तिलड़ी, डोरी, तीन धागों से वनाई होती है, वैसे ही सर्वत्र समझना चाहिए।

सिद्धान्त सूत्र—

स्तोमस्य वा तल्लिंगात् ।२३।

पदार्थ—(वा) अथवा (स्तोमस्य) नव ऋचा का वाचक है (तल्लिङ्गात्) प्रकृति में लिंग वचन होने से।

भावार्थ—त्रिवृत् शब्द की प्रवृत्ति ९ संख्या ऋचाओं की है उसी का कारण है त्रिवृत् बहिष्पवमानः यहाँ बहिष्पवमान स्तोत्र के साथ सामानाधिकरण्य होने से त्रिवृत्त शब्द स्तोम को लेकर प्रवृत्ति प्राप्त करता है। अन्य साधनों के साथ त्रिवृत्त का सम्बन्ध नहीं है।

उभय साम में बृहद् और रथन्तर का समुच्चय है। इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष सूत्र—

उभयसाम्नि विश्वजिद्विभागः स्यात् ।२४।

पदार्थ—(उभयसाम्नि) उभय साम वाले याग में (विश्वजिद्वद्) विश्वजित् याग की भाँति (विभागः स्यात्) विभाग मानने में आता है।

भावाथ—'संसवे बृहद्रथन्तरे उभे कुर्यात्' इस प्रकार वचन है। उभय साम वाले संसव अर्थात् याग में जैसे विश्वजित् याग में पृष्ठ कार्य में एक ही साम का विनियोग है, वैसे यहाँ भी एक ही साम का विनियोग समझना बृहद् और रथन्तर इन दोनों सामों का एक साथ विनियोग नहीं अर्थात् समुच्चय नहीं। भावार्थ यह है कि इसका विभाग है। एक पृष्ठ कार्य में विनियोग और दूसरे का दूसरे के साथ विनियोग समझना चाहिये।

सिद्धान्त सूत्र—

पृष्ठार्थे वा ऽतदर्थत्वात् ।२५।

पदार्थ—(वा) अथवा (पृष्ठार्थे) पृष्ठ कार्य में दोनों का विनियोग है (अतदर्थत्वात्) अन्य स्तोत्र के साथ इसका सम्बन्ध नहीं।

भावार्थ—पृष्ठकार्य में ही दोनों सामगानों का विनियोग है। स्तोत्रान्तर के साथ इनका सम्बन्ध नहीं, इसलिये कि बृहद् और रथन्तर का समुच्चय है। रथन्तर सहित बृहता पृष्ठकार्यं साधयेत्' ऐसा ही वाक्यार्थ है।

लिंगदर्शनाच्च ।२२।

पदार्थ—(च) और (लिंगदर्शनात्) लिंग वाक्य भी होने से।

भावार्थ—'पूर्वाह्णोवै रथन्तरमपराह्णो बृहत्' दिवस का पूर्व भाग रथन्तर है, और उत्तर भाग बृहत् है। इस प्रकार एक ही दिन के साथ दोनों सामों का सम्बन्ध होने से दोनों का एक ही स्थान है। इससे उन दोनों का समुच्चय ही है।

गवामयन में जो वैकल्पिक मध्वशन और घृताशन कहा है वह षडह याग जिस दिन पूरा हो उस दिन करना—इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष सूत्र—

पृष्ठे रसभोजनमावृत्ते संस्थिते त्रयस्त्रिंशेऽहनि स्यात् तदानन्तर्यात् प्रकृतिवत् ।२७।

पदार्थ—(रसभोजनम्) उत्तम भोजन (आवृत्ते) प्रकृति से विपरीत स्तोम वाले (संस्थिते पृष्ठें षडहे) समाप्त हुये पृष्ठ षडह याग में (त्रयस्त्रिशे अहनि) तैंतीसवें दिन में करना (प्रकृतौ) प्रकृति में (तदानन्तर्यात्) उसका आनन्तर्य होने से।

भावार्थ—द्वादशाह याग प्रकरण में 'संस्थिते पृष्ठ्ये षडहे मध्वाशयेत्' ऐसा वचन है। षडह याग जब सम्पूर्ण हो तो ३३ वें दिवस में मध्वशन अर्थात् उत्तम रस वाला भोजन करना। प्रकृति याग में भी याग पूर्ण हो तब मध्वशन किया जाता है। प्रकृति और आनन्तर्य अर्थात् क्रम होता है। अतः इस क्रम के अनुसार अतिदेश शास्त्र प्राप्त उक्त दिवस में मध्वशन अर्थात् उत्तम रस वाला भोजन करना चाहिये। यह पूर्वपक्ष है।

सिद्धान्त सूत्र—

अन्ते वा कृतकालत्वात् ।२८।

पदार्थ—(वा) अथवा (अन्ते) अन्तिम दिवस (कृतकालत्वात्) समय का निर्णय किया होने से।

भावार्थ—३३ वें दिवस में रस युक्त भोजन करना, अर्थात् मध्वशन करना, जो पूर्वपक्ष की ओर से कहा गया है, वह ठीक नहीं। कारण कि 'षडहे संस्थिते' षडह नामक याग पूरा होने पर मध्वशन करना, इस वचन के आधार पर छठे दिन मध्वशन करना चाहिये। कारण, छठे दिवस षडह नामक याग पूरा होता है। ऊपर जो आनन्तर्य रूप हेतु दिया है, उस वचन के कारण बाधित होता है।

षडह की आवृत्ति हो तो मध्वशन और कृताशन का अनुष्ठान एक समय ही करना।

पूर्वपक्ष सूत्र—

अभ्यासे च तदभ्यासः कर्मणः पुनः प्रयोगात् ।२९।

पदार्थ—(च) और (अभ्यासे) षडह की आवृत्ति हो तो (तदभ्यासः) मध्वशन और घृताशन की भी आवृत्ति करनी चाहिये। (कर्मणः) षडह रूप कर्म का (पुनः प्रयोगात्) फिर से प्रयोग होने से।

भावार्थ --किसी स्थान पर षडह याग की आवृत्ति भी होती है, तो जहां षडह की आवृत्ति होती हो वहाँ मध्वशन और घृताशन की भी आवृत्ति करनी, अर्थात् जब-जब षडह पूरा हो, तब मध्वशन करना चाहिये।

सिद्धान्त सूत्र—

अन्ते कृतकालत्वात् ।३०।

पदार्थ —(अन्ते) अन्त में (कृतकालत्वात्) समय का निर्णय होने से।

भावार्थ—एक कर्म में षडह की आवृत्ति हो तो प्रत्येक षडह समाप्ति पर मध्वशन और घृताशन न करना, पर प्रारब्ध कर्म से यदि षडह सम्पूर्ण हो तो इस षडह की समाप्ति पर मध्वशन और घृताशन करना चाहिए।

गवामयन में मध्वशन और घृताशन की प्रत्येक मास आवृत्ति करनी—

आवृत्तिस्तु व्यवाये कालभेदात् ।३१।

पदार्थ—(आवृत्तिः तु) आवृत्ति करनी चाहिये। (व्यवाये) षडह व्यवहित होने से (कालभेदात्) काल का भेद होने से।

भावार्थ—गवामयन में प्रथम षडह करके चार अभिप्लवक नाम वाले अहनों का अनुष्ठान करना चाहिये। पुनः षडह का अनुष्ठान करे। यह एक ही कर्म है और षडहों के बीच अभिप्लव अहनों का व्यवधान होता है। अतः षडह की आवृत्ति के साथ मध्वशन की भी प्रतिमास आवृत्ति होनी चाहिये। निमित्त का भेद पड़ने से नैमित्तिक की भी आवृत्ति होनी चाहिये।

द्वादशाह में सत्रियों को भी मध्वशन करना चाहिये। इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष सूत्र—

मधु न दीक्षिता ब्रम्हचारित्वात् ।३२।

पदार्थ—(दीक्षिताः) सत्र करने वाले दीक्षित होते हैं। अतः (ब्रह्मचारित्वात्) उनके द्वारा ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने से (मधु न) उन्हें मधु भक्षण नहीं करना चाहिये।

भावार्थ—सत्र रूप द्वादशाह नामक याग में सभी ऋत्विक् दीक्षा लेते हैं। जो दीक्षित हो उसे ब्रह्मचर्य का व्रत पालना ही चाहिये। ब्रह्मचारियों के लिए मधु भक्षण निषिद्ध है। इस कारण सत्रियों को मधु भक्षण नहीं करना चाहिए।

सिद्धान्त सूत्र—

प्राश्येत वा यज्ञार्थत्वात् ।३३।

पदार्थ—(वा) अथवा (प्राश्येत) मधुभक्षण करना चाहिए (यज्ञार्थत्वात्) यह भक्षण क्रत्वर्थक होने से।

भावार्थ—ब्रह्मचारियों को रसयुक्त भोजन में राग नहीं होना चाहिये। अर्थात् ऐसे भोजन में प्रीति नहीं होनी चाहिए। पर जो यज्ञ के अंग रूप में रस युक्त भोजन विहित हो तो वह करना चाहिए। आसक्ति रहित रस युक्त भोजन में दोष नहीं।

मानस ग्रह दशम अहन् का अंग है—इस अधिकरण के सूत्र—

मानसमहरन्तरं स्याद् द्वादशाहे व्यपदेशाद् ।३४।

पूर्वपक्ष सूत्र—

पदार्थ—(मानसम्) मानस ग्रह (अहरन्तरम्) द्वादशाह के बारह दिवस की अपेक्षा भिन्न दिवस का ही अंग है। (द्वादशाहे व्यपदेशात्) अर्थवाद व्यपदेश से।

भावार्थ—'**वाग्वै द्वादशाहो मनो मानसम्**' इस वाक्य से बताते हैं कि मानस ग्रह बारह दिन से भिन्न दिवस का अंग है। कारण कि इसमें वाणी को बारहवाँ दिवस कहा है और मन को भिन्न संख्या से बताया है।

तेन च संस्तवात् ।३५।

पदार्थ—(तेन च) और उससे (संस्तवात्) संस्तुत होने से।

भावार्थ—स्तुति वाक्य इस प्रकार है—'**द्वादशाह गतरसानि छन्दसि तानि मानसेन आप्याययन्ति**' द्वादश याग के छन्द रसहीन हुये होते हैं। वे मानस ग्रह से आप्यायित अर्थात् रस वाले होते हैं। 'इस अर्थवाद से मानस ग्रह द्वादशाह से पृथक् ही जाना जाता है। मानस ग्रह स्तावक है, और द्वाद-

शाह स्तुत्य है। स्तुत्य और स्तावक में भेद होता है।

अहरन्ताच्च परेण चोदना।३६।

पदार्थ—(च) और (अहरन्तात्) बारह दिवस के अन्तिम दिवस (परेण) पीछे (चोदना) विधान है।

भावार्थ—'पत्नी संयाज्य प्राञ्च उपेत्य मानसाय प्रसर्पयन्ति' पत्नी संयाजात्मक कर्म १२वें दिन होता है। पीछे मानस के लिये प्रसर्पण बताया। इससे भी मानस ग्रह द्वादशाह से भिन्न का अंग समझा जाता है।

पक्षे संख्या सहस्रवत्।३७।

पदार्थ—(पक्षे) जो तेरह दिन मानने आवें तो १२ की संख्या बाधित होगी। अतः कहते हैं कि (संख्या) द्वादशाह संख्या (सहस्रवत्) सहस्र के तुल्य अधिक में भी प्रयुक्त होती है।

भावार्थ—इस पक्ष में जो संख्या का अर्थात् बारह की संख्या का बाध माना जावे तो 'अतिरात्रेण सहस्रसाध्येन यजेरन्' जैसे इस वाक्य में सहस्र शब्द सहस्र से अधिक संख्या में प्रयुक्त हुआ है, यहां द्वादशाह शब्द भी बारह से अधिक संख्या में प्रयुक्त हुआ है। ऐसा समझना। 'अजया त्वा पृथिव्या पात्रेण समुद्ररसया प्रजापत्ये त्वा जुष्टं गृह्णामि इति मानसं प्राजापत्यं गृह्णाति' इसका यह अर्थ है कि पृथ्वी पात्र है—समुद्र सोम है, और प्रजापति देवता है। इस प्रकार के ग्रह को ग्रहण करने में मन ही साधन है। अतः उक्त ग्रह को मानस ग्रह कहा गया है।

सिद्धान्त सूत्र—

अहरंगं वांशुवच्चोदनाऽभावात् ।३८।

पदार्थ—(वा) अथवा (अहरङ्गम्) दशम अहन् का अंग है। यह पृथक् कर्म नहीं। (अंशुवत्) जैसे अंशुग्रह सोम याग में सुत्यादिवस का अंग है, वैसे (चोदनाऽभावात्) पृथक् विधान न होने से।

भावार्थ—दशम दिवस का ही मानस ग्रह अंग है। यह कोई पृथक् कर्म नहीं। 'अशुंगृह्णाति' इस वाक्य से जैसे अशुंग्रह सोम याग में अभ्यास रूप सुत्यादिवस का अंग होता है, वैसे वह दशम दिवस का अंग है। वह कोई पृथक् विधान नहीं।

दशमविसर्गवचनाच्च।३९।

पदार्थ—(च) और (दशमविसर्गवचनात्) दशम दिवस का विसर्ग वचन होने से।

भावार्थ—'एष वै दशमस्याह्नो विसर्गो यन्मानसम्' इस वचन से भी सिद्ध होता है कि मानस दसवें दिन का अंग है।

दशमेऽहनीति च तद्गुणशास्त्रात् ।४०।

पदार्थ—(च) और (दशमे अहनि) दसवें दिन (तद्गुणशास्त्रात्) गुण वाचक शास्त्र होने से।

भावार्थ—दशमेऽहनि मानसाय प्रसर्पन्ति' यह शास्त्र वचन मानस ग्रह के लिए प्रसर्पण रूप गुण का बन्धन कराता है। इससे भी समझा जाता है कि मानस ग्रह दशवें दिवस का अंग है।

संख्यासामञ्जस्यात् ।४१।

पदार्थ— (संख्यासामञ्जस्यात्) संख्या का सामञ्जस्य प्रतीत होने होने से।

भावार्थ—जो दसवें दिन को मानस ग्रह का अंग माना जावे तो द्वादशाह याग की जो १२ दिन की संख्या प्रतीत होती है उसमें सामञ्जस्य आता है, अर्थात् यथार्थता उसमें सिद्ध होता है। और जो मानस ग्रह १२ से अधिक दिन का अंग माना जावे तो द्वादश की संख्या गौण हो जाती है। कारण कि तेरह संख्या गौण वृत्ति से माननी पड़ती है।

पश्वतिरेके चैकस्य भावात् ।४२।

पदार्थ—(वा) और (पाश्वतिरेके) पशुओं के दान में एक अधिक में (एकस्य भावात्) एक सम्बन्धी शंका उत्पन्न होने से।

भावार्थ—द्वादशाह में ११ पशुओं के दम का विधान करने के पश्चात उसके अर्थवाद में एक के लिये वंका बताई है। अर्थात् 'कशसेकादतपशवो द्वादशाहनि' याग के दिन १२ होते हैं तो ११ ही पशु किस लिये ? पशुओं से गक दिन अधिक है। ऐसी शंका भी १२ दिन शिद्ध करती है १२ से अधिक नहीं।

स्तुतिव्यपदेशमंगेनाविप्रतिषिद्धं व्रतवत् ।४३।

पदार्थ—(स्तुतिव्यपदेशम्) स्तुति कथन (अंगेन) अंग से अंगी का हो सकता है। अतः (अविप्रतिषिद्धम्) विप्रतिषिद्ध नहीं (व्रतवत्) व्रत की भांति।

भावार्थ—अंग से अंगी की स्तुति हो सकती है। इसलिये दसवें दिन के अंग की स्तुति से द्वादशाह रूप अंगी की स्तुति हो सकती है। महाव्रत में भी इसी प्रकार स्तुति करते हैं। गवामयने चरमं महाव्रतसंज्ञं तस्य यन्ति वा एते मिथुनाद्ये संवत्सरमुपन्त्यन्तर्वेदि मिथुनौ संभवतस्तेनैव मिथुनान्न यन्ति।" इस वाक्य से यह सूचित होता है कि संवत्सर साध्य उक्त सूत्र में लम्बे समय तक ब्रह्मचर्य पालन के लिये अन्तर्वेदि में ही मिथुनीभाव को

प्राप्त होते हैं। यह एक संवत्सर साध्य सूत्र की स्तुति है। यहाँ स्तुत्य और स्तावक सत्र से भिन्न नहीं अर्थात् सत्र के भीतर का कोई अंग अंगीभूत सत्र की स्तुति करता है, वैसे ही उक्त द्वादशाह में भी समझना चाहिए।

वचनादतदन्तत्वम् ।४४।

पदार्थ—(वचनात्) वचन से (अतदन्तत्वम्) तदन्तता नहीं।

भावार्थ—'पत्नीः संयाज्य मानसाय प्रसर्पन्ति' यह वचन भी द्वादशाह के अन्तिम दिवस का वोध नहीं कराता, पर द्वादशाह के दसवें दिन का ही बोध कराता है। समाप्ति वचन तो दसवें से भिन्न दिन में होता है।

सत्रबहुकर्तृक है। इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष सूत्र—

सत्रमेकः प्रकृतिवत् ।४५।

पदार्थ—(सत्रम्) सत्र को (एकः) एक कर्ता करता है (प्रकृतिवत्) प्रकृतिभूत ज्योतिष्टोम में जैसे एक कर्ता है, उस प्रकार।

भावार्थ—जैसे प्रकृतिभूत ज्योतिष्टोम में एक कर्ता होता है, वैसे द्वादशाह आदि विकृतिभूत सत्रों में भी एक ही कर्ता होना चाहिए।

सिद्धान्त सूत्र—

बहुवचनात्तु बहूनां स्यात् ।४६।

पदार्थ—(तु) पर (वहुवचनात्) बहुवचन का प्रयोग होने से (वहूनां स्यात्) बहुतों का कर्तृत्व है।

पदार्थ—'ऋद्धिकामाः सत्रमासीरन्' यहाँ 'आसीरन्' यह क्रियापद तथा 'ऋद्धिकामाः' यह कर्तृ पद में बहुवचन होने से सत्र के कर्ता बहुत होते हैं, ऐसा जाना जाता है।

अपदेशः स्यादिति चेत् ।४७।

पदार्थ—(अपदेशः स्यात्) मात्र क्रिया के सम्बन्ध को लेकर वहुवचन का प्रयोग हुआ है। (इति चेत्) जो ऐसी शंका करे तो?

भावार्थ—यह तो मात्र क्रिया के बहुवचन को लेकर 'ऋद्धिकामाः' यहाँ बहुवचन प्रयुक्त हुआ है। एक कर्ता भी हो सकता है। जो धन का लाभ हो तो बहुतेरे ब्राह्मण भी यज्ञ करें। यहाँ अलग-अलग कर्ता को लेकर भी बहुवचन हो सकता है। ऐसी शंका पूर्वपक्ष की ओर से की जावे, तो उसका उत्तर आगामी सूत्र में दिया है।

नैकव्यपदेशात् ।४८।

पदार्थ—(न) नहीं (एकव्यपदेशात्) एक का व्यपदेश होने से।

भावार्थ—द्वादशाह दो प्रकार का होता है। एक सत्र रूप और दूसरा अहीन रूप। 'एष ह वै कुणपमत्तिः यः सत्र प्रतिगृह्णाति' इस वाक्य में सत्र में प्रतिग्रह की निंदा की गई है। और एक वचन का प्रयोग किया है। अतः सत्र में बहु कर्ता होने चाहियें, यह सिद्ध होता है।

सन्निवापं च दर्शयति ।४९।

पदार्थ—(च) और (संनिवापम्) संनिवाप का प्रयोग भी बहुकर्तृक सत्र को (दर्शयति) बताता है।

भावार्थ—सावित्राणि होष्यन्त, सन्निवपेरन् इति बहुयजमाना ये अग्नये तेषामेकत्र मेलनं दर्शयति इस वाक्य से भी सत्र का बहुकर्तृकत्व सिद्ध होता है।

बहूनामिति चैकस्मिन् विशेषवचने व्यर्थम् ।५०।

पदार्थ—(बहूनाम् इति च एकस्मिन्) बहूनाम् और एकस्मिन् पद वाले वाक्य में एक मुख्य कर्ता के साथ (विशेषवचने व्यर्थम्) बहु का निर्देश होने से यह व्यर्थ हो जाय।

भावार्थ—यो वै बहूनाम् यजमानानां गृहपतिः स सत्रस्य प्रत्येता स हि भूयिष्ठां समृद्धिमाध्नोति इति। एकस्मिन् गृहपतौ बहुभिर्यजमानैः सह प्रवृत्ते फलविशेषं दर्शयति' इस वाक्य में अधिक सत्रों के कर्ता के साथ गृहपति को विशेष फल बताया है। जो सत्र में बहुकर्ता न हो तो उक्त वचन व्यर्थ होगा। अतः सत्र बहुकर्तृक होता है, यह सिद्ध है। और सत्र बहुकर्तृक होता है, यह सिद्धान्त है।

सत्र में यजमान ही ऋत्विज् होते हैं. इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष—

अन्ये स्युर्ऋत्विजः प्रकृतिवत् ।५१।

पदार्थ—(अन्ये ऋत्विजः स्युः) सत्र में यजमान से पृथक् ही ऋत्विज् होते हैं (प्रकृतिवत्) जैसे ज्योतिष्टोम रूप प्रकृति में होते हैं, इस प्रकार।

भावार्थ—ज्योतिष्टोम रूप प्रकृति यजमान से पृथक् ही ऋत्विज् होते हैं, वैसे सत्र में भी यजमान और ऋत्विज् पृथक्-पृथक् होने चाहियें, यही उचित है।

सिद्धान्त सूत्र—

अपि वा यजमानाः स्युर्ऋत्विजामभिधान-संयोगात् तेषां स्याद्यजमानत्वम् ।५२।

पदार्थ—(अपि वा) अथवा (यजमानाः स्युः) यजमानस्वयं ही ऋत्विज् होते हैं। (ऋत्विजम् अभिधान संयोगात्) ऋत्विजों के नाम का सम्बन्ध होने से (तेषां यजमानत्वं स्यात्) उनका यजमानत्व है।

भावार्थ—सत्र में तो ऋत्विज् ही यजमान रूप में होते हैं। कारण कि जो सस्कार यजमान द्वारा किये जाते हैं वही संस्कार ऋत्विजों द्वारा किये जाते हैं। दीक्षा यजमान का संस्कार है सत्र में ऋत्विजों द्वारा ही दीक्षा रूप संस्कार किया जाता है। जैसे कि—'**अध्वर्युर्गृहपतिं दीक्षयित्वा ब्राह्मणं दीक्षयति**' ब्रह्मा नाम ऋत्विज् का है और उसे अध्वर्यु दीक्षा देता है। इस दीक्षा रूप संस्कार से सिद्ध होता है कि ऋत्विज् ही सत्र में यजमान रूप में होते हैं।

शंका सूत्र—

कर्तृसंस्कारो वचनादाधातृवदिति चेत् ।५३।

पदार्थ—(कर्तृसंस्कारः) यजमान का संस्कार (वचनात्) वचन के कारण ऋत्विक् संस्कार रूप में गिना जाता है (आधातृवत् इति चेत्) जैसे आधान में होता है वैसे। ऐसी शंका हो तो—

भावार्थ—आधान प्रकरण में सुनते हैं कि—'**अग्नीन् आधास्यन् स्यात् स एतां रात्रिं चरेदिति न मांसमश्नीयात् न स्त्रियमुपेयादिति**' इस वाक्य में उपदिष्ट जो व्रत हैं तद्रूप संस्कार यजमान का है, फिर भी ऋत्विक् संस्कार भी वचन के कारण मानना पड़ता है। अतः दीक्षा रूप संस्कार ऋत्विजों का कहलाने पर भी सत्र में यह यजमान से पृथक् ही होना चाहिए। इस शंका का समाधान अगले सूत्र में है—

स्याद्विशये तन्न्यायत्वात् प्रकृतिवत् ।५४।

पदार्थ—(विशये) संशय में (स्यात्) ऋत्विज् ही यजमान हैं (तन्न्यायत्वात्) 'अपि वा यजमानाः' यही न्याय होने से (प्रकृतिवत्) प्रकृति की भांति।

भावार्थ—द्वादशाह में दीक्षा प्रकृति से प्राप्त होती है और उससे ऋत्विजों का ही संस्कार होता है कारण कि ऋत्विजों का नाम लेकर उन्हें दीक्षा दी जाती है। आधान का वचन इस स्थान पर लागू नहीं होता। कारण

कि उससे तो अपूर्व का विधान होने से यजमान संस्कार स्वीकार करना पड़ता है। परन्तु प्रकृत में वैसा नहीं।

पुनः शंका सूत्र—

स्वाम्याख्याः स्युर्गृहपतिवदिति चेत् ।५५।

पदार्थ—(स्वाम्याख्याः) जैसे स्वामित्व वाचक शब्द होते हैं वैसे ही (गृहपतिवत् इति चेत्) गृहपति के तुल्य, जो ऐसी शंका हो तो—

भावार्थ—जैसे गृहपति शब्द योगशक्ति से यजमान का वाचक बनता है, वैसे ब्रह्मा आदि के जो ऋत्विजों के वाचक हैं, वे भी स्वामित्ववाचक, अर्थात् यजमानवाचक होने चाहियें, इस शंका का समाधान अगले सूत्र में है।

न प्रसिद्धग्रहणत्वादसंयुक्तस्य तद्धर्मेण ।५६।

पदार्थ—(न) नहीं (प्रसिद्धग्रहणत्वात्) प्रसिद्ध ग्रहण होने से (असंयुक्तं तद्धर्मेण) उस क्रियापद धर्म से असंयुक्त का ग्रहण नहीं होता।

भावार्थ—अध्वर्यु-ब्रह्मा आदि पद अमुक-अमुक क्रिया को लेकर व्यवहार में प्रयुक्त होते हैं। अतः इन क्रियाओं से जो संयुक्त न हो, उन्हें अध्वर्यु ब्रह्मा आदि नहीं कहा जाता। अतः यजमान, अध्वर्यु ऋत्विक् पद-वाच्य वन सकते हैं।

बहूनामिति तुल्येषु विशेषवचनं नोपपद्यते ।५७।

पदार्थ—(बहूनाम् इति) अधिक यजमानों में जो गृहपति होता है। (तुल्येषु) केवल यजमानों में (विशेषवचनं न उपपद्यते) विशेष वचन सिद्ध नहीं हो सकता।

भावार्थ—ऋत्विक् का काम जो न करता हो और केवल यजमान का काम करता हो, तो गृहपति वचन सिद्ध नहीं हो सकता। हमारे मतानुसार सोलह ऋत्विज् तथा यजमान ये दोनों कर्ता के रूप में हैं और उनमें गृहपति वचन उपपन्न है। 'बहूनां यजमानानां गृहपतिः सत्रस्य प्रत्येता' यह गृहपति वचन है।

दीक्षिता दीक्षितव्यपदेशश्च नोपपद्यतेऽर्थयोर्नित्यभावित्वात् ।५८।

पदार्थ—(दीक्षिता दीक्षितव्यपदेशः च) और दीक्षित तथा अदीक्षित

का व्यपदेश (न उपपद्यते) सिद्ध नहीं होता (अर्थयोः नित्यभावित्वात्) अर्थ का नित्यभाव होने से ।

भावार्थ—सत्र में दीक्षित अथवा अदीक्षित व्यवहार भी उत्पन्न नहीं। कारण कि ये दोनों नित्य हैं। अतः सत्र में योग करने वालों में दीक्षितत्व असिद्ध है। इस कारण से इस रूप में सत्र में व्यवहार न होना चाहिये।

अदक्षिणत्वाच्च ।५९।

पदार्थ—(च) और (अदक्षिणत्वात्) सत्र में दक्षिणा होने से।

भावार्थ—सत्र में दक्षिणा नहीं दी जाती। अतः ऋत्विज् और यजमान पृथक्-पृथक् नहीं होते। जो ऋत्विज् हों उन्हें ही यजमान माना जाता है। **'अदक्षिणानि सत्राणि'** दक्षिणाहीन सत्र होते हैं। **न ह्यत्र गौर्दीयते, न वासः, न हिरण्यम्**—सत्र में गाय, वस्त्र अथवा सोना दान में नहीं दिया जाता। अतः ऋत्विज् ही स्वयं कर्ता है, यह मानना चाहिये। यदि सत्र के कर्ता ऋत्विजों से पृथक् हों तो दक्षिणा का विधान होना चाहिये। **परकर्तृत्वे हि दक्षिणाभावो नोपपद्यते। न हि कश्चिदृते स्वार्थात् परार्थे परः प्रवर्तते, तस्मादपि गम्यते स्वयं कर्तृकाणि सत्राणि।** शाबर भाष्य में विशेष अर्थ जिज्ञासुओं को देखना चाहिये।

सत्र और अहीन में क्या अन्तर है ? यह बताने वाला अधिकरण—

द्वादशाहस्य सत्रत्वमासनोपेयिचोदनेन यजमान-बहुत्वेन च सत्रशब्दाभिसंयोगात् ।६०।

पदार्थ—(आसनोपेयिचोदनेन) आस और उप+इ धातु के प्रयोग से जिनमें विधान हुआ हो, (च) और (यजमानबहुत्वेन) नियम से जिनमें बहु-यजमान हों (द्वादशाहस्य) द्वादशाह सम्बन्धी (सत्रशब्दाभिसंयोगात्) सत्र शब्द का सम्बन्ध हो, वह सत्र कहलाता है।

भावार्थ—इस सूत्र में सत्र का लक्षण बताया गया है। जिसमें आस और उप+इ धातु का विध्यर्थ रूप हो। बहु यजमान हों, तथा साथ-साथ द्वादशाह सम्बन्ध रखने वाला सत्र शब्द का प्रयोग हो तो वह सत्र कहलाता है। जैसे कि **गावो वा सत्रमासत सप्तदशावराः सत्रमासीरन्** इस वाक्य में आस् धातु का विध्यर्थ रूप है। बहुयजमान भी बताये हैं तथा सत्र शब्द का प्रयोग भी किया है। अतः सत्र का ही प्रतिपादन करते हैं।

यजति चोदनादहीनत्वं स्वामिनां चास्थित-

परिमाणत्वात् ।६१।

पदार्थ—(यजति चोदनात्) यज धातु का विध्यर्थं रूप हो (च) और (स्वामिनाम्) यजमानों का (अस्थितपरिमाणत्वात्) दृढ़ प्रमाण न बाँधने से 'अहीन' कहलाता है।

भावार्थ—जिसमें 'यजेत' अथवा 'यजेरन्' ऐसा विधान हो, यजमानों का परिमाण अर्थात् प्रमाण वाधा न हो तो वह अहीन याग कहलाता है।

पौण्डरीक याग में दस हजार गायों का और एक हजार अश्वों का दान देना होता है, वह एक समय देना, इस अधिकरण के सूत्र—

अहीने दक्षिणाशास्त्रं गुणत्वात् प्रत्यहं कर्म-भेदात् स्यात् ।६२।

पदार्थ—(अहीने) पौण्डरीक अहीन में (दक्षिणाशास्त्रम्) दक्षिणा का जो विधान है वह (गुणत्वात्) गुण होने से (प्रत्यहम्) प्रत्येक दिन होना चाहिये। (कर्मभेदात्) प्रतिदिन भिन्न-भिन्न कर्म होने से।

भावार्थ—'**अहीनः पौण्डरीक एकादशरात्रः**' ग्यारह रात्रि में पूर्ण होने वाला पौण्डरीक नामक अहीन याग करना होता है, उन्हें इस याग का अनुष्ठान करना होता है। इसमें दस हजार गायें तथा एक हजार अश्वों का दान दक्षिणारूप में देना पड़ता है। यह दक्षिणा प्रत्येक दिन देनी चाहिये कारण कि प्रतिदिन पृथक्-पृथक् कर्म कर्त्तव्य होता है। अतः उस कर्म की समाप्ति हो, इसलिये उपर्युक्त दक्षिणा देनी चाहिये। ऐसा पूर्वपक्षवादी का मन्तव्य है।

सिद्धान्त सूत्र—

सर्वस्य वैककर्म्यात् ।६३।

पदार्थ—(वा) अथवा (सर्वस्य) सभी अहनों का समुदाय रूप (एक-कर्म्यात्) एक कर्म होने से।

भावार्थ—ग्यारह दिवस के कर्मों का जो समूह है, वह दक्षिणा है अतः याग पूरा हो, अर्थात् समाप्ति के समय एक ही समय दक्षिणा देनी चाहिए।

पृषदाज्यवद्वाऽह्ना गुणशास्त्रं स्यात् ।६४।

पदार्थ—(वा) अथवा (पृषदाज्यवत्) पृषद् रूप गुण प्रत्येक अनुयाज में आवर्तन प्राप्त करता है वैसे (अह्नां गुणशास्त्रं स्यात्) दक्षिण अहनों का गुणशास्त्र है।

भावार्थ—जैसे अनुयाज प्रधान है और पृषद्—घी उसका गुण है। इसलिये जितने अनुयाज करने हों उतने समय पृषद्—घी लेना पड़ता है, वैसे यहाँ अहन् प्रधान है। और दक्षिणा उसका अंग है। अतः प्रत्येक दिवस दक्षिणा की आवृत्ति होनी चाहिये (प्रति प्रधानम् अंगावृत्तिः) प्रत्येक प्रधान में अंग की आवृत्ति होनी चाहिये, ऐसा नियम है। यह सूत्र पूर्वपक्ष को पुष्ट करता है।

ज्यौतिष्टोम्यस्तु दक्षिणाः सर्वासामेककर्मत्वात् तासां विकारः स्यात् ।६५।

पदार्थ—(ज्यौतिष्टोम्यः दक्षिणाः) ज्योतिष्टोम की दक्षिणा एक होती है। (सर्वासाम् एककर्मत्वात्) सभी दक्षिणाओं का विधान निखिल कर्मों को उद्दिष्ट कर होता है। (प्रकृतिवत्) अतः प्रकृति के तुल्य (तस्मात्) इसलिये (तासां विकारः स्यात्) उसका विकार अर्थात् विकृति है।

भावार्थ—यह अहीन याग में विकार है। ज्योतिष्टोम में एक ही समय दक्षिणा का विधान है। उसी प्रकार पौण्डरीक याग में भी एक ही दक्षिणा का विधान है। कर्म समुदाय को उद्दिष्ट कर दक्षिणा देनी होती है। अंगीभूत याग के अवान्तर कर्मों को उद्दिष्ट कर दक्षिणा नहीं होती, अतः प्रत्येक अवान्तर कर्म के साथ दक्षिणा की आवृत्ति नहीं होती।

द्वादशाहे तु वचनात्प्रत्यहं दक्षिणाभेदस्तत्प्रकृतित्वात्परेषु तासां संख्याविकारः स्यात् ।६६।

पदार्थ—(तु) पूर्वपक्ष को सूचित करता है। (द्वादशाहे वचनात्) द्वादशाहे वचनात्) द्वादशाह याग में प्रत्यक्ष वचन होने से (दक्षिणाभेदः) दक्षिणा में भेद है (परेषु) पौण्डरीक आदि याग भी (तत्प्रकृतित्वात्) द्वादशाह प्रकृति वाला होने से (तासाम्) दक्षिणा में (संख्याविकारःस्यात्) कर्म का अवयव प्रमाण विकार होना चाहिये।

भावार्थ—द्वादशाह में प्रतिदिन दक्षिणा दी जाती है। 'अन्वहं द्वदशशतं ददाति' ऐसा प्रत्यक्ष वचन भी है। पौण्डरीक भी द्वादशाह याग की विकृति है अतः जैसे प्रकृति में प्रतिदिन दक्षिणा देने में आती है, वैसे पौण्डरीक में भी प्रतिदिन दक्षिणा देनी चाहिये। ऐसा पूर्वपक्षवादी का कथन है।

सिद्धान्त सूत्र—

परिक्रयाविभागाद् वा समस्तस्य

विकारः स्यात् ।६७।

पदार्थ—(वा) अथवा (परिक्रयाविभागात्) परिक्रय में विभाग न होने से (समस्तस्य विकारः स्यात्) समस्त का विकार होता है।

भावार्थ—सम्पूर्ण क्रतु कराना, यह ऋत्विज् स्वीकार करते हैं, और इसके लिये उन्हें दक्षिणा दी जाती है। ऋत्विज् जिस काम को कराना स्वीकार करते हैं, वह परिक्रय कहलाता है। यह परिक्रय एक है, अतः दक्षिणा एक ही होनी चाहिये। अवान्तर कर्मों की पृथक् दक्षिणा न होनी चाहिये। समस्त क्रतु फल प्रदाता है। उनका कोई एक अवयव फल देने वाला नहीं होता, अतः समस्त क्रतु की एक ही समय दक्षिणा दी जाती है। यही सिद्धान्त पक्ष है।

भेदस्तु गुणसंयोगात् ।६८।

पदार्थ—(तु) पर (भेदः) द्वादशाह में जो भेद है वह तो गुण के सम्बन्ध के कारण है।

भावार्थ—द्वादशाह में परिक्रय तो एक है और कारण वहां तो खास वचन है, और सुत्या के सम्बन्ध के कारण दक्षिणा में भेद होता है। पर पौण्डरीक याग में ऐसा कोई वचन नहीं, अतः पौण्डरीक याग में तो एक ही समय दक्षिणा देनी, यही सिद्धान्त है।

पौण्डरीक याग में भी दक्षिणा का विभाग कर नयन करना चाहिये, इस अधिकरण के सूत्र—

प्रत्यहं सर्वसंस्कारः प्रकृतिवत् सर्वासां सर्व-शेषत्वात् ।६९।

पदार्थ—(प्रत्यहम्) प्रत्येक दिन (सर्वसंस्कारः) सर्वदक्षिणा का संस्कार (प्रकृतिवत्) प्रकृति के तुल्य (सर्वासाम्) सर्व का होना चाहिये। (सर्वशेषत्वात्) सकल माध्यन्दिन सवन का शेष होने से।

भावार्थ—ज्योतिष्टोम में माध्यन्दिन सवन में दक्षिणा नयन होता है। इस पौण्डरीक याग में भी अतिदेश शास्त्र से ही नयन संस्कार सम्पूर्ण दक्षिणा को प्राप्त होता है।

एकार्थत्वान्नेति चेत् ।७०।

पदार्थ—(न) निखिल दक्षिणा का प्रतिदिन नयन रूप संस्कार नहीं होता (एकार्थत्वात्) ऋत्विक् आनतिरूप एक कार्य होने से (इति चेत्) जो ऐसी शंका हो तो।

भावार्थ—प्रतिदिन सम्पूर्ण दक्षिणा का नयन रूप संस्कार नहीं होता। पर एक माध्यन्दिन में निखिल दक्षिणा का नयन होता है। इस पूर्वपक्ष का उत्तर अगले सूत्र में है—

उत्पत्तौ कालभेदात् ।७१।

पदार्थ—(उत्पत्तौ) अपनी प्रकृतिभूत द्वादशाह में (कालभेदात्) काल का भेद होने से।

भावार्थ—पौण्डरीक याग की प्रकृतिभूत द्वादशाह याग में नयन रूप संस्कार का भेद सुनते हैं।

सिद्धान्त सूत्र—

विभज्य तु संस्कारो वचनाद् द्वादशाहवत् ।७२।

पदार्थ—(तु) सिद्धान्त पक्ष को सूचित करता है। (विभज्य संस्कारः) विभाग करके नयन रूप संस्कार करना चाहिए (वचनात्) वचन होने से (द्वादशाहवत्) जैसे द्वादशाह में होता है, वैसे।

भावार्थ—विभाग से नयन रूप संस्कार होना चाहिये। द्वादशाह में इस प्रकार वचन है। 'अन्वहं द्वादशशतं ददाति' इस वाक्य से नयन संस्कार का विभाग है। पौण्डरीक याग भी द्वादशाह की विकृति है। अतः नयन रूप संस्कार का भेद होना उचित है। इसलिए प्रतिदिन एक-एक हजार गायों का नयन रूप संस्कार होना चाहिये। अर्थात् दक्षिणा में देनी और ११वें दिन एक हजार अश्व दक्षिणा में देने चाहियें।

मनोर्ऋचः : इस वाक्य से मनु ऋषि की जितनी ऋचायें हैं उनमें से जितनी ऋचाओं की आवश्यकता हो, उतनी का सामिधेनी की रीति से विनियोग समझना चाहिये।

पूर्वपक्ष सूत्र—

लिंगेन द्रव्यनिर्देशे सर्वत्र प्रत्ययः स्याल्लिंगस्य सर्वगामित्वात् ।७३।

पदार्थ—(लिंगेन) लिंग वाक्य से (द्रव्य निर्देशे) शब्द के निर्देश में (सर्वत्र प्रत्ययः) लिंग-लक्षित सर्व मानवी ऋचाओं का प्रत्यय होता है। (लिंगस्य सर्वगामित्वात्) लिंग वाक्य सर्वगामी होने से।

भावार्थ—किसी कर्म विशेष में यह प्रमाण वाक्य है—'मनोर्ऋचः सामिधेन्यो भवन्ति' मनु ऋषि की ऋचायें सामिधेनी होती हैं। इस लिंग वचन से दाशतयी अर्थात् दशमण्डल वाले ऋग्वेद में जितनी मनु ऋषि की ऋचायें

हैं, उन सबका ही सामिधेनी में विनियोग करना या जितनी की आवश्यकता हो उतनी का ? यहाँ पूर्वपक्षवादी का मानना है कि ऋचाओं का सामिधेनी में विनियोग करना जैसे कि—'आग्नेयेन संवत्सरमिष्टका उपदधाति' यहाँ सभी आग्नेय सूक्त ग्रहण किए जाते हैं। वैसे सर्व मानवी ऋचाओं का ग्रहण करना चाहिये।

सिद्धान्त सूत्र—

यावदर्थं वाऽर्थे शेषत्वादतोऽर्थेन परिमाणं स्यात् तस्मिंश्च लिंगसामर्थ्यात् ।७४।

पदार्थ—(वा) अथवा (यावदर्थम्) जितनी मानवी ऋचाओं से कार्य सिद्ध हो, उतनी लेनी (अर्थे) कार्य में (शेषत्वात्) अंग रूप में होने से (अर्थेन परिमाणं स्यात्) कार्य से उसका परिमाण निश्चय करना (च) और (तस्मिन्) उसमें (लिंगसामर्थ्यम्) लिंग वाक्य का सामर्थ्य समझना।

भावार्थ—जितनी मानवी ऋचाओं की आवश्यकता हो, उतनी ही लेनी। कार्य से उनका परिमाण निश्चित होता है। और लिंग वाक्य से उतनी ही ऋचायें लेने में तात्पर्य है, ऐसा समझना।

आग्नेये कृत्स्नविधिः ।७५।

पदार्थ— (आग्नेये कृत्स्नविधिः) अखिल मंत्र के अंगत्व का बोधक है।

भावार्थ—'आग्नेयैः सूक्तैरिष्टका उपदधाति' यहां तो सभी सूक्त लिये गये हैं। कारण कि इष्टिका अनेक हैं, अतः प्रत्येक सूक्त में 'उपदधाति' वचन है। सूक्त थोड़े हैं। अतः सम्पूर्ण सूक्त इष्टकोपधान के लिये ग्रहण करने होते हैं।

ऋजीषस्य प्रधानत्वादहर्गणे सर्वस्य प्रतिपत्तिः स्यात् ।७६।

पूर्वपक्ष सूत्र—

पदार्थ—(ऋजीषस्य) ऋजीष (प्रधानत्वात्) प्रधान होने से (अहर्गणे) द्वादशरात्रादि में (सर्वस्य प्रतिपत्तिः स्यात्) सर्व की प्रतिपत्ति है।

भावार्थ—ऋजीष अर्थात् अभिषव किये पीछे बिना सार की सोमलता अथवा उसके टुकड़े सोमरस निकालने के पश्चात् जो छिलके रहते हैं वे ऋजीष कहलाते हैं। प्रतिदिन सोमरस छिलकों को निकालने पश्चात् छिलकों को पवनी में फेंक देना चाहिये। 'ऋजीषमप्सु प्रक्षिपेत्' पानी में छिलकों को डालना—वह उनकी प्रतिपत्ति कहलाती है। यहाँ एक ही दिन छिलकों को

पानी में फेंकने से उनका प्रतिपत्ति संस्कार हो जाता है। तो रोज छिलकों को क्यों फेंकना ? जैसे सभी दिनों के छिलके अर्थात् ऋजीष पानी में फेंके जाते हैं, वैसे सभी मानवी ऋचाओं को काम में लेना, यह दृष्टान्त भी ठीक नहीं, कारण कि ऋजीष यहाँ प्रधान हैं और प्रक्षेप उनका अंग हैं। अतः **प्रति पधानमंगावृत्तिः** प्रत्येक प्रधान के अंग की आवृत्ति होनी चाहिये। इसलिये सभी ऋजीष पानी में फेंकना उचित है। पर दृष्टान्त में ऐसा कोई प्रमाण नहीं कि जिससे कि सभी मानवी ऋचायें ली जा सकें।

ज्योतिष्टोम में सोम का मान और उपावहरण दोनों वस्त्र में होना चाहिये, यह अधिकरण—

वाससि मानोपावहरणे प्रकृतौ सोमस्य वचनात् ।७७।

पदार्थ—(वाससि) कपड़े में (मानोपावहरणे) मान और उपावहरण होना चाहिये। (प्रकृतौ) प्रकृति में (सोमस्य वचनात्) सोम का वचन होने से।

भावार्थ—प्रकृति में अर्थात् ज्योतिष्टोम में वचन है कि **वाससि मानम् वाससा चोपावहरणं कार्यम्** कपड़े में सोम को लाना अर्थात् दोनों क्रियाय एक ही कपड़े में करनीं, पृथक्-पृथक् कपड़े में नहीं।

अहर्गण में अर्थापत्ति से अन्य वस्त्र लेना, इस अधिकरण के सूत्र—

तत्राहर्गणेऽर्थाद् वासः प्रक्लृप्तिः ।७८।

पदार्थ—(तत्र) वहाँ (अहर्गणे) द्वादशाह अहर्गण में (अर्थात्) अर्थापत्ति से (वासःप्रक्लृप्तिः) अन्य वस्त्र का सम्पादन करना चाहिये।

भावार्थ—अहर्गण में तो तत्-तत् दिवस के लिये इच्छित सोम खरीदे गये सोम में से अलग किया जाता है इसलिये जो कपड़े में सारा सोमरस रक्खा हो, उससे उस दिवस के लिये इच्छित सोम दूसरे कपड़े में ही लेना चाहिये। अतः वस्त्र का सम्पादन करना ही रहा। एक ही वस्त्र में मान और उपावहरण होने अशक्य हैं। अतः वस्त्रान्तर का सम्पादन करना चाहिये।

उपावहरण के लिये ही अन्य वस्त्र का उत्पादन करना चाहिये। इस अधिकरण के सूत्र—

मानं प्रत्युत्पादयेत् प्रकृतौ तेन दर्शनादुपावहरणस्य ।७९।

पदार्थ—(मानं प्रति) मान को उद्दिष्ट कर (उत्पादयेत्) अन्य वस्त्र

लाना चाहिये (प्रकृतौ) प्रकृति में (उपावहरणस्य दर्शनात्) वही वस्त्र उपावहरण का होता है ।

भावार्थ—मान का जो काल होता है उसी समय दूसरे वस्त्र को लाना चाहिये, कारण कि जिस वस्त्र से मान किया हो, उसी वस्त्र से सोम का उपावहरण होता है ।

सिद्धान्त सूत्र—

हरणे वाश्रुत्य संयोगादर्थाद्विकृतौ तेन ।८०।

पदार्थ—(वा) अथवा (हरणे) उपावहरण के समय उत्पन्न करना चाहिये (तेन विकृतौ श्रुत्यसंयोगात्) मान के समय करनें में श्रुति का बोधन ज्ञात नहीं होता ।

भावार्थ—सोम के उपावहरण के समय ही अन्य वस्त्र का उत्पादन करना चाहिये, मान और उपावहरण दोनों के लिये पृथक्-पृथक् वस्त्र चाहियें, ऐसा भाव है ।

इति मीमांसादर्शनभाष्ये दशमाध्यायस्य षष्ठः पादः ॥१०।६॥

अथ मीमांसादर्शनभाष्ये
दशमाध्यायस्य सप्तमः पादः

ज्योतिष्टोम याग में प्रतिदिन हविष् में भेद होता है, इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्षसूत्र—

पशावेकहविष्ट्वं समस्तचोदितत्वात् ।१।

पदार्थ—(पशौ) पशु में (एकहविष्ट्वम्) एक हविष्ट्व की कल्पना होती है. (समस्तचोदित्वात्) समस्त रूप में विधि होने से।

भावार्थ—पशु में भी हविष्पने की कल्पना होती है; कारण कि वह होमीय द्रव्य का साधन होता है। समस्त पशु घी, दूध आदि के साधन होने से उनमें एक हविष्पन की कल्पना करनी चाहिये। ऐसा पूर्वपक्षवादी का मानना है।

सिद्धान्त सूत्र—

प्रत्यंगं वा ग्रहवदंगानां पृथक्कल्पनत्वात् ।२।

पदार्थ—(वा) अथवा (प्रत्यंगम्) प्रत्येक अंग में कल्पना करनी चाहिये। (ग्रहवत्) जैसे ग्रहों में की जाती है, वैसे (अंगानां पृथक्कल्पनत्वात्) अंगों की पृथक कल्पना होने से—

भावार्थ—समग्र पशु में एक हविष्ट्व की कल्पना करते हुये उसके अंगों में ऐसी कल्पना करना, यही योग्य है। जैसे ग्रहों में पृथक्-पृथक् कल्पना होती है, वैसे उनमें भी कल्पना करनी। अंगों के विना अंगी नहीं बनता। अतः अंग ही घृत आदि मुख्य हविष् के साधन हैं। अतः अंग रूप साधनों में हविष्ट्व की कल्पना करनी। कवियों ने भी पशु में अहुति साधन की कल्पना की है। जैसे कि—

इतिवादिन एवास्य होतुराहुतिसाधनम्।
अनिन्द्या नन्दिनी नाम धेनुराववृते वनात्॥

यहाँ कवि ने नन्दिनी नाम की धेनु को आहुति साधन के रूपमें कल्पित किया है। आहुति साधन और हविष् एक ही वस्तु है। घी, दूध आदि मुख्य हविष् माने जाते हैं और परम्परा सम्बन्धी धेनु भी आहुति साधन माना जाता

। इसलिये मुख्य हविष् प्राप्त करने के लिये धेनु आदि का रक्षण और पोषण बहुत संभाल के साथ करते रहना चाहिये ।

पशु के अवयव विशेष हविष्ट्व कल्पना में कारण है, इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष सूत्र—

हविर्भेदात् कर्मणोऽभ्यासः तस्मात् तेभ्योऽवदानं स्यात् ।३।

पदार्थ—(हविर्भेदात्) हविष् में भेद होने से (कर्मणोऽभ्यासः) कर्म का भी अभ्यास होता है (तस्मात्) अतः (तेभ्यः अवदानं स्यात्) उन अवयवों के माध्यम से मुख्य हविष् प्राप्त हो सकता है।

भावार्थ—अंगों में भिन्नता होती है, और उसके कारण हविष् में भिन्नता आती है। अतः अंग प्रमाण से कर्मों का अभ्यास होना चाहिये। और उनके सर्व अवयवों में से मुख्य हविष् प्राप्त करने में सहायता होती है। दूध प्राप्त करने में गाय के सभी अवयवों से सहायता मिलती है।

सिद्धान्त सूत्र—

आज्यभागवद् वा निर्देशात् परिसंख्या स्यात् ।४।

पदार्थ—(वा) अथवा (आज्यभागवत्) आज्य के तुल्य (निर्देशात्) निर्देश होने से (परिसंख्या स्यात्) परिसंख्या होती है।

भावार्थ—सभी अंग मुख्य हविष् को प्राप्त कराने के लिये एक सी सहायता नहीं करते। अतः जिन-जिन अंगों का निर्देश हो उनमें ही हविष्ट्व और अवदान की कल्पना करना, अन्य में ऐसी कल्पना न करना।

तेषां वा द्व्यवदानत्वं विवक्षन्नभिनिर्दिशेत्पशोः पञ्चावदानत्वात् ।५।

पदार्थ—(वा) अथवा (तेषाम्) हविषों में से (द्व्यवदानत्वं विवक्षन् अभिनिर्दिशेत्) दोनों अवदान करने (पशोः पञ्चावदानत्वात्) पशुजन्य घृत दूध आदि में से पाँच अवदान किये होने से।

भावार्थ—११ हविष् होते हैं, उनमें दो-दो अवदान करने। यह कोई अनुवाद नहीं, अपूर्व विधि है। कारण कि पशुजन्य घृतादि में पांच अवदानों

का श्रवण है। अतः द्रव्यवदान अप्राप्त हैं। अप्राप्त का विधान ही हो सकता है, अनुवाद नहीं। इससे ११ के अतिरिक्त जितने हविष् हों उनमें से भी त्याग करना अर्थात् सभी में से अवदेय होना चाहिये। सभी हविषों में से थोड़ा-थोड़ा लेकर होम करना चाहिए।

अंसशिरोनूकसक्थिप्रतिषेधश्च तदन्यपरिसंख्यानेऽनर्थकः स्यात्प्रदानत्वात्तेषां निरवदानप्रतिषेधः स्यात् ।६।

पदार्थ—(च) और (अंसशिरोनूकसक्थिप्रतिषेधः) अंसादि में हविष् रीति से कल्पना करने का निषेध है। (तदन्यपरिसंख्याने) उनके सिवाय के परिसंख्यान में (अनर्थकः स्यात्) प्रतिषेध अनर्थक हो जाय, इसलिये (तेषां प्रदानत्वात्) वह भी प्रदेय होने से (निरवदानप्रतिषेधः स्यात्) एक-एक समय अवदान करना।

भावार्थ—घृत आदि ग्यारह के सिवाय जितने हविष् हों उनमें से एक-एक बार अवदान करना और उक्त ग्यारह में से दो-दो समय अवदान करना, और अंसादि में हविष् रूप में कल्पना नहीं करनी।

अपि वा परिसंख्या स्यादनवदानीयशब्दत्वात् ।७।

पदार्थ—(अपि वा) अथवा (परिसंख्या स्यात्) नाम विधि है (अनवदानीयशब्दत्वात्) अनवदानीय शब्दों का प्रयोग होने से।

भावार्थ—जितने होमीय द्रव्य हों, उन सभी से होमार्थ अवदान होना चाहिये। और इसके लिए परिसंख्या नामक विधि माननी चाहिये।

अब्राह्मणे च दर्शनात् ।८।

पदार्थ—(च) और (अब्राह्मणे) ब्राह्मण भिन्न को (दर्शनात्) अवशिष्ट हविष् का भक्षण विहित है।

भावार्थ—याग विशेष में ब्राह्मण भिन्न यजमान हो तो उन्हें हविष् शेष का भक्षण विहित है। 'ककुभो राजपुत्रः प्राश्नति' इस वाक्य में ब्राह्मण भिन्न राजपुत्र का निर्देश है।

शृताशृतोपदेशाच्च तेषामुत्सर्गवद्यज्ञशेषत्वं

सर्वेषां न श्रपणं स्यात् ।९।

पदार्थ—(च) और (शृताशृतोपदेशात्) अग्निपक्व अनग्निपक्व (तेषां उत्सर्गवत्) उनके उत्सर्ग प्रमाण से (अयज्ञशेषत्वम्) अयज्ञ शेष है (सर्वेषां न श्रपणं स्यात्) सभी का श्रपण नहीं होता।

भावार्थ—यज्ञ में जो-जो द्रव्य अर्थात् हविष् होता है वह सभी पके हुये हों, ऐसा नियम नहीं है। अपक्व द्रव्य भी होमे जा सकते हैं। जो द्रव्य हविष् रूप न हों वे यज्ञ शेष भी नहीं माने जाते।

स्विष्टकृत होम अधिकरण—

इज्याशेषात्स्विष्टकृदिज्येत प्रकृतिवत् ।१०।

पदार्थ—(इज्याशेषात्) इज्याशेष में से (स्विष्टकृत इज्येत) स्विष्टकृत होम करना (प्रकृतिवत्) जैसे प्रकृति याग करने में आता है, वैसे।

भावार्थ—प्रकृति याग में जैसे इज्याशेष में से स्विष्टकृत् होम किया जाता है, वैसे ही विकृति याग में भी इज्याशेष में से ही स्विष्टकृत होम करना चाहिये।

त्र्यंगैर्वा शरवद्विकारः स्यात् ।११।

पदार्थ—(वा) अथवा (त्र्यङ्गैः) तीन प्रकार के हविष् से स्विष्टकृत होम करना। (शरवद्‌विकारः स्यात्) शर की तरह विकार माना जाता है।

भावार्थ—शरमयं बर्हिः इस वचन से जैसे शर नामक घास के विधान से कुशों का बाध होता है, वैसे केवल अंग से स्विष्टकृत होम न कर, पक्व और अपक्व हविष् और घृत इन तीन यज्ञ के अंगों से स्विष्टकृत होम करना चाहिये।

अध्यूध्नी इडा विकार की कल्पना, अधिकरण—

अध्यूध्नी तु होतुस्त्र्यंगवदिडाभक्षविकारः स्यात् ।१२।

पदार्थ—(अध्यूध्नी तु) अध्यूध्नी नामक पशु का अवयव होता है वह (त्र्यङ्गवत्) अनिज्या शेष त्र्यंगों से इज्या शेष की निवृत्ति होती है। उसमें (होतुः) होता द्वारा (इडाभक्षविकारः) इडा नामक हविष् विकार की कल्पना करनी, यह सूत्र का भाव है।

शेषे वा समवैति तस्माद् द्रव्यवन्नियमः

स्यात् ।१३।

पदार्थ—(वा) अथवा (शेषे) हुतशेष द्रव्यों में (समवैति) अन्तर्भूति होती है। (तस्मात्) अतः (द्रव्यवत्) द्रव्य के तुल्य नियम निश्चित किये जाते हैं।

भावार्थ—हुतशेष द्रव्यों में के किसी भी द्रव्य की कल्पना हो सकती है, पर उक्त अवयव के लिये नियम निश्चित किया जाता है जैसे वाजपेय याग में सत्तर रथ होते हैं उनमें यजुर्युक्त रथ अध्वर्यु को देने का नियम है। वैसे होता के द्वारा इडा विकार की कल्पना करनी चाहिये।

अशास्त्रत्वात्तु नैवं स्यात् ।१४।

पदार्थ—(तु अशास्त्रत्वात्) अशास्त्रीय होने से (एवं न स्यात्) ऐसी कल्पना करना।

भावार्थ—इडा नामक हविष् की उक्त अवयव में कल्पना करना, शास्त्रीय नहीं, अर्थात् ऐसा शास्त्र में उल्लेख नहीं है।

अपि वा दानमात्रं भक्षशब्दानभि-
सम्बन्धात् ।१५।

पदार्थ—(अपि वा) अथवा (दानमात्रं स्यात्) केवल पशु का दान ही करना चाहिये। (भक्षशब्दानभिसम्बन्धात्) भक्ष शब्द का सम्बन्ध न होने से।

भावार्थ—इडा नामक हविष् तो भक्ष भी है, और उक्त कल्पना करने में इसका कोई सम्बन्ध ज्ञात नहीं होता, अतः पशु का दान ही उचित है।

दातुस्त्वविद्यमानत्वादिडाभक्षविकारः
स्याच्छेषं प्रत्यविशिष्टत्वात् ।१६।

पदार्थ—(दातुः) दाता (अविद्यमानत्वात्) विद्यमान न होने से (इडाभक्ष विकारः स्यात्) इडाभक्ष के विकार की कल्पना होती है (शेषं प्रति) शेष में (अविशिष्टत्वात्) समानता होने से।

भावार्थ—पशु यजमान का न हो तो यजमान को दान करने का अधिकार नहीं होता तो लेने का अधिकार नहीं। अतः इडा नामक हविष् की कल्पना करनी ही उचित है। कल्पना करने का उद्देश्य पशु को पवित्र मानकर उसकी रक्षा करने का है।

वनिष्ठु सम्बन्धी अधिकरण—

अग्नीधश्च वनिष्ठुरध्यूध्नीवत् ।१७।

पदार्थ—(च) और (अग्नीधः) अग्नीध नामक ऋत्विज् को (वनिष्ठुः) वनिष्ठु नामक अवयव की कल्पना भी (अध्यूध्नीवत्) अध्यूध्नी के तुल्य है।

भावार्थ—अध्यूध्नी के तुल्य वनिष्ठु कल्पना करने में अग्नीध् नामक ऋत्विक् का कर्त्तव्य है।

मैत्रावरुण नामक ऋत्विज् द्वारा शेष हविष् का भक्ष विषयक अधिकरण—

अप्राकृतत्वान्मैत्रावरुणस्याभक्षत्वम् ।१८।

पदार्थ—(अप्राकृतत्वात्) प्रकृति में विधान न होने से (मैत्रावरुणस्य अभक्षत्वम्) मैत्रावरुण नामक ऋत्विज् के लिये अभक्ष्य है।

भावार्थ—मैत्रावरुण नामक ऋत्विज् का दर्शपूर्ण मास से सम्बन्ध न होने से प्राकृत भक्ष का भी अभाव होता है।

वनिष्ठु सम्बन्धी अधिकरण—

स्याद्वा होत्रध्वर्यु विकारत्वात्तयोः कर्माभिसंबन्धात् ।१९।

पदार्थ—(वा) अथवा (स्यात्) है (होत्रध्वर्यु विकारत्वात्) होता और अध्वर्यु द्वारा काम करने से (तयोः कर्माभिसम्बन्धात् होता और अध्वर्यु का प्राकृत कर्म के साथ सम्बन्ध होने से।

भावार्थ—होता और अध्वर्यु का प्राकृत कर्म के साथ सम्वन्ध है। प्रैष रूप कार्य अध्वर्यु का है, वह काम मैत्रावरुण नामक ऋत्विज् द्वारा करना होता है, अतः मैत्रावरुण का भक्ष के साथ सम्वन्ध है। इसलिये कि मैत्रावरुण द्वारा शेष हविष् का भक्षण होता है।

मैत्रावरुण के भाग सम्वन्धी अधिकरण—

पूर्वपक्ष सूत्र—

द्विभागः स्याद् द्विकर्मवत् ।२०।

पदार्थ—(द्विभागः स्यात्) दो भाग मिलने चाहियें (द्विकर्मत्वात्) दोनों कर्म करने से।

भावार्थ—मैत्रावरुण होता और अध्वर्यु दोनों कर्म करते हैं इसलिये उन्हें दो भाग मिलने चाहियें।

सिद्धान्त सूत्र—

एकत्वाद्वैकभागः स्याद् भागस्या-श्रुतिभूतत्वात् ।२१।

भावार्थ—(वा) अथवा (एकत्वात्) कर्मनिमित्त भक्षण एक होने से (एकभागः स्यात्) एक भाग होना चाहिये (भागस्य अश्रुतिभूतत्वात्) भाग सम्बन्धी शास्त्र में उल्लेख न होने से।

भावार्थ—होता और अध्वर्यु का भाग मैत्रावरुण को देना, ऐसा शास्त्र में विधान न होने से कर्म निमित्त लक्षण एक ही होने से कर्मकर्ता का भक्षण भी एक ही होना चाहिये।

प्रतिप्रस्थाता नामक ऋत्विज् को भक्ष का अधिकार नहीं, यह प्रकरण—

पूर्वपक्ष—

प्रतिप्रस्थातुश्च वपाश्रपणात् ।२२।

पदार्थ—(च) और (प्रतिप्रस्थातुः) प्रतिप्रस्थाता नामक ऋत्विज् को शेष हविष् का भक्षण करना होता है (वपाश्रपणात्) वपा श्रपण की कल्पना होने से।

भावार्थ—वपाश्रपण की कल्पना अर्थात् भावना करनी, यह अध्वर्यु का कर्त्तव्य है। पर प्रकृत स्थल में प्रतिप्रस्थाता यह कर्म करता है अतः उसे हविः शेष का भक्षण करना चाहिये, यह पूर्वपक्ष का मत है।

सिद्धान्त सूत्र—

अभक्षोवा कर्मभेदात्तस्याः सर्वप्रदानत्वात् ।२३

पदार्थ—(वा) अथवा (अभक्षः) भक्षण नहीं (कर्मभेदात्) कर्म भेद होने से (तस्याः सर्वप्रदानत्वात्) उसका सम्पूर्ण दान होने से।

भावार्थ—प्रतिप्रस्थाता को उस हविष् का भक्षण करना नहीं होता, कारण कि जो हविष् होमनी होती है, उसे निःशेष होमनी होती है।

गृहमेधीय आज्यभागों का फिर से श्रवण होने से अपूर्व विधान है, यह अधिकरण—

पूर्वपक्ष सूत्र—

विकृतौ प्रकृतस्य विधेर्ग्रहणात् पुनः श्रुतिर-नर्थिका स्यात् ।२४।

पदार्थ—(विकृतौ) गृहमेधीय प्रकरण में (प्राकृतस्याविधेः) दर्शपूर्ण-मास की विधि का (पुनः ग्रहणात्) फिर से ग्रहण होने से (श्रुतिः) श्रुतिवचन (अनर्थिका स्यात्) निरर्थक हो जाता है।

भावार्थ—चातुर्मास्य प्रकरण में वर्णित गृहमेधी प्रकरण में **'आज्यभागौ यजति यज्ञस्यैव चक्षुषी नान्तरेति'** इस प्रकार का वचन है। इसकी व्याख्या में कई पक्ष हैं। प्रथमपक्ष का उत्थान इस प्रकार है—विकृतिभूत गृहमेधीय में दर्शपूर्णमास के आज्य भाग विधि का फिर ग्रहण किया है, उससे यह वचन निरर्थक हो जाता है। कारण कि प्रकृतिगत धर्मों का विकृति में अतिदेश शास्त्र से अनुष्ठान प्राप्त ही है, तो पीछे फिर से इसका वाक्य विकृति में न होना चाहिये, फिर भी है तो मात्र अनुवाद रूप ही है, कोई अपूर्व विधान नहीं। अन्य पक्ष—

अपि वाऽऽग्नेयवद् द्विशब्दत्वं स्यात् ।२५।

पदार्थ—(अपि वा) ये दोनों शब्द पूर्वपक्ष में अन्य पक्षकार का अस्व-रस सूचित करते हैं (आग्नेयवत्) आग्नेय विधि की भाँति (द्विशब्दत्वं स्यात्) दो शब्दों से एक ही शब्दबोध की प्रतीति होती है।

भावार्थ—जैसे **'अग्निमग्न आवह'** इस स्थान पर दो अग्नि शब्द हैं, फिर भी शब्द जन्य ज्ञान तो एक ही अग्नि विषयक शब्द से होता है, वैसे प्रकृत स्थल में अतिदेश शास्त्र से और गृहमेधीय में रहे प्रत्यक्ष वचन से एक ही शब्द बोध होता है। प्रकृति प्रमाण में विकृति में अनुष्ठान करना और यह आज्य-भागवत्त्व रूप होता है, ऐसा समझना। अतः यह वाक्य निरर्थक नहीं।

न वा शब्दपृथक्त्वात् ।२६।

पदार्थ—(न वा) उपर्युक्त कथन ठीक नहीं (शब्दपृथक्त्वात्) दृष्टान्त में अग्नि शब्द भिन्न-भिन्न अर्थ सूचित करता है।

भावार्थ—**'अग्निमग्न आवह'** इस दृष्टान्त में एक शब्द अग्नि से अवोढा प्रतीत होता है और दूसरे अग्नि शब्द से अवोढ़व्य अग्नि प्रतीत होता होता है। अतः शब्द भिन्न-भिन्न हैं। पर 'आज्यभागौ यजति' यहाँ ऐसे भिन्न-भिन्न अर्थ ज्ञात नहीं होते। उक्त वाक्य प्रकृति और विकृति में एक ही अर्थ को सूचित करते हैं। अतः वह वचन आज्यभाग की स्तुति के लिए ही है। अर्थात् अनुवाद रूप है।

अधिकं वार्थवत्त्वात्स्यादर्थवादगुणाभावे वचना-दविकारे तेषु हि तादर्थ्यं स्यादपूर्वत्वात् ।२७।

पदार्थ—(वा) अथवा (अधिकं स्यात् अर्थवत्वात्) प्राकृत अर्थ की

अपेक्षा यहाँ विशेष अर्थ होने से अधिक विधान है (अर्थवादगुणाभावे अविकारे वचनात्) अर्थवाद की सम्भावना नहीं (तेषु तादर्थ्यं स्यात् अपूर्वत्वात्) स्तुति और गुण की विधि का तथा प्राकृत धर्म का बाध होने से अपूर्व विधान है।

भावार्थ—'आज्यभागौ यजति' यह वाक्य अर्थवाद, गुणवाद और प्राकृत धर्म का प्रापक न होने से विशिष्ट अर्थ का अर्थात् अधिक अर्थ का कथन करता है। ऐसा इस सूत्र का भाव है।

प्रतिषेधः स्यादिति चेत् ।२८।

पदार्थ—(प्रतिषेधः स्यात्) आज्यभाग से अतिरिक्त कर्म नहीं करना ऐसा प्रतिषेध मानना (इति चेत्) शंका सूचक शब्द है।

भावार्थ—जो उक्त वाक्य अर्थात् 'आज्यभागौ यजति' को प्रतिषेध रूप में माना जाय तो ? इस शंका का समाधान अगले सूत्र में है। प्रतिषेध अर्थात् आज्यभाग रूप कर्म के अतिरिक्त अन्य कर्म न करना।

नाश्रुतत्वात् ।२९।

पदार्थ—(न) नहीं (अश्रुतत्वात्) ऐसा श्रवण नहीं।

भावार्थ—ऐसा प्रतिषेध मानने में अश्रुत कल्पना करनी पड़ती है और स्वार्थ अर्थात् वाक्य का जो अर्थ जाना जाता है, उसका त्याग करना पड़ता है। अतः ऐसा परिसंख्यात्मक कथन ठीक नहीं।

अग्रहणादिति चेत् ।३०।

पदार्थ—(अग्रहणात्) ग्रहण न होने से (इति चेत्) शंका सूचक शब्द है।

भावार्थ—उक्त वाक्य का अर्थ करना कि आज्य भाग सिवाय अन्य अंग चोदक शास्त्र से प्राप्त होते हैं। आज्य भाग का तो प्रत्यक्ष वचन है अतः उसका ग्रहण अतिदेश शास्त्र नहीं करता। इस शंका का समाधान अगले सूत्र में है—

न तुल्यत्वात् ।३१।

पदार्थ—(न) नहीं (तुल्यत्वात्) तुल्य होने से।

भावार्थ—'प्रकृतिवद् विकृतिः कर्त्तव्या' इस एक ही वाक्य से प्रकृति-गत सभी धर्मों का अनुष्ठान विहित होने से अमुक धर्मों का ग्रहण नहीं होता, और अमुक का होता है। ऐसा नहीं कहा जा सकता। यह तो सभी के लिए तुल्य वाक्य है।

तथा तद्ग्रहणे स्यात् ।३२।

पदार्थ—(तथा) उस प्रकार (तद्ग्रहणे स्यात्) उसके ग्रहण में हो सकता है।

भावार्थ—जैसे सप्तदश सामिधेनी स्थल में दो वाक्य हैं वैसे आज्य भाग ग्रहण में हों तो सम्भव हो सकता है। पर यहाँ तो चोदक शास्त्र आनुमानिक है, इसलिए वैषम्य होने से उक्त वाक्य विधिवाक्य नहीं।

सिद्धान्त सूत्र—

अपूर्वतां तु दर्शयेद् ग्रहणस्यार्थवत्वात् ।३३।

पदार्थ—(तु) सिद्धान्त को सूचित करता है (अपूर्वतां दर्शयेत्) अपूर्व अर्थ को बताता है। (ग्रहणस्य अर्थ त्वात्) ग्रहण अर्थ वाला होने से।

भावार्थ—आज्यभाग ग्रहण अर्थवाला होने से 'आज्यभागौ यजति' यह वाक्य दर्शपूर्णमास रूप प्रकृति से भिन्न अर्थ का प्रतिपादन करता है। इसलिए वह अपूर्व अर्थ का प्रतिपादन करता है। इसलिए वह सफल विधान है।

गृहमेधीय में स्विष्टकृत आदि का अनुष्ठान है करना—इस अधिकरण के सूत्र—

ततोऽपि यावदुक्तं स्यात् ।३४।

पदार्थ—(ततः अपि) कथंभाव की आकांक्षा की निवृत्ति होने से (यावदुक्तम् स्यात्) जिस-जिस का प्रत्यक्ष विधान हो उन सभी का अनुष्ठान करना।

भावार्थ—गृहमेधीय प्रकरण में स्विष्टकृत आदि जो-जो कर्म विहित हों उन सभी का अनुष्ठान करना, 'अग्नये स्विष्टकृते समवद्यति इडामुपह्वयति' इत्यादि का अनुष्ठान करना। पूर्वपक्षवादी का मानना है कि आज्य भाग के अतिरिक्त अन्य का अनुष्ठान न करना। उसके समाधान के लिये यह सूत्र है।

गृहमेधीय प्राशित्रा के भक्षण का अभाव है। इस अधिकरण के सूत्र—

स्विष्टकृति भक्षणप्रतिषेधः स्यात्तुल्यकारणत्वात् ।३५।

पदार्थ—(स्विष्टिकृति) स्विष्टिकृत का जो श्रवण होता है, उससे (भक्षणप्रतिषेधः स्यात्) शेष हविष् के भक्षण का प्रतिषेध होता है (तुल्यकारणत्वात्) एक फलजनक होने से।

भावार्थ—गृहमेधीय प्रकरण में हविष् शेष जो प्राशित्रादि है उसके भक्षण का निषेध है।
पूर्वपक्ष—

अप्रतिषेधो वा दर्शनादिडायां स्यात् ।३६।

पदार्थ—(वा) अथवा (अप्रतिषेधः) प्रतिषेध नहीं (इडायां दर्शनात् स्यात्) इडा नामक हविष् में भक्ष का श्रवण होता है।

भावार्थ—स्विष्टकृत स्वजातीय का ही व्यावतर्न करता है। इससे भक्ष की प्रतीति होती है। अर्थात् प्राशित्र का भक्षण प्रतीत होता है।
सिद्धान्त सूत्र—

प्रतिषेधो वा विधिपूर्वस्य दर्शनात् ।३७।

पदार्थ—(वा) अथवा (प्रतिषेध) प्रतिषेध है (विधिपूर्वस्य) जिसकी विधि हो उसका भक्षण होता है। (दर्शनात्) दर्शन होने से।

भावार्थ—जिनका भक्षण विहित हो, उनका भक्षण होना चाहिये। आनुमानिक भक्षण बाधित होता है **'इडामेवावद्यति'** इत्यादि वाक्य से केवल इडा नामक का भक्षण प्रतीत होता है अतः इसके सिवाय प्राशित्रादि के भक्षण का अभाव है, ऐसा समझना।

प्रायणीय तथा आतिथ्य इष्टियां क्रम से शंयुवाक और इडा भक्ष कर समाप्त करने के नियम का अधिकरण—
पूर्वपक्षसूत्र—

शंय्विडान्तत्वे विकल्पः स्यात्परेषु पत्न्यनूयाज-प्रतिषेधोऽनर्थकः स्यात् ।३८।

पदार्थ—(शंय्विडान्तत्वे) शंयुवाक और इडाभक्षान्त के पश्चात् (विकल्पः स्यात्) विकल्प में तात्पर्य है (परेषु) पीछे (पत्न्यूनयाजप्रतिषेधः स्यात्) पत्नी संयाज और अनुयाज का प्रतिषेध अनर्थक होता है।

भावार्थ—**"शंय्वन्ता प्रायणीया सन्तिष्ठेते न पत्नीः संयाजयन्ति। इडान्ता आतिथ्या नानूयाजैश्चरन्ति"** इस वाक्य से प्रायणीया तथा आतिथ्य इष्टियाँ शंयुवाक और इडान्तभक्ष के पीछे कर्म समाप्त होता है। यह होने पर पत्नीसंयाज और अनुयाज का प्रतिषेध बताता है। इससे उत्तर कर्म में विकल्प प्रतीत होता है। जो विकल्प मानने में न आवे तो प्रतिषेध करना निरर्थक है। कारण कि पत्नी सयाज और अनुयाज की प्राप्ति ही नहीं तो निषेध किस लिये ?

सिद्धान्त सूत्र—

नित्यानुवादो वा कर्मणः स्याद शब्दत्वात्।३९।

पदार्थ—(वा) अथवा (नित्यानुवादः) अर्थवाद (स्यात्) है। (कर्मणः अशब्दत्वात्) शंयुवाक के पीछे कर्म करने में कोई प्रमाण न होने से।

भावार्थ—शंयुवाक आदि किये पीछे कोई कर्म विहित नहीं, इसलिए ही प्रतिषेध किया है। वह तो केवल अर्थवाद है।

प्रायणीय और अतिथ्य इष्टियाँ शंयु और इडा कर्म किए पीछे समाप्त होता है—

पूर्वपक्षसूत्र—

प्रतिषेधार्थवत्वाच्चोत्तरस्य परस्तात्

प्रतिषेधः स्यात् ।४०।

पदार्थ—(प्रतिषेधार्थवत्वात्) प्रतिषेध सार्थक होने से (उत्तरस्य परस्तात्) द्वितीय गार्हपत्य सम्बन्धी की पीछे के कर्मों का (प्रतिषेधः स्यात्) प्रतिषेध होता है।

भावार्थ—दर्शपूर्णमासयोः एकः शंयुः गार्हपत्ये परः, एवमिडाद्वयं श्रूयते। इस वाक्य से दो शंयु और दो इडा समझा जाता है। इसमें पीछे के शयु की उत्तर में जो कर्म करने हों, उनका प्रतिषेध होता है। ऐसा मानने से प्रतिषेध सार्थक हो सकता है।

सिद्धान्त सूत्र—

प्राप्तेर्वा पूर्वस्य वचनादतिक्रमः स्यात् ।४१।

पदार्थ—(वा) अथवा (पूर्वस्य प्राप्तेः) प्रथम शंयु के समय प्रायणा समाप्त करने की प्राप्ति है। (वचनात्) वचन से (अतिक्रमः स्यात्) नहीं तो शास्त्र का अतिक्रम होता है।

भावार्थ—प्रथम शंयुवाक की प्रथम प्राप्ति होती है। अतः वहाँ ही समाप्ति करनी चाहिये। जो प्रथम शंयुवाक समाप्त न हो सके तो प्रथम के अतिक्रम करने में कोई प्रमाण नहीं और ऐसा करने से शास्त्र का भी अतिक्रम होता है। अतः प्रथम शंयुवाक हो जाने के पश्चात् सभी अंगों की समाप्ति ही करनी चाहिये।

प्रतिषेधस्य त्वरायुक्तत्वात् तस्य च

नान्यदेशत्वम् ।४२।

पदार्थ—(प्रतिषेध त्वरायुक्तत्वात्) प्रतिषेध कर्मानुष्ठान में त्वरा ही सूचित होने से (तस्य च न अन्यदेशत्वम्) शंयुवाक का अन्य देशत्व नहीं।

भावार्थ—जो प्रतिषेध है वह तो मात्र कर्म की त्वरा सूचित करती है। अर्थात् सभी अंगों का अनुष्ठान कर जल्दी समाप्त करो। अन्य शंयुवाक का ग्रहण नहीं होता अर्थात् दूसरे शंयुवाक समय कर्म की समाप्ति न करनी, पर शंयुवाक के समय ही करनी, यही अधिकरण का भाव है।

षडुपसदः इत्यादि वाक्य से अपूर्व उपसत्कर्म का विधान है। यह अधिकरण—

पूर्वपक्ष सूत्र—

उपसत्सु यावदुक्तमकर्म स्यात् ।४३।

पदार्थ—(उपसत्सु) उपसत्कर्म में (यावदुक्तम्) अतिदेश शास्त्र से प्राप्त सभी कर्म करना। (अकर्म स्यात्) प्रतिषिद्ध प्रयाजादि का अनुष्ठान न करना।

भावार्थ—**अप्रयाजास्ता अननुयाजाः** इस वाक्य से प्रयाज और अनुयाज का निषेध होता है। अतः इस निषिद्ध कर्म का त्याग कर अतिदेश शास्त्र से प्राप्त अन्य सभी कर्म करने चाहियें।

सिद्धान्त सूत्र—

स्रौवेण वाऽगुणत्वात् शेषप्रतिषेधः स्यात् ।४४।

पदार्थ—(वा) अथवा (स्रौवेण) स्रौव वाक्य से आधार का विधान होता है। अतः वह भी करना। (अगुणत्वात् शेषप्रतिषेधः स्यात्) अगुण होने से बाकी का प्रतिषेध होता है।

भावार्थ—**स्रौवेण=‘स्रुवेण आधारमाधारयति’** इस वाक्य से आधार का अनुष्ठान करना। जितने का उपदेश हुआ हो, उन सभी का अनुष्ठान करना। मात्र प्रतिषिद्ध पदार्थ का ही त्याग करना।

अप्रतिषिद्धं वा प्रतिषिध्य प्रतिप्रसवात् ।४५।

पदार्थ—(वा) अथवा (अप्रतिषिद्धम्) अप्रतिषिद्ध सभी करना (प्रतिषिध्य) प्रतिषेध कर (प्रतिप्रसवात्) प्रति प्रसव होने से अर्थात् निषेध का निषेध होने से।

भावार्थ—जिनका प्रतिषेध हुवा हो उनका त्याग कर, सभी करना। **‘नान्यामाहुतिं पुरस्ताज्जुहुयात्’** इससे उपसद होम किये पहले होम सामान्य का निषेध है। पीछे ‘स्रुवेण आधारमाधारयति’ इस वाक्य से प्रतिप्रसव होता है, इससे शेष का प्रतिषेध नहीं। अतः आधार बोधक वाक्य व्यर्थ नहीं।

अनिज्या वा शेषस्य मुख्यदेवता-नभीज्यत्वात् ।४६।

पदार्थ—(वा) अथवा (शेषस्य अनिज्या) श्रूयमाण प्राकृत होम नहीं करने (मुख्यदेवतानभीज्यत्वात्) मुख्य आहुतियों में अग्नि के सिवाय अन्य आहुतियों के प्राथम्य का निषेध होने से।

भावार्थ—अश्रूयमाण प्राकृत होम का अनुष्ठान नहीं करना। कारण कि प्राकृत होम किया जावे तो 'स्रुवेण आधारमाधारयति' यह वाक्य व्यर्थ हो जाता है। 'अग्नि, सोम और विष्णु देवताओं की आहुतियों में अग्निदेवताक आहुति के सिवाय अन्य आहुति नहीं होती।

अवभृथ का अपूर्वत्वाधिकरण—

अवभृथे बर्हिषः प्रतिषेधाच्छेषकर्म स्यात् ।४७।

पदार्थ—(अवभृथे) अवभृथ में (बर्हिषःप्रतिषेधात्) बर्हिष् याग का प्रतिषेध करने से (शेषकर्म स्यात्) बाकी कर्म अतिदेश शास्त्र से प्राप्त होता है।

भावार्थ—अवभृथ में 'अपबर्हिषः प्रयाजान् यजति' इस वाक्य से बर्हि-याग सिवाय शेष कर्म अतिदेश शास्त्र से कर्त्तव्य रूप में प्राप्त होते हैं। बर्हि के सिवाय अन्य सभी प्राकृत कर्म अतिदेश शास्त्र के आधार से करने चाहिये।

आज्यभागयोर्वा गुणत्वात् शेषप्रतिषेधः स्यात् ।४८।

पदार्थ—(वा) अथवा (आज्यभागयोः गुणत्वात्) आज्यभागों का गुणत्व रूप में श्रवण होने से (शेष प्रतिषेधः स्यात्) बाकी शेष कार्य का प्रति-षेध होता है।

भावार्थ—आज्य भाग आहुतियों का शेष रूप में कर्त्तव्य होने से श्रवण होता है। अतः उसके सिवाय अन्य शेष कर्म न करना, ऐसा प्रतीत होता है।

प्रयाजानां त्वेकदेशप्रतिषेधवाक्यशेषत्वं तस्मान्नित्यानुवादः स्यात् ।४९।

पदार्थ—(तु) पर (प्रयाजानाम् एकदेशप्रतिषेधवाक्यशेषत्वम्) प्रयाजों में बर्हियाग एक भाग है। उसका प्रतिषेध होने से अवशिष्टों का

विधान नहीं हो सकता। (तस्मात्) अतः (नित्यानुवादः स्यात्) आज्यभागाहुति या जो अतिदेश शास्त्र से प्राप्त होता है, वह नित्यानुवाद मात्र है।

भावार्थ—बर्हियाग प्रयाजों का एक भाग है। उसके निषेध से बाकी के अंगों की प्राप्ति नहीं होती। अतः 'आज्य भागौ यजति' यह नित्यानुवाद है।

आज्यभागयोर्ग्रहणं नित्यानुवादो वा गृहमेधीयवत्स्यात् ।५०।

पदार्थ—(आज्यभागयोः ग्रहणम्) आज्यभागों का ग्रहण (नित्यानुवादः) नित्यानुवाद (वा) नहीं। 'अत्र वा शब्दोनञर्थे' यहां 'वा' शब्द नकारार्थक है। (गृहमेधीयवत् स्यात्) गृहमेधीयवत् है।

भावार्थ—यहाँ आज्यभागों का ग्रहण नित्यानुवाद अर्थात् अर्थवाद नहीं। पर बर्हिष याग के सिवाय अन्य प्रयाजों का विधान होता है। अतः अपूर्व अवभृथ का विधान है।

वाजपेय आदि विकृति यागों में वैकल्पिक प्राकृत पदार्थों में कैसे किसी एक की पुनः श्रुति होती है, उसके नियम का विधान है। इस अधिकरण के सूत्र—

सिद्धान्त सूत्र—

विरोधिनामेकश्रुतौ नियमः स्याद् ग्रहणस्यार्थवत्त्वाच्छरवच्च श्रुतितो विशिष्टत्वात् ।५१।

पदार्थ—(विरोधिनाम् एकश्रुतौ) प्रकृति में विकल्पितों में किसी भी एक पदार्थ का श्रवण हो तो (नियमः) नियम विधि (स्यात्) होती है (ग्रहणस्य अर्थवत्वात्) ग्रहणशास्त्र अर्थवाला होने से (श्रुतितः विशिष्टत्वात्) पक्षश्रुति प्रबल होने से।

भावार्थ—'शरदि वाजपेयेन स्वाराज्यकामो यजेत्' इस वाक्य से विकृतिभूत याग का विधान होता है। उसमें जो यूप होता है वह खादिर का होना चाहिये। प्रोडाश जौ का ही होना चाहिये। इस प्रकार मानने से—'खादिरो यूपो भवति' आदि वचन सार्थक होते हैं। नहीं तो अतिदेश शास्त्र से प्राप्त ये सभी निरर्थक हो जायें। उक्त वाक्यों से विहित हुए यूप आदि प्राकृत पलाश यूप आदि का बाध करते हैं। 'शारमयं बर्हिर्भवति' इस वाक्य से जैसे शरों से बर्हि का बाध होता है, वैसे उपर्युक्त स्थल में समझना चाहिये।

उभयप्रदेशान्नेति चेत् ।५२।

पदार्थ—(उभयप्रदेशात् न इति चेत्) दोनों का अतिदेश होने से

जो ऐसी शंका की जावे तो—

भावार्थ—अतिदेश शास्त्र खादिर और पलाश दोनों को प्राप्त करना कहता है तो पीछे खादिर पलाश का बांधक किस प्रकार हो सकता है, इसी प्रमाणानुसार अन्य पदार्थों में भी शंका उठ सकती है।

शरेष्वपीति चेत् ।५३।

पदार्थ—(शरेषु अपि इति चेत्) जो दोनों का अतिदेश होने पर भी दोनों कर्त्तव्य हों तो शर में भी ऐसा होना चाहिये।

भावार्थ—खादिर और पलाश दोनों अतिदेश शास्त्र प्राप्त हों और उनमें बाध्य बाधक भाव न हो तो शर में भी ऐसा होना चाहिये। अर्थात् 'शर-मयं बर्हिर्भवति' इस स्थान पर भी शरों से बर्हि की निवृत्ति नहीं होनी चाहिये।

विरोध्यग्रहणात्तथा शरेष्विति चेत् ।५४।

पदार्थ—(विरोध्यग्रहणात्) विरोधी पदार्थ का ग्रहण न होने से (शरेषु तथा इति चेत्) शरों में ऐसा माना जा सकता है, जो ऐसा कहा जाय तो।

भावार्थ—शरों में कोई भी दोष नहीं दीखता। जहां शर नामक घास ग्रहण करने को कहा हो वहाँ कुशों की निवृत्ति होती है। विरोधी शरों को अंगीकार करने के पश्चात् कुशों का अंगरूप में ग्रहण नहीं हो सकता। अतः वहाँ तो कुशों की निवृत्ति हो सकती है।

तथेतरस्मिन् ।५५।

पदार्थ—(तथा) उस प्रकार (इतरस्मिन्) अन्य पदार्थों में भी मानना चाहिए।

भावार्थ—जो शरों को अंगीकार करने से कुशों का बाध माना जा सके तो खादिर के अंगीकार के पश्चात् पलाश का बाध होना चाहिए। दोनों में एक सा ही न्याय है।

श्रुत्यानर्थक्यमिति चेत् ।५६।

पदार्थ—(श्रुत्यानर्थक्यं इति चेत्) ऐसा मानने से श्रुति अनर्थ हो जाती है। यदि ऐसी शंका हो तो।

भावार्थ—जो खादिर से पलाश का बाध होता हो तो अतिदेश शास्त्र निरर्थक हो जाय, कारण कि अतिदेश शास्त्र तो दोनों को प्राप्त कराता है।

ग्रहणस्यार्थवत्त्वादुभयोरप्रतिपत्तिः स्यात् ।५७।

पदार्थ—(ग्रहणस्य अर्थवत्वात्) ग्रहणशास्त्र अर्थ वाला होने से (उभयोः) दोनों की (अप्रतिपत्तिः स्यात्) प्राप्ति हो सकती है।

भावार्थ—'खादिरो यूपो भवति' इत्यादि शास्त्र सार्थक होने से पलाश और खादिर दोनों की प्राप्ति नहीं हो सकती। जो दोनों की प्राप्ति होती तो चोदक शास्त्र से उनकी प्राप्ति होती है, तो पीछे, खादिर का विधान क्यों किया ? अतः खादिर पलाश का निवर्तक है।

काम्य इष्टियों में प्राकृत द्रव्य देवता की निवृत्ति है—यह अधिकरण—

सर्वासां च गुणानामर्थवत्त्वात् ग्रहणमप्रवृत्ते स्यात् ।५८।

पदार्थ—(सर्वासां च) सर्व काम्येष्टि सम्बन्धी चोदना अर्थात् विधियों की (गुणानाम् अर्थवत्वात्) ओर गुणों की अर्थवत्ता होने से (अप्रवृत्ते) अतिदेश शास्त्र से प्राप्त द्रव्य देवता में आकांक्षा न होने से (ग्रहण स्यात्) विकृति में कहे गये द्रव्य देवता का ग्रहण होता है।

भावार्थ—काम्येष्टियों में विकृति में वर्णित द्रव्य और देवता का ग्रहण होता है। प्राकृतगत द्रव्यदेवताओं का काम्येष्टि में ग्रहण नहीं होता। प्राकृत द्रव्य देवताओं के साथ विकृति के द्रव्य देवता का विकल्प तथा समुच्चय भी नहीं।

अधिकं स्यादिति चेत् ।५९।

पदार्थ—(अधिकं स्यात्) समुच्चय अथवा विकल्प होता है। (इति चेत्) जो ऐसी शंका हो तो ? इसका समाधान अगले सूत्र में है।

नार्थाभावात् ।६०।

पदार्थ—(न) नहीं (अर्थाभावात्) आकांक्षा न होने से।

भावार्थ—विकृति में वर्णित, द्रव्य और देवता से आकांक्षा निवृत्त होती है, अतः प्राकृत द्रव्य देवता में आकांक्षा नहीं रहती और उनका काम्य इष्टियों में ग्रहण नहीं होता।

खादिर नियम के यूप का अधिकरण—

तथैकार्थविकारे प्राकृतस्याप्रवृत्तिः प्रवृत्तौ हि विकल्पः स्यात् ।६१।

पदार्थ—(तथा) उसी प्रमाण से (एकार्थविकारे) एक ही फल वाला खादिर द्रव्य और उदुम्बर द्रव्य विधि में (प्राकृतस्य अप्रवृत्तिः) प्राकृत खादिर की प्रवृत्ति नहीं होती। (प्रवृत्तौ हि विकल्पः स्यात्) कारण कि प्रवृत्ति हो तो विकल्प मानना पड़ेगा।

भावार्थ—विकृति और प्रकृति में दो द्रव्यों का विधान हो तो विकृति में प्राकृत द्रव्य की प्रवृत्ति नहीं होती। जो विरुद्ध प्राकृत द्रव्य की प्रवृत्ति मानी जाय तो विकृति में वर्णित द्रव्य के साथ विकल्प मानना होगा। अतः जो विकृति में उदुम्बर का विधान हो तो उनमें प्राकृत खादिर यूप की प्रवृत्ति नहीं होती।

पूर्वपक्षसूत्र—

यावत् श्रुतीति चेत् ।६२।

पदार्थ—(यावच्छ्रुति) जितना श्रवण हो उतना ग्रहण करना (इति चेत्) जो ऐसी शंका हो तो—

भावार्थ—अतिदेश शास्त्र से प्रवृत्ति में जो प्राप्त होता है और विकृति में प्रत्यक्ष श्रुत हो, वह, इन दोनों का समुच्चय करना अर्थात् खादिर और उदुम्बर दोनों का ग्रहण करना चाहिए।

सिद्धान्त सूत्र—

न प्रकृतावशब्दत्वात् ।६३।

पदार्थ—(न) नहीं (प्रकृतौ) प्रकृति और विकृति में वर्णित दोनों पदार्थों का ग्रहण करना (अशब्दत्वात्) शास्त्र विहित नहीं।

भावार्थ—प्राकृत और विकृत पदार्थों का एक साथ ग्रहण करना, यह शास्त्र विहित नहीं है। अर्थात् खादिर यूप और उदुम्बर यूप दोनों का एक साथ ग्रहण नहीं होता। विकल्प और समुच्चय मानने में शास्त्र प्रमाण नहीं।

जिसे ब्रह्मवर्चस की इच्छा हो, उसे व्रीहि से ही याग करना चाहिये।

पूर्वपक्ष—

विकृते त्वनियमः स्यात् पृषदाज्यवद् ग्रहणस्य गुणार्थत्वादुभयोश्च प्रदिष्टत्वाद् गुणशास्त्रं यदेति स्यात् ।६४।

पदार्थ—(विकृते तु अनियमः स्यात्) विकृति में विरोधी द्रव्यों में नियम नहीं है। (पृषदाज्यवत्) पृषदाज्य के तुल्य (ग्रहणस्य गुणार्थत्वात्) व्रीहि का गुणार्थ होने से (उभयोः प्रदिष्टत्वात्) चोदक शास्त्र से दोनों प्राप्त होने से (गुणशास्त्रं इति यदा स्यात्) जिस समय व्रीहि रूप गुण विधायक शास्त्र की प्रवृत्ति होती है तब यवशास्त्र की प्रवृत्ति का बाध होता है।

भावार्थ—'अग्नये गृहपतये पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपति कृष्णानां व्रीहीणाम्' इस वाक्य से व्रीहि याग करना विहित है। प्रकृति में से यवों से भी याग करना प्राप्त होता है। अतः विकल्प से दोनों से अर्थात् व्रीहि और यव से भी याग करना, फलित होता है। कारण कि व्रीहि तो मात्र गुणार्थ है। व्रीहि से ही याग करना, ऐसा कोई नियम नहीं है। पृषदाज्य में जैसे आज्य गुण विधि के लिए है, वैसे यहाँ भी व्रीहि गुण विधि के लिए है। जब व्रीहि शास्त्र प्रवर्तित हो, तब ही यव शास्त्र भी प्रवृत्त होता है। इसलिए कि यव और व्रीहि का विकल्प है। यह पूर्वपक्ष का मानना है।

सिद्धान्त सूत्र—

ऐकार्थ्याद् वा नियम्येत श्रुतितो विशिष्टत्वात् ।६५।

पदार्थ—(वा) अथवा (ऐकार्थ्यात्) एक प्रयोजन होने से (नियम्येत) नियम विधि है। (श्रुतितः) प्रत्यक्ष श्रवण होने से (विशिष्टत्वात्) आनुमानिक यवशास्त्र की अपेक्षा प्रत्यक्ष शास्त्र बलवान् होने से।

भावार्थ—व्रीहि तथा यव का प्रयोजन तो पुरोडाश रूप एक ही है। दोनों में से एक से पुरोडाश होने से अन्य द्रव्य ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं। यव तो चोदक शास्त्र से अर्थात् अतिदेश शास्त्र से प्राप्त होने से, आनुमानिक है और व्रीहि का तो विकृति में प्रत्यक्ष विधान होने से प्रत्यक्ष है। अनुमान की अपेक्षा प्रत्यक्ष बलवान् होने से व्रीहि से ही याग करना चाहिये।

विरोधित्वाच्च लोकवत् ।६६।

पदार्थ—(च) और (विरोधित्वात्) परस्पर विरोध होने से प्रवृत्ति नहीं हो सकती। (लोकवत्) व्यवहार के दृष्टान्त से भी यह समझा जा सकता है।

भावार्थ—दो परस्पर विरोधी हों, उनकी एक साथ प्रवृत्ति नहीं हो सकती। यह तो लोक दृष्टान्त से भी समझा जा सकता है।

क्रतोश्च तद्गुणत्वात् ।६७।

पदार्थ—(च) और क्रतु का (तद्गुणत्वात्) उनके गुण के साथ सम्बन्ध होने से।

भावार्थ—क्रतु का सम्बन्ध शुक्ल और कृष्ण व्रीहि के साथ होने से व्रीहि से ही याग करना, यह सिद्ध होता है।

विरोधिनां चतच्छ्रुतावशब्दत्वाद्विकल्पः स्यात् ।६८।

पदार्थ—(च) और (विरोधिनां तच्छ्रुतौ) विरोधियों में से किसी एक का श्रवण हो तो (अशब्दत्वात्) अतिदेश शास्त्र से प्राप्त (अशब्दत्वात्) प्रत्यक्ष विहित न होने से (विकल्पः स्यात्) विकल्प मानना अनुचित है।

भावार्थ—प्रत्यक्ष विहत बलवान् होने से अतिदेश शास्त्र प्राप्त द्रव्य के साथ विकल्प मानना अनुचित है।

पृषदाज्ये समुच्चयाद् ग्रहणस्य गुणार्थत्वम् ।६९।

पदार्थ—(पृषदाज्ये) पृषदाज्य में (समुच्चयात्) समुच्चय होने से (ग्रहणस्य) आज्यग्रहण (गुणार्थत्वम्) गुणार्थ है।

भावार्थ—पृषदाज्य स्थल में तो आज्य ग्रहण दही के साथ सम्बन्ध स्थापित करने के लिये है। अतः वहां दही के साथ आज्य का विरोध नहीं। आज्य और दही का समुच्चय पृषदाज्य है।

क्रत्वन्तरे वाऽतन्न्यायत्वात् कर्मभेदात् ।७०।

पदार्थ—(वा) अथवा (क्रत्वन्तरे) दर्शपूर्ण मास में (कर्मभेदात्) कर्म भिन्न होने से (अतन्न्यायत्वात्) विरोधी होने से।

भावार्थ—दर्शपूर्णमास में चतुरवत्त और पञ्चावत्त विरोध होने से, लोकवत् न्याय का प्रसर नहीं होता।

पञ्च अवत्त का अधिकरण—

यथाश्रुतीति चेत् ।७१।

पदार्थ—(यथाश्रुति इति चेत्) किसी हविष् में पञ्च अवत्त श्रवण हो तो श्रुति के अनुसार कार्य करना चाहिये।

भावार्थ—किसी भी हविष् विशेष में पञ्च अवत्त का विधान अर्थात् पाँच समय अवदान करने का विधान हो तो, उसे श्रुति प्रमाणानुसार करना चाहिए, किसी में चतुरवत्त अथवा किसी में पञ्चावत्त श्रुति प्रमाण से करना चाहिए।

सिद्धान्त सूत्र—

न चोदनैकत्वात् ।७२।

पदार्थ—(न) नहीं (चोदनैकत्वात्) एक हीं विधान होने से।

भावार्थ—विशिष्ट हविष् और सामान्य अन्य हविषों में एक ही विधान होने से सभी हविष् रूप अंगों में पंचवत्तता का ही अनुष्ठान करना चाहिए।

इति मीमांसादर्शनभाष्ये दशमाध्यायस्य

सप्तमः पादः ॥१०।७॥

अथ मीमांसादर्शनभाष्ये

दशमाध्यायस्य अष्टमः पादः

प्रदेश और अनारभ्य विधान में निषेध का पर्युदासत्व है। इस अधिकरण के सूत्र—

प्रतिषेधः प्रदेशेऽनारभ्यविधाने प्राप्तप्रतिषिद्धत्वाद्विकल्पः स्यात् ।१।

पदार्थ—(प्रतिषेधः) प्रतिषेध (प्रदेशे) चोदक शास्त्र से प्राप्त तथा (अनारभ्य विधाने) ये यजामहे इत्यादि विधान में (प्राप्तप्रतिषिद्धत्वात्) प्रत्यक्ष तथा अतिदेश शास्त्र से प्राप्त का प्रतिषेध होने से (विकल्पः स्यात्) विकल्प होता है।

भावार्थ—महापितृ यज्ञ में 'नार्षेयं वृणीत' इस प्रमाण से वरण का निषेध है तथा अनारभ्य यजति में **'ये यजामहे करोति नानुयाजेषु'** यहां भी निषेध है। अतिदेश शास्त्र से प्राप्ति है। 'महापितृयज्ञे न यजेत प्रकृतिवत्' प्रकृवित् के अनुसार महापितृयज्ञ से याग करना लिखा है। इससे प्राप्ति तथा प्रतिषेध दोनों प्रमाण वाले हैं, अतः विकल्प मानना चाहिये।

अर्थप्राप्तवदिति चेत् ।२।

पदार्थ—(अर्थप्राप्तवत्) अर्थ प्राप्त के तुल्य (इति चेत्) जो ऐसा मानने में आवे।

भावार्थ—जैसे **'विषं न भक्षयितव्यम्'** इस अर्थ में 'विष खाना या न खाना' ऐसा विकल्प मानने में नहीं आता वैसे ही उक्त स्थल में विकल्प न मानना चाहिए। निषेध ही मानना चाहिए।

न तुल्यत्वादुभयं शब्दलक्षणम् ।३।

पदार्थ—(न) नहीं (तुल्यत्वात्) समान होने से (उभयम्) दोनों

(शब्दलक्षणम्) शब्द से प्राप्त होते हैं।

भावार्थ—केवल प्रतिषेध ही नहीं माना जा सकता। कारण कि प्राप्ति भी शब्द से ही प्राप्त होती है और प्रतिषेध भी शब्द से ही प्राप्त होता है। 'प्राप्तिरपि प्रतिषेधप्राप्ते' और 'प्रतिषेधोऽपि प्राप्तौ प्राप्तायाम्' इस प्रकार शाबर भाष्य में लिखा है। जब दोनों शब्द से ही प्राप्त होता है तो दोनों प्रमाण मानने चाहियें। इसलिए विकल्प ही मानना उचित है।

सिद्धान्त सूत्र—

अपि तु वाक्यशेषः स्यात् अन्याय्यत्वात् विकल्पस्य विधीनामेकदेशः स्यात् ।४।

पदार्थ—(अपि तु) ये दोनों शब्द पूर्वपक्ष की व्यावृत्ति की सूचना देते हैं (वाक्यशेषः स्यात्) वाक्य शेष से प्रतिषेध ही मानना चाहिए। (विकल्पस्य अन्याय्यत्वात्) विकल्प मानना अन्याय्य है। (विधीनाम् एकदेशः स्यात्) विधि के एक भाग में निषेध का सम्बन्ध है।

भावार्थ—'आर्षेयवरणभिन्नं प्रकृतिवत् कार्यम्' इसलिए आर्षेय वरण से अतिरिक्त अन्य सभी कर्म प्रकृति अनुसार करना तथा 'अनुयाजातिरिक्तेषु ये यजामह इति वाच्यम्' अनुयाज सिवाय अन्य में 'ये यजामहे' इस प्रकार कहना, इस प्रकार जो 'नञ्' का प्रयोग हुआ है। उसका अर्थ पर्युदास निषेध रूप में समझना। अर्थात् उक्त स्थान में विकल्प नहीं मानना पर पर्युदास निषेध मानना।

'न तौ पशौ करोति' इसमें जो नञ् पद से निषेध है वह अर्थवाद है।

अपूर्वे चार्थवादः स्यात् ।५।

पदार्थ—(च) और (अपूर्वे) किसी भी प्रमाण से प्राप्ति का अभाव हो तो (अर्थवादः स्यात्) वह अर्थवाद कहलाता है।

भावार्थ—सोम याग में आज्यभाग को प्राप्त करने वाला कोई भी प्रमाण नहीं अतः वह निषेध अर्थवाद है जैसे कि 'न तौ पशौ करोति न सोमेऽध्वरे' यहाँ सोम अध्वर में जो 'न' से निषेध जाना जाता है, वह अर्थवाद है।

अतिरात्र में षोडशी का जो निषेध है, वह विकल्प है, यह अधिकरण—

शिष्ट्वा तु प्रतिषेधः स्यात् ।६।

पदार्थ—(शिष्ट्वा तु) किसी भी प्रमाण से प्राप्ति होती हो और पीछे (प्रतिषेधः स्यात्) प्रतिषेध होता हो तो वह विकल्प कहलाता है।

भावार्थ—किसी भी प्रमाण से प्राप्ति होती हो और पीछे निषेध भी हो तो वहां विकल्प समझना। जैसे कि 'अतिरात्रे षोडशिनं गृह्णाति नातिरात्रे' यहां अतिरात्र याग में शब्द प्रमाण से षोडशी का भी ग्रहण जाना जाता है और पीछे निषेध भी ज्ञात होता है। अतः अतिरात्र याग में षोडशी ग्रह का विकल्प समझना चाहिए।

'अनाहुतिर्वै र्जतिलाः' इस स्थान पर आहुति के साथ जो निषेध ज्ञात होता है वह अर्थवाद है। इस अधिकरण के सूत्र—

न चेदन्यं प्रकल्पयेत्प्रक्लृप्तावर्थवादः स्यादानर्थक्यात्परसामर्थ्यात् ।७।

पदार्थ—(न चेत् अन्यं प्रकल्पयेत्) अन्य विधेय का विधान न होता हो तो विकल्प माना जा सकता है। (प्रक्लृप्तौ) जो अन्य का विधान हो तो (अर्थवादः स्यात्) विहित का अर्थवाद होता है (परसामर्थ्यात्) पर द्रव्य के विधान के सामर्थ्य से (आनर्थक्यात्) निषेध व्यर्थ होने से।

भावार्थ—जहाँ अन्य का विधान न हो वहां निषेध विकल्परूप में होता है, पर जहां अन्य का विधान किया हो, वहाँ निषेध अर्थवाद रूप में होता है। जैसे कि अग्नि चयन में सुनते हैं—**र्जतिलयवाग्वा वा जुहुयाद् गवीधुकयवाग्वा वा, न ग्राम्यान् पशून् हिनस्ति नारण्यान् अथो खलु अनाहुतयो वै र्जतिलाश्च गवीधुकाश्चेति अजक्षीरेण जुहोति इति र्जतिलयवाग्वादीनां विधिनिन्दाश्रवणेन पूर्वाधिकरणवद् विकल्पे प्राप्ते सिद्धान्तमाह**—अर्थात् र्जतिल और गवीधुक का यवागू से होम करने को कहा है, पीछे उसका निषेध किया है। और अजक्षीर अर्थात् बकरी के दूध से होम करना बताया और र्जतिल की आहुति को अनाहुति कहा है। र्जतिल अर्थात् जंगली 'तक्ष' (वृक्ष) गवीधुक अर्थात् जंगली वृक्ष विशेष इस स्थान पर जो निषेध है वह मात्र अर्थवाद है और बकरी के दूध की प्रशंसा ही करता है। इस प्रकार अनाहुति में प्रतीत होता निषेध अजक्षीर द्रव्य का अर्थवाद है। अर्थात् निषेध किसी स्थान पर अर्थवाद रूप में भी होता है।

त्र्यम्बकादि में अभिघारण और अनभिधारण अर्थवाद रूप में है।

पूर्वैश्च तुल्यकालत्वात् ।८।

पदार्थ—(च) और (पूर्वैः) पूर्व के न्यायों के साथ में (तुल्यकालत्वात्) समान योग क्षेम होने से।

भावार्थ—**चातुर्मास्येषु त्र्यम्बकमन्त्रसंयोगेन त्र्यम्बकनामका एककपालाः पुरोडाशा विहिताः। तान् प्रकृत्य श्रूयते अभिधार्या अनभिधार्या इति मीमांसन्ते ब्रह्मवादिनः आधाने श्रूयते होतव्यमग्निहोत्रं न वा, इति मीमांसन्ते ब्रह्मवादिनः** इति अधिकरणमाला। इस प्रकार त्र्यम्बक मंत्र के सम्बन्ध से त्र्यम्बक नामक पुरोडाश आदि अभिधार्य है या अनभिधार्य, तथा आधान में सुनते हैं कि अग्निहोत्र होम करना या न करना ? यहाँ जो निषेध बताया गया है वह पूर्व सूत्र में कथित न्याय प्रमाणानुसार निषेध से अर्थवाद समझा जाता है। **'इत्थं तूष्णीं होमः प्रशस्तः'** शाबरभाष्य। उक्त निषेध से तूष्णी होम की प्रशंसा प्रतीत होती है। ऐसा शाबर भाष्य में लिखा है।

आधान में उपवाद विकल्प है, यह सूचित करता है।

इस अधिकरण के सूत्र—

उपवादश्च तद्वत् ।९।

पदार्थ—(च) और (उपवादः) उपशब्द से जो वाद है, अर्थात् **'उपवीता वा एतस्य अग्नयो भवन्ति यस्याग्न्याधेये ब्रह्मा सामानि गायति'** इस स्थान पर जो निषेध जाना गया है, वह (तद्वत्) **शिष्ट्वा तु प्रतिषेधः स्यात्'** (१०-८-६) इस सूत्र में कहे प्रमाण से विकल्पार्थक है।

भावार्थ—**'उपवीता वा एतस्य अग्नयो भवन्ति यस्याग्न्याधेये ब्रह्मा सामानि गायति'** इसलिये कि यदि ब्रह्मा सामगान करता है वहाँ अग्नि चला जाता है। अतः ब्रह्मा नामक होता को सामगान का अधिकार नहीं, ऐसा निषेध प्रतीत होता है। यह निषेध विकल्प सूचित करता है।

प्रतिषेधादकर्मेति चेत् ।१०।

पदार्थ—(प्रतिषेधात्) प्रतिषेध होने से (अकर्म इति चेत्) कर्म नहीं। ऐसी शंका हो तो।

भावार्थ—उक्त स्थल में सामगान की निंदा प्रतीत होती है। अतः सामगान अकर्म है। जो निंदित हो, वह कर्त्तव्य रूप में नहीं हो सकता, जो ऐसा शंका हो तो।

उत्तर आगामी सूत्र में है—

न शब्दपूर्वत्वात् ।११।

पदार्थ—(न) नहीं (शब्दपूर्वत्वात्) सामगान तो कर्त्तव्य है कारण कि उसका विधान है।

भावार्थ—सामगान तो कर्त्तव्य है। **'रथन्तरमभिगायते आधीयमाने'**

जब गार्हपत्य का आधान हो तब रथन्तर साम गाना चाहिये। यह गान ब्रह्मा करे, इसलिये ब्राह्मणत्व जाति वाला उद्गाता सामगान करे, अब एक समय उसका निषेध भी है जैसे ऊपर कहा गया है कि **"उपवीता वा एतस्य अग्नयो भवन्ति यस्याग्न्याधेये ब्रह्मा सामानि गायति"** इससे सामगान का विकल्प माना गया है। जो विधिवाक्य है, वह अनुष्ठान के लिये है और जो उपवाद है वह त्याग के लिये है। **'तस्मादनुष्ठातुं विधिः वर्जयितुमुपवादः।'**

दीक्षितो न ददाति इत्यादि जो निषेध है, उनका अर्थ पर्युदास है।

पूर्वपक्ष सूत्र—

दीक्षितस्य दानहोमपाकप्रतिषेधेऽविशेषात् सर्वदानहोमपाकनिषेधः स्यात्।१२।

पदार्थ—(दीक्षितस्य) ऋतु में दीक्षा प्राप्त यजमान को (दानहोमपाक प्रतिषेधः) जो दान, होम तथा पाक का प्रतिषेध है, वह (अविशेषात्) कोई विशेष प्रमाण न होने से (सर्वदानहोमपाकनिषेधः स्यात्) सभी दान, होम, और पाक का निषेध है।

भावार्थ—ऋतु में दीक्षा प्राप्त यजमान को दान, होम और पाक करने का निषेध है। यह निषेध ऋतु सम्बन्धी दानादि और अऋतु सम्बन्धी दानादि का भी है कारण कि ऐसा कोई प्रमाण नहीं कि जो ऋतु के साथ सम्बन्ध न हो उनका ही दान आदि का निषेध है। अतः सर्व दानादि का निषेध है, ऐसा समझना, ऐसा पूर्वपक्ष वादी का मत है।

अन्यपक्ष—

अक्रतुयुक्तानां वा धर्मः स्यात् क्रतोः प्रत्यक्षशिष्टत्वात्।१३।

पदार्थ—(वा) अथवा (अक्रतुयुक्तानां वा धर्मः स्यात्) ऋतु के साथ जिनका सम्बन्ध नहीं, ऐसे दानादि का निषेध धर्म है (क्रतोः) ऋतु के लिये दान आदि तो (प्रत्यक्षशिष्टत्वात्) प्रत्यक्ष विहित होने से इनका निषेध धर्म नहीं।

भावार्थ—दान, होम और पाक ऋतु के लिये होते हैं और ऋतु के साथ सम्बन्ध न रखते हुये पुरुषार्थ के लिये होता है। उनमें से पुरुषार्थ-दान आदि का निषेध है, ऐसा समझना। क्रत्वर्थ तो प्रत्यक्ष विहित होने से करना ही चाहिये जो यह नहीं किया जाय तो प्रत्यक्ष विधान व्यर्थ ही हो जाय।

'मैत्रेयाय हिरण्यं ददाति दाक्षिणानि जुहोति' इस ऋतु से सम्बन्धित दान होम तो दीक्षित को करना ही चाहिये।

तीसरा पक्ष—

तस्य वाऽप्यानुमानिकमविशेषात् ।१४।

पदार्थ—(वा) अथवा (तस्य) उस निषेध का विषय (आनुमानिकम्) अतिदेश शास्त्र से जो प्राप्त होता है, वह दानादि है। (अविशेषात्) विशेष प्रमाण न होने से।

भावार्थ—दीक्षणीय आदि दृष्टि में चोदकशास्त्र से प्राप्त जो प्रयाजादि का होम तथा जो अग्निहोत्र है, वे दोनों निषेध का विषय हैं। कारण कि वह प्रत्यक्ष विहित नहीं, पर आनुमानिक है। अग्निहोत्र भी निषेध का विषय है, कारण कि उसके त्याग में कोई विशेष प्रमाण नहीं। इसलिये कि ऋतु में यजमान ने जो दीक्षा ली है, उसे अग्निहोत्र भी नहीं करना।

सिद्धान्त सूत्र—

अपि तु वाक्यशेषत्वादितरस्य पर्युदासः स्यात् प्रतिषेधे विकल्पः स्यात् ।१५।

पदार्थ—(अपि तु) पूर्वपक्ष ठीक नहीं (इतरस्य वाक्यशेषत्वात्) 'न ददाति' यह दूसरे का वाक्य शेष है इसलिये (पर्युदासः स्यात्) निषेध का अर्थ पर्युदास है। (प्रतिषेधे) जो प्रतिषेध माना जावे तो (विकल्पः स्यात्) विकल्प मानना पड़े और विकल्प अन्याय्य है।

भावार्थ—'अहरहमग्निहोत्रं जुहुयात्' इस विधि वाक्य का 'न दीक्षितो ददाति' इत्यादि वाक्य शेष है। अतः अर्थ यह निकलता है कि जो दीक्षित न हो, उसे अग्निहोत्र करना चाहिये। ऐसा मानने से निषेध का अर्थ पर्युदास होता है। जो प्रतिषेध अर्थात् नञ् का सम्बन्धक्रियापद के साथ रक्खा जावे तो प्रतिषेध होता है। प्रतिषेध मानने से विकल्प मानना पड़ेगा और वह अनुचित है। अतः उपर्युक्त रीति से निषेध का अर्थ पर्युदास ही स्वीकार करना चाहिये।

वर्त्म होमादि से आहवनीय का बाध होता है।

इस अधिकार के सूत्र—

अविशेषेण यच्छास्त्रमन्याय्यत्वाद्विकल्पस्य तत्संदिग्धमाराद्विशेषशिष्टं स्यात् ।१६।

पदार्थ—(विशेषशिष्टं स्यात्) विशेष शास्त्र विहित पदार्थ कर्त्तव्य है। (अविशेषेण यच्छास्त्रं तत्संदिग्धम्) सामान्य शास्त्र विहित जो होता है वह संदिग्ध बनता है और उससे (आराद्) वह दूर पड़ता है (विकल्पस्य अन्याय्यत्वात्) विकल्प अन्याय्य होने से विकल्प बाध नहीं होता।

भावार्थ—'**यद् आहवनीये जुहोति इति सामान्यशास्त्रं सप्तमे पदे जुहोति इति विशेषशास्त्रम्**' ये दोनों कर्म ज्योतिष्टोम में होमार्थ होने से एक साथ प्राप्त होते हैं। दोनों होम एक साथ नहीं हो सकते अतः सामान्य शास्त्र से जो कर्म होते हैं, उनका बाध होता है और विशेष शास्त्र से जो होम विहित होता है उनका अनुष्ठान होता है। आहवनीय में होम सामान्यशास्त्र विहित है, इससे उसका बाध होता है और सप्तम पद में जो होम बताया है, वह विशेष शास्त्र से विहित होने से उसका अनुष्ठान होता है। सामान्य का विकल्प से बाध नहीं मानना, पर नित्य बाध मानना चाहिये। विशेष का जहाँ विधान न हो, वहाँ सामान्य की प्रवृत्ति होती है।

वैमृधादि में साप्तदेश्य का ही विधान है, वह वाक्यशेष के रूप में है, यह अधिकरण।

पूर्वपक्ष सूत्र—

अप्रकरणे तु यच्छास्त्रं विशेषे श्रूयमाणविकृतमाज्यभागवत्प्राकृतप्रतिषेधार्थम् ।१७।

पदार्थ—(अप्रकरणे तु यत् शास्त्रम्) अप्रकरण पठित जो शास्त्र है, वही पीछे वैमृध आदि विकृत में श्रूयमाण है, वह (अविकृतम्) अविलक्षण है, जो ऐसा कहा जाय तो (प्राकृतप्रतिषेधार्थम्) प्राकृत अंग के प्रतिषेध के लिये है, (आज्यभागवत्) आज्यभाग के तुल्य।

भावार्थ—'**सप्तदशसामिधेनीरन्वाह**' यह अनारभ्य विधि है, अनारभ्य विधिविहित का प्रकृति में प्रवेश होता है, परन्तु वहाँ पञ्चदश्य का विधान है, इसलिये साप्तदश्य का सम्बन्ध विकृति में जाता है, यह होने पर भी विकृति में साप्तदश्य का जो पाठ है वह यह सूचित करता है कि—'**नान्यत् प्राकृतं कुर्यात्**' अन्य प्रकृति के अंगों का अनुष्ठान करने के लिये है। इससे ऐसा भी न समझना कि जिन विकृतियों का पाठ है, उनमें ही इनका अनुष्ठान करना, अन्य विकृतियों में न करना।

विकारे तु तदर्थं स्यात् ।१८।

पदार्थ—(विकारे तु) विकार में तो (तदर्थं स्यात्) विकार के लिये है।

भावार्थ—जो सामिधेनी का विकार श्रुत हुआ हो तो उस विकार के लिये है, ऐसा समझना, पर ऐसा श्रवण नहीं। अतः प्राकृत अंग के प्रतिषेध के लिये हैं।

सिद्धान्त सूत्र—

वाक्यशेषे वा क्रतुना ग्रहणात् स्यादनारभ्य-विधानस्य ।१९।

पदार्थ :—(वा) पूर्वपक्ष की व्यावृत्ति सूचित करता है (वाक्यशेषः) वाक्यशेष (स्यात्) है (अनारभ्य् विधानस्य) अनारभ्य विधि का (क्रतुना ग्रहणात्) क्रतु के साथ सम्बन्ध होने से।

भावार्थ—विधीयमान साप्तदश्य का क्रतु के साथ सम्बन्ध है और सामिधेनी के साथ का भी सम्बन्ध है। प्राकरणिक वाक्य क्रतु सम्बन्ध बताता है और दूसरा वाक्य सामिधेनी सम्बन्ध बताता है। अन्य विकृतियों में क्रतु के साथ सम्बन्ध न होने से उसका अनुष्ठान नहीं होता। वैमृध आदि में उसका अनुष्ठान होता है, कारण कि वह उसका अंग है। अर्थात् अनारभ्याधीत साप्तदश्य का सम्बन्ध वैमृधादि विकृतियों में ही होता है।

पृथिव्यै स्वाहा इत्यादि विधि से, जिनमें स्वाहाकार का विधान नहीं, ऐसे प्रदानों में स्वाहाकार का विधान समझना, इस अधिकरण के सूत्र—

मन्त्रेष्ववाक्यशेषत्वं गुणोपदेशात् स्यात् ।२०।

पदार्थ—(मन्त्रेषु अवाक्यशेषत्वम्) मंत्रों में वाक्य शेष नहीं। (गुणोपदेशात्) वर्णानुपूर्वी रूप गुण का उपदेश होने से।

भावार्थ—अनारभ्य वाक्य का इस प्रकार श्रवण होता है—स्वाहाकारेण देवेभ्योऽन्नं ददाति। स्वाहा शब्द का उच्चारण कर देवों को अन्न देता है। अब किसी प्रकरण में '**पृथिव्यै स्वाहा**' इस प्रकार श्रवण होता है। यह स्वाहाकारन्त मंत्र है। इसमें अनारभ्याधीत वाक्य का उपसंहार है। ऐसा पूर्व पक्ष का मानना है। उसके उत्तर में यह सूत्र है कि उक्त मंत्र का उक्त वाक्य रूप शेष नहीं। इसलिए कि इस मंत्र में उक्त वाक्य का उपसंहार नहीं होता। 'पृथिव्यै स्वाहा' यहां जो 'स्वाहा' शब्द उच्चरित हुआ है वह तो यह नियम निश्चित करता है कि पृथिवी शब्द का चतुर्थी विभक्ति में उच्चारण किये पीछे ही 'स्वाहा' शब्द बोलना चाहिये। पृथिवी के पहले नहीं। तथा स्वाहा का ही उच्चारण करना चाहिए 'वषट्' का नहीं। ऐसे

नियम के लिए उक्त मन्त्र है। इसमें अनारभ्याधीत वाक्य का उपसंहार नहीं हो सकता।

अनाम्नाते दर्शनात् ।२१।

पदार्थ—(अनाम्नाते) स्वाहाकार का वहां आम्नान नहीं (दर्शनात्) विधान होने से।

भावार्थ—जहां स्वाहाकार नहीं वहां स्वाहाकार का विधान है। जैसे कि **'घृतेन द्यावापृथिवी आपृणेथामित्यौदुम्बर्यां जुहोतीत्युक्त्वा भूमिप्राप्ते घृते स्वाहा करोति'** अब जो पठित मन्त्र अर्थात् **'पृथिव्यै स्वाहा'** इस मन्त्र में जो उपसंहार हो तो उपर्युक्त आम्नान में स्वाहा का विधान करना असंगत हो जाये।

प्रतिषेधाच्च ।२२।

पदार्थ—(च) और (प्रतिषेधात्) प्रतिषेध होने से।

भावार्थ—**'क्वचिन्न स्वाहा करोति'** ऐसा प्रतिषेध भी है। प्राप्त का ही प्रतिषेध होता है। यह प्रसिद्ध है जो उपसंहार मानने में आवे तो प्रतिषेध व्यर्थ हो जाये।

"अग्नि और अतिग्राह्य नामक ग्रह का विकृति में उपदेश है"—इस अधिकरण के सूत्र—पूर्व पक्ष—

अग्न्यतिग्राह्यस्य विकृतावुपदेशादप्रवृत्तिः स्यात् ।२३।

पदार्थ—(अग्न्यतिग्राह्यस्य) अग्नि और अतिग्राह्य का (विकृतौ) विकृति में (उपदेशात्) उपदेश होने से (अप्रवृतिः स्यात्) शास्त्र की प्रवृत्ति नहीं होती।

भावार्थ—अग्नि और अतिग्राह्य नामक ग्रहों का विकृति में उपदेशः है इससे शास्त्र अर्थात् अतिदेश शास्त्र की प्रवृत्ति विकृति में नहीं होती **'अथातोऽग्निष्टोमेन यजेत न द्विरात्रेण'** अग्निष्टोम प्रकृति है और द्विरात्र विकृति है। **'प्रकृतिवद् विकृतिः कर्तव्या'** इस शास्त्र के आधार पर प्रकृति के धर्म विकृति में अनुष्ठेय होने चाहियें। परन्तु जहां विकृति में ही इन धर्मों का उपदेश हो तो शास्त्र की प्रवृत्ति किस प्रकार हो सकती है। अर्थात् नहीं हो सकती।

मासिग्रहणञ्च तद्वत् ।२४।

पदार्थ—(च) और (मासिग्रहणं तद्वत्) उसी भांति मासिग्रहण किया है वह भी शास्त्र की प्रवृत्ति का निषेध बताता है।

भावार्थ—'**मासि मासि अतिग्राह्या गृह्यन्ते**' जो शास्त्र से विकृति में अतिग्राह्य की प्राप्ति होती हो तो '**मासि**' अर्थात् मास में अतिग्राह्य का ग्रहण करना ऐसा कथन नहीं हो सकता। अतः मासिग्रहण प्राकृत धर्म का निवर्तक है।

सिद्धान्त सूत्र—

ग्रहणं वा तुल्यत्वात् ।२५।

पदार्थ—(वा) अथवा (ग्रहणं) चोदक शास्त्र से ग्रहण होता है। वैसे अग्नि और अतिग्राह्य रूप ग्रह रूप अंग की भी प्राप्ति शास्त्र से होती है ऐसा मानना चाहिये।

भावार्थ—जैसे अन्य अंग द्विरात्र आदि विकृति में चोदक शास्त्र से होती है, ऐसा मानना चाहिए।

लिंगदर्शनाच्च ।२६।

पदार्थ—(च) और (लिंगदर्शनात्) लिंग वाक्य होने से।

भावार्थ—यह लिंग वाक्य है—**कङ्कचितं चिन्वीतयः कामयेत शीर्षण्वानममुष्मिल्लोके स्यामिति यथापञ्चैन्द्रानातिग्रह्यान् गृह्णात**। कंकाकारता तथा ऐन्द्रता का कथन अग्नि और अग्निग्राह्य को विकृति में प्राप्त बताया जाता है।

ग्रहणं समानविधानं स्यात् ।२७।

पदार्थ—(ग्रहणम्) विकृति में जो स्वातन्त्र्य से विधान है वह तो (समानविधानं स्यात्) समान विधान है।

भावार्थ—ज्योतिष्टोम रूप प्रकृति में विधान कर जो द्विरात्र में स्वातन्त्र्य से विधान न हो तो '**छन्दश्चितं चिन्वीत पशुकामः**' इत्यादि गुण और फल सम्बन्धी विधि की प्रवृत्ति नहीं होती, कारण कि गुण और फल के सम्बन्ध की विधि का अतिदेश नहीं होता। अतः जो ज्योतिष्टोम समान विधि द्विरात्र में हो तो पशुकाम विधि की प्रवृत्ति हो सके, इसलिये विकृति में उपदेश है।

मासिग्रहणमभ्यासप्रतिषेधार्थम् ।२८।

पदार्थ—(मासिग्रहणम्) मासिग्रहण (अभ्यासप्रतिषेधार्थम्) अभ्यास के प्रतिषेध के लिए है।

भावार्थ—प्रतिदिन अग्नि और अतिग्राह्य का ग्रहण न करना परन्तु प्रति महीने करना अतः मासि ग्रहण है। इस हेतु से विकृति में अग्नि और अतिग्राह्य का उपदेश है।

उपस्तरण और अभिधारण के साथ चतुरवदान है। इस अधिकरण के सूत्र—पूर्वपक्ष—

उत्पत्तितादर्थ्याच्चतुरवत्तं प्रधानस्य होम संयोगादधिकमाज्यमतुल्यत्वाल्लोक-वदुत्पत्तेर्गुणभूतत्वात् ।२९।

पदार्थ—(उत्पत्तेः) पुरोडाश की उत्पत्ति (तादर्थ्यम्) होम के लिये होने से (प्रधानस्य) पुरोडाश का (चतुरवत्तम्) चार भाग करने चाहिए (होमसंयोगात्) जो हो तेव्य है, उसके ही चार भाग करने होते है (आज्यम्) आज्य (अधिकम्) अधिक है। (अतुल्यवात्) समान न होने से (गुणभूतत्वात्) गोण होने से (लोकवत्) लोक व्ययहार में जैसे हो उस प्रकार।

भावार्थ—दर्शपूर्णमास में सुनते हैं कि 'चतुरवतं जुहोति' चार बार अवदान कर होम करना। ये चार अवदान पुरोडश के होने चाहिए। कारण कि वे ही होमार्थ हैं। आज्य तो पुरोडाश सस्कार के लिये है, अतः आज्य के अवदान को चतुरवत्त में नहीं गिना जा सकता। आज्य अधिक है। लोक में भी जो कोई मनुष्य एक सेर अनाज खाता हो तो उसकी खुराक एक सेर अनाज मानी जाती है। शाक, घो आदि अधिक ही होती है। इनकी गिनती एक सेर में नहीं होती। उसी प्रकार चार अवदान पुरोडाश के ही गिनने चाहियें। उपस्तरण और अभिधारण की उनमें गणना न होनी चाहिये।

तत्संस्कारश्रुतेश्च ।३०।

पदार्थ—(च) और (तत्संस्कारश्रुतेः) वह तो संस्कार के लिये है।

भावार्थ—उपस्तरण और अभिधारण पुरोडाश के संस्कार के लिये ही है। चतुवरदान में उनकी गिनती नहीं।

सिद्धान्त सूत्र—

ताभ्यां वा सह स्विष्टकृतः सहत्वे द्विरभिधारणेन तदाप्तिवचनात् ।३१।

पदार्थ—(वा ताभ्यां सह) उपस्तरण और अभिधारण के साथ चतुरवत्त होता है। (स्विष्टकृतः सहत्वे) स्विष्टकृत प्रकरण में उसके साथ होने का श्रवण है (द्विः अभिधारणेन तदाप्तिवचनात्) दो समय अभिधारण का जो श्रवण है, वह उसको पूर्ति के लिये है।

भावार्थ—**'सकृत्-सकृत् अवद्यति'** इस प्रकार स्विष्टकृत् प्रकरण में पुरोडाश में से दो समय अवदान करना बताये पीछे **'द्विरभिधारयति'** दो समय अभिधारण कहा है, वह चार की पूर्ति के लिए है। अतः उपस्तरण और अभिधारण के साथ चतुरवत्त है।

तुल्यवच्चाभिधाय सर्वेषु भक्त्यनुक्रमात् ।३२।

पदार्थ—(तुल्यवत्) समानता से (अभिधाय) कथन कार (सर्वेषु) सभी में (भक्त्यनुक्रमात्) भागों का कथन होने से।

भावार्थ—**चत्वारि वा एतानि देवदधानि अवदानानि यदुपस्तृणाति तदनुवाक्यायै-यत्पूर्वमवदानं तद्याज्यायै यदुतरं तद्देवतायै तदभिधारयति इति तद्वषट्कारयेति।** इस वाक्य में देवदध अर्थात् देव के चार भाग बताये हैं और वे उपस्तरण और अभिधारणी के साथ ही हैं। और इन चारों को ही देवदध कहा गया है। अतः उपस्तरण और अभिधारण के साथ चार अवदान हैं, यह समझना चाहिए।

उपांशुयाग में भी चतुरवत्त की आवश्यकता है, इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्षसूत्र—

साप्तदश्यवन्नियम्येत ।३३।

पदार्थ—(सप्दश्यवत्) साप्तदश्य के तुल्य (नियम्येत) नियम हो सकता है।

भावार्थ—सप्तदश सामिधेनी का विकृति यागों में जैसा नियम है वैसे उपांशुयाज में चतुरवत्त का नियम हो सकता है अर्थात् जहां उपस्तरण

और अभिधारण हो। वहां ही चतुरवत्त का नियम हो सकता है, उपांशु याग में उसका नियम नहीं।

सिद्धान्तसूत्र—

हविषो वा गुणभूतत्वात् तथा भूतविवक्षा स्यात् ।३४।

पदार्थ—(वा) अथवा (हविषः गुणभूतत्वात्) हविष् विधेय होने से (यथाभूतविवक्षा स्यात्) होम सामान्य में चतुरवत्त हविष् का गुणत्व विवक्षा है।

भावार्थ—होम में चतुरवत्त गुण का विधान है, वह उपांशुयाज में है। चार भाग करने उपाँशुयाग में भी विहित हैं। उपस्तरण और चतुरवत्त वाक्य में शेषभूत नहीं। "चतुरवतभूतमिह होतव्यं विवक्ष्यते नेतस्ततो वा चतुरवदातव्यम् इति तस्मादुपांशुयाजेऽपि चतुरवत्तं कर्तव्यम्। हविष के ही चार भाग कर होमने की विवक्षा है। चाहे जिससे चार अवदान नहीं करने, अतः उपांशुयाज में भी उपस्तरण और अभिधारण न होने पर भी हविष में से चार अवदान करने होते हैं। इस प्रकार शाबर भाष्य में उल्लेख है।

दर्शपूर्णमास प्रकरण में असोमयाज़ी को पुराडाश द्वय का श्रवण है वह अनुवादार्थ है।

पूर्वपक्ष—

पुरोडाशाभ्यामित्यधिकृतानां पुरोडाशयोरुपदेशस्तश्रुतित्वात् वैश्यस्तोमवत् ।३५।

पदार्थ—(पुरोडाशाभ्याम् इति) दोनों पुरोडाश में से (अधिकृतानाम्) असोमयाजियों को (पुरोडाशयोः) उक्त पुरोडाश की (उपदेशः) विधि है। (तच्छ्रुतित्वात्) स्वर्ग कामना रखनेवाले असोमयाजी विशेषणत्व से श्रुत होने से (वैश्यस्तोमवत्) वैश्यस्तोम की भांति।

भावार्थ—"पुरोडाशाभ्यामेवासोमयाजिनं याजयेद् यावेतौ आग्नेयश्चैन्द्राग्नयश्च सान्नायेन तु सोमयाजिनम् इति।" इस वाक्य से पृथक् २ पक्ष बताकर विचार किया गया है। उसमें प्रथम पक्ष यह है कि असोमयाजियों को आग्नेय और ऐन्द्राग्न पुरोडाश की विधि है। कारण कि असोमयाजी जो स्वर्ग की इच्छा रखते हैं, इस अधिकारी के विशेषण हैं। इसलिये स्वर्ग की इच्छा,

रखने वाले असोमयाजी को उक्त पुरोडाश द्वय से याग कराना चाहिये। जैसे वैश्य वैश्यस्तोम से यज्ञ करे, यहां वैश्य स्तोम यज्ञ में वैश्य को ही अधिकार है, वैसे असोमयाजी को उक्त पुरोडाश से ही यज्ञ कराना चाहिए।
अन्य पक्ष—

न त्वनित्याधिकारोऽस्ति विधेर्नित्येन सम्बन्ध-स्तस्माद् वाक्यशेषत्वम् ।३६।

पदार्थ—(न तु अनित्याधिकारः अस्ति) स्वर्ग काम का अधिकार नहीं, कारण कि (विधेः नित्येन सम्बन्धः) विधि का नित्य के साथ सम्वन्ध है (तस्माद् अवाक्यशेषत्वम्) अतः वह वाक्य का शेष नहीं।

भावार्थ—स्वर्गकाम का अधिकार नहीं, कारण कि पुरोडाश करणक याग का सम्बन्ध नित्य दर्शपूर्णमास के साथ है, अतः फल वाक्य के साथ सम्बन्ध न होनें से वह वाक्य का शेष नहीं। वे दोनों पुरोडाश अनित्य सोमयाजी के लिये विधीयमान हैं, यह कहना अनुचित है। ये पुरोडाश तो दर्शपूर्णमास के विधान से ही विहित हैं।

सति च नैकदेशेन कर्तुः प्रधानभूतत्वात् ।३७।

पदार्थ—(सति च) अधिकशेष होने से (न) पुरोडाश का असोमयाजी कर्ता के साथ में सम्बन्ध नहीं हो सकता (कर्तुः प्रधानभूतत्वात्) प्रधानभूत कर्ता का निर्देश होता है। फल के बिना प्रधानभाव नहीं हो सकता (एकदेशेन) दर्शपूर्णमास के एक देशभूत पुरोडाश भी फल के साधक नहीं हो सकते।

भावार्थ—अधिकार का शेष हो तो पुरोडाश का सम्बन्ध असोमयाजी कर्ता के साथ नहीं हो सकता और दर्शपूर्णमास के एक देशभूत पुरोडाश फल का साधक नहीं हो सकता, तथा फल के बिना प्रधानभाव भी नहीं बन सकता। 'तस्मादपि नास्त्यधिकारशेषः' इससे भी अधिकार का शेष नहीं। इस प्रकार शाबर भाष्य में कथन है।

कृत्स्नत्वात् तु तथा स्तोमे ।३८।

पदार्थ—(कर्तुः स्यात्) गौण कर्ता का यह कर्म है (इति चेत्) जो ऐसा शंका हो तो।

भावार्थ—ऋत्विज् रूप कर्ता का विधान है। इसलिये कि जो असोम-याजी हो उसके पास ऋत्विज् को उक्त पुरोडाश द्वय से याग कराना चाहिये।

न गुणार्थत्वात् प्राप्ते न चोपदेशार्थः ।४०।

पदार्थ—(न) नहीं (गुणार्थत्वात्) कर्मानुष्ठान के लिये (प्राप्ते) यह तो प्राप्त ही था (न च उपदेशार्थः) अतः उनका उपदेश व्यर्थ है।

भावार्थ—ऋत्विज् तो कर्म के अनुष्ठान के लिये प्राप्त ही है, उनका पुनः विधान करना व्यर्थ है। अतः ये दोनों पुरोडाश रूप करण से असोमयाजी याग करें, ऐसा एक पृथक् ही कर्म का विधान मानना ठीक है। ऐसा, अन्य पक्ष का अभिप्राय ज्ञात होता है।

कर्मणोस्तु प्रकरणे तन्न्यायत्वाद् गुणानां लिंगेन कालशास्त्रं स्यात् ।४१।

पदार्थ—(कर्मणोः तु) पर पुरोडाश और याग रूप कर्म के (प्रकरणे) प्रकरण में (गुणानां) गुणों को (लिंगेन) असोमयाजी प्रयोग रूप लिंग से लक्षित (कालशास्त्रम्) कालशास्त्र (स्यात्) होता है।

भावार्थ—पुरोडाश और याग के प्रकरण में असोमयाजी पद के प्रयोग से समय ही लक्षित होता है। सोमयाग के समय से भिन्न समय में दर्श और पूर्णमास में उक्त दोनों पुरोडाश होते हैं। अतः भिन्न कर्म न मानना, ऐसा इस सूत्र का अभिप्राय है।

यदि तु सान्नाय्यं सोमयाजिनो न ताभ्यां समवायोऽस्ति विभक्तकालत्वात् ।४२।

पदार्थ—(यदि तु) परन्तु जो (सान्नाय्यं सोमयाजिनः) सान्नाय हविष् सोमयाजी के लिये हो, वह (न ताभ्यां समवायः अस्ति) उस पुरोडाश के साथ सम्बन्ध नहीं हो सकता (विभक्तकालत्वात्) पृथक् काल होने से।

भावार्थ—यदि सान्नाय हविष् सोमयाजी के लिये ही हो तो उक्त दोनों पुरोडाशों का सम्बन्ध ही सोमयाजी के साथ नहीं हो सकता। कारण कि पुरोडाश का समय पूर्वसिद्ध है। अतः पुरोडाश करणक होम पृथक् कर्म है, ऐसा मानना चाहिये।

अपि वा विहितत्वाद् गुणार्थायां पुनः श्रुतौ संदेहे श्रुतिर्देवतार्था स्याद् यथाऽनभिप्रेतस्तथाऽऽग्नेयो दर्शनादेकदेवते ।४३।

पदार्थ—(अपि वा) अन्य पक्ष सूचित करता है (विहितत्वात्) दर्श और पूर्णमास दोनों में आग्नेय पुरोडाश विहित है (गुणार्थीयां पुनः श्रुतौ संदेहे) देवता रूप गुणार्थक श्रुति में पुनः श्रुति किस लिये ? इस संदेह में (द्विदेवतार्था स्यात्) द्विदेवताक विधान के लिये है। (यथा अनभिप्रेतः तथा आग्नेयः दर्शनात् एक देवते) एक देवताक अग्नि में आग्नेय केवल अनुवाद रूप है।

भावार्थ—आग्नेय पुरोडाश एक देवताक है। पौर्णमास याग में द्विदेवताक विधान के लिये यह वचन है। ऐन्द्राग्न पुरोडाश कहने से इन्द्र और अग्नि दो देवता प्रतीत होते हैं इस विधान के लिये पुनः श्रुति है।

विधिं तु बादरायणः ।४४।

पदार्थ—(तु) पर (बादरायणः) बादरायण आचार्य (विधिम्) काल विधि को मानते हैं।

भावार्थ—आग्नेय पुरोडाश अनुवाद के लिये है, और ऐन्द्राग्न पुरोडाशविधान के लिये है ऐसा बादरायण आचार्य नहीं मानते। वे तो दोनों के लिये काल का ही विधान मानते हैं।

प्रतिषिद्धविज्ञानाद्वा ।४५।

पदार्थ—(वा) अथवा (प्रतिषिद्धविज्ञानात्) सान्नाय के प्रतिषेध का ज्ञान होने से।

भावार्थ—सोमयाजी के सान्नाय्य के विधान के लिये ही यह वाक्य है। जो असोमयाजी है, उसके लिये पुरोडाश का विधान है। सोमयाजी को ऐन्द्राग्न पुरोडाश का विधान नहीं। देखो—भाष्य-अतो नैन्द्राग्नस्यापि विधिः। यह प्रतिषेध बताता है कि सान्नाय्य विधि के शेष रूप यह अर्थवाद है।

तथा चान्यार्थदर्शनम् ।४६।

पदार्थ—(तथा च) और इस प्रकार (अन्यार्थदर्शनम्) अन्य अर्थ भी यही बताता है।

भावार्थ—अन्य अर्थ भी यही बताता है कि यह कोई अन्य कर्म नहीं। पर दर्शपूर्णमास का ही अंग है। जो पृथक् माना जावे तो दर्शपूर्णमास में अपेक्षित सत्ताईस आहुतियों से अधिक हो जाय। देखो, शाबर भाष्य।

उपांशु याग ध्रौवाज्य द्रव्यक है। इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष—

उपांशुयाजमन्तरा यजतीति हविर्लिङ्गा-

श्रुतित्वाद् यथाकामो प्रतीयेत ।४७।

पदार्थ—(उपांशुयाजम् अन्तरा यजति इति) इस वाक्य से उपांशु याज का विधान होता है पर (हविर्लिंगाश्रुतित्वात्) किसी हवि विशेष का श्रवण न होने से (यथाकामो प्रतीयेत) स्वयं जो इच्छा करे उसे द्रव्य से उपांशु याज करना चाहिए।

भवार्थ– पौर्णमासी याग के बीच में उपांशु याग करने का विधान है। परन्तु किस द्रव्य से याग करना, यह नहीं बताया। अतः किसी भी द्रव्य से उपांशु याग करना ऐसा प्रतीत होता है (जो आज्य द्रव्य श्रुत है पर उसमें यह शंका है कि किसी भी आज्य से उपांशु याग करना या किसी विशेष आज्य से ? विशेष का प्रमाण न होने से चाहे जिस आज्य से उपांशु याग हो सकता है, ऐसा पूर्वपक्ष का मत है।

सिद्धान्त पक्ष—

ध्रौवाद्वा सर्वसंयोगात् ।४८।

पदार्थ—(वा) अथवा (ध्रौवात्) ध्रुवनामक पात्रस्थ आज्य से ही उपांशु याग करना। 'सर्वस्मै वा एतद् यज्ञाय गृह्यते यद् ध्रुवायाम् आज्यम्' इस वाक्य में सर्वशब्द का प्रयोग है, इसलिये सर्वयज्ञ में ध्रुवाज्य इष्ट है।

पूर्वपक्ष—

तद्वच्च देवतायां स्यात् ।४९।

पदार्थ—(च) और (तद्वत्) उसी प्रकार (देवतायाम्) देवता में भी है।

पदार्थ—उपांशु याज किस देवता के लिये है, उसका भी विधान नहीं, अतः चाहे जिसे उद्दिष्ट कर उपाँशु याज करना, ऐसा प्रतीत होता है। याग का स्वरूप ही द्रव्य और देवता होता है, अतः देवता, प्रत्यक्ष विहित न हो तो उसकी भी कल्पना करनी चाहिये।

सिद्धान्त सूत्र—

तान्त्रीणां प्रकरणात् ।५०।

पदार्थ—(प्रकरणात्) दर्शपूर्णमास में पठित जो याग हो, उस याग की देवता तंत्र में अर्थात् प्रकरण की देवता ही अवान्तर याग की है ऐसा समझना। दर्शपूर्णमास प्रकरण में जितनी देवता विहित हैं उनमें किसी एक देवता को उद्दिष्ट कर उपांशु याग करना (विष्णुरुपांशुयष्टव्यः।) उपांशु याग विष्णु को उद्दिष्ट कर करना, यह तो मात्र अर्थवाद है। उपांशु याग की देवता विष्णु,

प्रजापति और अग्नीषोम इन तीन में से कोई एक विकल्प से होती हैं और यह उपांशु याग पौर्णमासी में ही कर्त्तव्य है—

पूर्वपक्ष सूत्र—

धर्माद् वा स्यात् प्रजापतिः ।५१।

पदार्थ—(वा) पूर्वपक्ष सूचित करता है (धर्मात् प्रजापतिः स्यात्) धर्म से प्रजापति है—

भावार्थ—उपांशुत्व और प्रजापति का भी धर्म है अतः उपांशु याग की देवता प्रजापति है।

देवतायास्त्वनिर्वचनं तत्र शब्दस्येह मृदुत्वं तस्मादिहाधिकारेण ।५२।

पदार्थ—(तु) पर (तत्र देवतायाः अनिर्वचनम्) वहाँ देवता का कथन नहीं (तत्र शब्दस्य इह मृदुत्वम्) प्राजापत्य याग में उपांशु धर्म वाचक शब्द का भी स्पष्ट श्रवण नहीं (तस्मात्) अतः शब्दसादृश्य न होने से (इह) उपांशु याग में (अधिकारेण) मुख्य देवता अग्नि का ही स्वामित्व है।

भावार्थ—जहाँ उपांशु याग का विधान है वहाँ उसकी देवता का कथन नहीं। प्राजापत्य याग में उपांशु धर्म वाचक शब्द का भी स्पष्ट श्रवण नहीं, अतः उपांशु याग की देवता अग्नि है, कारण कि **'अग्निरग्ने प्रथमो देवतानाम्'** सभी देवताओं में अग्नि मुख्य है। अतः यदि याग में देवता का स्पष्ट विधान न हो तो वहाँ अग्नि देवता ही समझना चाहिए।

विष्णुर्वा स्याद्धोत्राम्नानादमावास्या हविश्च स्याद्धौत्रस्य तत्र दर्शनात् ।५३।

पदार्थ—'(वा) अथवा (विष्णुः स्यात्) उपांशुयाग का देवता विष्णु है (होत्राम्नानात्) हात्रका आम्नान होने से (अमावास्या हविः च स्यात्) अमावस्या का हविष् है (होत्रस्य तत्र दर्शनात्) अमावस्या याग के समीप हविष् का वहाँ दर्शन होता है।

भावार्थ—उपांशु याग की देवता विष्णु है। **इदं विष्णुः प्रतद्विष्णुः** यह याज्या और पुरोवाक्य के दो मंत्रों का आम्नान है। हविष् भी अमावस्या का है। कारण कि अमावस्या याग के समीप ही उसका श्रवण है।

सिद्धान्त सूत्र—

अपि वा पौर्णमास्यां स्यात् प्रधानशब्दसंयोगात्

गुणत्वान्मन्त्रो यथा प्रधानं स्यात् ।५४।

पदार्थ—(अपि वा) अथवा (पौर्णमास्याम् स्यात्) पौर्णमासी याग में उपांशुयाग होता है। (प्रधानशब्दसंयोगात्) मुख्य शब्द का उसके साथ श्रवण होने से (गुणत्वात् मन्त्रः) मंत्र गुणरूप होता है। (यथाप्रधानं स्यात्) प्रधान के अनुकरण पर कर्म करना चाहिए।

भावार्थ—पौर्णमासी याग में ही उपांशु याग होता है। अमावस्या में नहीं। कारण कि **'पौर्णमास्यां यजेरन्'** यहाँ पौर्णमासी शब्द का स्पष्ट सम्बन्ध है। अतः जहाँ विधि विहित कर्म हो, वहीं मंत्र होना चाहिये। पौर्णमासी में कर्म विहित है अतः मंत्र भी वहीं होना चाहिये। इस कारण से **'विष्णुरुपांशुयष्टव्यः'** यह मंत्र पौर्णमासी के साथ सम्बन्ध रखता है।

आनन्तर्यं च सान्नाय्यस्य पुरोडाशेन दर्शयत्यमावास्याविकारे ।५५।

पदार्थ—(अमावास्या विकारे) अमावास्या का विकृतियाग जो साकंप्रस्थानीय है उसमें (पुरोडाशेन) पुरोडाश के पीछे (सांनायस्य आनन्तर्यम् दर्शयति च) सान्नाय का आनन्तर्य वताते हैं।

भावार्थ—**'अमावस्याविकारे साकम्प्रस्थानीये आग्नेयेन पुरोडाशेन प्रचर्य सह कुम्भीभिराक्रमन्नाह'** इस वाक्य से पुरोडाश के पीछे सांनाय को बताता है, उपांशु याग को नहीं, अतः अमावस्या में उपांशु याग का अनुष्ठान नहीं।

अग्नीषोमविधानात्तु पौर्णमास्यामुभयत्र विधीयते ।५६।

पदार्थ—(तु) यह शब्द पूर्वपक्ष की व्यावृत्ति सूचित करता है। (अग्नीषोम विधानात्) पौर्णमासी याग में अग्नीषोम देवता का विधान है (पौर्णमास्याम्) पौर्णमासी में भी उपांशुयाग है (उभयत्र च विधीयते) पौर्णमासी और अमावस्या दोनों में उपांशुयाग कर्त्तव्य है।

भावार्थ—पौर्णमासी और अमावस्या इन दोनों में उपांशु याग कर्त्तव्य है। पौर्णमासी में अग्नीषोमीय उपांशुयाग है और अमावस्मा में विष्णुदेवताक उपांशुयाग है, ऐसा समझना चाहिये। **'तावब्रूताम् अग्नीषोमौ पौर्णमास्यां नौ यजेरन्'** इस वाक्य से पौर्णमासी में अग्नीषोमीय देवता का विधान है। यह कोई उत्पत्ति विधि नहीं।

प्रतिषिध्य विधानाद् वा विष्णुः समानदेशः स्यात् ।५७।

पदार्थ—(वा प्रतिषिध्य विधानात्) प्रतिषेध कर विधान किया होने से (विष्णुः समानदेशः स्यात्) विष्णु समानदेश है ।

भावार्थ—अमावस्या का वर्जन कर पौर्णमासी में ही उपांशुयाग का विधान किया है—'**आज्यस्यैव नावुपांशु पौर्णमास्यां यजन्निति प्रकृत्य समाम्नायते जामि वा एतद्यज्ञस्य क्रियते यदन्वञ्चौ पुरोडाशौ उपांशुयाजमन्तरा यजतीति**' इस वाक्य से उपांशु याग का सम्बन्ध पौर्णमासी के साथ ही समझना चाहिए । '**विष्णुरुपांशु यष्टव्योऽजामित्वाय प्रजापतिरुपांशु यष्टव्योऽजामित्वाय अग्नीषोमौ उपांशु यष्टव्यौ अजामित्वाय**' इस वाक्य से भी पौर्णमासी में उपांशु याज है और विष्णु, प्रजापति और अग्नीषोम देवता भी उसमें ही हैं, ऐसा समझा जाता है ।

तथा चान्यार्थदर्शनम् ।५८।

पदार्थ—(तथा च) और उसी प्रकार (अन्यार्थदर्शनम्) अन्य अर्थ भी इसी अर्थ को वताते हैं ।

भावार्थ—पौर्णमासी में चौदह आहुति होमी जाती हैं और अमावस्या में तेरह आहुतियाँ । जो अमावस्या में उपांशु याग हो तो अमावस्या में चौदह आहुतियाँ हो जायें, इसलिये उपांशु याग का सम्बन्ध अमावस्या के साथ नहीं है ।

न वाऽनंगं सकृच्छ्रुतावुभयत्र विधीयेताऽसम्बन्धात् ।५९।

पदार्थ—(वा) अथवा (सकृत् श्रुतौ) एक समय श्रुत हुआ (अनंगम्) प्रधान (उभयत्र न विधीयेत) दोनों स्थानों पर विहित नहीं हो सकता (असम्बन्धात्) सम्वन्ध न होने से ।

भावार्थ—जो प्रधान हो और उसका एक ही समय श्रवण हो तो उसका दोनों स्थान में विधान नहीं हो सकता, कारण कि परस्पर दोनों का सम्बन्ध नहीं होता, अतः उपांशु याग का पौर्णमासी अमावस्या दोनों में सम्बन्ध नहीं, पर अमावस्या में ही है ।

विकारे चाश्रुतित्वात् ।६०।

पदार्थ—(च) और (विकारे) अमावस्या के विकृति याग साकं-

प्रस्थानीय में (अश्रुतित्वात्) श्रुत न होने से।

भावार्थ—अमावस्या के विकृतियाग में उपांशुयाग का श्रवण नहीं होता, अतः अमावस्या में उपांशुयाग कर्त्तव्य नहीं।

एक पुरोडाश वाली पौर्णमासी में भी उपांशुयाग कर्त्तव्य है—इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष सूत्र—

द्विपुरोडाशायां स्यादन्तरालगुणार्थत्वात् ।६१।

पदार्थ—(द्विपुरोडाशायाम्) दो पुरोडाशवाली पौर्णमासी में (स्यात्) उपांशु याग होता है। (अन्तराल गुणार्थत्वात्) अन्तराल रूप गुण का विधान होने से।

भावार्थ—**पौर्णमास्यां सोमादूर्ध्वं पुरोडाशद्वयम्, प्रागेकः** सोमयाग के पीछे पौर्णमासी याग में दो पुरोडाश होते हैं और उससे पहले के पौर्णमासी याग में एक पुरोडाश होता है। इसमें दो पुरोडाशवाली पौर्णमासी में उपांशु याग होता है। कारण कि अन्तराल अर्थात् मध्य गुणरूप में विहित है। एक पुरोडाश वाली पौर्णमासी में अन्तराल सम्भव नहीं होता।

अजामिकरणार्थत्वाच्च ।६२।

पदार्थ—(च) और (अजामिकरणार्थत्वात्) अजामिकरणार्थ के लिये।

भावार्थ—**'जामि सादृश्यम्'** शाबर भाष्य में 'जामि' शब्द का अर्थ सादृश्य किया है। अतः अजामित्वकरण अर्थात् असादृश्यकरण के लिये भी द्विपुरोडाश वाले पौर्णमासी में उपांशु याग करना। **'पुरोडाशयोः सादृश्यदोष उच्यते'** दो पुरोडाश में सादृश्य दोष कहते हैं। **'यत्र दोषस्तत्र दोषविघातार्थेन भवितव्यम्'** जहाँ दोष हो वहाँ दोष का विघात भी होना चाहिये। अतः द्विपुरोडाश वाली पौर्णमासी में उपांशु याग करना।

तदर्थमिति चेन्न तत्प्रधानत्वात् ।६३।

पदार्थ—(तदर्थम् इति चेत् न) अन्तरालत्व के लिये है, जो ऐसा कहा जाये तो नहीं (तत्प्रधानत्वात्) पौर्णमासी प्रधान होने से।

भावार्थ—अन्तराल गुण है। पौर्णमासी प्रधान है। उपांशु याग पौर्णमासी का अवयव है। उपांशु याग का अन्तराल गुण है। अतः अन्तराल न हो तो भी एक पुरोडाश वाली पौर्णमासी में उपांशु याग कर्त्तव्य है।

अशिष्टेन च सम्बन्धात् ।६४।

पदार्थ—(च) और (अशिष्टेन) अश्रुत अन्तराल अर्थ के साथ (सम्ब-

न्धात्) उपांशु याग का सम्बन्ध करना चाहिये।

भावार्थ—उपांशु याग में अन्तराल गुण का सम्बन्ध होता है, पर अन्तराल गुणत्व से विधीयमान है ऐसा देखने में नहीं आता। अतः जहाँ अन्तराल न हो, ऐसी एक पुरोडाशवाली पौर्णमासी में भी उपांशु याग होता है।

उत्पत्तेस्तु निवेशः स्यात् गुणस्यानुपरोधेनार्थस्य विद्यमानत्वाद् विधानात् अर्थान्तरस्य नैमित्तिकत्वात्तदभावेऽश्रुतौ स्यात् ।६५।

पदार्थ—(तु) यह शब्द उपर्युक्त पूर्वपक्ष की व्यावृत्ति करता है (उत्पत्तेः निवेशः स्यात्) उत्पत्ति वाक्य से निवेश है। अतः (गुणस्य अनुपरोधेन) गुण का उपरोध किये बिना अन्तराल का निषेध होता है (अर्थस्य विद्यमानत्वात्) अन्तराल अर्थं द्विपुरोडाश में है। (विधानात्) विधान होने से (नैमित्तिकत्वात्) अन्तराल रूप निमित्त हो वहाँ ही उपांशु याग होता है (तत् अभावे) जहाँ अन्तराल न हो वहाँ उपांशु याग न होना चाहिए। (अश्रुतौ स्यात्) जो द्विपुरोडाश वाली पौर्णमासी न हो तो एक पुरोडाश वाली में उपांशु याज हो पर द्विपुरोडाश वाली पौर्णमासी है, अतः एक पुरोडाश वाली पौर्णमासी में उपांशु याज नहीं।

भावार्थ—अन्तराल गुणत्व से ही विधीयमान है। **'उपांशुयाजमन्तरा यजति'** इस उत्पत्तिवाक्य से अन्तराल गुणत्व से विहित है। जो द्विपुरोडाश वाली पौर्णमासी न होती तो एक पुरोडाशवाली पौर्णमासी में उपांशु याग होता, पर जब द्विपुरोडाश वाली पौर्णमासी है तब पीछे एक पुरोडाश वाली पौर्णमासी में उपांशु याज करना यह विधान विरुद्ध है।

उभयोस्तु विधानात् ।६६।

पदार्थ—(तु) उक्त पक्ष का निराकरण करता है (उभयोः) दोनों पौर्णमासी में उपांशु याज करना (विधानात्) विधान होने से।

भावार्थ—**'आज्यस्यैव नावुपांशु पौर्णमास्यां यजन्निति'** इस वाक्य में एक पुरोडाश वाली पौर्णमासी में भी उपांशु याग का विधान करते हैं। पौर्णमासी में उपांशु याग करना चाहिये। इसलिये एक पुरोडाश वाली पौर्णमासी में भी उपांशु याग करना विहित है।

गुणानां च परार्थत्वादुपवेषवद्यदेति

स्यात् ।६७।

पदार्थ—(च) और (गुणानां परार्थत्वात्) गुण प्रधान के लिये ही होते हैं, अतः (उपवेषवत्) उपवेष के तुल्य है (यदा इति स्यात्) इसलिये यह गुण हो या न हो तो भी प्रधान कार्य होता है।

भावार्थ—गुण प्रधान अर्थात् मुख्य कर्म के लिये होता है। देवदत्त नामक पुरुष राजा के लिये भोजन बनाता है, तो क्या देवदत्त न हो तो, दूसरा व्यक्ति भोजन न बनायेगा ? अर्थात् जरूर बनायेगा। गुण के अभाव में प्रधान का कार्य रुकता नहीं। उपवेष से कपालों का उपधान करना होता है, पर यदि उपवेष न हो तो दूसरे से कपालों का उपधान करना। उपवेष के अभाव से कपालोपधान की निवृत्ति नहीं होती। अतः अन्तराल हो तो भी उपांशु याग और न हो तो भी उपांशु याग होता ही है।

अनपायश्च कालस्य लक्षणं हि पुरोडाशौ ।६८।

पदार्थ—(च) और (कालस्य लक्षणम् हि पुरोडाशौ) दोनों पुरोडाश काल को लक्षित करते हैं। (अनपायः) एक पुरोडाश में भी लक्षण है।

भावार्थ—दोनों पुरोडाश उपांशु याग का काल बताते हैं। इसलिये कि दो पुरोडाशों के बीच का जो समय है वह उपांशु याग करने का समय है। जो प्रथम पुरोडाश याग कर पीछे तुरन्त उपांशु याग न किया जा सके और दूसरा पुरोडाश याग करे तो जामिता नामक दोष लगता है ऐसा **'जामि वा एतद्यज्ञस्य क्रियते यदन्वञ्चौ पुरोडाशा उपांशुयाजमन्तरा यजति'** इस वाक्य से बताया गया है। इस दोष का परिहार बीच में उपांशु याग करने से दूर होता है, ऐसा बताया है। इस उपांशु याग के समय का लक्षण एक पुरोडाश वाली पौर्णमासी में भी है। **तस्मादुत्तरः स एव कालः, योऽसावन्तरालेन लक्षितः। यथा नागवेलायामागन्तव्यम्। शंखवेलायामागन्तव्यम्। पटहवेलायामागन्तव्यम्।** जैसे कि नाग के समय आना, शंखबजाने के समय आना, पटह (ढ़ोल) बजाने के समय आना। उपर्युक्त से यह भी समझा जाता है कि जिस ग्राम में शंख आदि न बजते हों उस ग्राम में भी वही समय आने का है। इसी प्रकार एक पुरोडाश याग जो पूर्णिमा में हो उसमें भी उपांशु याग का समय वही है।

प्रशंसार्थमजामित्वे यथाऽमृतार्थत्वम् ।६९।

पदार्थ—(अजामित्वम्) आगे जो अजामित्व के लिये उपांशु याग है (प्रशंसार्थम्) वह तो प्रशंसा के लिये है (यथा अमृतार्थम्) जैसे अमृत के लिये

आदि कहा गया है।

भावार्थ—आगे जो उपांशु याग अजामित्व के लिये है, ऐसा कहा गया है वह तो मात्र अर्थवाद है। उपांशु याग तो काल का लक्षक है। 'यदुपस्तृणाति अभिधारयति अमृताहुतिमेवैनां करोति' जो आहुति का उपस्तरण और अभिधारण करता है, वह अमृत है। इस स्थान पर आहुति को अमृत कहना यह मात्र प्रशंसा है, वह उपांशु के लिये भी समझना चाहिए।

इति मीमांसादर्शनभाष्येंदशमोऽध्यायः॥ १०।८॥

अथ मीमांसाभाष्ये एकादशा-ध्यायस्य प्रथमः पादः

दर्शपूर्ण मास में आग्नेय आदि जो समुचित याग हैं वे सभी मिलकर स्वर्ग रूप फल को उत्पन्न करते हैं—

सिद्धान्त सूत्र—

प्रयोजनेनाभिसम्बन्धात्पृथक्सतां ततः स्या-देककर्म्यमेकशब्दाभिसम्बन्धात् ।१।

पदार्थ—(प्रयोजनाभिसम्बन्धात्) सभी मिलकर फल के साथ सम्बन्ध रखने से (पृथक्सताम्) पृथक् पृथक् आग्नेय आदि याग भी (एककर्म्यम्) एक फल को उत्पन्न करते है। (एकशब्दाभिसम्बन्धात्) इन छः यागों के समुदाय का वाचक शब्द एक ही है तथा वह है—दर्शपूर्णमास।

भावार्थ—मीमांसा में तंत्र तथा आवाप में दो शब्द परिभाषिक हैं। उनका अर्थ यहाँ समझना आवश्यक है।

> साधारणं भवेत् तन्त्रं परार्थे त्वप्रयोजकः।
> एवमेव प्रसंगः स्याद्विद्यमाने स्वके विधौ ॥

जो एक उत्पन्न होकर एक साथ अधिक का उपकार करना है वह 'तंत्र' कहलाता है जैसे प्रदीप। प्रदीप एक ही समय उत्पन्न होकर एक साथ बहुतों को प्रकाश देता है। और जो एक समय उत्पन्न होकर अधिक का उपकार न कर सके पर बार-बार उत्पन्न होकर उपकारक होता है उसे 'आवाप' कहते हैं। जैसे कि बहुतों को दिया जाने वाला भोजन। यहाँ भोजन की आवृत्ति करनी होती है। जो भोजन अर्थात् अन्नग्रास 'अ' नामक मनुष्य का उपकार करता है, वही ग्रास 'ब' नामक मनुष्य का उपकार नहीं कर सकता। जो 'ब' को तृप्ति देनी हो तो दूसरा ग्रास लेना चाहिए। इस प्रकार भोजन में आवृत्ति करनी पड़ती है। अतः ऐसे पदार्थों को आवाप कहा जाता है।

अब दर्श पूर्णमास में जो आग्नेय आदि छः याग हैं वे तंत्र स्थानीय हैं,

या आवाप स्थानीय ? जो तंत्र माने जावें तो दर्श में प्रधान त्रिक का एक ही समय अनुष्ठान करना चाहिए। और जो आवाप हो तो तीन यागों का तीन बार अनुष्ठान करना चाहिये। इसमें सिद्धान्त यह है कि उक्त छः याग तंत्र रूप हैं, अर्थात् वे एक समय अनुष्ठित होकर सामान्य फल—स्वर्ग को उत्पन्न करते हैं। प्रत्येक याग के पृथक् २ फल नहीं हैं। आग्नेय आदि छः याग 'दर्श-पूर्णमास रूप एक शब्द से अभिधेय होते हैं। **'दर्शपूर्णमासाभ्यां स्वर्गकामो यजेत'** दर्श और पूर्णमास—ये दोनों शब्द समुदायवाचक हैं। इसलिये कि तीन यागों का वाचक दर्श शब्द तथा अन्य तीन यागों का वाचक पूर्णमास शब्द है। **'ग्रामेण खन्यते कूपः'** यहाँ ग्राम शब्द समुदाय वाचक है और इससे निर्मित कूप साधारण है और वह तमाम ग्राम का उपकारक है। एक व्यक्ति अपने लिये कूप खुदावे तो वह व्यक्तिगत है, साधारण नहीं, और वह एक ही कुटुम्ब का उपकारक है। दर्श और पूर्णमास ये ग्राम स्थानीय समुदाय वाचक हैं और तज्जन्य फल एक ही है और वह सर्वयागों का साधारण है।

शेषवद् वा प्रयोजनं प्रतिकर्म विभज्यते ।२।

पदार्थ—(वा) अथवा (शेषवत्) शेष के तुल्य (प्रयोजनम्) प्रयोजन—फल (प्रतिकर्म विभज्यते) प्रत्येक कर्म के अनुसार पृथक्-पृथक् भी होता है।

भावार्थ—समुदाय शब्द से जो वाक्य हो अथवा समुदाय वाचक शब्द से पदार्थ का ग्रहण कर उसे उद्दिष्ट कर जो कुछ किया जाय वह समुदाय पर ही घटित होता है ऐसा नियम नहीं। समुदाय गत एक-एक व्यक्ति पर भी लागू होती है। जैसे कि **'गणाय स्नानं'** तमाम जनसमुदाय का जो स्नान से सम्बन्ध बताया है, वह समुदाय पर लागू नहीं होता, अपितु समुदाय गत व्यक्ति पर लागू होता है। अतः जैसे यहाँ समुदाय को उद्दिष्ट कर कहा गया स्नान व्यक्तियों पर लागू होता है वैसे दर्श और पूर्णमास से जो स्वर्ग रूप फल बताया गया है वह दर्शान्तर्गत और पूर्णमासान्तर्गत प्रत्येक याग पर कैसे लागू न हो ? अर्थात् जितने याग उतने फल मानने चाहियें। ऐसा यहाँ पूर्वपक्षवादी का अभिप्राय ज्ञात होता है। अर्थात् तन्त्र रूप में नहीं, पर आवाप रूप में है।

अविधानं तु नैवं स्यात् ।३।

पदार्थ—(तु) पूर्वोक्त दोष को दूर करता है। (अविधानम्) शेष और शेषी का साम्यरूप विधान नहीं (न एवं स्यात्) अतः ऐसा नहीं कहलाता।

भावार्थ—शेष और शेषी का एक रूप विधान नहीं अर्थात् जिस

समुदाय में साहित्य विवक्षित हो वहाँ विधीयमान कर्म समुदाय पर लागू होता है और जहाँ साहित्य विवक्षित न हो वहां समुदायी पर लागू होता है। 'ब्राह्मणगणं पूजय' अथवा 'गणायस्नानं' यहां साहित्य विवक्षित नहीं, अतः पूजा और स्नान समुदायियों पर लागू होता है, परन्तु दर्श और पूर्णमास में तो साहित्य विवक्षित है, इसलिये जो स्वर्गरूप फल साधन रूप में बताया गया है वह छहों यागों से ही जन्य होता है ऐसा समझना चाहिये।

शेषस्य हि परार्थत्वाद्विधानाद् प्रतिप्रधानभावः स्यात् ।४।

पदार्थ—(हि) कारण कि (शेषस्य परार्थत्वात्) जो शेष होता है वह परार्थ होता है अर्थात् प्रधान के लिये होता है। (विधानात्) विधान होने से शेष है। अतः (प्रतिप्रधानभावः स्यात्) प्रत्येक प्रधान में अंग की आवृत्ति होती है।

भावार्थ—फल के लिये याग शेष है। कारण कि फल को उद्दिष्ट कर याग का विधान होता है। जहां विधीयमानत्व होता है वह शेष कहलाता है। याग में विधीयमानत्व है अतः यही शेष है। इससे छहों याग रूप शेषों का एक स्वर्गरूप फल है।

सभी अंग मिलकर कार्य उत्पन्न करते हैं—इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष—

अंगानां तु शब्दभेदात् क्रतुवत् स्यात् फलान्यत्वम् ।५।

पदार्थ—(तु) पूर्वपक्ष सूचित करता है (क्रतुवत्) क्रतु के तुल्य (अंगानां फलान्यत्वम् स्यात्) अंगों के फल पृथक्-पृथक् होते हैं। (शब्दभेदात्) शब्दों का भेद होने से।

भावार्थ—'ऐन्द्राग्नमेकादशकपालं निर्वपेत् प्रजाकामः। ऐन्द्रं चरुं निर्वपेत् पशुकामः।' इन दोनों क्रतुओं का फल पृथक् पृथक् है। अतः जैसे क्रतुओं का फल भिन्न २ है वैसे अंगों के फल भी भिन्न२ होने चाहियें। 'समिधो यजति, तनूनपातं यजति' ये दोनों याग हैं, इनके फल पृथक् २ होने चाहिये। दोनों के शब्द भी भिन्न हैं। पुनः एक अंग दूसरे अंग की आकांक्षा भी नहीं रखता, अतः अंगों के फल भिन्न २ होने चाहिय।

सिद्धान्त सूत्र—

अर्थभेदस्तु तत्राथेहैकार्थ्यादैककर्म्यम् ।६।

पदार्थ—(तु) सिद्धान्त सूचित करता है (तत्र अर्थ भेदः) क्रतुओं में अर्थ भेद है। (अथ इह) पर यहाँ अंगों में (ऐकार्थ्यात्) प्रधान का उपकारी होने से (ऐक कर्म्यम्) एक फल जनक है।

भावार्थ—जहाँ भिन्न फल का प्रतिपादन करने वाला शब्द हो, वहाँ भिन्न फल मानना चाहियें, पर अंग तो मुख्य कर्म के सहायक होने से उनका फल एक ही है अर्थात् प्रधान कर्म का फल ही अंगों का फल होता है।

शब्दभेदान्नेति चेत् ।७।

पदार्थ—(शब्दभेदात्) शब्द भिन्न होने से अंगों का फल पृथक् २ होता है (इति चेत्) जो ऐसा माना जावे तो उसका उत्तर अगले सूत्र में है—

भावार्थ—फल वाचक शब्द चाहे न हो पर विधिवाचक तो पृथक् २ होने चाहियें, इस शंका का समाधान आगामी सूत्र में है।

कर्मार्थत्वात् प्रयोगे ताच्छब्द्यं स्यात् तदर्थत्वात् ।८।

पदार्थ—(कर्मार्थत्वम् प्रयोगे) प्रधान प्रयोग जब कहा जाय तब (ताच्छब्घम्) अंग के प्रयोग का शब्द भी जो होता है वह (तदर्थत्वात्) मुख्य प्रयोग के लिये होता है।

भावार्थ—'समिधो यजति' इत्यादि अंग वाक्य विधायक नहीं, ये तो 'दर्शपूर्णमासाभ्याम् स्वर्गं कुर्यात्' ऐसा जब बताया जाता है तब दर्श और पूर्णमास किस प्रकार करना ? यह जो आकांक्षा उत्पन्न होती है, उसे शान्त करने के लिये 'समिधो यजति' इत्यादि अंग कलाप होते हैं और ये अंग प्रधान भावना के साथ ही सम्बद्ध होते हैं। वे कोई पृथक् २ विधान नहीं होते। इस रीति से याग करना यह बताने के लिये अंग वाक्य होते हैं।

कर्तृविधेर्नानार्थत्वाद् गुणप्रधानेषु ।९।

पदार्थ—(कर्तृ विधेः) कर्ता की जो प्रधान विधि है वह (नानार्थत्वात्) भिन्नार्थक होने से (गुणप्रधानेषु) गुण और प्रधान विधि में।

भावार्थ—गुणप्रधानों में गुण विषय और प्रधान विषयक कर्ता की जो विधि है अर्थात् जो गुणानुष्ठान और प्रधानानुष्ठान है उसके उद्देश्य पृथक् २ होते हैं। अर्थात् प्रधान कर्म का उद्देश्य फल होता है और अंगों का उद्देश्य प्रधान कर्म होता है। इस प्रकार एक ही वाक्य से प्रधान कर्म और उसकी इतिकर्त्तव्यता का विधान नहीं हो सकता।

आरम्भस्य शब्दपूर्वत्वात् ।१०।

पदार्थ—(आरम्भस्य) व्यापार (शब्दपूर्वत्वात्) भावनावाचक शब्द-जन्य होने से।

भावार्त—यजेत् अर्थात् 'यागं कुर्यात् ऐसा अर्थ होता है। यह शब्द सुनते ही तीन प्रकार की आकांक्षायें उत्पन्न होती हैं। (१) क्या करना (२) किससे करना (३) किस रीति से करना, पर याग शब्द का उच्चारण करने से तीन प्रकार की आकांक्षा उत्पन्न नहीं होती। किस रीति से करना इत्थंभावाकांक्षा कहते हैं और इसका प्रतिपादन 'समिधो यजति' आदि अंग वाक्य करते हैं। जो इनका प्रतिपादन न हो तो याग किस रीति से करना, यह न समझने से आरम्भ ही नहीं कर सकते। आरम्भो व्यापारः क्रिया। इन तीनों का अर्थ एक ही है। अतः अंग प्रधान रूप कार्य से सम्बन्धित है। इनका कोई पृथक् फल नहीं होता।

दर्शपूर्णमास आदि काम्य कर्मों में सर्व अंगों का उपसंहार है—इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष—

एकेनापि समाप्येत कृतार्थत्वाद् यथा क्रत्वन्तरेषु प्राप्तेषु चोत्तरावत्स्यात् ।११।

पदार्थ—(एकेन अपि समाप्येत) एक अंग का अनुष्ठान करनें से प्रयोग समाप्त होता है (कृतार्थत्वात्) कारण, उससे कथंभाव की आकांक्षा पूरी होती है। (यथा क्रत्वन्तरेषु प्राप्तेषु) स्वर्ग साधन ज्योतिष्टोम आदि में से किसी भी याग से स्वर्ग भावना पूर्ण होती है, वैसे। (उत्तरावत् च स्यात्) उत्तर गायों को दुहनें में जैसे नियम नहीं।

भावार्थ—किही भी एक अंग का अनुष्ठान करनें से प्रयोग पूर्ण हो सकता है। अतः सभी अंगों का अनुष्ठान करने की आवश्यकता नहीं रहती। एक अंग से कथंभावाकांक्षा पूरी हो तो पीछे दूसरे अंग के अनुष्ठान की जरूरत नहीं रहती। सभी अंगों का सन्निधान है इसलिये सभी अंगों का अनुष्ठान करना ऐसा कहें तो भी नियम तो नहीं बांधा जा सकता। जितना सम्भव हो उतने अंगों का अनुष्ठान करना, सबका नहीं, जैसे कि—'सान्नाये तिस्रो वाग्यतो दोहयित्वा विसृष्टवागनन्वारभ्य तूष्णीमुत्तरा दोहयति।' सान्नायं प्रकरण में तीन गायों को सावधान होकर दुहना, पीछे अन्य गायों को दुहा जाता है। यहाँ प्रथम तीन के लिये जैसा नियम है, वैसा उनके पीछे की गायों के लिये नहीं। चाहे जितनी गायों को दुहना। इसी प्रकार यथेच्छा अंगों का अनुष्ठान करना सभी के अनुष्ठान में नियम नहीं है।

फलाभावादितिचेत् ।१२।

पदार्थ—(फलाभावात्) फल न मिलने से (इतिचेत्) जो ऐसा शंका हो तो।

भावार्थ—जो सभी अंगों का अनुष्ठान न कर सके तो स्वर्गरूप फल की सिद्धि नहीं होती। इस शंका का समाधान आगामी सूत्र में है।

न कर्मसंयोगात् प्रयोजनमशब्ददोषं स्यात् ।१३।

पदार्थ—(न) नहीं (कर्मसंयोगात्) प्रधानकर्म का ही फल के साथ सम्बन्ध होने से (प्रयोजनम्) फल (अशव्द दोषः स्यात्) किसी भी प्रकार का शब्द दोष नहीं।

भावार्थ—फल के साथ सम्बन्ध तो प्रधान कर्म का ही है, अंगों का नहीं, अतः शब्द जन्य दोष भी कतिपय अंगों का अनुष्ठान यदि न किया जा सके तो नहीं माना जायगा। जो अंगों का भी फल के साथ सम्वन्ध माना जावे तो कौन सा कर्मप्रधान है, और कौन सा अंग है, इसका अन्तर ज्ञात नहीं हो सकता।

ऐक्यशब्द्यादिति चेत् ।१४।

पदार्थ—(ऐकशब्द्यात्) एक विधि के ही विषय सभी अंग होने से सभी अंगों का अनुष्ठान होना चाहिये। (इतिचेत्) जो ऐसी शंका हो तो इसका समाधान अगले सूत्र में है।

भावार्थ—जितने अंग प्रधान कर्भ के साथ जुड़े होते हैं वे सभी एक ही विधि के विषय होते हैं, अतः सभी का अनुष्ठान होना चाहिये। किसी भी अंग के छोड़ने से प्रयोग में अंग वैकल्प आता है और विकलांग प्रयोग से फलसिद्धि नहीं होती।

नार्थपृथक्त्वात् समत्वादगुणत्वम् ।१५।

पदार्थ—(न) सभी अंगों का फल के साथ सम्बन्ध नहीं (अर्थ पृथक्त्वात्) अर्थ में पृथकत्व होने से (समत्वम्) जो सभी समान हों तो (अगुणत्वम्) अमुक कर्म गुणकर्म है, ऐसा नहीं कहा जा सकता।

भावार्थ—जो सभी कर्म फल के साथ जुड़े रहें तो अमुक कर्म गुणकर्म है यह कैसे ज्ञात हो, अतः कर्म के अर्थ में भेद है। जो कर्म फल के साथ सम्बन्ध रखता है वह प्रधान कर्म और जो कर्म प्रधानकर्म के साथ सम्वंन्ध रक्खे वह गुण कर्म। अतः सर्व अंगों का उपसंहार नहीं होता।

सिद्धान्त सूत्र—

विधेस्त्वेकश्रुतित्वात् अपर्यायविभानात् सित्य-वच्छ्रुतभूताभिसंयोगादर्थेन युगपत्प्राप्तेर्यथा-क्रमं निधीतत्वात् तस्मात् सर्वप्रयोगे प्रवृत्तिः स्यात् ।१६।

पदार्थ—(विधेः एक श्रुतित्वात्) सर्व अंगों के अनुष्ठान के बोधक की विधि एक ही होने से (अपर्याय विधानात्) बारी-बारी से विधान न होने से (नित्यश्रुतभूताभिसंयोगात्) नित्यश्रुत भावना वाचक शब्द से उत्पन्न कथं-भावाकांक्षा के साध सम्बन्ध होने से (अर्थेन युगपत्प्राप्तेः) एक साथ प्रधानकर्म के साथ अंगों का विधान होने से (यथाक्रमम्) क्रम प्रमाण से सब अंगों का अनुष्ठान करना (निवीतवत्) निवीत ऋत्विज के तुल्य (तस्मात्) अतः (सर्व प्रयोगे प्रवृत्तिः स्यात्) सर्व प्रधान प्रयोग के साध सर्व अंगों का अनुष्ठान करना चाहिये।

भावार्थ—एक हो विधि वाक्य से सर्व अंगों का बोध होता है, इसलिये समिधभजन और तनूनपात् यजन का पर्याय से विधान न होने से, भावना वाचक शब्द से कथंभावाकाँक्षा का सब अंगों के साथ सम्बन्ध होने से प्रधान कर्म के उपेकार में सर्व अंगों की न्याग्र से एक साथ प्रवृत्ति होने से सभी अंगों का अनुष्ठान करना चाहिये। इसलिये कि जिस प्रधान कर्म के साथ जो जो अंग कथंभावाकांक्षा से जुड़े हों, उन सभी का अनुष्ठान करना ही चाहिये। अंग कर्म के प्रतिपादक वाक्यों में वारी-वारी से अनुष्ठान करने का कथन नहीं है। जैसे कबूतर एक साथ चुगने के लिये उतर पड़ते हैं वैसे सभी अंग प्रधान कर्म पर उपकार करने के लिये एक साथ प्रवृत्त होते हैं। अतः सभी अंगों का अनुष्ठान करना, यही सिद्धान्त है।

तथा कर्मोपदेशः स्यात् ।१७।

पदार्थ—(तथा) वैसा करने से (कर्मोपदेशः) कर्म का उपदेश (स्नात्) चरितार्थ होता है।

भावार्थ—सभी अंगों का अनुष्ठान करने से चोदह आहुतियां पूर्णिमा में और तेरह आहुतियाँ अमावस्या में होनी चाहिए। यह उपदेश चरितार्थ होता है। यह संख्या सभी अंग अनुष्ठित हों, तभी सिद्ध हो सकती है, अन्यथा नहीं।

क्रत्वन्तरेषु पुनर्वचनम् ।१८।

पदार्थ—(क्रत्वन्तरेषु) पृथक् २ यागों में (पुनर्वचनम्) बारी-बारी से फलश्रुति है।

भावार्थ—जो पृथक् २ ऋतुओं के सम्बन्ध में कहा गया है कि किसी एक ऋतु के करने से स्वर्ग भावना हो सकती है अतः सभी ऋतु करने की आवश्यकता नहीं, यह दृष्टान्त तो विषम है। कारण कि वहां तो प्रत्येक ऋतु का फल के साथ सम्बन्ध बताया है। अतः एक ऋतु करने से फल भावना सिद्ध हो सकती है। पर अंग कर्मों का सम्बन्ध फल के साथ नहीं होता।

उत्तरास्वश्रुतित्वाद् विशेषाणां कृतार्थत्वात् स्वदोहे यथाकामी प्रतीयेत ।१९।

पदार्थ—(उत्तरासु अश्रुतित्वात्) उत्तर यागों में दोहन विहित न होने से (विशेषाणाम् कृतार्थत्वात्) वाग्विसर्ग आदि के विधान से कृतार्थ होने के कारण (स्वदोहे यथाकामी प्रतीयेत) अपने दोहन के लिये स्वयं की इच्छा के अनुसार दोहन प्रतीत होता है।

भावार्थ—गायों का दृष्टान्त भी उपयुक्त नहीं, कारण कि तीन गायों को दुहने के पीछे अवशिष्ट गायों में दोहन का विधान ही नहीं है। अतः इच्छानुसार उत्तर गायों का दोहन प्रतीत होता है, पर अंग कर्मों में तो विधान होता है। अतः उनके अनुष्ठान में इच्छा काम में नहीं आ सकती। वहाँ तो सभी अंगों का अनुष्ठान करना चाहिये। प्रयोग में अंग वैकल्प नहीं होना चाहिये।

काम्यकर्म बार बार से किये जा सकते हैं। इस अधिकरण के सूत्र—
सिद्धान्त सूत्र—

कर्मण्यारम्भभाव्यत्वात् कृषिवत् प्रत्यारम्भफलानि स्युः ।२०।

पदार्थ—(कर्मणि आरम्भभाव्यत्वात्) कर्म के अनुष्ठान से फल उत्पन्न होने से (कृषिवत्) कृषि के समान (प्रत्यारम्भफलानि स्युः) प्रत्येक अनुष्ठान का फल प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—जैसे खेती प्रतिवर्ष की जाती है, कारण कि कृषि से प्रतिवर्ष फल (फसल) प्राप्त होता है अतः खेती की आवृत्ति प्रतिवर्ष कृषक करता है। वैसे ही कर्म का अनुष्ठान भी फल देता है। जो एक ही समय कर्म करें तो एक

हो समय फल मिलेगा और बार बार कर्म करे तो बार बार फल मिलता है। अतः काम्य कर्म का अनुष्ठान बार बार हो सकता है। अर्थात् जब जब कामना हो तब कर्मानुष्ठान कर फल प्राप्त किया जा सकता है।

अधिकारस्श्च सर्वेषां कार्यत्वादुपपद्यते विशेषः ।२१।

पदार्थ—(च) और (सर्वेषां कार्यत्वात्) अधिक कर्म अनुष्ठेय होने से (विशेषः अधिकार उपपद्यते) विशेष अधिकार उत्पन्न होते हैं।

भावार्थ—जितने अनुष्ठेय काम्य कर्म हैं उन सभी का अधिकार बार बार करने में होता है।

पूर्वपक्ष सूत्र—

सकृत्तु स्यात्कृतार्थत्वात् ।२२।

पदार्थ—(तु) पूर्वपक्ष द्योतक है (सकृत् स्यात्) एक ही समय अनुष्ठान करना चाहिये (कृतार्थत्वात्) एक बार अनुष्ठान करने से चरितार्थ होता है।

भवार्थ—काम्यकर्म एक बार करने से विधि चरितार्थ होती है, तो पीछे दूसरी बार कर्म करने का प्रसंग ही उत्पन्न नहीं होता। अतः जैसे एक प्रयोग में अंगों का अनुष्ठान एक ही समय होता है, वैसे काम्यकर्म भी एक ही समय होता है।

शब्दार्थश्च तथा लोके ।२३।

पदार्थ—(च) और (शब्दार्थ.) विधि शब्द के अर्थ का अनुष्ठान एक बार होता है (तथा लोके) लोक व्यवहार में एक ही समय कार्य होता है।

भावार्थ—लोक व्यवहार में गुरु ने कहा—काष्ठ लाओ। इसलिये शिष्य एक ही समय काष्ठ लाकर गुरु को आज्ञा सफल करता है, वैसे काम्य-कर्म भी एक ही समय करना चाहिये।

सिद्धान्त पक्ष—

अपि वा संप्रयोगे यथाकामी प्रतीयेताश्रुतित्वात् विधिषु वचनानि स्युः ।२४।

पदार्थ—(अपि वा) अथवा (संप्रयोगे) प्रयोग के अनुष्ठान में (यथा-कामी प्रतीयेत) कर्ता की इच्छा प्रमाण से एक अथवा अधिक समय कर्म कर

सकते हैं (अश्रुतित्वात्) एक ही समय कर्म करना ऐसा कोई शास्त्र विधान न होने से (विधिषु वचनानि स्युः) विधि वचन तो मात्र अनुष्ठान ही बताते हैं। एक बार दो बार या अधिक बार कर्म करने में इसका व्यापार नहीं है।

भावार्थ—विधिवचन तो मात्र काम्यकर्म करने को कहते हैं। चाहे तो एक बार करो या अनेक बार करो। इस बारे में कोई विधान ज्ञात नहीं होता।

ऐक शब्द्यात्तथाङ्गेषु ।२५।

पदार्थ—(ऐकशब्द्यात्) एक ही विधि प्रत्यय होने से (अंगेषु तथा) अंगों के अनुष्ठान में वैसा होता है।

भावार्थ—अंगों के अनुष्ठान में तो मूल विधि में एक ही प्रत्यय है और उसमें कथंभावाकांक्षा भी एक ही समय उत्पन्न होती है, अतः प्रधान प्रयोग में अंगों का अनुष्ठान एक ही समय करना चाहिये, ऐसा नियम है। पर फल की इच्छा में ऐसा नहीं। अतः जब जब फल की इच्छा हो तब तब कर्म का अनुष्ठान करना चाहिए। इसलिये काम्य कर्म की आवृत्ति हो सकती है।

लोके कर्मार्थलक्षणम् ।२६।

पदार्थ—(लोके) लौकिक दृष्टान्त भी ठीक नहीं (कर्मार्थलक्षणम्) लौकिक कर्म का फल प्रत्यक्ष होता है, अतः उसका अनुसरण कर कर्म होता है।

भावार्थ—लौकिक कर्म का फल प्रत्यक्ष होता है। गुरुदेव ने काष्ठ लाने के लिये शिष्य को आज्ञा दी। शिष्य काष्ठ ले आया, परन्तु यदि उतने काष्ठ से भोजन तैयार न हो तो दूसरी बार भी शिष्य काष्ठ ले आता है। आवश्यकता न हो तो एक बार लाकर ही शिष्य कृतार्थ होता है। कारण कि भोजन रूप फल प्रत्यक्ष है। पर स्वर्ग प्राप्ति रूप फल तो अदृष्ट है, उसमें लौकिक दृष्टान्त घटित नहीं हो सकता।

अवघात आदि में तंडुल प्राप्त हो, वहां तक अवघात क्रिया की आवृत्ति करनी चाहिये—

क्रियाणामर्थशेषत्वात् प्रत्यक्षमतस्तन्निर्वृत्याऽपवर्गः स्यात् ।२७।

पदार्थ—(क्रियाणाम् अर्थशेषत्वम्) अवहनन आदि क्रिया में तंडुल

निष्पत्ति के लिये होने से (प्रत्यक्षम्) फल प्रत्यक्ष है (अतः तन्निर्वृत्य) अतः उसकी सिद्धि हो वहां तक आवृत्ति करनी (अपवर्गः स्यात्) और पीछे समाप्त कर देनी।

भावार्थ—'व्रीहीन् अवहन्ति' इस वाक्य में व्रीहि का अवहनन करना कहा है, अवहनन तंडुल निकालने के लिये होता है। अतः जब तक चावल छिलकों से अलग हो जायें तब तक उन्हें कुचलना। चावलों के पृथक् हो जाने पर अवहनन की क्रिया बंद कर देनी चाहिये। केवल एक बार ही अवहनन करना, ऐसा कोई नियम नहीं है।

अदृष्टफल जहाँ बताया हो वहां एक ही समय अवहनन करना।

धर्ममात्रे त्वदर्शनात् शब्दार्थेनापवर्गः स्यात् ।२८।

पदार्थ—(धर्ममात्रे तु अदर्शनात्) केवल अदृष्ट फल के साधनरूप में अवहनन हो वहां (शब्दार्थेन अपवर्गः स्यात्) एक ही समय अवहनन करने से विधि चरितार्थ होती है।

भावार्थ—जहां अवहनन अदृष्ट फल के लिये हो, वहां एक ही समय अवहनन करना, कारण कि ऐसा करने से विधि चरितार्थ होती है वहां फल प्रत्यक्ष नहीं होता। अतः फल पर विश्वास रखकर अवहनन क्रिया चालू रखनी, शास्त्रोक्त नहीं है।

प्रयाजादि अंगों का अनुष्ठान एक ही समय होता है, इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष सूत्र—

क्रतुवद्वाऽनुमानेनाभ्यासे फलभूमा स्यात्। २९।

पदार्थ—(वा) पूर्वपक्ष सूचित करता है (क्रतुवत्) काम्य क्रतु की जैसे आवृत्ति हो सके, वैसे (अनुमानेन) अनुमान से (फलभूमा) फल का आधिक्य (स्यात्) होता है।

भावार्थ—जैसे काम्यक्रतु बारी बारी से करने से फल विशेष प्राप्त होता है वैसे प्रयाजादि अंगों का भी अभ्यास करना चाहिये, कारण कि ऐसा करने से प्रधान कर्म के फल में वृद्धि प्राप्त होगी, ऐसा अनुमान से समझा जा सकता है।

सिद्धान्त सूत्र—

सकृद्वा करणैकत्वात् ।३०।

पदार्थ—(सकृद् वा) एक ही समय अनुष्ठान करना (करणैकत्वात्) प्रधान रूप करण एक होने से।

भावार्थ—प्रधान रूप करण एक होने से प्रयाजादि अंगों का अनुष्ठान भी एक ही समय करना। मिट्टी के पिंड से, जब घड़ा उत्पन्न करना हो तब यह पिण्ड जो चक्र (चाक) के ऊपर होता है, उसे उतनी ही बार फिराना चाहिये जिससे उसमें से घड़ा तैयार हो जाय। घड़ा तैयार हुये पीछे चाक को घुमाने से कोई फल नहीं मिलता। फलरूप घड़े में किसी भी प्रकार की वृद्धि नहीं होती। इसी प्रकार प्रयाजादि अंगों में समझना चाहिये। अर्थात् फल प्राप्ति योग्य प्रयाजादि अंगों का अनुष्ठान किये पीछे अधिक प्रयाजों का अनुष्ठान करने से कोई भी विशेष फल नहीं मिलता।

परिमाणं चानियमेन स्यात्।३१।

पदार्थ—(परिमाणं च) और परिमाण (अनियमेन स्यात्) नियम बिना हो जाय।

भावार्थ—जो अंगों का अधिक अनुष्ठान करने से अधिक फल मिलता हो तो पौर्णमासी याग में चौदह और अमावस्या याग में तेरह आहुतियों का जो नियम बांधा है वह व्यर्थ हो जाय। कारण कि अधिक आहुति देने से अधिक फल मिलता है। पर ऐसा करने से अधिक फल नहीं मिलता, अतः अंगों का एक ही समय अनुष्ठान करना चाहिये।

फलारम्भनिर्वृत्तेः क्रतुषु स्यात् फलान्यत्वम्।३२।

पदार्थ—(फलारम्भनिर्वृत्तेः) स्वर्ग आदि की उत्पत्ति होने से (क्रतुषु फलान्यत्वम् स्यात्) क्रतुओं में भिन्न २ फल मिलते हैं।

भावार्थ—काम्य क्रतु तो मुख्य कर्म है और उनका एक समय अनुष्ठान करने से स्वर्ग प्राप्ति होती है। और दूसरी बार काम्य क्रतु करने से द्वितीय स्वर्ग भी प्राप्त होता है। क्रतुओं में फलभेद होता है पर अंगों का स्वतंत्र कोई फल ही नहीं तो उनका अधिक अनुष्ठान करने से फल कहां से प्राप्त हो? यह तो मुख्य कर्म पर उपकार ही करते हैं।

पूर्वपक्ष सूत्र—

अर्थवांस्तु नैकत्वादभ्यासः स्यादनर्थको यथा भोजनमेकस्मिन्नर्थस्यापरिमाणत्वात् प्रधाने च क्रियार्थत्वादनियमः स्यात्।३३।

पदार्थ—(अर्थवान् तु) अंगों का अभ्यासफलवान् होता है। (न एकत्वात् अभ्यासः स्यात्) कार्य अनेक होने से, एक कार्यविषयक अभ्यास अनर्थक हो सकता है (यथा भोजनम् एकस्मिन्) जैसे एक ही समय में भोजन की आवृत्ति व्यर्थ होती है (अर्थस्य अपरिमाणत्वात्) प्रधान फल नियत न होने से (प्रधाने च क्रियार्थत्वात् अनियमः स्यात्) प्रधानकर्म में क्रिया फल उत्पन्न करने में सहायक होने से।

भावार्थ—प्रधान का फल कितना है, अर्थात् प्रधान फल कितना स्वर्ग उत्पन्न करेगा, इसकः कोई नियम नहीं होता। स्वग तो सुखविशेष का ही वाचक है, अतः जो अंगों का अधिक उपकार हो तो प्रधान कर्म अधिक स्वर्ग अर्थात् सुख अथवा प्रीति उत्पन्न कर सकता है, अतः अंगों की आवृत्ति अधिक सुख चाहने वाले को करनी चाहिये।

पृथक्त्वात् विधितः परिमाणं स्यात् ।३४।

पदार्थ—(पृथक्त्वात्) अर्थ भिन्न होने से (विधितः) विधिपरक (परिमाणं स्यात्) संख्या हो।

भावार्थ—चौदह और तेरह संख्या का जो नियम बनाया है, वह तो भिन्न अर्थ है। अतः वहां तो अर्थ के अनुसार आहुतियां दी जा सकती हैं।

सिद्धान्त सूत्र—

अनभ्यासो वा प्रयोगवचनैकत्वात्सर्वस्य युगपच्छास्त्रादफलत्वाच्च कर्मणः स्यात् क्रियार्थत्वात् ।३५।

पदार्थ—(अनभ्यासः वा) अंगों का अभ्यास नहीं होता। (प्रयोगवचनैकत्वात्) प्रयोग के वचनैक्य होने से (सर्वस्य युगपत् शास्त्रात्) एक भावना में अन्वय के समय फलकरणत्व से प्रधान क्रिया ही अन्वित होती है। (कर्मणः अफलत्वात् च स्यात्) तब अंग कर्म व्यर्थ हैं ? (क्रियार्थत्वात्) नहीं, प्रधान क्रिया के उपकारक हैं।

भावार्थ—अंगों का अभ्यास नहीं करना। भावना में फल के कारण रूप में मुख्य क्रिया ही अन्वित होती है। अंग क्रिया नहीं। अंग क्रिया व्यर्थ नहीं। वह तो प्रधान क्रिया का उपकार करेगी और उसके द्वारा प्रधान क्रिया की सफलता है।

पूर्वपक्ष—

अभ्यासो वा छेदनसंमार्गावदानेषु

वचनात्सकृत्त्वस्य ।३६।

पदार्थ—(वा अभ्यासः) अंगों का अभ्यास होता है (छेदन संमार्गाव-दानेषु सकृत्त्वस्य वचनात्) छेदन, संमार्ग और अवदान में एक समय करने का वचन होने से।

भावार्थ—सकृदाच्छिनत्ति, परिधीन् सकृत्संमार्ष्टि। स्विष्टकृति सकृदव-द्यति। उक्तवचन एक समय आच्छेदन एक समय संमार्ग और एक समय अवदान करने का कहा है। इससे समझा जाता है कि जहां एक समय का विधान न हो वहाँ आवृत्ति है, ऐसा समझना चाहिये।

सिद्धान्त सूत्र—

अनभ्यासस्तु वाच्यत्वात् ।३७।

पदार्थ—(अनभ्यासः तु) प्रयाजादि अंगों का अभ्यास न करना (वाच्यत्वात्) उक्त स्थल में जो एक ही समय का कथन किया है उसका प्रयोजन पृथक् है।

भावार्थ—दर्शपूर्णमास में अनेक बार आच्छेदन का विधान है। अब जो एक समय का विधान न करें तो अतिदेश से अनेक समय आच्छोदन प्राप्त हो। अतः सकृत्व का विधान है। प्रयाज सन्निधि से परिधि संमार्ग का तीन समय विधान है अतः अनुयाज में एक समय का विधान है। जो इस प्रकार विधान करने में न आवे तो प्रयाज के सादृश्य के कारण अनुयाज में भी तीन समय संमार्ग का विधान समझना चाहिये। अन्य स्थान में दो समय अवदान करने का वचन है और वह स्विष्टकृत में भी प्राप्त हो सकता है। अतः एक समय अवदान करना बताया है। इस प्रकार अभिप्राय पृथक् होने से सकृत्व विधान अन्यत्र असकृत्व का बोधक नहीं। इसलिये सारांश यह है कि अंगों का एक ही समय अनुष्ठान करना चाहिये।

'कपिञ्जलान्' इस स्थान पर कपिञ्जल शब्द के जो बहुवचन का प्रत्यय लगाया है, उससे तीन ही संख्या समझनी चाहिये इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष सूत्र—

बहुवचनेन सर्वप्राप्तेर्विकल्पः स्यात् ।३८।

पदार्थ—(बहुवचनेन) बहुवचन होने से (सर्वप्राप्तेः) तीन से प्रारम्भ कर कोई भी संख्या ले सकते हैं, एतदर्थ (विकल्पः स्यात्) संख्याओं का विकल्प है।

भावार्थ—'कपिञ्जलान् आलभेत' इस वाक्य में कपिञ्जल शब्द के साथ बहुवचन लगाया है, और बहुत्व तीन से लेकर किसी भी संख्या में हो सकता

है, इससे किसी समय तीन, किसी समय चार और किसी समय पांच आदि संख्या विकल्प रूप में ली जा सकती है। इसलिसे तीन कपिञ्जलों को प्राप्त करना या चार को प्राप्त करना, यह अर्थ है।

दृष्टः प्रयोग इति चेत् ।३६।

पदार्थ—(प्रयोगः दृष्टः) बहुवचन से तीन व्यक्ति ही समझे जाते हैं और उनमें ही इसका प्रयोग होता है। (इति चेत्) जो ऐसी शंका हो तो।

भावार्थ—बहुवचन तीन ही समझा जाना चाहिये, चार नहीं। जो चार कहने की इच्छा हो तो **'चत्वारो ब्राह्मणाः'** इस प्रकार चार शब्द का उल्लेख करना पड़ता है और पांच की आवश्यकता हो तो पांच शब्द का उल्लेख आवश्यक होता है। अतः जहाँ कोई चार, पांच आदि संख्या बोधक उपपद न हों तो बहुवचन का अर्थ तीन ही समझना चाहिये।

तथेह ।४०।

पदार्थ—(तथा इह) उसी प्रकार यहां भी समझना चाहिये।

भावार्थ—माणवक में 'अर्थात् बालक के लिये किसी समय सिंह शब्द का प्रयोग होता है। जो बालक बलवान् और निर्भय हो तो किसी समय उसे इस प्रकार कहा जाता है कि यह तो 'सिंह' है। उसी प्रकार मयूर में भी कपिंजल शब्द का प्रयोग देखा जाता है। इससे किसी समय कपिंजल शब्द का प्रयोग देखा जाता है। इससे किसी समय कपिंजल के स्थान दो मयूर की भी प्राप्ति समझी जा सकती है।

भक्त्येति चेत् ।४१।

पदार्थ—(भक्त्या) गौणवृत्ति से प्रयोग होता है (इति चेत्) जो ऐसा कहा जाये तो।

भावार्थ—बालक के लिये जो सिंह शब्द का प्रयोग किया जाता है वह तो गौणवृत्ति से है, मुख्यवृत्ति से नहीं। भक्ति अर्थात् इस स्थान पर 'लक्षण' अर्थ समझनी चाहिये।

तथेस्तरस्मिन् ।४२।

पदार्थ—(तथा) इस प्रकार (इतरस्मिन्) अन्य स्थान पर गौणवृत्ति से प्रयोग समझना।

भावार्थ—जैसे बालक के लिये गौण वृत्ति से सिंह शब्द का प्रयोग होता है वैसे बहु शब्द भी तीन से प्रारम्भ कर परार्द्ध पर्यन्त की संख्या में प्रयुक्त होता है। बहु शब्द का अर्थ तीन ही होता है ऐसा आग्रह किसे लिये?

प्रथमं वा नियम्येत कारणादतिक्रमः स्यात् ।४३।

पदार्थ—(वा) अथवा (प्रथमम्) बहु संख्या में प्रथम तीन ही आते हैं (नियम्येत) अतः इसका नियम बनाया गया है (कारणात् अतिक्रमः स्यात्) जो कोई खास कारण हो तो तीन संख्या का अतिक्रम होता है।

भावार्थ—बहु संख्या में तीन प्रथम आता है, चार आदि तो पीछे से आते हैं। अतः बहु का अर्थ 'तीन' करना उचित है। बिना कारण तीन का त्याग अनुचित है। हाँ, यदि कोई कारण हो तो तीन का त्याग कर चार, पांच, छः आदि में से कोई भी संख्या ली जा सकती है।

तथा चान्यार्थ दर्शनम् ।४४।

पदार्थ—(तथा च) केवल बहुवचन का प्रयोग हो तो उसका अर्थ तीन ही समझना और उसी प्रकार (अन्यार्थदर्शनम्) अन्य अर्थ में भी समझना चाहिये।

भावार्थ—बहुवचन तीन संख्या ही समझनी चाहिये। जैसे "कृष्णा याम्याः, अवलिप्ता रौद्रा नभोरूपा पार्जन्याः 'ऐन्द्राग्नी दशमः' इस वाक्य में याम्य आदि के बहुवचन है। और इसका अर्थ तीन ही है। तीन याम्य, तीन रौद्र और तीन पार्जन्य और दसवां ऐन्द्राग्न। इस तीन तीन लेकर नौ पदार्थ होते हैं और ऐन्द्राग्न दसवां हो सकता है। अतः 'ऐन्द्राग्नो दशमः' यह वाक्य ही समझाता है कि बहुवचन जो उपपद से रहित हो तो उसका अर्थ तीन संख्या ही समझनी चाहिये।

प्रकृत्या च पूर्ववत् तदासत्तेः ।४५।

पदार्थ—(च) और (प्रकृत्या) प्रकृति से (तदासत्तेः) उसका सामीप्य होने से (पूर्ववत्) ऐसा अन्य लिंगवचन भी है।

भावार्थ—प्रकृति में कहा गया है कि 'अग्नीषोमीयं पशुमालभेत' यहां एक पशु कहा गया है, और पीछे 'कपिञ्जलान्' शब्द का प्रयोग किया है। अब एक के पीछे बहु संख्या में से तीन संख्या ही एकत्व के समीप है, चार आदि नहीं। अतः 'कपिञ्जलान्' शब्द से तीन 'कपिञ्जल' समझे जाते हैं। प्रथम का त्याग करने में कोई प्रमाण नहीं।

'उत्तरा दोहयति' इस वाक्य से सभी गायों के दोहन का विधान है।

पूर्वपक्ष—

उत्तरासु यावत्स्वमपूर्वत्वात् ।४६।

पदार्थ—(उत्तरासु) उत्तर गायों की (यावत्स्वम्) जितने गायों में अपना अधिकार हो उतनी में दोहन का विधान है (अपूर्वत्वात्) अप्राप्त होने से।

भावार्थ—सांन्नाय्य प्रकरण में इस प्रकार श्रवण होता है—**'वाग्यतस्तिस्रो दोहयित्वा विसृष्टवागनन्वारभ्य उत्तरा दोहयति'** तीन गायों को मौन रखकर दुहने के पीछे अन्य गायों को दुहने का जो कहा है, वह विधान है या अनुवाद ? यहाँ पूर्वपक्षवादी कहता है कि विधान है। कारण कि उत्तर गायों का दोहन अप्राप्त था। अप्राप्त में यह कथन है। अतः अपूर्व विधि हैं।

सिद्धान्त सूत्र—

यावत्स्वं वाऽन्यविधानेनानुवादः स्यात् ।४७।

पदार्थ—(वा) सिद्धान्त की सूचना देता है (यावत्स्वम्) यावत् स्वम् जितनी अपनी उत्तर गायों का जो दोहन कहा है वह (अनुवादः) अनुवाद है (अन्यविधानेन) विधान तो दूसरे में है।

भावार्थ—**विसृष्टवाग् अनन्वारभ्य** इस वाक्य में विधान है। 'उत्तरा दोहयति' इस वाक्य में विधान नहीं।

कारण बताने वाला सूत्र—

साकल्य विधानात् ।४८।

पदार्थ—(साकल्य विधानात्) सभी गायों के दोहन की प्राप्ति होने से।

भावार्थ—सभी गायों में दोहन पहले से प्राप्त है। प्राप्त होने से उपर्युक्त कथन अनुवाद है। **'नास्य एतां रात्रिं पयसाऽग्निहोत्रं जुहुयात्' कुमाराश्च न पयो लभेरन्** इस वाक्य से सकल गायों का दोहन प्राप्त है। अतः प्राप्त में कथन होने से अनुवाद है।

बह्वर्थत्वाच्च ।४९।

पदार्थ—(च) और (बह्वर्थत्वात्) वहु अर्थ का कथन होने से।

भावार्थ—**बहु दुग्धिइन्द्राय हविः** इस वाक्य से वहु दोहन भी प्रतीत होता है।

अग्निहोत्रे चाशेषवद् यवागूनियमः ।५०।

पदार्थ—(च) और (अग्निहोत्रे) अग्निहोत्र में (यवागूनियमः) यवागू होम का नियम है।

भावार्थ—**"नास्यैतां रात्रिं पयसाग्निहोत्रं जुहुयात्, यथाऽन्यस्यै देवतायै**

प्रस्तसन्यस्यै देवतायै दद्यात् तादृक् स्यात् ।" इस वाक्य से जितना दूध है वह सभी सांन्नाय्य के लिये है, ऐसा जाना जाता है।

तथा पयः प्रतिषेधः कुमाराणाम् ।५१।

पदार्थ—(तथा) तथा (पयः प्रतिषेधः कुमाराणाम्) यही संस्कृत वाक्य उपर्युक्त सूत्र में कहा गया है उसकी भी व्याख्या हो जाती है। अर्थात् इस वाक्य से कुमारों को दूध देने का निषेध नहीं है।

सर्वप्रापिणाऽपि लिंगेन संयुज्यदेवताभि-संयोगात् ।५२।

पदार्थ—(सर्वप्रापिणा अपि लिंगेन) सभी गायों का दोहन करना, ऐसे लिंग वाक्य से (संयुज्य) संयोग प्राप्त कर (देवताभिसंयोगात्) देवता के साथ सम्बन्ध जुड़ा होने से।

भावार्थ—'**वत्सेभ्यश्च एताः पुरा मनुष्येभ्यश्च आप्याययन्तः**' इस वाक्य से वत्स और मनुष्यों के लिये गायों का अप्यायन किया है। और पीछे देवता के लिये गायों का आप्यायन बताया है। अतः सर्व गायों का दोहन है, ऐसा स्पष्ट समझा जाता है। इसलिये तीन गायों को मौन रीति से दुहने के पश्चात् सभी गायों का दोहन करना ऐसा स्पष्ट अनुवाद है।

आग्नेय आदि प्रधानों का भेद है। इनके अंग आधारादि हैं। इनका अनुष्ठान तंत्र रूप में करना या उनकी प्रधान के अनुसार आवृत्ति करना। इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष—

प्रधानकर्मार्थत्वादंगानां तद्भेदात् कर्मभेदः प्रयोगे स्यात् ।५३।

पदार्थ—(अंगानाम्) अंग (प्रधानार्थत्वात्) प्रधान के लिये होने से (तद्भेदात्) प्रधान कर्मों का भेद होने से (कर्मभेदः) अंग कर्मों का भेद (प्रयोगे स्यात्) अनुष्ठान में होता है।

भावार्थ—अंग कर्म प्रधानकर्म के लिये होते है। अतः जितने प्रधान-कर्म होते हैं उतनी अंग कर्मों की आवृत्ति होनी चाहिये। अर्थात् प्रधान कर्म के अनुसार अंग कर्मों का भी अनुष्ठान पृथक्-पृथक् होना चाहिये।

क्रमकोपश्च यौगपद्ये स्यात् ।५४।

पदार्थ—(च) और (यौगपद्ये) तंत्र रूप में अनुष्ठान करने से (क्रम-कोपः स्यात्) विहित कर्म का बाध होता है।

भावार्थ—आगे बताई तंत्र की रीति के अनुसार जिन अंगों का अनुष्ठान एक ही समय हो, तो जिस क्रम का विधान किया है, उसका बाध होगा। अतः प्रधान कर्मों के क्रम प्रमाण से अंगकर्मों का अनष्ठान अनुक्रमानुसार ही होना चाहिये। अर्थात् अंग कर्मों की आवृत्ति होनी चाहिये।

सिद्धान्त सूत्र—

तुल्यानां तु यौगपद्यमेकशब्दोपदेशात् स्यात् विशेषाग्रहणात् ।५५।

पदार्थ—(तु) यह शब्द सिद्धान्त को सूचित करता है (तुल्यानाम्) देश काल और कर्ता से जो समान हो उनका (यौगपद्यम्) एक ही समय में अनुष्ठान होता है। (एकशब्दप्रयोगात्) एक शब्द का प्रयोग होने से तथा (विशेषाग्रहणात्) अंगों में भी कोई विशेष न होने से।

भावार्थ—यदि जो कर्म के देश, काल और कर्ता एक हो तो, उनका अनुष्ठान एक साथ ही होता है। अंगों का उपदेश भी दर्श पौर्णमास रूप एक ही शब्द से होता है। उसी प्रकार अंगों में कोई विशेष भी नहीं। अर्थात् यह अंग कलाप आग्नेय याग का है और यह अंग कलाप अग्नीषोमीय याग का है, यह कोई विशेष नहीं। अतः तंत्र से अनुष्ठान होना योग्य है।

ऐकार्थ्यादव्यवायः स्यात् ।५६।

पदार्थ—(ऐकार्थ्यात्) एक ही प्रयोजन वाला होने से (अव्यवायः स्यात्) क्रम कोप नहीं होता।

भावार्थ—सभी अंगों का उद्देश्य एक ही है। अतः किसी भी क्रम का भंग नहीं होता। स्वर्गरूपफल सभी मिलकर ही साधनें होते हैं। जैसे दण्ड, चक्र और अन्य अंग मिलकर घट रूप एक ही कार्य करते हैं, अतः चक्रादि का प्रयोग एक ही साथ होता है, वैसे यहाँ भी समझना।

तथा चान्यार्थदर्शनं कामुकायनः ।५७।

पदार्थ—(तथा च) और उसी प्रकार (अन्यार्थदर्शनम्) अन्य दर्शन भी यही लिंग है, ऐसा (कामुकायनः) कामुकायन आचार्य मानते हैं।

भावार्थ—उपर्युक्त आहुति की संख्या भी एक साथ प्रयोग करने में कारण है।

तन्न्यायत्वादशक्तेरानुपूर्व्यं स्यात् संस्कारस्य तदर्थत्वात् ।५८।

पदार्थ—(तन्न्यायत्वात्) इसी न्याय से (अशक्तेः) जिनके साथ अनुष्ठान न हो सके, ऐसा हो वहां (आनुपूर्व्यं स्यात्) आवृत्ति के अंगों का अनुष्ठान होता है (संस्कारस्य तदर्थत्वात्) संस्कार उसके लिये होने से ।

भावार्थ—साथ मिलकर जिन अंगों का अनुष्ठान हो सके, ऐसा हो वहाँ ही तंत्र से काम होता है, पर जिनके साथ अनुष्ठान नहीं हो सके वहाँ आवृत्ति से काम करना चाहिये । एक स्थान पर पुरोडाश करने से अंगार उत्पन्न करने से सब स्थान पर वह नहीं हो सकता । अतः पुरोडाश की आवृत्ति ही होनी चाहिये । अंगार की उत्पत्ति पुरोडाश के पाक के लिये ही होती है । इसलिये कि जहाँ यौगपद्य का सम्भव न हो वहाँ आनुपूर्व्य से कर्म करना चाहिये ।

असंस्पृष्टोऽपि तादर्थ्यात् ।५९।

पदार्थ—(असंस्पृष्टः अपि) असंस्पृष्ट न होने पर भी (तादर्थ्यात्) उसके लिये ही होने से ।

भावार्थ—जिस प्रधान के पास जिनका अनुष्ठान होता है, वह उनका माना जाता है । इस न्याय से आधारादि आग्नेय याग का अंग है । स्विष्टकृत् आदि अग्नीषोमीय का अंग है । पर उपांशु याग किसी प्रधान से स्पृष्ट नहीं अतः वह अनंग होना चाहिये । तो इसका उत्तर यह है कि चाहे वह किसी के साथ स्पृष्ट न हो, फिर भी उस प्रकरण से जाना जाता है कि वह सबके लिये है । अतः जहाँ शक्य न हो, वहाँ अंगों की आवृत्ति करनी चाहिये ।

विभवाद् वा प्रदीपवत् ।६०।

पदार्थ—(वा) अथवा (विभवात्) सामर्थ्य होने से (प्रदीपवत्) प्रदीप के तुल्य काम करता है ।

भावार्थ—कोई अंग एक समय अनुष्ठित करने से सब प्रधान कर्मों पर उपकार कर सकता है । इसमें प्रदीप का दृष्टान्त देते हैं । प्रदीप एक समय प्रज्वलित किया गया, अतः इसके प्रकाश में बैठे सभी को इसका लाभ मिलता है । यही न्याय कई अंगों से है ।

पूर्वपक्ष—

अर्थात् तु लोके विधिः प्रतिप्रधानं स्यात् ।६१।

पदार्थ—(लोके तु) लोक व्यवहार में तो (अर्थात्) भलरूप अर्थ प्रत्यक्ष होनें से सकृत अनुष्ठान माना जा सकता है (विधि: प्रतिप्रधानम्) पर विधि-प्राप्त कर्म तो प्रत्येक प्रधान के अनुसार (स्यात्) होना चाहिये।

भावार्थ—लोक व्यवहार में कर्म का फल प्रत्यक्ष होता है। अत: फल को देखकर सकृत् अनुष्ठान माना जा सकता है, पर विधि से जो कर्म किया जाता हैं इसका फल प्रत्यक्ष नहीं होता। अत: जितने प्रधान कर्म हों, उतने ही अंगानुष्ठान होने चाहियें।

सकृदिज्यां कामुकायनः परिमाण-विरोधात् ।६२।

पदार्थ—(सकृत इज्याम्) एक ही समय इज्या करनी चाहिये। (परिमाणविरोधात्) तेरह और चौदह आहुतियों का जो परिमाण बताया है, उसका विरोध होता है(कामुकायनः)इस प्रकार कामुकायन आचार्यमानते हैं।

भावार्थ—कामुकायन आचार्य ऐसा मानते है कि एक ही समय इज्या अंगों का अनुष्ठान करने से सब प्रधानों पर उपकार हो सकता है। अर्थात् अंगों की तंत्र से आवृत्ति करनी। कामुकायन आचार्य के नाम का ग्रहण इनकी कीर्ति के लिये है। अन्य सभी आचार्यों का ऐसा मानना है।

विधेस्त्वितरार्थत्वात्सकृदिज्याश्रुति व्यतिक्रमः स्यात् ।६३।

पदार्थ—(विधेः तु इतरार्थत्वात्) अंग कलापप्रधान कर्म के लिये होने से (सकृत् इज्या) एक समय इज्या करनी (श्रुतिव्यतिक्रमः स्यात्) शास्त्र विरुद्ध होती है।

भावार्थ—तंत्र से अनुष्ठान करने में शास्त्र का विरोध आता है।

सिद्धान्तसूत्र—

विधिवत् प्रकरणाविभागे प्रयोगं बादरायणः ।६४।

भावार्थ—बादरायण आचार्य मानते हैं कि एक ही प्रकरण होने से तंत्र से अर्थात् यौगपद्य से अनुष्ठान करना चाहिये।

पूर्वपक्ष—

क्वचिद्विधानान्नेति चेत् ।६५।

पदार्थ—(क्वचिद् विधानात् न) किसी स्थान पर सह विधान किया है, उससे सामान्य सह विधान नहीं (इति चेत्) ऐसी शंका हो तो—

भावार्थ—अंगों का सह अनुष्ठान है ऐसा जो सामान्य विधान हो तो पीछे किसी स्थान पर सहविधान नहीं करना चाहिये, इसलिये कि किसी स्थान पर सहविधान है। जैसे कि 'सह बध्नन्ति सह पिषन्ति' इससे समझा जाता है कि सामान्य रूप में सहविधान नहीं।

सिद्धान्त सूत्र—

न विधेश्चोदितत्वात् ।६६।

पदार्थ—(न) नहीं (विधेः चोदितत्वात्) निर्वाप विधि का पृथक् कथन है।

भावार्थ—निर्वाप विधि में सहविधान की प्राप्ति नहीं, कारण कि वहाँ तो पृथक् विधान किया है। अतः जिस स्थान के पृथक् विधान किया हो, उसमें किसी स्थान पर सह विधान अपेक्षित हो, वहाँ फिर से सह विधान करना पड़ता है। इससे ऐसा सिद्धान्त नहीं निकलता कि किसी स्थान पर सह विधान होने से अन्य सब पृथक् २ विधान हैं। अतः आधारादि अंगों का सह विधान अर्थात् तंत्र से विधान है।

आग्नेय द्वय की आवृत्ति से प्रदान करने का अधिकरण—

पूर्वपक्ष—

व्याख्यातं तु तुल्यानां यौगपद्यमगृह्यमाण-विशेषाणाम् ।६७।

पदार्थ—(अगृह्यमाणविशेषाणाम्) जिसमें किसी विशेष का ग्रहण न होता हो (तुल्यानाम्) और समान हो तो (यौगपद्यम् व्याख्यातम्) उसका यौगपद्य है अर्थात् सह अनुष्ठान है।

भावार्थ—पशुकाण्ड में ऐसा प्रकरण सुना जाता है—**आग्नेयं कृष्णग्रीवमालभेत सौम्यं बभ्रुमाग्नेयं कृष्णग्रीवं पुरोधायां स्पर्धमान इति।** इस वाक्य में कृष्णग्रीव वाले इन पशुओं का दान करने का विधान है तो उन दोनों का एक साथ दान करना चाहिये, बारी बारी से नहीं।

सिद्धान्त सूत्र—

भेदस्तु कालभेदास्यात् चोदनाव्यवाया स्यात् विशिष्टानां विधिः प्रधानकालत्वात् ।६८।

पदार्थ—(तु भेदः) दोनों प्रधान हैं। और उनके दान का अनुष्ठान क्रम से करना चाहिये। (कालभेदात् स्यात्) दोनों का समय पृथक् होने से (चोदना व्यवायात्) सौम्यदेवताक पशुविधान बीच में आने से (विशिष्टानां विधिः) भिन्न २ समय में दान करना चाहिये (कालप्रधानात्) समय की प्रधानता होने से।

भावार्थ—उक्त दोनों पशुओं का दान साथ नहीं हो सकता, कारण कि एक पशु का दान किये पीछे सौम्य पशु का दान करने का विधान है और पीछे पुनः कृष्णग्रीव पशु का विधान है। इस प्रकार दोनों का समय पृथक् २ होने से भिन्न भिन्न समय में दान करना। अतः ऐसे स्थान पर आवृत्ति रूप क्रम से अनुष्ठान करना चाहिये।

तथा चान्यार्थदर्शनम् ।६९।

पदार्थ—(तथा च) और इस प्रकार (अन्यार्थदर्शनम्) अन्य अर्थ का भी दर्शन है।

भावार्थ—उक्त अर्थ का दर्शन दूसरे वाक्य में भी होता है। अर्थात् अर्थवाद में भी पृथक् अनुष्ठान का दर्शन होता है। यह अर्थवाद वाक्य इस प्रकार है—'अभितः सौममाग्नेयो भवत इति' इस वाक्य में पृथक् दान करने का स्पष्ट कथन है।

विधिरिति चेन्न वर्तमानापदेशात् ।७०।

पदार्थ—(विधिः इति चेत्) उक्त वाक्य विधिपरक है (इति चेन्न) जो ऐसा कहें तो नहीं (वर्तमानापदेशात्) वर्तमानकाल का उल्लेख है।

भावार्थ—जो कोई 'भवतः' इस क्रियापद को विधिपरक गिने तो यह भूल है। कारण कि यह क्रियापद तो वर्तमानकाल को बताता है। इससे स्पष्ट होता है कि आग्नेय कृष्णग्रीव दो पशुओं का क्रम से दान करना चाहिये।

इति मीमांसादर्शनभाष्ये एकादशाध्यायस्य प्रथमः पादः ।११।१।।

अथ मीमांसादर्शने एकादशाध्यायस्य: द्वितीय: पाद:

आग्नेय आदि प्रधानों का अनुष्ठान तंत्र से होता है। इस अधिकरण के सूत्र—

सिद्धान्त सूत्र—

एकदेशकालकर्तृत्वं मुख्यानामेकशब्दोपदेशात् ।१।

पदार्थ—(एकदेशकालकर्तृत्वम्) देश, काल और कर्ता की एकता है। (मुख्यानाम्) प्रधानभूत ६ यागों का (एकशब्दोपदेशात्) एक शब्द से विधान होने से।

भावार्थ—इस पाद में अंग सहित प्रधानों के तंत्र का (यौगपद्य का) विचार किया जाएगा। **समे देशे यजेत दर्शपूर्णमासाभ्यां यजेत' दर्शपूर्णमासयोश्चत्वार ऋत्विजः।** इत्यादि वाक्यों से देश, काल और कर्ता का विधान है। यह विधान उत्पत्ति विधि का शेष है या प्रयोग विधि का ? समुदाय वाचक दर्शपूर्णमास रूप एक ही शब्द से विधान होने से मुख्य है। यागों के साथ अंगों के देश, काल और कर्ता की एकता ही है। अर्थात् प्रधान याग और उसके अंगों का देश, काल और कर्ता पृथक्-पृथक् नहीं होता। अर्थात् उक्त विधान प्रयोग विधि का शेष है, उत्पत्ति विधि का नहीं।

पूर्वपक्ष सूत्र—

अविधिश्चेत् कर्मणामभिसम्बन्धः प्रतीयेत तल्लक्षणार्थाभिसंयोगाद् विधित्वाच्चेतरेषां प्रतिप्रधानं भावः स्यात् ।२।

पदार्थ—(अविधिः चेत्) जो प्रधान कर्मों को उद्दिष्ट कर देशादि का विधान न हो तो (कर्मणाम् अभिसम्बन्धः) देशादि का सम्बन्ध एक है (प्रतीयेत) ऐसी प्रतीति होती है। परन्तु ऐसा नहीं। (लक्षणाभिसंयोगात्)

लक्षणा को स्वीकार करने में आता है। इससे (इतरेषां विधित्वात्) अन्य विधेय होने से (प्रतिप्रधानभावः स्यात्) जितने प्रधान हैं उतना ही देशादि का सम्बन्ध है।

भावार्थ—दर्शपूर्णमास में ६ प्रधान याग हैं और प्रत्येक प्रधान के अनुसार देश, काल और कर्ता पृथक्-पृथक् होने चाहियें। अर्थात् तंत्र से अनुष्ठान नहीं होना चाहिये। प्रधान के साथ अंगों का देश, काल और कर्ता का विधान है ही। दर्शपूर्णमास शब्द में लक्षणा स्वीकार करनी चाहिए, इसलिए कि समुदाय और उसके देश के साथ विधि का सम्बन्ध है कारण कि प्रधान और अंग सभी विधेय हैं, अतः दर्शपूर्णमास शब्द में लक्षण स्वीकार किये बिना अवकाश नहीं। इस पूर्वपक्ष का समाधान अगले अधिकरण में किया गया है।

अंगों का भी समदेश आदि का नियम है। इस अधिकरण के सूत्र—

अंगेषु च तदभावः प्रधानं प्रतिनिर्देशात् ।३।

पदार्थ—(अङ्गेषु) प्रयाजादि अंगों में (तदभावः) देशादि का नियम नहीं (प्रधानं प्रतिनिर्देशात्) प्रधान को उद्दिष्ट कर विधान किया होने से।

भावार्थ—प्रयाजादि अंगों में देशादि का कोई नियम नहीं कारण कि देशादि तो प्रधान कर्म को उद्दिष्ट करके ही हैं।

यदि तु कर्मणो विधिसम्बन्धः स्यादैक्यशब्द्यात् प्रधानार्थाभिसंयोगात् ।४।

पदार्थ—(यदि तु) पूर्वपक्ष की ओर से शंका द्योतक यह शब्द है (कर्मणो विधिसम्बन्धः स्यात्) जो कर्म का विधि के साथ सम्बन्ध हो तो भिन्न-भिन्न अनुष्ठान हो, पर ऐसा नहीं (ऐक्यशब्द्यात्) समुदाय वाचक शब्द से निर्देश होने से (प्रधानार्थाभिसंयोगात्) स्वर्ग रूप प्रधान फल की प्राप्ति करने के प्रयोग के साथ सम्बन्ध होने से।

भावार्थ—आग्नेयादि प्रधान कर्म की विधि के साथ अंगों का सम्बन्ध नहीं पर, स्वर्ग प्राप्ति के अनुकूल प्रयोग रूप व्यापार के साथ अंगों का सम्बन्ध है। अतः तंत्र से ही अंगों का अनुष्ठान होता है। समुदायवाचक दर्शपूर्णमास शब्द से निर्देश भी इनका ही है। अतः सांग प्रधान के प्रयोग के लिए देशादि नियम हैं।

तथा चान्यार्थदर्शनम् ।५।

पदार्थ—(तथा च) वैसे ही (अन्यार्थदर्शनम्) अन्य अर्थ का भी दर्शन है।

भावार्थ—उग्राणि ह वा एतानि घोराणि हवींषि यदमावास्यायां संभ्रियन्ते। आग्नेयं प्रथममैन्द्रे उत्तरे।

उक्त वाक्य में हविषों का एक काल बताया है अतः देशादि का भेद अंग और प्रधान में नहीं।

श्रुतिश्चैषां प्रधानवत् कर्मश्रुतेः परार्थत्वात् कर्मणोऽश्रुतित्वात् ।६।

पदार्थ—(च) और (एषाम्) देशादि की (श्रुतिः) श्रवण (प्रधानवत्) अनुवादक के तुल्य प्रतीति होती है। (कर्मश्रुतेः परार्थत्वात्) दर्शपूर्णमास रूप कर्म की श्रुति का परार्थत्व होने से (कर्मणः अश्रुतित्वात् च) कार्य का श्रवण न होने से।

भावार्थ—दर्शपूर्णमास से यजन करना ऐसा कहने से देश और काल की प्रतीति सुदृढ़ होती है। कारण कि देश और काल के बिना यज्ञ की कर्त्तव्यता ही किस प्रकार हो सकती है? देशादि तो प्रयोग के अंग हैं। यह समस्त सूत्र का तात्पर्य है।

अंगानि तु विधानत्वात्प्रधानेनोपदिश्येरं-स्तस्मात्स्यादेकदेशत्वम् ।७।

पदार्थ—(अंगानि तु) अंग तो (विधानत्वात्) फल वाक्य से विहित होने से (प्रधानेन उपदिश्येरन्) प्रधान के साथ उपदिश्यमान होने से (तस्मात्) अतः अंगों का (एकदेशत्वम् स्यात्) एकदेश होता है।

भावार्थ—जैसे अंगों की परम्परा सम्बन्धी फल के साथ सम्बन्ध होता है, उसी प्रकार प्रधान कर्म के साथ इसका उपदेश होता है। कहीं प्रधान के साथ अंगों का साहित्य होता है, कहीं इसके एकदेश से होना चाहिए ॥७॥

पूर्वपक्ष सूत्र—

द्रव्यदेवतं तथेति चेत् ।८।

पदार्थ—(द्रव्यदेवतं द्रव्य और देवता (तथा इति चेत्) ये दोनों प्रमाण माने जायें तो।

भावार्थ—द्रव्य और देवता प्रधान कर्म और अंग कर्म के भेद प्रमाण से होते हैं। उसी प्रकार देशादि भी होंगे। इस शंका का समाधान अगले सूत्र में है।

सिद्धान्त सूत्र—

न चोदनाविधिशेषत्वान्नियमार्थो विशेषः ।९।

पदार्थ—(न) नहीं (चोदनाविधिविशेषत्वात्) उत्पत्ति विधि का शेष होने से (नियमार्थः विशेषः) विशेष नियम के लिए है।

भावार्थ—द्रव्य और देवता का दृष्टान्त विषय है, कारण कि याग के दो रूप हैं। एक द्रव्य और दूसरा देवता उत्पत्ति विधि याग का स्वरूप बताती है। अतः द्रव्य और देवता उत्पत्ति विधि का शेष है और देश आदि प्रयोग विधि के शेष हैं।

तेषु समवेतानां समवायात् तन्त्रमंगानि भेदस्तु तद्भेदात् कर्मभेदः प्रयोगे स्यात् तेषां प्रधान-शब्दत्वात् तथा चान्यार्थदर्शनम् ।१०।

पदार्थ—(तेषु) प्रधान यागों में (समवेतानाम्) विहितों का (समवायात्) सम्बन्ध होने से तंत्र से अनुष्ठान होता है। (तद्भेदात्) द्रव्य और देवता का भेद होने से (कर्मभेदः)अनुष्ठान में भी भेद होता है। (प्रयोगे स्यात्) प्रयोग में होता है। (तेषाम् प्रधानत्वात्) ६ याग प्रधान होने से (तथा-चान्यार्थदर्शनम्) अंग और अंगी का तंत्र से अनुष्ठान करने से पौर्णमासी में चौदह आहुतियां देने का विधान उत्पन्न होता है।

भावार्थ—प्रधान ६ याग विहित अंगों में सम्बद्ध हैं। अतः अंगों का अनुष्ठान होना चाहिए। अंग और प्रधान कर्म के द्रव्य और देवता का ऐक्य है। परन्तु जहां द्रव्य और देवताओं का भेद हो वहां कर्म का भी भेद मानना चाहिए। अर्थात् प्रयोग में भी भेद होना चाहिए। प्रधान ६ याग हैं उनके साथ अंगों का तंत्र से अनुष्ठान होना चाहिए। अंग और अंगी का तंत्र से अर्थात् एक साथ अनुष्ठान होने से पौर्णमासी में चौदह आहुतियाँ देने का जो विधान है, वह भी उत्पन्न होता है।

दर्शपूर्णमासेष्टि आदि में संघभेद से अंगों का, भेद से अनुष्ठान होता है। इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्षसूत्र—

इष्टिराजसूयचातुर्मास्येष्वैककर्म्यादंगानां तन्त्रभावः स्यात् ।११।

पदार्थ—(इष्टिराजसूयचातुर्मास्येषु) दर्शेष्टि, पौर्णमासेष्टि, राजसूय तथा चातुर्मास्य में (ऐककर्म्यात्) इन सभी का एक फल होने से (तन्त्रभावः स्यात्) तंत्र भाव है।

भावार्थ—इष्टि, राजसूय तथा चातुर्मास्य में फल एक होने से अंगों का और प्रधान कर्मों का अनुष्ठान तंत्र से करना चाहिए। तंत्र से अर्थात् एक साथ।

कालभेदान्नेति चेत् ।१२।

पदार्थ—(कालभेदात्) काल का भेद होने से अनुष्ठान करना (न) योग्य नहीं। (इति चेत्) जो यह शंका हो तो इसका उत्तर अगले सूत्र में है।

भावार्थ—काल और देश भिन्न होने से तंत्र से अनुष्ठान न हो सकेगा। इसका उत्तर अगले सूत्र में है।

नैकदेशत्वात् पशुवत् ।१३।

पदार्थ—(न) नहीं (एकदेशत्वात्) एक देश होने से (पशुवत्) पशु की भांति।

भावार्थ—जिस वाक्य में प्रधान कर्म का विधान है, उसी वाक्य में अंग प्रधान के उपकारक हैं, ऐसा कहा है। अतः तंत्र से अनुष्ठान की उपपत्ति हो सकती है। जैसे सवनीय पशु में तंत्र से अनुष्ठान होता है, वैसे उक्त स्थलों में तंत्र से अनुष्ठान हो सकेगा।

सिद्धान्त सूत्र—

अपि वा कर्मपृथक्त्वात् तेषां तंत्रविधानात् सांगानामुपदेशः स्यात् ।१४।

पदार्थ—(अपि वा) अथवा (कर्मपृथक्त्वात्) दर्श प्रयोग और पौर्णमास प्रयोग पृथक् होने से (तेषां तन्त्रविधानात्) दर्श यागत्रय और पौर्णमास यागत्रय का तंत्र से अनुवाद रूप में कथन कर (साङ्गानाम् उपदेशः स्यात्) फिर से अमावस्या और पौर्णमासी से यजन विधान किया है।

भावार्थ—तंत्र से अंगों का अनुष्ठान नहीं, कारण कि तीन दर्शयाग और तीन पौर्णमास याग पृथक्त्व से विधान किया है। तत् तत् प्रयोग में अंग सहित प्रयोगों का उपदेश है। इससे पृथक्त्व से ही अनुष्ठान करना चाहिये।

तथा चान्यार्थदर्शनम् ।१५।

पदार्थ—(तथा च) इस प्रकार (अन्यार्थदर्शनम्) अन्य अर्थ के दर्शन में प्रमाण है।

भावार्थ—पौर्णमास याग में चौदह आहुति तथा अमावस्या याग में तेरह आहुतियाँ होमने का विधान है। यह भेदानुष्ठान के बिना सम्भव नहीं।

तदाऽवयवेषु स्यात् ।१६।

पदार्थ—(तदा) तब (अवयेवषु स्यात्) चातुर्मास्यादि के अवयवों में वह प्रमाण होता है।

भावार्थ—चतुर्मास्यादि के अवयवों में भी भेद से अनुष्ठान होना उचित है।

पशौ तु चोदनैकत्वात् तन्त्रस्य विप्रकर्षः ।१७।

पदार्थ—(पशौ तु) सवनीय पशु में तो (चोदनैकत्वात्) एक विधान होनें से (तन्त्रस्थ विप्रकर्षः) तन्त्र से अनुष्ठान होना योग्य है।

भावार्थ—सवनीय पशु के स्थान में अंग कर्मों का तंत्र से अनुष्ठान होना उचित है। कारण कि विधान एक ही है।

अध्वरकल्प आदि दृष्टियों में तीन संघों में अंगों के भेद से अनुष्ठान करना।

पूर्वपक्ष—

तथा स्यादध्वरकल्पायां विशेषस्यैककाल-त्वात् ।१८।

पदार्थ—(तथा) इस प्रकार (अध्वरकल्पायाम्) अध्वरकल्प नाम वाली दृष्टिों में (स्यात्) एक प्रयोग है। अर्थात् तंत्र से अनुष्ठान होता है (विशेषस्य) निर्वापान्त अंग कलाप (एककालत्वात्) एक ही काल में विहित होने से।

भावार्थ—अध्वरकल्प नामक दृष्टि में अग्न्यवधान से लेकर निर्वाप पर्यन्त कर्म का तंत्र से अनुष्ठान होता है। अतः उसके पीछे के अंगों का भी तंत्र से अनुष्ठान करना अर्थात् अभेद से अनुष्ठान होता है।

दृष्टिरिति चैकवच्छ्रुतिः ।१६।

पदार्थ—(दृष्टिः इति च) और 'अध्वरकल्पेष्टि' यहाँ (एकवत् श्रुतिः) एकवचन का श्रवण होने से।

भावार्थ—अध्वरकल्प दृष्टि में एकवचन का प्रयोग है, इससे भी समझा जाता है कि अभेद से अनुष्ठान करना चाहिये।

सिद्धान्त सूत्र—

न वा कर्मपृथक्त्वात्तेषां च तन्त्रविधानात् सांगानामुपदेशः स्यात् ।२०।

पदार्थ—(न वा) अथवा अभेद से अनुष्ठान नहीं (कर्मपृथकत्वात् च तेषाम्) भिन्न भिन्न काल में कर्मों का विधान होने से (तन्त्रविधानात्) शास्त्र से विधान होने से (साङ्गानाम् उपदेशः स्यात्) सांग कर्मों का उपदेश भेद से अनुष्ठान करने के लिये है।

भावार्थ—आग्नावैष्णव देवता वाले पुरोडाशत्रय का पृथक् २ तीन काल में शास्त्र से विधान है। एक का प्रातः काल में, का दूसरे मध्याह्न में तथा तीसरे का सायंकाल में अनुष्ठान करना होता है। अतः भेद से ही अनुष्ठान होना चाहिये।

प्रथमस्य वा कालवचनम् ।२१।

पतार्थ—(वा) अथवा (कालवचनम्) प्रातःकाल का जो विधान है वह प्रथम पुरोडाश के लिये है। अन्य के लिये नहीं।

भावार्थ—'**पुरा वाचः प्रवदितो निर्वपेत्**' इस वाक्य से जो प्रातःकाल में कर्म करने का विधान बताया है वह तो प्रथम पुरोडाश के लिये है, सभी के लिये नहीं।

फलैकत्वादिष्टिशब्दो यथाऽन्यत्र ।२२।

पदार्थ—(फलैकत्वात्) एक फल का उपदेश होने से (दृष्टिशब्दः) दृष्टि शब्द में एक वचन का प्रयोग है (यथा अन्यत्र) जिस प्रकार अन्य स्थान पर।

भावार्थ—दृष्टि शब्द में जो एकवचन ज्ञात होता है, उससे भी अभेद से अनुष्ठान प्रतीत नहीं होता। यह एकवचन तो नौ यागों का एक ही फल है, ऐसा बताते हैं। सर्वपृष्ठ दृष्टि तथा मृगारेष्टि में भी एक वचन का प्रयोग होता है। इससे सिद्ध होता है कि उक्त स्थान पर भेद से ही कर्मों का अनुष्ठान करना चाहिये।

वसाहोम तंत्र से अनुष्ठित होता है, इस अधिकरण के सूत्र—

वसाहोमस्तन्त्रमेकदेवतेषु स्यात् प्रधान-स्यैककालत्वात् ।२३।

पदार्थ—(एकदेवतेषु) प्रजापति—परमात्मा प्रीत्यर्थ जो पशुओं का दान करने में आता है उसमें (वसाहोमः) पुष्टपशु का दान देते समय (स्यात्) होम करने में आता है (प्रधानस्य एककालत्वात्) उसका समय एक ही होने से।

भावार्थ—जितने पशुओंका ब्राह्मणों को दान करना होता है, उस समय पृथक् होम नहीं करना होता, पर एक ही समय होम करना चाहिये। इस स्थान पर वसा होम का अर्थ शक्तिशाली पशु का दान है। वसा अर्थात् वसा वाला और होम अर्थात् दान।

कालभेदत्वाच्चावृत्तिर्देवताभेदे ।२४।

पदार्थ—(च) और (कालभेदत्वात्) समय का भेद होने से और (देवताभेदे) देवता का भी भेद होने से (आवृत्तिः) भेद से अनुष्ठान करना।

भावार्थ—समय और देवता का जहाँ भेद बताया हो वहाँ होम के भेद से अनुष्ठान होता है। एक साथ नहीं यूपैकादशिनी में तंत्र से यूपाहुति का अनुष्ठान होता है। इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष सूत्र—

अन्ते यूपाहुतिस्तद्वत् ।२५।

पदार्थ—(तद्वत्) वसा होम के तुल्य (अन्ते) अन्तिक शब्द में (यूपाहुतिः) यूपाहुति आवृत्ति से देना।

भावार्थ—ज्योतिष्टोम में यूपाहुतियाँ देनी होती हैं। **'तत्र यूपस्य अन्तिके अग्निं मथित्वा यूपाहुतिं जुहोति'** ये ग्यारह आहुतियाँ क्रम से देनी होती हैं। एक ही स्थान पर सभी आहुतियाँ नहीं दी जातीं।

सिद्धान्त सूत्र—

इतरप्रतिषेधो वा ।२६।

पदार्थ—(वा) अथवा (इतरप्रतिषेधः) आहवनीय का प्रतिषेध है।

भावार्थ—उपर्युक्त वाक्य से यूपदेश के सान्निध्य में जाकर अग्निमथन करना, यह न्याय प्राप्त है। अतः इसका तो मात्र अनुवाद है अर्थात् समीपता का केवल अनुवाद है और आहवनीय से जो होम प्राप्त था उसका प्रतिषेध ही विवक्षित है। इसलिये आहवनीय होम न कर यूपों के समीप जाकर होम करना और उसमें ही सभी आहुति देनी। इसलिये वे आहुतियाँ तंत्र से देनी। पृथक् २ बारी बारी नहीं।

अशास्त्रत्वाच्च देशानाम् ।२७।

पदार्थ—(च) और (देशानाम्) देशों में (अशास्त्रत्वात्) विधान न होने से।

भावार्थ—होम के लिये यूप के देशों का सामीप्य नहीं। **न च अन्तिकदेशाः शक्याः शासितुम्। आपेक्षितत्वादन्तिकस्य। अथ परमान्तिकं शिष्येत तदायूप उपदह्येत**। यूप की अन्तिकता का विधान नहीं हो सकता कारण कि अन्तिकता तो अपेक्षाकृत गेय है। जो कहो कि परम अन्तिकता का विधान है तो इसका उत्तर यह है कि ऐसा करने से यूप का ही दाह हो जाय। अतः अन्तिकता का विधान नहीं हो सकता। शबर भाष्य।

अवभृथ में सांग प्रधान का अनुष्ठान है। इस अधिकरण के सूत्र।
पूर्वपक्ष सूत्र—

अवभृथे प्रधानेऽग्निविकारः स्यात् न हि तद्धेतुरग्निसंयोगः ।२८।

पदार्थ—(अवभृथे) अवधृथ में (प्रधाने अग्निविकारः) प्रधानकर्म ही करना चाहिये। (हि) कारण कि (तद्धेतुः न अग्निसंयोगः) अग्नि के साथ प्रधान हेतुक अंगों का सम्बन्ध नहीं होता।

भावार्थ—ज्योतिष्टोम प्रकरण में सुनते हैं—**अवभृथेन चरन्ति**। यहाँ आपः अर्थात् जल में जो कर्त्तव्य है वह मात्र प्रधान कर्म हों वही करने का है। अंग कर्म जल में नहीं किये जाते। कारण कि '**अवभृथशब्दो वरुणदेवतस्य एककपालस्य मात्रस्य वाचकः** वरुणदेवताक एक कपालद्रव्यक याग का वाचक अवभृथ है। अतः अवभृथ शब्द से एक कपालरूप द्रव्य का वरुण देवता के साथ सम्बन्ध बताने का प्रसंग ही नहीं।

द्रव्यदेवतावत् ।२९।

पदार्थ—(द्रव्यदेवतावत्) द्रव्य और देवता याग के स्वरूप हैं, उनकी भांति।

भावार्थ—जैसे कपालरूप द्रव्य और वरुण देवता प्रधान कर्म में विहित हैं, अंग कर्म में नहीं। वैसे जल भी प्रधान कर्म में ही विहित है। इसलिये अवभृथ कर्म में अंगों का सम्बन्ध नहीं।

सांगो वा प्रयोगवचनैकत्वात् ।३०।

पदार्थ—(वा) अथवा (साङ्गः) अंग सहित प्रधान कर्म जल में कर्त्तव्य है। (प्रयोगवचनैकत्वात्) प्रयोग विधि अंग और प्रधान में साधारण होता है।

भावार्थ—देश, काल, और कर्ता आदि प्रयोग के अंग होते हैं। 'अ प्सु

शब्द से देश का विधान है। अतः इसका प्रयोग के साथ सम्बन्ध है। इससे उसमें अंग तथा प्रधान दोनों का सम्बन्ध है।

लिंगदर्शनाच्च ।३१।

पदार्थ—(च) और (लिंगदर्शनात्) लिंग भरतवाक्य का भी श्रवण है।

भावार्थ—'**अप्सु तृणं प्रास्य आधारमाधारयति**' इस वाक्य में पानी में दर्भ डालकर आधार अंग करने का स्पष्ट कथन है। आधार-अंग कर्म है अतः प्रधान और अंग दोनों कर्म जल में करने होते हैं। यह स्पष्ट है।

शब्दविभागाच्च देवतानपनयः ।३२।

पदार्थ—(च) और (शब्दविभागात्) अवभृथ शब्द से देवता का विभाग होने से (देवतानपनयः) अंगों में देवता का सम्बन्ध है।

भावार्थ—अवभृथ शब्द से देवता का विभाग होता है। द्रव्य और देवता यह तो याग का स्वरूप है। उससे उत्पत्ति वाक्य में उसके अवभृथ पद का वाच्य के साथ सम्बन्ध है। अर्थात् देवता और द्रव्य का अवभृथ का अर्थ के साथ सम्बन्ध बताया है। इससे कई अंगों के अनुष्ठान का सम्बन्ध दूर नहीं होता। इससे स्पष्ट होता है कि अवभृथ में सांग प्रधान का अनुष्ठान करना होता है।

उत्तर दक्षिण विहारों का अंगों के भेद से अनुष्ठान करना—इस अधिकरण के सूत्र—

दक्षिणेऽग्नौ वरुणप्रघासेषु देशभेदात् सर्वं विक्रियते ।३३।

पदार्थ—(दक्षिणे) दक्षिण विहार में (अग्नौ) अग्नि में (वरुणप्रघासेषु) वरुणप्रघास में (देशभेदात्) देश भिन्न होने से (सर्वम् विक्रियते) सर्व का अनुष्ठान भिन्नता से होता है।

भावार्थ—वरुणप्रघास में विहार का पृथक्त्व आम्नात हुआ है। **उत्तरस्यां वेद्यामन्यानि हवींषि सादयति दक्षिणस्यां मारुतीमिति चातुर्मास्ये वरुणप्रघासे श्रुतम्**। इस प्रकार चातुर्मास्य में वरुणप्रघास में श्रवण होता है। यहाँ यह सिद्धान्त है कि दक्षिण अग्नि में पृथक् २ सर्व अंगों का अनुष्ठान होता है। तंत्र से नहीं।

अचोदनेति चेत् ।३४।

पदार्थ—(अचोदना इति चेत्) फलप्रत्ये कर्म की चोदना अर्थात् विधान नहीं, जो ऐसी शंका हो तो इसका उत्तर अगले सूत्र में है।

भावार्थ—फल को उद्दिष्ट कर विधान नहीं, इसलिये कि मा त्वती का विधान फल बोधक नहीं। तो यहाँ अंगों की प्राप्ति ही नहीं। जहाँ अंगों की प्राप्ति ही नहीं, वहाँ तंत्र से अनुष्ठान करना या भेद से, इस विचार को अवकाश ही नहीं रहता। इस शंका का समाधान अगले सूत्र में है।

स्यात् पौर्णमासीवत् ।३५।

पदार्थ—(स्यात्) अंगों की प्राप्ति है (पौर्णमासीवत्) पौर्णमासी के तुल्य।

भावार्थ—**पौर्णमास्या यजेत**' इस स्थल पर फल का सम्बन्ध नहीं बताया, फिर भी अंगों का अनुष्ठान होता है। उसी प्रकार '**दक्षिणस्यां मारुतीम्**' इस स्थान पर अंगों का अनुष्ठान होता है।

प्रयोगचोदनेति चेत् ।३६।

पदार्थ—(प्रयोगचोदना इति चेत्) प्रयोग विधि है, इससे।

भावार्थ—जो ऐसी शंका हो कि '**पौर्णमास्या यजेत**' इस स्थान पर जो '**यजेत**' इस आख्यात पद से प्रयोग का विधान है, अतः वहाँ तो अंग और प्रधानकर्मों का अनुष्ठान होना उचित है। इस शंका का समाधान अगले सूत्र में है।

तथेह ।३७।

पदार्थ—(तथा इह) उसी प्रकार यहाँ है।

भावार्थ—मारुती का भी प्रयोग ही विहित है। आसादयति—इस आख्यात का उल्लेख यहाँ भी है—'**तस्मान्मारुत्यपि दक्षिणविहारे कर्त्तव्या**' **शाबर भाष्य**। मारुती प्रयोग भी दक्षिण विहार में अंगों सहित करना।

आसादनमिति चेत् ।३८।

पदार्थ—(आसादनम् इति चेत्) मारुती प्रयोग से आसादन है। जो ऐसी शंका हो तो।

भावार्थ—पौर्णमासी वाक्य में '**यजति**' आख्यात का श्रवण है। मारुती में **आसादयति** आख्यात का श्रवण है, अतः अंग से प्रयोग विधि सम्भव होती है, यह कथन ठीक नहीं। आसादन मात्र विधि तो अदृष्टार्थक है।

नोत्तरेणैकवाक्यत्वात् ।३९।

पदार्थ--(न) नहीं (उत्तरेण) उत्तर के साथ (एकवाक्यत्वात्) तुल्य योगक्षेम होने से।

भावार्थ—जैसे उत्तर वेदी में हविष् का आसादन याग के लिये है, वैसे दक्षिणी वेदी में हविष् का आसादन भी याग के लिये है। अदृष्ट के लिये नहीं।

अवाच्यत्वात् ।४०।

पदार्थ—(अवाच्यत्वात्) आसादन से होम वाक्य नहीं अतः प्रयोग विधि नहीं।

भावार्थ—'**आसादयति**' यह पद होम क्रिया का वाचक नहीं, यह सत्य होने पर भी इस पद को लक्षणा मान कर प्रयोग विधि स्वीकार करनी चाहिये।

आम्नायवचनं तद्वत् ।४१।

पदार्थ—(तद्वत्) इस प्रकार (आम्नायवचनम्) लक्षणा स्वीकार करने में आम्नाय का वचन कारण रूप में है।

भावार्थ—'**यदेव अध्वर्युः करोति तत्प्रतिप्रस्थाता करोति तथा देवता-यजानिति**' इस वचन से दक्षिण विहार में भी उत्तर विहार के तुल्य याग का विधान होता है। अतः दक्षिण विहार में अंगों के भेद से अनुष्ठान होता है।
पूर्वपक्ष सूत्र—

कर्तृभेदस्तथेति चेत् ।४२।

पदार्थ—(कर्तृभेदः) कर्ताओं का भी भेद होना चाहिये। (तथा इति-चेत्) उपर्युक्त प्रकार से मानने से जो यह शंका हो तो उसका उत्तर अगले सूत्र में है।

भावार्थ—दक्षिण विहार में ऋत्विज् पृथक् २ होने चाहियें या वे ही। इस शंका में पूर्वपक्षवादी का कहना है कि कर्त्ताओं का भेद होना चाहिये। चातुर्मास्य के यज्ञ ऋतुओं के पांच ऋत्विज् होते हैं। '**चातुर्मास्यानां यज्ञऋतूनां पञ्चर्त्विजः।**' अध्वर्यु, प्रतिप्रस्थातृ, होतृ, ब्रह्मा तथा आग्नीध्र—ये पांच ऋत्विज् चातुर्मास्य यज्ञ ऋतुओं में होते हैं। वे ही ऋत्विज्, दक्षिण विहार में नहीं होते, पृथक् होने चाहियें। ऐसा पूर्वपक्षवादी का मन्तव्य है।
सिद्धान्त सूत्र—

न समवायात् ।४३।

पदार्थ—(न) नहीं (समवायात्) पञ्चत्व का ही समवाय होने से।

भावार्थ—दक्षिण विहार में उपर्युक्त वर्णित ही पांच ऋत्विज् कर्म कराने वाले होते हैं। पांच से अधिक ऋत्विज् नहीं होने चाहिये।

लिंगदर्शनाच्च ।४४।

पदार्थ—(च) और (लिंगदर्शनात्) लिंग वाक्य का श्रवण होने से।

भावार्थ—**प्रवयसमृषभं दक्षिणां ददाति'** इस प्रकार इन्हीं कर्ताओं का बोधक वाक्य है। दक्षिण विहार से अन्यत्र दक्षिणा का श्रवण नहीं होता, अतः सभी ऋत्विज् नहीं। ऐसा अनुमान होता है।

वेदिसंयोगादिति चेत् ।४५।

पदार्थ—(वेदिसंयोगात्) वेदी के साथ होता के पाद का सम्बन्ध होने से (इति चेत्) जो ऐसी शंका हो तो—

भावार्थ—**'अन्तर्वेद्यन्यः पादः बहिर्वेद्यन्यः पादः होतुः।** यह वाक्य ऐसा बताता है कि होता का पद अन्तर्वेदि में होता है और वेदी के बाहर भी होता है। जो एक होता ही हो तो वेदी के अन्दर और बाहर किस प्रकार सम्भव हो सकता है? अतः कर्ता में भेद है, ऐसा समझा जाता है। इसलिये कि दो होता होने चाहियें। इस शंका का समाधान अगले सूत्र में है—

न देशमात्रत्वात् ।४६।

पदार्थ—(न) नहीं (देशमात्रत्वात्) देश विशेष की विधि रूप होने से।

भावार्थ—होता पाद का प्रक्षेप यह कोई वेदी के संस्कार के लिये नहीं होता। **देशमात्रमेतद्विधीयते तस्मिन् देशे होत्रा स्थातव्यम् यत्रास्यैकः पादोऽन्तर्वेदि भवति बहिर्वेद्यन्यः।'** उक्त वाक्य से देश विशेष का विधान है। होता ऐसे स्थान पर खड़ा रहना चाहिये कि उसका एक पैर वेदी के अन्तर्भाग में हो और दूसरा पैर वेदी के बाहर हो। अतः अन्य होता का यहाँ विधान ज्ञात नहीं होता। अतः चातुर्मास्य यज्ञ और ऋतु में पांच कर्ताओं के अतिरिक्त सभी का विधान नहीं। इसलिये कर्ता का अभेद है।

उत्तर दक्षिण विहार के आपराग्निक होमों का पृथक् अनुष्ठान होता है। इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष—

एकाग्नित्वादपरेषु तन्त्रं स्यात् ।४७।

पदार्थ—(एकाग्नित्वात्) एक ही अग्नि होने से (अपरेषु) पत्नीसंयाजादि में (तन्त्रं स्यात्) तंत्र होता है।

भावार्थ—गार्हपत्य रूप एक ही अग्नि होने से पत्नीसंयाजादि भी तंत्र से होता है। अर्थात् एक साथ होता है।

नाना वा कर्तृभेदात् ।४८।

पदार्थ—(वा) अथवा (नाना) आवृत्ति से होता है (कर्तृभेदात्) कर्ताओं में भेद होने से।

भावार्थ—मारुती दृष्टि में जो अंग होते हैं वे प्रतिप्रस्थातृ नामक ऋत्विज् द्वारा करने होते हैं। और दूसरे अंग अध्वर्यु द्वारा करने होते हैं। इस प्रकार कर्ता भिन्न होने से कर्म की आवृत्ति होती है। इसलिये कि एक साथ दो कर्म नहीं होते। भले ही गार्हपत्य रूप अग्नि एक रही हो पर उसके कर्ता पृथक्२ होते हैं।

वाजपेय में ब्रह्मसामकाल में आलम्भ कर्म शेष का प्रतिषेध है। यह अधिकरण।

पूर्वपक्ष—

पर्यग्निकृतानामुत्सर्गे प्राजापत्यानां कर्मोत्सर्गः श्रुतिसामान्यादारण्यवत् तस्माद् ब्रह्मसाम्नि चोदनापृथक्त्वं स्यात् ।४९।

पदार्थ—(उत्सर्गे) उत्सर्ग के समय (प्राजापत्यानाम्) प्राजापत्य पशुओं सम्बन्धी जो आलम्भन अर्थात् प्राप्ति है (कर्मोत्सर्गः) उनका उत्सर्ग किया जाता है (पर्यग्निकृतानाम् आरण्यवत्) पर्यग्नि किये आरण्य पशुओं को जैसे छोड़ दिया जाता है, वैसे (श्रुतिसामान्यात्) उत्सृजति पद का अर्थ छोड़ना होता है, इसके आधार पर (तस्मात्) अतः (ब्रह्मसाम्नि) ब्रह्मसाम के समय (चोदनापृथक्त्वम् स्यात्) कर्मान्तर है।

भावार्थ—वाजपेय याग में प्राजापत्य पशुओं के अर्थात् परमात्मा देवता का स्मरण कर जो पशुओं का यज्ञ में दान किया जाता है, उनका उत्सर्ग अर्थात् त्याग करना, यह कर्मशेष नहीं पर एक पृथक् कर्म ही है। ऐसा पूर्व पक्षवादी का मन्तव्य है।

सिद्धान्त सूत्र—

संस्कारप्रतिषेधो वा वाक्यैकत्वे क्रतु-सामान्यात् ।५०।

पदार्थ—(वा) अथवा (संस्कारप्रतिषेधः) संस्कार कालमात्र का प्रतिषेध है (वाक्यैकत्वे) एक वाक्य होने से (क्रतुसामान्यात्) क्रतु सामान्य होने से।

भावार्थ—'पर्यग्निकृतान् उत्सृजन्ति ब्रह्मसाम्न्यालभते' ये दोनों वाक्य मिलकर एक वाक्यता होती है। द्रव्य देवता का श्रवण न होने से पूर्वोत्तर वाक्यों का समान ऋतुत्व सिद्ध होता है। उपर्युक्त से यह सिद्ध होता है कि ऊपर के दो वाक्यों से कोई पृथक् कर्म विहित नहीं पर संस्कार काल मात्र का प्रतिषेध होता है।

वपायां चानभिघारणस्य दर्शनात् ।५१।

पदार्थ—(च) और (वपायाम्) वपा में (अनभिघारणस्य) अनभिघारण (दर्शनात्) दीख पड़ने से।

भावार्थ—पर्यग्निकरण के बाद किसी अन्य का व्यापार नहीं। ऐसा उत्सर्ग शब्द से अनुवाद होता है।

अहीन ऋतु में उक्षा का उत्सर्ग कर्मशेष के प्रतिषेध के लिये है।

पूर्वपक्ष—

पञ्चशारदीयास्तथेति चेत् ।५२।

पदार्थ—(तथा) पूर्व अधिकरण के तुल्य (पञ्चशारदीयाः) पञ्चशारदीय नामक ऋतु शेष कर्म की अत्यन्त निवृत्ति नहीं (इति चेत्) जो ऐसी शंका हो तो उत्तर अगले सूत्र में है—

भावार्थ—पांच वर्षों तक चलने वाला पंचशारदीय नामक ऋतु होता है। उससे कई पशुओं का प्रथम वर्ष में दान किया जाता है और शेष पशुओं का दान पीछे के वर्षों में होता है। और इसके लिये शेष कर्म की अत्यन्त निवृत्ति नहीं।

सिद्धान्त सूत्र—

न चोदनैकवाक्यत्वात् ।५३।

पदार्थ—(न) नहीं (चोदना) अपूर्व कर्म का विधान है (एक वाक्यत्वात्) अनेक गुण विशिष्ट अपूर्व कर्म विधान में एक वाक्यता है।

भावार्थ—पांचवें वर्ष में जिन पशुओं का दान किया जाता है, वह अपूर्व कर्म ही है। कोई शेष कर्म करने का नहीं होता।

संस्काराणां च दर्शनात् ।५४।

पदार्थ—(च) और (संस्काराणाम्) संस्कारों का (दर्शनात्) श्रवण होने से।

भावार्थ—जिन नूतन पशुओं का दान किया जाता है उनके लिये पर्यग्निकरण और प्रोक्षण रूप संस्कार भी करने होते हैं।

अभिषेचनीय और दशपेय ऋतुओं का भिन्न भिन्न अनुष्ठान करना चाहिये।

पूर्वपक्ष—

दशपेये क्रयप्रतिकर्षात्प्रतिकर्षस्ततः प्राचां तत्समानं तन्त्रं स्यात् ।५५।

पदार्थ—(दशपेये) दशपेय नामक एकाह ऋतु में क्रय का प्रतिकर्ष होने से (ततः प्राचां प्रतिकर्षः) सोमक्रय पहले के अंगों का भी प्रतिकर्ष है। (तत् तन्त्रं स्यात्) अतः समान तंत्र है।

भावार्थ—अभिषेचनीय और दशपेय ऋतुओं के अंगों का सह अनुष्ठान होता है। सोमक्रय के पहले के अंगों का सह तंत्र होने से उत्तर अंगों का भी सह तंत्र है। ऐसा पूर्वपक्षवादी का भाव है।

समानवचनं तद्वत् ।५६।

पदार्थ—(तद्वत्) उस प्रकार (समानवचनम्) दशपेय और अभिषेचनीय यज्ञों का समानवचन भी है।

भावार्थ—जिस समय में अभिषेचनीय यज्ञ के अंग कलापों का प्रतिपादन किया है, उसी काल में दशपेय यज्ञ के अंग कलापों का प्रतिपादन किया है। इस समानता के कारण भी दोनों यागों का सह अनुष्ठान करना होता है। अर्थात् यह दोनों का तंत्र है।

सिद्धान्त सूत्र—

अप्रतिकर्षो वाऽर्थहेतुत्वात् सहत्वं विधीयते ।५७।

पदार्थ—(वा) अथवा (अप्रतिकर्षः) प्रतिकर्ष नहीं (अर्थहेतुत्वात्) पूर्वक्रय अर्थ हेतु होने से (सहत्वं विधीयते) सहत्व का विधान है।

भावार्थ—मुख्यक्रय में सहत्व अर्थात् तंत्र का विधान है। ऋतु आरम्भ होने के पूर्व सोम विक्रेता के साथ जो क्रयविक्रय (खरीद फरोख्त) का संवाद होता है उसमें सोम क्रय का निश्चय होता है और वही अर्थ हेतु है। जो प्रथम सोम खरीदा न हो तो प्रयोग के समय सोम न भी मिले, इसलिये ऋतु ही न हो, अतः साथ ही क्रय करने रूप जो प्रतिकर्ष है वह तो मुख्यक्रय में प्रयोग के समय प्रतिकर्ष नही। अतः इसमें सहत्व भी नहीं।

पूर्वस्मिश्चावभृथस्य दर्शनात् ।५८।

पदार्थ—(च) और (पूर्वस्मिन्) पूर्व जो अभिषेचनीय है उसमें (अवभृथस्य दर्शनात्) अवभृथ का दर्शन भी है।

भावार्थ—**'समानं वा एतद् यज्ञं छिन्दन्ति यदभिषेचनीयस्यावभृथ इति।'** यदि दोनों यज्ञों के अंगों का सह अनुष्ठान होता तो अवभृथ रूप अंग भी दशपेय के पीछे अनुष्ठित होना चाहिये था, परन्तु ऐसा न होने से पहले ही अवभृथ का श्रवण होता है। इससे समझा जाता है कि दोनों यज्ञों का तंत्र नहीं है।

दीक्षाणां चोत्तरस्य ।५९।

पदार्थ—(च) और (उत्तरस्य) दशपेय के दिवस में (दीक्षाणाम्) दीक्षा का विधान है।

भावार्थ—यदि दोनों के अंगों का सह अनुष्ठान होता तो दीक्षा भी साथ होनी चाहिये थी, पर दशपेय की दीक्षा का विधान स्वतंत्रता से दशपेय दिवस में है। इससे भी स्पष्ट होता है कि दोनों यज्ञों के अंगों का तंत्र नहीं।

समानः कालसामान्यात् ।६०।

पदार्थ—(समानः) समानता तो (कालसामान्यात्) एक ऋतु रूप काल के कारण है।

भावार्थ—समान शब्द का जो प्रयोग किया है, वह तो ऋतु रूप जो स्थूल काल विहित है, उसके कारण है। अर्थात् अभिषेचनीय और दशपेय ये दोनों याग एक ही ऋतु में अनुष्ठित होते हैं। इतना ही साम्य है। बाकी दोनों यागों के अंगों का अनुष्ठान तो भेद से होता है।

'वारुण्या निष्कासेन अवभृथं यन्ति' यह वाक्य कर्मान्तर का उपदेश करता है। इस अधिकरण के सूत्र।

पूर्वपक्ष—

निष्कासस्यावभृथे तदेकदेशत्वात्पशुवत् प्रदान विप्रकर्षः स्यात् ।६१।

पदार्थ—(निष्कासस्य) निष्कास (तदेकदेशत्वात्) आमिक्षा का एक देश होने से (अवभृथे) अवभृथ में (पशुवत्) पशु के तुल्य (प्रदानविप्रकर्षः स्यात्) प्रदान का विप्रकर्ष मात्र है।

भावार्थ—वरुणप्रघास में श्रवण होता है कि वारुणी आमिक्षा निष्कास से (आमिक्षा शेष याग से) और तुष से अवभृथ का अनुष्ठान करना। यह अनुष्ठान आमिक्षा प्रदान का विप्रकर्ष शेष कर्म है या कोई नूतन कर्म है? इस संशय में पूर्वपक्ष का मानना है कि जैसे पशुदान शेष कर्म है, वैसे निष्कास से अवभृथ का अनुष्ठान करना, यह वारुणी आमिक्षा प्रदान का शेष कर्म ही है कोई अपूर्व कर्म नहीं। कारण कि वारुणी आमिक्षा का वह एक देश है और इसकी तथा आमिक्षा की देवता भी एक ही है। अतः प्रदान का विप्रकर्ष अर्थात् शेष कर्म मानना योग्य है।

सिद्धान्त सूत्र—

अपनयो वा प्रसिद्धेनाभिसंयोगात् ।६२।

पदार्थ—(वा) अथवा (अपनयः) पृथक् ही कर्म है (प्रसिद्धेन अभिसंयोगात्) प्रसिद्ध कर्म नाम से उसका निर्देश होने से।

भावार्थ—निष्कास से अवभृथ का अनुष्ठान करना, यह एक पृथक् ही कर्म है। कारण कि **'अवभृथ'** इस प्रसिद्ध कर्म नाम से निर्देश है।

प्रतिपत्तिरिति चेन्न ।६३।

पदार्थ—(प्रतिपत्तिः) प्रतिपत्ति कर्म है (इति चेत् न) जो ऐसा माना जाय तो यह ठीक नहीं।

भावार्थ—निष्कास और तुष से अवभृथ का अनुष्ठान करना, यह प्रति-कर्म है, ऐसा मानना भी ठीक नहीं, कारण कि 'निष्कासेन' इस तृतीया विभक्ति से अवभृथ में प्रधान कर्म के साथ सम्बन्ध जाना जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि निष्कास और तुष द्रव्य से जो अवभृथ कर्म किया जाता है वह भिन्न कर्म है। किसी का भी यह शेष कर्म नहीं, इसलिये कि प्रदान का विप्रकर्ष है।

प्रायणीय निष्कास उदयनीय कर्म के निर्वाप का अर्थ कर्म है। इस अधिकरण के सूत्र—

प्रायणीये च तद्वत् ।६४।

पदार्थ—(च) और (प्रायणीये) प्रायणीय का निष्कास (तद्वत्) अवभृथ के तुल्य अपूर्व कर्म है।

भावार्थ—जैसे अवभृथधर्मक कर्म अपूर्व है वैसे उदयनीय धर्मक भी अपूर्व कर्म है। ज्योतिष्टोम में इस प्रकार श्रवण है—**'प्रायणीयस्य निष्कास उदयनीयमभिनिर्वपति'** इस वाक्य में **निष्कासे'** यह सातवीं विभक्ति है और सप्तमी विभक्ति वाले पद का अर्थ गुणरूप में होता है। इसलिये उदयनीय कर्म निर्वाप में प्रायणीय निष्कास गुणरूप में है।

अन्यपक्ष—

प्रतिपत्तिर्वाऽकर्म संयोगात् ।६५।

पदार्थ—(वा) अथवा (प्रतिपत्तिः) प्रायणीयाशेष प्रतिपत्तिरूप कर्म है। (अकर्म संयोगात्) कर्म भिन्न निर्वाप के साथ सम्बन्ध होने से।

भावार्थ—निष्कास पदार्थ का उदयनीय रूप जो कर्म है उससे भिन्न निर्वाप का सम्बन्ध होने से प्रतिपत्ति रूप कर्म है।

सिद्धान्त सूत्र—

अर्थकर्म वा शेषत्वाच्छ्रपणवत्तदर्थेन विधानात् ।६६।

पदार्थ—(वा) अथवा (अर्थकर्म) निर्वाप प्रधान कर्म है (शेषत्वात्) निर्वाप प्रत्ये निष्कास रूप द्रव्य शेष होने से (श्रपणवत्) श्रपण के तुल्य (तदर्थेन विधानात्) सप्तम्यन्त पद का अर्थ निर्वाप के लिये विहित होने से।

भावार्थ—निष्कास रूपद्रव्य निर्वाप के लिये होने से निष्कास गुण है और निर्वाप अपूर्व कर्म है। इसलिये उयनीया निर्वाप जो निष्कास द्रव्य से किया जाता है, वह अपूर्व कर्म है।

इति जैमिनीयमीमांसादर्शन भाष्ये एकादशाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥११।२॥

अथ मीमांसादर्शने एकादशा-ध्यायस्य तृतीयः पादः

वेदी आदि अंगों के कर्त्तव्य का काल प्रधानकर्म के काल से पृथक् होता है।

अंगानां मुख्यकालत्वाद् वचनादन्यकालत्वम् ।१।

पदार्थ—(अङ्गानाम्) अंग कर्म के अनुष्ठान का (मुख्यकालत्वात्) प्रधानकर्म के अनुष्ठान का जो समय होता है, वही समय होता है (वचनाद् अन्यकालत्वात्) जो भिन्न काल बताने वाला कोई वचन हो तो भिन्न काल में भी अनुष्ठान होता है।

भावार्थ—अंग कर्मों के अनुष्ठान का समय प्रधानकर्म के अनुष्ठान के समय के साथ ही होता है। पर जो भिन्न समय बताने वाला कोई वचन प्रमाण हो तो भिन्न काल में भी अंगों का अनुष्ठान होता है।

आधान के तंत्र से अनुष्ठान होता है—

द्रव्यस्याकर्मकालनिष्पत्तेः प्रयोगः सर्वार्थः स्यात् स्वकालत्वात् ।२।

पदार्थ—(स्वकालत्वात्) वसन्तादि रूप स्वकाल में विहित होने से (द्रव्यस्य) आधान संस्कृत वह्नि का (अकर्मकाले) प्रधान कर्म के भिन्न काल में (निष्पत्तेः) उत्पन्न होने से (प्रयोगः सर्वार्थः) आधान प्रयोग सबके लिये है।

भावार्थ—अग्न्याधान का प्रयोग सर्व ऋतुओं के लिये है। 'वसन्ते ब्राह्मणोऽग्निमादधीत' यह आधान सर्व ऋतुओं के लिये है। कारण प्रधानकाल से भिन्न काल में इसका अनुष्ठान हुआ है। अर्थात् प्रधान और आधान के समय पृथक् २ हैं।

अग्निषोमीयादि में यूप का तंत्र से अनुष्ठान है। इस अधिकरण के सूत्र—

यूपश्चाकर्म कालत्वात् ।३।

पदार्थ—(च) और (अकर्मकालत्वात्) अनुष्ठान के समय यूप की अनुत्पत्ति होने से (यूप) तंत्र है।

भावार्थ—यूप भी कर्मों के अनुष्ठान समय उत्पन्न न होने से उसका अनुष्ठान भी तंत्र से होता है। खास अमुक अग्नीषोमीय के लिये ही यूप है, ऐसा नियम नहीं बनाया जा सकता।

यूप संस्कारों का भी तंत्र से अनुष्ठान होता है—इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष—

संस्कारास्त्वावर्तेरन्नर्थकालत्वात् ।४।

पदार्थ—(संस्काराः) यूप के जो प्रोक्षण, अंजन आदि संस्कार हैं, उनकी (आवर्तेरन्) आवृत्ति होती है (अर्थकालत्वात्) पशु नियोजन के समय का होने से।

भावार्थ—पशु नियोजन के समय के प्रोक्षणादि होने से यूप के प्रोक्षणादि संस्कारों की आवृत्ति होती है।

सिद्धान्त सूत्र—

तत्कालास्तु यूपकर्मत्वात् तस्य धर्मविधानात् सर्वार्थानां वचनादन्यकालत्वम् ।५।

पदार्थ—(तत्कालाः तु) संस्कार तो दीक्षाकालीन होते हैं (यूपकर्मत्वात्) यूप इनका कार्य होने से (तस्य धर्मविधानात्) वे यूप के धर्म रूप विधान होने से (सर्वार्थानाम्) सर्वार्थ होने पर भी (वचनात् अन्यकालत्वम्) वचन होने से उनका भिन्न काल सिद्ध होता है।

भावार्थ—'दीक्षासु यूपं छिनत्ति' इस वचन से सिद्ध होता है कि यूप दीक्षा के समय उत्पन्न किया जाता है। और प्रोक्षणादि संस्कार भी यूप के धर्म हैं इससे वे भी यूपोत्पत्ति के समय किये जाते हैं। छेदन यूप के सभी संस्कारों का उपलक्षक है। अतः संस्कारों की भिन्नकालता उक्त वचन से सिद्ध होती है।

सकृन्मानं च दर्शयति ।६।

पदार्थ—(च) और (सकृत् मानं) एक समय यूप का मान भी (दर्शयति) बताता है।

भावार्थ—यूप का परिमाण आदि मानव का अनुष्ठान भी तंत्र से करना, ऐसा बताया गया है।

स्वरु साधारण है। इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष—

स्वरुस्तन्त्रापवर्गः स्यादस्वकालत्वात् ।७।

पदार्थ—(स्वरुस्तन्त्रापवर्गः) अग्नीषोमीय तंत्र से स्वरु की समाप्ति (स्यात्) है। (अस्वकालत्वात्) स्वरु का अपना स्वतंत्र काल न होने से।

भावार्थ—स्वरु अर्थात् यूप का छेदन करते समय जो प्रथम टुकड़ा पृथक् होता है। इसका उपयोग अंजन रूप संस्कार में होता है। यूप के लिये स्वरु नहीं होता। अतः इसका विधान अंजन रूप संस्कार के समय होता है।

सिद्धान्त सूत्र—

साधारणो वाऽनुनिष्पत्तिस्तस्य साधारणत्वात् ।८।

पदार्थ—(वा साधारणः) स्वरु साधारण होता है (अनुनिष्पत्तेः) यूप के साथ उसकी उत्पत्ति होने से (तस्य साधारणत्वात्) वह एक होने से।

भावार्थ—यूप के छेदन के समय स्वरु की उत्पत्ति होती है और स्वरु प्रथम टुकड़े को ही कहते हैं। अतः वह साधारण अर्थात् सबके लिये है।

सीमान्ते च प्रतिपत्तिदर्शनात् ।९।

पदार्थ—(सीमान्ते च) सवनत्रय के अन्त में (प्रतिपत्तिदर्शनात्) स्वरु की प्रतिपत्ति का दर्शन होने से।

भावार्थ—**'संस्थिते सोमे प्रस्तरं स्वरुं च प्रहरति'** इस प्रकार सुबोधिनी नामक जैमिनि सूत्र वृत्ति में उल्लेख है। तीन सवन पूरे हुये पश्चात् प्रस्तर और स्वरु का प्रहरण किया जाता है। **'यदि भेदेन स्वरुः अग्नीषोमीयान्त एव प्रहरणं स्यादिति'** यह भी सूत्र वृत्ति का प्रमाण है। जो भेद से स्वरु हो तो अग्नीषोमीय के अन्त में ही ग्रहण किया जाता है। अतः स्वरु साधारण है।

पूर्वपक्षवादी की शंका—

तत्कालो वा प्रस्तरवत् ।१०।

पदार्थ—(वा) अथवा (तत्कालः) वही काल है (प्रस्तरवत्) प्रस्तर के तुल्य।

भावार्थ—जैसे प्रस्तर के प्रहरण में सीमान्त काल है, वैसे स्वरु का भी वही काल माना जावे, अर्थात् स्वरु की अवधि वही काल है।

न वोत्पत्तिवाक्यत्वात् प्रदेशात् प्रस्तरे तथा ।११।

पदार्थ—(व) अथवा (न) नहीं (उत्पत्तिवाक्यत्वात्) उत्पत्ति वाक्य होने से (प्रदेशात्) दर्शपूर्णमास प्रदेश में से (प्रस्तरे तथा) प्रस्तर प्रहरण का काल विधान प्राप्त है।

भावार्थ—प्रस्तर के तुल्य स्वरु प्रहरण नहीं, स्वरु प्रहरण तो अत्यन्त अप्राप्त है। उसकी उत्पत्ति तो **संस्थिते सोमे प्रस्तरे स्वरुं च प्रहरति'** इस वाक्य से ही है। प्रस्तर का जो काल विधान है वह तो दर्शपूर्णमास में से अतिदेश शास्त्र से प्राप्त है। अतः स्वरु साधारण है। इस अधिकरण का उत्तरपक्ष श्री सायणाचार्य इस प्रकार बताते हैं—**'यः प्रथमः शकलः परापतेत् स स्वरुः कार्यः' इति श्रुतं प्राथम्यमेकस्मिन्नेव शकले युक्तम्। स च शकलो यूपकालीनः पशु-विशेषसम्बन्धे हेतुमलभमानो यूपवत् तन्त्रेण सर्वेषु पशुषूपकरिष्यति।'**

द्वादशाह में कृष्ण विषाण प्रास की अन्त्य दिवस में ही कर्त्तव्यता है।

पूर्वपक्ष—

अहर्गणे विषाणाप्रासनं धर्मविप्रतिषेधादन्त्ये प्रथमेऽहनि वा विकल्पः स्यात् ।१२।

पदार्थ—(अहर्गणे) द्वादशाह आदि अहर्गणसाध्य याग में (विषाणा प्रासनम्) कण्डूयनार्थ जो विषाण होता है उसका प्रासन (धर्मविप्रतिषेधः) दोनों पक्ष में से किसी भी पक्ष के स्वीकार करने से धर्म का लोप होने से (अन्त्ये प्रथमे अहनि वा) प्रथम दिवस अथवा अन्तिम दिवस में विषाण का प्रासन करना (विकल्पः स्यात्) इस प्रकार प्रासन का विकल्प है।

भावार्थ—**'ज्योतिष्टोमे नीतासु दक्षिणासु चात्वाले कृष्णविषाणां प्रास्यति'** ज्योतिष्टोम में दक्षिणा देने के पश्चात् चात्वाल में कृष्ण विषाण का प्रासन (दे देना) होता है। इस कृष्ण विषाण का प्रासन प्रथम दिवस में अथवा अन्तिम दिवस में करने का विकल्प है।

सिद्धान्त सूत्र—

पाणेस्त्वश्रुतिभूतत्वाद्विषाणानियमः स्यात् प्रातः-सवनमध्यत्वाच्छिष्टे चाभिप्रवृत्तत्वात् ।१३।

पदार्थ—(पाणेः तु अश्रुतिभूतत्वात्) हाथ से कण्डूयन करना विहित न होने से उसका लोप होने से अंग का लोप नहीं होता, अतः (विषाणानियमः)

विषाण प्रासन का नियम (स्यात्) है। (प्रातःसवनमध्यत्वात्) प्रातः सवन जिसके मध्य में है (शिष्टे च) और अन्य समय में (अभिप्रवृत्तत्वात्) दक्षिणा दान के पीछे के समय तक विषाणा प्रासन का नियम है।

भावार्थ—विषाणा प्रासन का विकल्प नहीं, पर अन्तिम दिन में ही उसका प्रासन करना, यह नियम है। यज्ञ के समय हाथ से कण्डूयन करना शास्त्र विहित नहीं, अतः इसका लोप हो तो इसमें कोई बाधा नहीं। अन्तिम दिवस के मध्याह्न में विषाणाप्रासन का नियम है।

राजसूय यज्ञ में अन्तिम हविष्कृत् काल में वाग्विसर्ग करना, इस अधिकरण के सूत्र—

वाग्विसर्गो हविष्कृता बीजभेदे तथा स्यात् ।१४।

पदार्थ—(हविष्कृता) हविष्कृत यजमान में (वाग्विसर्गः) वाणी का विसर्ग करना (बीजभेदे) पृथक् २ बीजभेद वाली दृष्टि में (तथा स्यात्) इस प्रकार होती है।

भावार्थ—राजसूय यज्ञ में पृथक् २ दूसरे भेद वाली दृष्टि में अन्तिम हविष्कृत् आह्वान के समय वाणी का विसर्ग करना, अर्थात् प्रणीता के समय जो मौन स्वीकार किया है उसे 'हविष्कृद् एहि' इस प्रकार अन्तिम हविष्कृत् आह्वान के समय छोड़ना।

अग्नीषोमीय में पौराडाशिक काल के समय वाग्विसर्ग करना।

पशौ च पुरोडाशे समानतंत्रं भवेत् ।१५।

पदार्थ—(पशौ च पुरोडाशे) पशु का दान करते समय पुरोडाश के समय (समानतंत्रे भवेत्) समान तंत्र है।

भावार्थ—पशु का दान करते समय और पुरोडाश के समय वाङ्नियम रखना, अर्थात् मौन सेवन करना, अर्थात् पौराडाशिक तंत्र पर्यन्त वाङ्नियम करना चाहिये।

अग्निचयन में अग्नि विमोक प्रधान के अपवर्ग के समय करना, इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष सूत्र—

अग्निसंयोगः सोमकाले तदर्थत्वात्संस्कृतकर्मणः परेषु सांगस्य तस्मात्सर्वापवर्गे विमोकः स्यात् ।१६।

पदार्थ—(सोमकाले अग्निसंयोगः) सोम के समय जो अग्निसंयोग 'अग्नि युनज्मि' इत्यादि होम किया जाता है वह (साङ्गस्य) अंग सहित प्रधान के लिये है (संकृतकर्मणः) इस आहुति से संस्कृत हुआ अग्नि (तदर्थत्वात्) अंगों के लिये भी होने से (परेषु) पीछे के अग्नि कार्य के लिये भी है (तस्मात्) अतः (सर्वापवर्गे) सर्व कर्म होने के पश्चात् (विमोकः स्यात्) विमोक होता है।

भावार्थ—'अग्नि युनज्मि' इत्यादि मंत्र से जो होम होता है उसे योग कहा जाता है और 'इमं स्तनम्' आदि मंत्र से जो होम होता है उसे विमोक कहते हैं। यह विमोकाहुति प्रधान और अंग कर्मों के अन्त में देनी चाहिये। कारण योग नामक होम सबके लिये होता है इससे जिनके लिये योग हुआ है उनकी समाप्ति के पश्चात् ही अग्नि विमोक करना उचित है।

सिद्धान्त सूत्र—

प्रधानापवर्गे वा ।१७।

पदार्थ—(वा) अथवा (प्रधानापवर्गे) प्रधान कर्म के अन्त में अपवर्ग अर्थात् विमोक आहुति देना।

भावार्थ—अथवा प्रधानकर्म के लिये योग रूप कर्म होता है, इसलिये प्रधानकर्म समाप्त होने के बाद तुरन्त ही 'इमं स्तनं' इत्यादि मंत्र बोलकर अग्नि विमोक नामक आहुति देनी चाहिये।

अवभृथे च तद्वत् प्रधानार्थस्य प्रतिषेधो अपवृक्तार्थत्वात् ।१८।

पदार्थ—(तद्वत्) इसी प्रकार (अवभृथे च) अवभृथ में (प्रधानार्थस्य) प्रधान के लिये होने से (प्रतिषेधः) होता के वरण का प्रतिषेध सार्थक होता है (अपवृक्तार्थत्वात्) अपवर्ग के लिये होने से।

भावार्थ—अवभृथ में 'अवभृथे न होतारं वृणीते' इस वरण का निषेध जो सांगप्रधान के लिये है। उसी प्रकार योग होम भी प्रधानकर्म के लिये होना चाहिये। विमोक भी प्रधान कर्म के अन्त में होना चाहिये।

अहर्गणे प्रत्यहं स्यात् तदर्थत्वात् ।१९।

पदार्थ—(अहर्गणे) द्वादशरात्रादि में (तदर्थत्वात्) प्रधान के लिये ही होने से (प्रत्यहं स्यात्) प्रतिदिन योग और विमोक रूप कर्म श्रुति से होता है।

भावार्थ—द्वादशादि अहर्गण याग में प्रतिदिन याग और विमोक रूप होम कार्य श्रुति बताती है। अहरहर्युनक्ति अहरहर्विमुञ्चति इत्यादि जो सर्वार्थ

योग होता तो सर्व के अन्त में विमोक होता तो पीछे प्रतिदिन योग और विमोक का विधान करने का क्या कारण रहता है? अत: प्रधान के लिये ही योग है। इससे विमोक भी प्रधान के अन्त में करना चाहिये।

उपसत्कालीन सुब्रह्मण्याह्वान तंत्र से अनुष्ठित होता है।

सुब्रह्मण्या तु तन्त्रं दीक्षावदन्यकालत्वात्।२०।

पदार्थ—(तु) सिद्धान्त का सूचक है (सुब्रह्मण्या) सुब्रह्मण्यह्वान (दीक्षावत्) दीक्षा के तुल्य (अन्यकालत्वात्) अन्यकालिक होने से (तन्त्रम्) तन्त्र से होता है।

भावार्थ—ज्योतिष्टोम में प्रवर्ग्यसंनिधि में सुब्रह्मण्याह्वान विहित है, उस तंत्र से अर्थात् युगपत् करना जैसे दीक्षाकाल सुत्याकाल से भिन्नकाल में है वैसे सुब्रह्मण्या भी अन्य काल में होने से तंत्र से ही उसका अनुष्ठान करना चाहिये।

सुत्याकालिक सुब्रह्मण्याह्वान के भेद से अनुष्ठान करना, इस अधिकरण के सूत्र—

सिद्धान्त सूत्र—

तत्काला त्वावर्तेत प्रयोगतो विशेष-संयोगात्।२१।

पदार्थ—(तत्काला तु आवर्तेत) सुत्याकालिक सुब्रह्मण्याह्वान की आवृत्ति है, (प्रयोगतः) अद्य शब्द का प्रयोग होने से (विशेषसंयोगात्) विशेष-पद का संयोग होने से।

भावार्थ—'अद्य सुत्यामागच्छ' इस प्रयोग में 'अद्य' इस विशेष पद का सम्बन्ध होने से सुब्रह्मण्याह्वान भेद से अनुष्ठित होता है।

अप्रयोगांगमिति चेत्।२२।

पदार्थ—(अप्रयोगाङ्गम्) यह शब्द प्रयोग का अंग नहीं (इति चेत्) जो ऐसी शंका हो तो—

भावार्थ—अद्य शब्द प्रयोग का अंग नहीं। 'सुत्यामागच्छ' यही अर्थ विवक्षित है जो ऐसी शंका हो तो, इसका उत्तर अगले सूत्र में है।

स्यात्प्रोगनिर्देशात्कर्तृभेदवत्।२३।

पदार्थ—(स्यात्) प्रयोग का अंग है (प्रयोगनिर्देशात्) प्रयोग में इसका निर्देश हुआ है, इसलिये (कर्तृभेदवत्) कर्ता के भेद के तुल्य।

भावार्थ—जैसे वरुणप्रघास में आहवनीय में मारुती के याग का सम्भव होने पर भी अदृष्टार्थं दक्षिण वेदी रूप देश के भेद के कारण कर्ताओं में जैसे भेद बताया है, तथा उसमें यहां भी भेद है। अनुष्ठान अर्थात् सुब्रह्मण्याह्वान होना चाहिये।

तद्भूतस्थानादग्निवदिति चेदपवर्गस्तदर्थत्वात् ।२४।

पदार्थ—(तद्भूतस्थानात्) एक समय आह्वान से संस्कृत हुई अधिष्ठान रूप देवता सर्वार्थं है (अग्निवत्) एक समय आधान से संस्कृत हुई अग्नि सर्व के लिये होती है वैसे (इति चेत्) जो ऐसा मानने में आवे तो उत्तर यह है कि (अपवर्गः तदर्थत्वात्) उसका आह्वान उस दिवस के लिये होता है।

भावार्थ—एक समय आह्वान से संस्कृत हुई देवता सर्व के लिये है, जो ऐसा कहा जाय तो इसका उत्तर यह है कि जिस दिन में आह्वान किया हो तत् तत्दिवस के लिये ही वह देवता होती है, अन्य दिवस के लिये नहीं। जैसे अग्निसंमार्गादि होता है वैसे। अतः भेद से अनुष्ठान होता है।

अग्निवदिति चेत् ।२५।

पदार्थ—(अग्निवत् इति चेत्) यदि आप अग्निसंमार्ग का दृष्टान्त देवें तो हम आहवनीय अग्नि का दृष्टान्त तंत्र के लिये देंगे। इसलिये शंका का समाधान नहीं होगा। इसका उत्तर अगले सूत्र में है।

न प्रयोगसाधारण्यात् ।२६।

पदार्थ—(न) आधान तुल्य नहीं (प्रयोगसाधारण्यात्) आधान तो प्रयोगान्त है।

भावार्थ—अग्न्याधान तो प्रयोग के भीतर ही होने से इसके साथ तुल्यता नहीं। इसलिये सुब्रह्मण्याधान के साथ तुल्यता नहीं।

लिंगदर्शनाच्च ।२७।

पदार्थ—(च) और (लिंगदर्शनात्) लिंगवाक्य का श्रवण होने से।

भावार्थ—'संस्थिते संस्थितेऽहनि आग्नीध्रागारं प्रविश्य सुब्रह्मण्य सुब्रह्मण्यामाह्वयेति' यह वाक्य प्रतिदिन प्रैष का विधान है। इस भेद से अनुष्ठान करने में कारण है।

तद्धि तथेति चेत् ।२८।

पदार्थ—(तद् हि तथा) यूपाहुति रूप कर्म तंत्र है, उसमें यह भी तंत्र ही है (इति चेत्) जो ऐसी शंका हो तो, उत्तर अगले सूत्र में है।

भावार्थ—एकादशिनी अर्थात् ग्यारह यूपों के समक्ष कोई भी एक यूप के सामीप जाकर आहुति दी जाती है। प्रत्येक यूप के पास जाकर देने की आवश्यकता नहीं है। इसलिये यह दृष्टान्त जैसे तत्र रूप में है, वैसे सुब्रह्मण्याह्वान भी तंत्र रूप में अर्थात् एक ही समय होता है।

उक्त शंका का समाधान—

नाशिष्टत्वादितरन्यायत्वात् ।२९।

पदार्थ—(न) नहीं (अशिष्टत्वात्) विहित न होने से (इतरन्यायत्वात्) इतर अग्निसंस्कार न्याय ही उचित है।

भावार्थ—यूपाहुति में देश का सामीप्य विहित नहीं है। वहाँ तो मात्र आह्वनीय के प्रतिषेध में ही तात्पर्य है, यह आगे कहा गया है। इस विषय में तो इतर अग्निसंस्कार न्याय ही योग्य है।

पूर्वपक्ष की शंका—

विध्येकत्वादिति चेत् ।३०।

पदार्थ—(विध्येकत्वात्) एकविधि होने से (इति चेत्) जो ऐसा मानने में आवे तो। समाधान आगे के सूत्र में है।

भावार्थ—विधिविहित **'वसतीवर्यादिसंभरणादीनाम् एकत्वात् वसतीवर्यादि'** में जैसे एकत्व है वैसे यहाँ भी एकत्व स्वीकार करना चाहिये। इसके लिये विशेष विवरण शाबर भाष्य में देखो।

न कृत्स्नस्य पुनः प्रयोगात्प्रधानवत् ।३१।

पदार्थ—(न) नहीं (कृत्स्नस्य पुनः प्रयोगात्) सोमाभिषवादि समग्र का फिर से प्रयोग होने से (प्रधानत्वात्) प्रधान के तुल्य।

भावार्थ—सोमाभिषव आदि समग्र प्रयोग का फिर से अनुष्ठान होता है। अतः तंत्र नहीं। वसतीवरी संभरण यह तो सुत्यादिवस पहले अनुष्ठेय होता है। इसलिये भिन्नकाल के कारण तंत्र संभव है परन्तु यह तो प्रधानकालीन होने से तंत्र नहीं। जैसे प्रधान का फिर से अनुष्ठान होता है, एक साथ नहीं, वैसे सुब्रह्मण्याह्वान का भी भेद से ही अनुष्ठान होता है।

देश, पात्र और ऋत्विजों के अन्य प्रयोग में आदान में ऐच्छिकता है।

इस अधिकरण के सूत्र—

लौकिकेषु यथाकामी संस्कारानर्थलोपात् ।३२।

पदार्थ—(लौकिकेषु) देश, कर्ता और पात्र आदि पूर्व यागादि प्रयोग में जो उपयोग में आये हैं उनको अन्य प्रयोग में स्वीकार करना या नहीं, इसमें (यथाकामी) इच्छा नियामिका है (संस्कारानर्थलोपात्) संस्कार रूप अर्थ का लोप नहीं होने से ।

भावार्थ—एक याग में जो देश, पात्र और ऋत्विजों का उपयोग होता है, उसका अन्य याग आदि प्रयोग में स्वीकार करना या नहीं, इसमें यजमान की इच्छा ही उन देशादि को उपयोग में लेती है,और इच्छा न हो तो अन्य देशादि का उपयोग भी कर सकते हैं। जिस ऋत्विज् ने एक याग कराया है, वह ऋत्विज् अन्य याग में अयोग्य नहीं होता । कितने हो लोग दृष्टान्त देते हैं कि केले का पत्ता एक समय भोजन परोसने के काम में आया वह पत्ता धोकर साफ करने से भी अन्य समय भोजन के उपयोग में नहीं आता। उसी प्रकार ऋत्विज् आदि भी अन्य प्रयोग में उपयोगार्ह नहीं रहते । यह कथन ठीक नहीं । कारण कि शिष्टलोग ऋत्विज् आदि के लिये ऐसा मानते हैं कि एक समय उपयोग में आई वस्तु अन्य प्रयोग में उपयोग में आती है या नहीं ? इसमें शिष्ट पुरुषों का व्यवहार ही मान्य होना चाहिये। एक समय पहना वस्त्र धोकर अन्य समय उपयोग में लेते हैं, वैसे यज्ञादि के लिये वही देश, पात्र तथा ऋत्विजों का उपयोग करना हो तो किया जा सकता है ।

यज्ञपात्रों को अग्निहोत्री द्वारा जीवन पर्यन्त धारण करे, इस अधिकरण के सूत्र—

सिद्धान्त सूत्र—

यज्ञायुधानि धार्येन् प्रतिपत्तिविधाना- दृजीषवत् ।३३।

पदार्थ—(यज्ञायुधानि) यज्ञ पात्र (धार्येरन्) आमरणान्त धारण करने चाहियें (प्रतिपत्तिविधानात्) उनकी प्रतिपत्ति अग्निहोत्री की मृत्यु के समय होती है (ऋजीषवत्) ऋजीष के तुल्य । जिसका सार निकाल लिया है ऐसा सोम और जौ ऋजीष कहलाते हैं ।

भावार्थ—'**आहिताग्निमग्निभिर्दहन्ति यज्ञपात्रैश्च**' मरण प्राप्त आहिताग्नि को अग्नि से यज्ञपात्र सहित जलाते हैं । इस वाक्य से सिद्ध होता है कि आहिताग्नि को मरण पर्यन्त यज्ञपात्र में रखना चाहिये । कारण यज्ञपात्रों की

प्रतिपत्ति उसी समय होती है। अहर्गणों में सभी दिनों का ऋजीष रखने में आता है, और पीछे अवभृथ के समय उसे जल में डाला जाता है। वैसे ही जीवनपर्यन्त यज्ञपात्र धारण करना और मृत्यु काल में आहिताग्नि के शव के साथ जला डालना उचित है।

पूर्वपक्ष—

यजमानसंस्कारो वा तदर्थः श्रूयते तत्र यथाकामी तदर्थत्वात् ।३४।

पदार्थ—(वा) अथवा (यजमानसंस्कारः) पात्र यजमान के अंग रूप में है (तदर्थः) इसलिये ये (पात्र) यजमान के लिये हैं (तत्र) पात्रधारण करने में (यथाकामी) यजमान की इच्छा नियामक है (तदर्थत्वात्) वह यजमान के लिये होने से।

भावार्थ—पात्र धारण करने में यजमान की इच्छा नियामक है इसलिये जो प्रथम प्रयोग कर पात्रों का त्याग करे तो अन्तिम प्रयोग के समय अर्थात् अन्त्येष्टि संस्कार के समय अन्य पात्रों से भी यजमान का अन्त्येष्टि संस्कार हो सकता है।

मुख्यस्य धारणं वा श्रवणस्यानियतत्वात् ।३५।

पदार्थ—(मुख्यस्य धारणं वा) अथवा आद्य पात्रों को ही धारण किये रखना चाहिये (मरणस्य अनियतत्वात्) मृत्यु का काल नियत न होने से।

भावार्थ—पात्रों का त्याग कर दिया हो और उसके वाद यजमान की मृत्यु हो जाय तो यजमान के शरीर के संस्कार का लोप हो जाय, इसलिये कि पात्रों के बिना शव का अग्निदाह करना पड़ता है, अतः मुख्य पात्रों का धारण किये रखना ही चाहिये।

यो वा यजनीयेऽहनि ध्रियेत सोऽधिकृतः स्यादुपवेषवत् ।३६।

पदार्थ—(वा) अथवा (यः) जो यजमान (यजनीये अहनि) यज्ञ के दिवस मर जाय (स अधिकृतः स्यात्) वह संस्कार के लिये अधिकारी है, कारण कि उसके पात्र सन्निहित हैं (उपवेषवत्) जैसे सांनाय्ययाजी को ही उपवेषोपधान का अधिकार है।

भावार्थ—जो सांनाय्ययाजी होता है उसे उपवेषोपधान का अधिकरण का अधिकार होता है, कारण कि उसके पास उपवेष विद्यमान होता है। इसी

प्रकार जो यजमान यज्ञ के दिनों में मर जाय उसके देह का उसके पात्रों के साथ अन्त्येष्टि संस्कार करना चाहिये। कारण कि पात्र तैयार होते हैं।

न वा शास्त्रलक्षणत्वात् ।३७।

पदार्थ—(वा) अथवा (न) दृष्टान्त वरावर (उचित) नहीं। (शास्त्र-लक्षणत्वात्) सांनाय्य के लिये शाखा होती है, उसमें से उपवेष वनाया जाता है। जो सांनाय्य याग न करता हो, उसे शाखा की निवृत्ति होने से उपवेष की भी निवृत्ति होती है, यह शास्त्रलक्षण है।

भावार्थ—जो सांनाय्य याग न करे उसे उपवेष होना असंभावित है। पर यहाँ तो आहिताग्नि के मृतदेह का पात्रों के साथ संस्कार करना होता है। और पात्र होने की पूर्ण संभावना होती है। अतः मरण पर्यन्त पात्र धारण करना चाहिये।

उत्पत्तिर्वा प्रयोजकत्वादाशिरवत् ।३८।

पदार्थ—(वा) अथवा (उत्पत्तिः) मरण समय नवीन पात्र बनाने (प्रयोजकत्वात्) अन्त्येष्टि संस्कार के वे प्रयोजक होने से (आशिरवत्) आशिर के लिये नवीन गाय का दोहन होता है।

भावार्थ—आहिताग्नि के मरण समय अन्य नवीन पात्र बना करके भी उसके मृत देह का संस्कार हो सकता है तो पीछे पात्र धारण कर रखने की कोई आवश्यकता नहीं है। **व्रतदुघां आशिरे दुहन्ति** आशिर में दोहन के लिये जैसे नवीन गाय का दोहन होता है, उस प्रकार।

शब्दासामञ्जस्यमिति चेत् ।३९।

पदार्थ—(शब्दासामञ्जस्यम्) शब्द में असामञ्जस्य आयेगा (इति चेत्) जो ऐसी शंका की जाये तो, इसका उत्तर अगले सूत्र में है।

भावार्थ—नवीन पात्रों में यज्ञ का सम्बन्ध न होने से वे यज्ञपात्र नहीं कहे जा सकते। यज्ञपात्र ही आज्येष्टि में चाहियें। अतः शब्द में असामञ्जस्य उत्पन्न होता है। इससे यज्ञपात्र धारण किये रखने चाहियें।

तथाऽऽशिरे ।।४०।।

पदार्थ—(तथा) इस प्रकार (आशिरे) आशिर के सम्बन्ध में समझना।

भावार्थ—आशिर में दुहने के लिये जो नई गाय ली जाती है वह गाय यजमान की व्रतदुघ् नहीं कहाती अतः वहां भी शब्द का असामञ्जस्य है। वैसे

ही यहाँ नवीन पात्र बताये गये हैं, वे यज्ञ से सम्बन्ध प्राप्त किये बिना यज्ञपात्र नहीं कहला सकते।

शास्त्रात्तु विप्रयोगस्तत्रैकद्रव्यचिकीर्षया कृतावथेहापूर्वार्थवद्भूतोपदेशः ।४१।

पदार्थ—(तु) शंका के समाधान के लिये है (शास्त्रात्) 'घृतव्रतौ भवतः' इस शास्त्र से (विप्रयोगः) शब्द का असामंजस्य है (तत्र एक द्रव्यचिकीर्षया) प्रकृतिभूत ज्योतिष्टोम में एक गाय का द्रव्य अर्थात् दूध के व्रत में और आशिर में करने की इच्छा से (कृतौ) नवीन जो सम्पादन करने पर भी (अथ इह) यहाँ (अपूर्वार्थवत्) अपूर्व अर्थ की विधि वाला (भूतपोपदेशः) यज्ञ सम्बन्धी-पात्र का उपदेश है।

भावार्थ—प्रकृतिभूत ज्योतिष्टोम में एक गाय का दूध व्रत में और आशिर में उपयोग में लाने की इच्छा से 'व्र तदुघामाशिरे दुहन्ति' इस प्रकार श्रवण है। इससे अतिदेश से प्राप्ति में घृतव्रत से पयोव्रत का बाध होने से आशिर में नवीन गो सम्पादन किया होने पर भी यहाँ आहिताग्नि के मृतदेह के संस्कार में तो यज्ञपात्र ही चाहिये, नवीनपात्र काम नहीं आयेंगे।

अग्न्याधान हुआ तब से लेकर पात्रों का धारण करना इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष—

प्रकृत्यर्थत्वात् पौर्णमास्याः क्रियेरन् ।४२।

पदार्थ—(प्रकृत्यर्थत्वात्) ये पात्र अनारभ्याधीन होने से (पौर्णमास्याः क्रियेरन्) पौर्णमासी से प्रारम्भ कर धारण करने चाहियें।

भावार्थ—यज्ञपात्र पौर्णमासी से आरम्भ कर मरणपर्यन्त धारण करने, जिस दिन अग्नि का आधान किया हो, उस दिन से लेकर नहीं, यह पूर्वपक्ष-वादी का मानना है।

सिद्धान्तपक्ष—

अग्न्याधेये वाऽविप्रतिषेधात् तानि धारये-न्मरणस्यानिमित्तत्वात् ।४३।

पदार्थ—(वा) अथवा (अग्न्याधेये) अग्न्याधान से प्रारम्भकर पात्रों का धारण करना (अविप्रतिषेधात्) कोई बाधक न होने से (मरणस्य

अनिमित्तत्वात्) मरण नियत न होने से । यज्ञपात्र पौर्णमासी के लिये होने पर भी ।

भावार्थ—यज्ञ पात्र जो कि पौर्णमासी याग के लिये होते हैं, फिर भी मृत्यु का कोई निश्चित समय न होने के कारण जब से अग्न्याध्यान किया हो तब से पात्रों का धारण करना, अर्थात् पात्र रखने । जो ऐसा न किया जाय तो पूर्णिमा के पूर्व यदि यजमान की मृत्यु हो जाय तो यजमान के शरीर का संस्कार नहीं हो सके, अर्थात् पात्रों के साथ उसका दाह नहीं हो सकता ।

प्रतिपत्तिर्वाऽप्यन्येषाम् ।४४।

पदार्थ—(वा) अथवा (अन्येषाम्) अन्य पात्रों के तुल्य यज्ञ पात्रों का भी (प्रतिपत्तिः) प्रतिपत्ति रूप संस्कार है ।

भावार्थ—जैसे सोमलिप्त पात्र अवभृथ के समय जल में डाले जाते हैं अर्थात् जल में उनका प्रतिपत्ति नामक संस्कार होता है वैसे ही यज्ञ पात्रों का भी आहिताग्नि के मृतदेह के साथ अग्नि में संस्कार होता है । **'दक्षिणे पाणौ जुहूम् नासिकयोः स्रुवौ'** इस प्रकार मृतदेह के साथ यज्ञपात्र रखने को भी विधि बताई हैं । यजमान शरीर के साथ पात्रों का जो निक्षेप है वही प्रतिपत्ति है ।

वाजपेय में सर्वसोमों का अनुष्ठान हुये पीछे प्राजापत्य प्रचार होता है इस अधिकरण के सूत्र—

सिद्धान्त सूत्र—

उपरिष्टात् सोमानां प्राजापत्यैश्चरन्तीति सर्वेषमविशेषादवाच्यो हि प्रकृतिकालः ।४५।

पदार्थ—(सोमानाम् उपरिष्टात् प्राजापत्यैः चरन्ति इति) सर्व सोमों का अनुष्ठान हुये पीछे प्राजापत्य रूप अंग का प्रचार होता है । (सर्वेषाम् अविशेषात्) सर्वसोम पीछे वर्णित हैं, अमुक सोम के पीछे ऐसा कोई विशेष नहीं बताया गया है । (हि) कारण कि (प्रकृतिकालः) आर्भव पवमानकाल (अवाच्यः) आनुमानिक है ।

भावार्थ—तृतीय सवन में सर्वसोमों का अनुष्ठान हुये पीछे प्राजापत्य अंगों का प्रचार होता है । जो कि प्रकृति में आभव पवमानकाल वर्णित है, पर वह तो अतिदेश से प्राप्त होता है । 'उपरिष्टात् सोमानां प्राजापत्यैश्चरन्ति' इस प्रत्यक्ष श्रुत वचन से अतिदेश का बाध होता है ।

अंगविपर्यासो विना वचनादिति चेत् ।४६।

पदार्थ—(विना वचनात्) यदि ऐसा मानने में आवेगा तो वचन बिना (अंग विपर्यासः) क्रम का वाध होगा (इति चेत्) जो ऐसी शंका हो तो, उसका उत्तर अगले सूत्र में है—

भावार्थ—जो सर्वसोमों के पीछे प्राजापत्य अंगों का अनुष्ठान किया जावे तो '**अग्निमरुताद्रूर्ध्वमनुयाजैश्चरन्ति इति प्रहृत्य परिधीन् हारियोजनेन प्रचरति**' इस वाक्य में जो क्रम बताया है, उसका बाध होगा। इसका उत्तर अगले सूत्र में है—

उत्कर्षः संयोगात् कालमात्रमितरत्र ।४७।

पदार्थ—(उत्कर्षः) अनुयाज और परिधिप्रहरण का उत्कर्ष पशु प्रचार के उत्कर्ष के साथ करना चाहिए (संयोगात्) पशु प्रचार के साथ इसका सम्बन्ध होने से (इतरत्र कालमात्रम्) अन्य स्थान पर केवल काल का बोधन है।

भावार्थ—पशु प्रचार का उत्कर्ष होने से अनुयाज और परिधि प्रहरण का भी उत्कर्ष करना चाहिए। '**अग्निमारुताद्रूर्ध्वमनुयाजैश्चरन्ति प्रहृत्य परिधीन् जुहोति**' इस वाक्य से केवल काल की सूचना होती है।

प्रकृतिकालसत्तेः शस्त्रवतामिति चेत् ।४८।

पदार्थ—(प्रकृतिकालसत्तेः) प्रकृतिकाल की आवृत्ति होने से (शस्त्रवताम्) शस्त्रवत् का प्रचार होता है (इति चेत्) जो ऐसी शंका हो तो, उत्तर आगे के सूत्र में है।

भावार्थ—प्रकृति में निर्दिष्ट काल की समीपता होने से शस्त्रवत् अर्थात् स्तुति करने वालों का प्रचार होता है। प्रकृति काल की प्राप्ति न होने पर भी उसके सामीप्य की प्राप्ति तो होती ही है।

न श्रुतिप्रतिषेधात् ।४९।

पदार्थ—(न) नहीं (श्रुतिप्रतिषेधात्) श्रुति का बोध होने से।

भावार्थ—अविशेष से श्रुत हुये काल का बाध होने से '**शस्त्रवतां सोमानामुपरिष्टात् प्रचारो मुक्तः**' शस्त्र सोमों का पीछे से प्रचार होना योग्य है। इस प्रकार शाबर भाष्य में उल्लेख है।

विकारस्थान इति चेत् ।५०।

पदार्थ—(विकार स्थाने) विकार के स्थान में प्रचार होना चाहिये

(इति चेत्) जो ऐसी शंका हो तो। इसका उत्तर अगले सूत्र में है।

भावार्थ—उक्थ्यादि संस्थायें अग्निष्टोम संस्था का विकार हैं। उनके स्थान में 'अग्निष्टोमप्रचारादूर्ध्वं तत्र प्रचारो भवतु' प्रचार होना चाहिये। इस शंका का समाधान अगले सूत्र में है।

न चोदनापृथक्त्वात् ।५१।

पदार्थ—(न) नहीं (चोदनापृथक्त्वात्) भिन्न २ कर्म होने से।

भावार्थ—सोमयाग और पशु प्रचार ये दोनों कर्म स्वतंत्र हैं। इनमें प्रकृति विकृति भाव नहीं, अतः उपर्युक्त सूत्र में विकृति के स्थान में प्रचार होना चाहिये। यह शंका उचित नहीं।

सवनीय पुरोडाश में देवता का उत्कर्ष है। इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष—

उत्कर्षे सूक्तवाकस्य न सोमदेवतानामुत्कर्षः पश्वनंगत्वाद्यथा निष्कर्षेऽनन्वयः ।५२।

पदार्थ—(सूक्तवाकस्य उत्कर्षे) सूक्तवाक के उत्कर्ष में (सोमदेवतानाम् उत्कर्षः न) सोम देवता का उत्कर्ष नहीं (पश्वनङ्गत्वात्) पशु के अंग न होने से (यथा निष्कर्षे अनन्वयः) जैसे निष्कर्ष में अनन्वय है।

भावार्थ—सूक्तवाक का उत्कर्ष होता है, पर सोमदेवता का उत्कर्ष नहीं होता, कारण कि वह पशु का अंगभूत नहीं। जिस प्रकार निष्कर्ष में अर्थात् पौर्णमास प्रयोग के अंगभूत दर्श देवता के निष्कर्ष का बहिर्भाव होने से सूक्तवाक में पौर्णमासी में दर्श देवता का अनन्वय है, उसी प्रकार यहाँ भी लागू होता है।

सिद्धान्त सूत्र—

वाक्यसंयोगाद्वोत्कर्षः समानतंत्रत्वादर्थलोपादनन्वयः ।५३।

पदार्थ—(वा) अथवा (वाक्यसंयोगात् उत्कर्षः) वाक्य के संयोग होने से देवताओं का भी उत्कर्ष होता है। (समानतन्त्रत्वात्) समानतन्त्र होने से और (अर्थलोपात्) अर्थ का लोप होने से (अनन्वयः) अनन्वय होता है।

भावार्थ—सूक्तवाक वाक्य में देवता का भी सम्बन्ध होने से उसका भी उत्कर्ष होता है। अर्थात् देवता का भी उत्कर्ष होता है। दर्शपूर्णमास का प्रयोग पाठ समान तंत्र से करने में आया है, अतः एकवाक्य में सर्वदेवताओं का पाठ

है। अमावस्या और पौर्णमासी में कालभेद होने से अनुष्ठान करने में इष्ट देवता के स्मरण रूप कार्य का लोप होने से उस प्रयोग में अन्य का अनन्वय होना योग्य है। पर प्रकृत में वैसा नहीं। इसका विशेष स्पष्टीकरण शाबर भाष्य में द्रष्टव्य है।

इति मीमांसादर्शनभाष्ये एकादशाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥११।३॥

अथ मीमांसादर्शनभाष्ये एकादशाध्यायस्य चतुर्थः पादः

राजसूय यज्ञ में आग्नावैष्णवादिक में अंगों के भेद से अनुष्ठान करना होता है। इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष सूत्र—

चोदनैकत्वाद् राजसूयेऽनुक्तदेशकालानां-समवायात्तन्त्रमंगानि ।१।

पदार्थ—(राजसूय यज्ञ में) (अनुक्तदेशकालानाम्) जिनके देश और काल का वर्णन न हुआ हो ऐसे अंगों के (समवायात्) फल की उत्पत्ति करने में समवाय अर्थात् सम्बन्ध होने से (चोदनैकत्वात्) एक ही विधान होने से (अंगानि) अंगों का अनुष्ठान तंत्र से करना चाहिये।

भावार्थ—राजसूय यज्ञ में जिनके देश और काल नहीं कहे गये, ऐसे प्रधानों के सभी अंग, सम्मिलित होकर एक फलजनक होने से अंगों का अनुष्ठान तंत्र से करना चाहिये, भेद से नहीं। **'राजसूयेन स्वाराज्यकामो यजेत'** यह विधि एक ही है। यह समवाय में हेतु है।

सिद्धान्त सूत्र—

प्रतिदक्षिणं वा कर्तृसम्बन्धादिष्टिवदंगभूतत्वात् समुदायो हि तन्निर्वृत्या तदेकत्वादेकशब्दोपदेशः स्यात् ।२।

पदार्थ—(वा) अथवा (प्रतिदक्षिणं कर्तृसम्बन्धात्) प्रत्येक दक्षिणा के कर्ता का सम्बन्ध होने से (इष्टिवत्) इष्टि के तुल्य (हि) कारण कि (तन्निर्वृत्या) फल की उत्पत्ति होने से और (तदेकशब्दोपदेशः) त्वात् एक एक शब्द से उपदेश किया है।

भावार्थ—प्रत्येक दक्षिणा से भिन्न ऋत्विजों का सम्बन्ध है। अतः तत् तत् अंगों का अनुष्ठान दर्शेष्टि और पौर्णमासेष्टि के तुल्य भेद से करना चाहिये। अतः अंगों की आवृत्ति करनी चाहिये। और जो एक विधान किया है, उसका प्रयोग एक है, ऐसे अभिप्राय से। भावार्थ यह है कि राजसूय के अंगों का अनुष्ठान भेद से करना, तंत्र से नहीं।

तथा चान्यार्थदर्शनम् ।३।

पदार्थ—(तथा च) और इस प्रकार (अन्यार्थदर्शनम्) अन्य अर्थ का भी दर्शन है।

भावार्थ—'आग्नावैष्णवमेकादशकपालं निर्वपेत्। ऐन्द्रावैष्णवमेकादशकपालं वैष्णवं त्रिकपालम्। वामनो दक्षिणा, इत्येकं त्रिकम्। अग्नीषोमीयमेकादशकपालम् इन्द्रासोमीयमेकादशकपालं सौम्यं चरुं बभ्रुर्दक्षिणा इत्यपरं त्रिकम्।' इसमें जो प्रथम त्रिक है, उसका फल वीर जनन है। और जो दूसरा त्रिक है उसका फल पशुजनन है। इस प्रकार प्रयोग भिन्न होने से अंगों के भेद से अनुष्ठान होना चाहिये। उपर्युक्त जो लिंगवाक्य है वह भी भेदानुष्ठान का साधक है।

राजसूय में कर्ता एक ही होता है। इस अधिकरण के सूत्र—
पूर्वपक्ष सूत्र—

अनियमः स्यादिति चेत् ।४।

पदार्थ—(अनियमः स्यात्) अनियम है (इति चेत्) जो ऐसा कहा जावे तो उत्तर अगले सूत्र में है।

भावार्थ—राजसूय यज्ञ में जिस ऋत्विज् का वरण होता है, वही यज्ञसमाप्ति पर्यन्त रहता है, ऐसा कोई नियम नहीं। यह शंका सूचक सूत्र है। इसका उत्तर अगले सूत्र में है।

नोपदिष्टत्वात् ।५।

पदार्थ—(न) नहीं (उपदिष्टत्वात्) ऋत्विजों का वरण हुआ होने से।

भावार्थ—यज्ञ के प्रारम्भ में ही ऋत्विजों का वरण होता है। और जिनका वरण हुआ हो, उन्हें ही यज्ञ की समाप्ति पर्यन्त कर्म कराना चाहिये, ऐसा ऋत्विजों को उपदेश किया होता है। अतः वरण प्राप्त ऋत्विज् ही होने चाहिये, अन्य नहीं।

लाघवापत्तिश्च ।६।

पदार्थ—(च) और (लाघवापत्तिः) एक ही समय करने में लाघव होता है।

भावार्थ—ऋत्विजों के बार बार वरण करने की अपेक्षा एक ही समय वरण करने में यत्नलाघव होता है। अर्थात् कर्म कराने में गौरव नहीं होता। अतः एक ही ऋत्विज् चाहिये।

प्रयोजनैकत्वात् ।७।

पदार्थ—(प्रयोजनैकत्वात्) एक ही प्रयोजन होने से ।

भावार्थ—आनति अर्थात् कर्म कराने के स्वीकरण रूप एक प्रयोजन होने से वे ही ऋत्विज चाहियें, अन्य नहीं । ऋत्विजों के समुदाय में दक्षिणा का श्रवण न होने के कारण अवयव की आनति से समुदाय की आनति सिद्ध होती है। कारण कि अवयवों की अपेक्षा कोई पृथक् समुदाय नहीं होता ।

विशेषार्था च पुनः श्रुतिः ।८।

पदार्थ—(विशेषार्था च) विशेष अर्थ के कथन के लिये (पुनः श्रुतिः) फिर से श्रवण होता है ।

भावार्थ—अवयव में जो दक्षिणा देने का फिर से श्रवण होता है वह तो अपूर्व अर्थ के लिए है। भावार्थ यह है कि पृथक् २ ऋत्विज् नहीं होने चाहियें । जिनका वरण हुआ है, उन्हें ही कर्म की समाप्ति पर्यन्त कर्म करना चाहिये। इस सूत्र में इसे ही तंत्र कहा गया है ।

अवेष्टि में अंगों का अनुष्ठान भेद से होता है। इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष सूत्र—

अवेष्टौ चैकतन्त्र्यं स्याल्लिंगदर्शनात् ।९।

पदार्थ—(च) और (अवेष्टौ) अवेष्टि नामक इष्टि में (एकतन्त्र्यम्) एक तंत्र (स्यात्) है (लिंगदर्शनात्) एक तंत्र होने में लिंग वाक्य भी है।

भावार्थ—राजसूय यज्ञ में अवेष्टि नाम्नी पांच हविष् वाली इष्टि है। और पांचों की पृथक् २ दक्षिणा है। पांचों की देवता क्रमानुसार इस प्रकार है—अग्नि, विश्वदेव, मित्रावरुण तथा बृहस्पति। ये पांच याग तंत्र से होते हैं। अर्थात् उनका अनुष्ठान साथ होता है। और इनमें लिंग वाक्य भी इस प्रकार हैं—**यदि ब्राह्मणो यजेत बार्हस्पत्यं मध्ये निधाय,** इस वाक्य में बार्हस्पत्य चरु के मध्य में रखना, ऐसा कहा है, अब जो पांच याग साथ न हों तो मध्य में रखना, यह कथन असंगत हो जाता है। एक एक हविष् का अलग २ याग हो तो एक में मध्यकथन नहीं हो सकता, अतः पांच यागों का सह अनुष्ठान है।

सिद्धान्त सूत्र—

वचनात् कामसंयोगेन ।१०।

परार्थ—(वचनात्) वचन से (कामसंयोगेन) कामना का सम्बन्ध बनाया होनें से ।

भावार्थ—'एतयाऽन्नाद्यकामं याजयेत्' इस वचन से राजसूय से बहिर्भूत प्रयोग की सिद्धि होती है। उपर्युक्त सूत्र में जो वचन तंत्र के लिये कहा है, उसका उपयोग भी वहीं है। अतः अवेष्टि के अंगों का भेद से अनुष्ठान करना चाहिये।

क्रत्वर्थायामिति चेन्न वर्णसंयोगात् ।११।

पदार्थ—(क्रत्वर्थायाम् इति चेत् न) यह इष्टि क्रत्वर्थ है, ऐसा कहना ठीक नहीं है कारण कि (वर्णसंयोगात्) वर्ण का सम्बन्ध होने से।

भावार्थ—'एतया अन्नाद्यकामं याजयेत्' इस वाक्य से प्रतीत होने वाली इष्टि क्रत्वर्थक नहीं मानी जा सकती, इसलिये कि राजसूय यज्ञ से यह बहिर्भूत है ऐसा मानना चाहिये। कारण कि इसके साथ ब्राह्मण और वैश्य वर्ण का सम्बन्ध बताया है। यदि 'ब्राह्मणो यजेत्' इत्यादि। राजसूय यज्ञ करने का अधिकार क्षत्रिय को ही है, ब्राह्मण और वैश्य को नहीं। अतः ब्राह्मण आदि के सम्बन्ध के लिये यह इष्टि है। राजसूय क्रतु के लिये नहीं। इससे इन इष्टियों का भेद से अनुष्ठान करना सिद्ध होता है।

पवमानेष्टि के हविषों का भेद से अनुष्ठान होता है।

पूर्वपक्ष—

पवमानहविःष्वैकतन्त्र्यं प्रयोगवचनैकत्वात् ।१२।

पदार्थ—(पवमानहविःषु) पवमान हविषों में (ऐकतन्त्र्यम्) एकतंत्रता है। (प्रयोगवचनैकत्वात्) प्रयोग वचन एक होने से।

भावार्थ—आधान में इस प्रकार श्रवण है—**यः कामयेत वसीयान् स्यात् इति सोऽग्नये पवमानाय निरूपणपावकशुचिभ्यां समानबर्हिषि निर्वपेत्।** प्रयोग वचन एक होने से और **'अह्नो निरूप्याणि'** यह वाक्य एक ही प्रयोग बतलाता है, अतः तंत्र से अनुष्ठान होता है।

लिंगदर्शनाच्च ।१३।

पदार्थ—(च) और (लिंगदर्शनात्) **'समानबर्हिषि भवन्ति'** यह लिंग वाक्य होने से।

भावार्थ—उक्त लिंग वाक्य से भी सिद्ध होता है कि तंत्र से ही उक्त हविष् होता है।

सिद्धान्त सूत्र—

वचनात्तु तंत्रभेदः स्यात् ।१४।

पदार्थ—(तु) सिद्धान्त पक्ष सूचित करता है (वचनात्) वचन से (तंत्रभेदः) तंत्र में भेद होता है।

भावार्थ—**'अग्नये पवमानाय'** इस प्रकार कह कर पीछे समान बर्हिष् में निर्वाप करने को कहा है इससे तंत्र में भेद है। अर्थात् हविष् का निर्वाप भिन्न २ करना। प्रथम हविष् में भेद है, और उसके बाद के दोनों में तंत्र है।

सहत्वे नित्यानुवादः स्यात् ।१५।

पदार्थ—(सहत्वे) सहत्व में (नित्यानुवादः स्यात्) नित्यानुवाद है।

भावार्थ—**यो ब्रह्मवर्चसकामः स्यात् तस्य सर्वाणि हवींषि निरूप्याणि। तस्य सह प्रयोगो भवति।** जो ब्रह्मवर्चस की इच्छा रखता हो उसे सभी हविषों का निर्वाप करना चाहिये। इस स्थान पर सह प्रयोग है। कारण **'निरूप्याणि'** यहाँ वहुवचन का प्रयोग है। और वहां बहुवचन विवक्षित है। अतः इस स्थान पर सह प्रयोग है और उपर्युक्त सूत्र में बताये स्थान में प्रथम हविष् में भेद है और पीछे के दो में तंत्र का प्रयोग है।

द्वादशाह में दीक्षोपसत्सुत्या कर्मों में प्रत्येक कर्म बारह दिवस का साध्य होता है।

प्रथमपक्ष—

द्वादशाहो तत्प्रकृतित्वादेकैकमहरपवृज्येत कर्मपृथक्त्वात् ।१६।

पदार्थ—(द्वादशाहे) द्वादशाहनामक याग में (तत्प्रकृतित्वात्) ज्योतिष्टोम रूप प्रकृति के धर्म कर्त्तव्य होने से (एकैकम् अहः अपवृज्येत) एक एक कर्म समाप्त होता है (कर्मपृथक्त्वात्) भिन्न भिन्न कर्म होने से।

भावार्थ—दीक्षा और उपसत् सहित एक-एक अह समाप्त होता है। इस प्रकार द्वादश दीक्षा, द्वादश उपसत् और एक सुत्या दिवस मिल कर पच्चीस दिवस में द्वादशाह नामक याग पूरा होता है। और ज्योतिष्टोम के अनुसार दीक्षा और उपसत् एक एक अह नामक करना। **ज्योतिष्टोमवत् सदोक्षोपसदमेकैकमहः कर्त्तव्यम्** ।-यह शाबर भाष्य में उल्लेख है। **'तत्रैकैको यागः फलसाधनत्वात् ज्योतिष्टोमाद्विध्यन्तं गृह्णाति'** प्रत्येक याग फल और साधनवान् होने से ज्योतिष्टोम में से विध्यन्त ग्रहण करता है। इस प्रकार तन्त्रवार्तिक में उल्लेख है।

अन्य पक्ष—

अह्नां वा श्रुतत्वात्तत्र सांगं क्रियेत यथा माध्यन्दिने ।१७।

पदार्थ—(वा) अथवा (अह्नां श्रुतत्वात्) अहन् की बारह संख्या प्रत्यक्ष श्रुत होने से (साङ्गं क्रियेत) अंग सहित की जाती है (यथा माध्यन्दिने) जैसे माध्यन्दिन में।

भावार्थ—'प्रजाकामं द्वादशाहेन याजयेत्' अहन् की द्वादशसंख्या प्रत्यक्ष श्रुत है। उनका त्याग कर २५ दिन तक का काय कराना, उचित नहीं। अतः अंग सहित प्रधान कर्म द्वादश दिवसों में कराना चाहिये। जो प्रधान का काल होता है, वही अंग कर्मों का भी काल होता है। 'तत्कालं तदीयं दीक्षोपसदम' शाबर भाष्य। जैसे सान्तनीय का माध्यन्दिन में निर्वपण होता है, वैसे यहाँ भी द्वादश साद्यस्क याग करने होते हैं।

तीसरा पक्ष—

अपि वा फलकर्त्तृसम्बन्धात्सह प्रयोगः स्यादाग्नेयाग्नीषोमीयवत् ।१८।

पदार्थ—(अपि वा) अथवा (सह प्रयोगः) अंगों का सह प्रयोग (स्यात्) होता है। (फलकर्तृ सम्बन्धात्) फल और कर्ता का सम्बन्ध होने से (आग्नेयाग्नीषोमीयवत्) अग्नीषोमीय और आग्नेय के अंगों के तुल्य।

भावार्थ—अथवा प्रजारूप फल और कर्ताओं में दक्षिणा की एकता का सम्बन्ध होने से सहप्रयोग अथवा तंत्र से अनुष्ठान होता है। जैसे अग्नीषोमीय और आग्नेय याग के अंगों का तंत्र से अनुष्ठान होता है, उस प्रकार। चतुरहे दीक्षाः चतुरहे उपसदश्चतुरहे सुत्याः (शाबर भाष्य) चार दिवस में में दीक्षा, चार दिवस में उपसद और चार दिवस में सुत्याकर्म होता है। इस प्रकार १२ दिनों में उपर्युक्त प्रकार से अंगों सहित द्वादशाह रूप याग पूर्ण होता है। अतः बारह साद्यस्क याग करने, यह अन्य पक्ष का मानना उचित नहीं। तीसरे पक्ष में सहप्रयोग और अहः संख्या का उपपादन हो सकता है, अतः वही पक्ष ठीक हैं। 'तदुभयमेवमुपपादितं भवति सह प्रयोगोऽहः संख्या च। तस्मादेष पक्षः श्रेयान्।' देखो शाबर भाष्य।

सिद्धान्त सूत्र—

सांगकालश्रुतत्वाद्वा स्वस्थानानां विकारः स्यात् ।१९।

पदार्थ—(वा) अथवा (साङ्गकालश्रुतत्वात्) सांगों का काल श्रुत होने से (स्वस्थानानां विकारः स्यात्) स्वस्थानों की वृद्धि होती है।

भावार्थ—दीक्षा, उपसद और सुत्या के पृथक् काल का विधान है और प्रत्येक के साथ द्वादश संख्या का सम्बन्ध है। प्रथमे दीक्षाः तासां तत्रैव द्वादशत्वम्। ततः उपसदः तासामपि तद्द्वादशत्वमेव अन्ते सुत्या। तस्या अपि तत्स्थानाया एव विवृद्धिः तदपेक्षत्वं द्वादशत्वम्। देखो शाबर भाष्य।

तदपेक्षत्वं च द्वादशत्वम् ।२०।

पदार्थ—(च) और (तदपेक्षत्वं च द्वादशत्वम्) दीक्षापेक्ष द्वादशत्व है।

भावार्थ—दीक्षा में भी योगार्थ की अपेक्षा द्वादश का सम्बन्ध है।

दीक्षोपसदां च संख्या पृथक् पृथक् प्रत्यक्षसंयोगात् ।२१।

पदार्थ—(दीक्षोपसदां च) दीक्षा और उपसदों की (संख्या) संख्या (पृथक् पृथक्) अलग अलग (प्रत्यक्षसंयोगात्) द्वादशरात्रपद प्रयोग के लिये है।

भावार्थ—दीक्षा और उपसद के साथ अलग अलग द्वादश संख्या का सम्बन्ध है। 'द्वादशरात्र' पद का यौगिक अर्थ प्रधान के लिये है। 'द्वादशरात्र-पदयोगार्थः प्रधानएवास्तु'—सुबोधिनी जैमिनीय सूत्र वृत्ति में।

वसतीवरीपर्यन्तानि पूर्वाणि तन्त्रमन्यकाल-त्वादवभृथादीन्युत्तराणि दीक्षाविसर्गार्थ-त्वात् ।२२।

पदार्थ—(वसतीवरीपर्यन्तानि पूर्वाणि तन्त्रम्) वसतीवरी पर्यन्त पूर्व तंत्र है। (अन्यकालत्वात्) स्वकाल में विहित न होनें से (अवभृथादीनि उत्तराणि) अवभृथ आदि उत्तर तंत्र हैं (दीक्षाविसर्गार्थत्वात्) दीक्षा विसर्ग के लिये होने से।

भावार्थ—वसतीवरी पर्यन्त पूर्वतंत्र है, प्रथम तंत्र है। अवभृथ आदि उत्तर तंत्र है। विशेष अर्थ शाबर भाष्य में देखो। यह सूत्र सुबोधिनी नामक जैमिनीय सूत्र वृत्ति में नहीं है।

तथा चान्यार्थदर्शनम् ।२३।

पदार्थ—(तथा च) और इस प्रकार (अन्यार्थदर्शनम्) अन्यार्थ दर्शन भी है।

भावार्थ—दीक्षा, अह्न और उपसद के साथ द्वादश का सम्बन्ध होने से अन्यार्थदर्शन भी उपपन्न होता है। 'षट् त्रिंशदहो वा एष यद् द्वादशरात्रः' (द्वादशाह पर भाष्य में लिखा है) इससे अन्यार्थ दर्शन भी सिद्ध होता है। इसलिये कि द्वादशरात्र ३६ दिन का प्रयोग है। उक्त रीति से मानने पर ३६ दिन उपपन्न होते हैं।

चोदनापृथक्त्वैकतन्त्र्यं समवेतानां कालसंयोगात् ।२४।

पदार्थ—(चोदना पृथक्त्वे तु) आग्नेय और अग्नीषोमीय में चोदना पृथक् होने पर भी (समवेतानाम्) मिलित अंग सहित प्रधानों का (एक तन्त्र्यम्) एक तंत्र है (कालसंयोगात्) एक काल का सम्बन्ध विहित होने से।

भावार्थ—**'पौर्णमास्यां पौर्णमास्या सांगया यजेत'** इस वाक्य से आग्नेय और अग्नीषोमीय का विधान होने से काल, देश और कर्ता के एकत्व का विधान प्रतीत होने से तंत्र अर्थात् सह प्रयोग है, पर यहाँ तो प्रधानकाल विहित दीक्षादि से लेकर वसतीवरीय ग्रहणान्त आधान के तुल्य स्वकाल विहित होने से और स्वतंत्रता से विधान न होने से तंत्र अर्थात् सह प्रयोग है।

प्रधानों के साथ जिनका अपृथक् काल होता है, ऐसे अंगों के भेद से अनुष्ठान होता है।

सिद्धान्त सूत्र—

भेदस्तु तद्भेदात् कर्मभेदः प्रयोगे स्यात् तेषां प्रधानशब्दत्वात् ।२५।

पदार्थ—(तु) सिद्धान्त को सूचित करता है। (तद्भेदात्) प्रधानकाल का भेद होने से (प्रयोगे) तत् तत् प्रधान के प्रयोग में अंगों का भी (कर्मभेदः) कर्म का भेद होता है (तेषां प्रधानशब्दत्वात्) प्रधानविधि से विधेय होने से।

भावार्थ—प्रधान के अनुष्ठान का पृथक् २ काल होने से उसके साथ समानकाल रखने वाले अंगों के प्रयोग में भी भेद होता है। **यदद्य प्रधानं तस्य अद्यकालानि अंगानि, यत् श्वस्तस्य श्वःकालानि तस्माद्भेदः।** (शावरभाष्ये) जो प्रधान आज करने का है उसके अंग आज और जो प्रधान कल करने का हो उसके अंग कल करने, इस प्रकार अंगों का अनुष्ठान भेद से होता है, तंत्र से नहीं।

तथा चान्यार्थदर्शनम् ।२६।

पदार्थ—(तथा च) और इस प्रकार (अन्यार्थदर्शनम्) अन्य अर्थ का दर्शन भी उपपन्न होता है।

भावार्थ—'पत्नीसंयाजान्तानि ग्रहानि संतिष्ठन्ते' इस वाक्य में पृथक्२ दिन पत्नी संयाज बताये हैं, वे जो भेद से कर्त्तव्य हों, तभी उपपन्न हो सकते हैं।

श्वः सुत्यावचनं च तद्वत् ।२७।

पदार्थ—(श्वः सुत्यावचनम् च) और 'श्वः सुत्यावचनं' यह दूसरा भी लिंग वाक्य है, यह भी (तद्वत्) उस प्रकार कर्मभेद में प्रमाण है।

भावार्थ—संस्थिते संस्थितेऽहनि आग्नीध्रागारं प्रविश्य सुब्रह्मण्ये सुब्रह्मण्यामाह्वयेति प्रैषेण एकसुत्यासमाप्त्यनन्तरं तस्मिन्नेवाहनि सुब्रह्मण्यः श्वः सुत्या भवति। इत्यादि अन्य लिंग वाक्य भी अंग कर्म के भेदानुष्ठान में प्रमाण हैं।

पश्वतिरेकश्च ।२८।

पदार्थ—(च) और (पश्वतिरेकः) पशु का अतिरेक भी कर्मभेद को सूचित करता है।

भावार्थ—प्रत्येक दिन एक एक पशु का दान किया जाता है और बारहवें दिन एक पशु देना शेष रहता है यह जो कथन है, वह भी अंग कर्म के भेदानुष्ठान को सूचित करता है।

उपसत्काल में सुब्रह्मण्याह्वान की कर्त्तव्यता अविकार से अर्थात् एक समय होती है, इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष—

सुत्याविवृद्धौ सुब्रह्मण्यायां सर्वेषामुपलक्षणं प्रकृत्यन्वयादावाहनवत् ।२९।

पदार्थ—(सुत्या विवृद्धौ) द्वादशाह आदि में (सुब्रह्मण्यायाम्) सुब्रह्मणा अर्थात् इन्द्रदेवता के आह्वान में (सर्वेषाम् उपलक्षणम्) सर्वदिवसों का उपलक्षण है (प्रकृत्यन्वयात्) ज्योतिष्टोम रूप प्रकृति में चतुरादि संख्या का अहन् में अन्वय होने से (आवाहनवत्) आग्नेय याग में जैसे आवाहन की आवृत्ति होती है, इस प्रकार।

भावार्थ – द्वादशाह में जो सुब्रह्मण्याह्वान किया जाता है वह प्रतिदिन करना चाहिये, कारण प्रकृति रूप ज्योतिष्टोम में इस प्रकार प्रति आह्वान के मंत्र बोले जाते हैं। जैसे आग्नेय याग में प्रतिदिन आवाहन मंत्र की आवृत्ति होती है, वैसे द्वादशाह में भी 'सुत्यामागच्छ मघवन्' यह मंत्र प्रतिदिन बोलना चाहिये।

सिद्धान्त सूत्र—

अपि वेन्द्राभिधानत्वात् सकृत्स्यादुपलक्षणम् ।३०।

पदार्थ—(अपि वा) अथवा (इन्द्राभिधानत्वात्) मंत्र इन्द्र वाचक होने से (उपलक्षणम् सकृत् स्यात्) एक ही समय प्रयोग करना चाहिये।

भावार्थ—इन्द्र रूप (परमात्मा रूप) एक ही देवता होने से प्रत्येक दिन मंत्र की आवृत्ति करने की आवश्यकता नहीं। एक ही समय इस मंत्र का उच्चारण करना चाहिये। एक ही समय के उच्चारण से संस्कृत देवता सर्वार्थ हो सकते हैं।

कालस्य लक्षणार्थत्वादविभागाच्च ।३१।

पदार्थ—(च) और (कालस्य) कालवाचक चतुरहादि शब्द (लक्षणार्थत्वात्) लक्षणार्थक होने से (अविभागात्) विभाग न होने से।

भावार्थ—चतुरहादि काल वाचक शब्द हैं। इनसे सुत्यात्मक कर्म विशेष लक्षित होता है। 'उपलक्षणम् चतुरहादिपदानां कालरूपे स्वार्थेन तात्पर्यं किन्तु सुत्यायाम्' आग्नेय याग में तो बीच में सोमयाग का व्यवधान है अतः वहाँ आवाहन की आवृत्ति हो सकती है। पर यहाँ सुत्यात्मक किसी से भी व्यवहित नहीं होता। इसलिये एक ही समय आह्वान मंत्र का उच्चारण करना चाहिये।

वाजपेय याग में प्राजापत्य शूलादि की तंत्रता है। इस अधिकरण के सूत्र—

पशुगणे कुम्भीशूलवपाश्रपणीनां प्रभुत्वात्तन्त्रभावः स्यात् ।३२।

पदार्थ—(पशुगणे) प्राजापत्य पशुदान में (कुम्भीशूलवपाश्रपणीनाम्) कुंभी, शूल, तथा वपाश्रपणी का (प्रभुत्वात्) प्रभुत्व, कार्यक्षमत्व होने से (तंत्रभावः स्यात्) तंत्र भाव है।

भावार्थ—कुम्भी, शूल तथा वपाश्रपणी ये पात्र विशेष के वाचक शब्द हैं। इनका भी तन्त्र भाव है। अर्थात् एक ही पात्र पृथक् २ द्रव्य पकाने में प्रभुत्व रखता है। एक ही तपेली (देगची) में बारी बारी से भात, दाल आदि पदार्थ पकाये जा सकते हैं। द्रव्यानुसार पृथक् २ पात्र का उपयोग नहीं होता।

भिन्न देवताक शूलादि में भी तन्त्रभाव है। इस अधिकरण के सूत्र—

भेदस्तु संदेहाद् देवतान्तरे ।३२।

पदार्थ—(तु) पूर्वपक्ष का सूचक है। (देवतान्तरे) पृथक् २ देवताओं का नाम हो वहां (संदेहात्) संदेह होने से (भेदः) भेद है।

भावार्थ—जहां पृथक् २ देवताओं के नाम हों और उन्हें उद्दिष्ट कर पाक बनाना हो वहाँ पृथक् २ पात्र होने चाहियें। इसलिये शूल नामक पात्र में भिन्नता होनी चाहिये।

अर्थाद् वा लिंगकर्म स्यात् ।३३।

पदार्थ—(वा) अथवा (अर्थात्) सह प्रयोग होने से भेद नहीं होता (लिंगकर्म स्यात्) एक ही पात्र होने से कोई चिह्न करने में आता है।

भावार्थ—भिन्न देवताक पाक में भी कुंभी आदि एक पात्र का उपयोग हो सकता है। एक पात्र होने में चिह्न विशेष भी किये जाते हैं। भावार्थ यह है कि जहाँ पृथक् २ देवता वाचक नाम होते हैं वहाँ भी जो पाक विशेष बनाना हो तो जितने नाम हैं, उतने पात्रों में पकाने की आवश्यकता नहीं। एक ही पात्र में पाक तैयार हो सकता है और पीछे तत् तत् नाम को उद्दिष्ट कर त्याग किया जा सकता है।

कुंभी की भी तंत्रता है, इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष—

अयाज्यत्वाद् वसानां भेदः स्यात् स्वयाज्य-प्रदानत्वात् ।३४।

पदार्थ—(वसानाम् स्वयाज्यप्रदानत्वात्) स्निग्धद्रव्य ऋग्विशेष मंत्र का उच्चारण कर होम किया जाने से (अयाज्यत्वाद् भेदः स्यात्) कुंभी रूप पात्र के भेद के बिना अयाज्य होने से भेद है।

भावार्थ—स्निग्ध द्रव्य का अपने २ याज्या अर्थात् ऋग्विशेष मंत्रों का उच्चारण कर होम करने से कुंभी रूप पात्र पृथक् २ होने चाहियें। उसके बिना स्निग्ध द्रव्य का होम नहीं हो सकता इसलिये कुंभी पात्र पृथक् २ होने चाहिय।

सिद्धान्त सूत्र—

अपि वा प्रतिपत्तित्वात् तन्त्रं स्यात् स्वत्वस्याश्रुतिभूतत्वात् ।३५।

पदार्थ—(अपि वा) अथवा (प्रतिपत्तित्वात्) प्रतिपत्तिरूप कर्म होने से (तंत्रं स्यात्) तंत्र रूप जो कुम्भी पात्र है (स्वत्वस्य अश्रुतिभुतत्वात्) अर्द्ध मंत्र बोलकर होम करना, ऐसी कोई श्रुति न होने से ।

भावार्थ—एक ही कुम्भी पात्र होना चाहिये। स्निग्ध द्रव्य का पाक बनाने के लिये पृथक् २ कुम्भी होने, तथा अर्द्ध मंत्र बोलकर तत् तत् देवता को उद्दिष्ट कर होम करने इत्यादि कथन में कोई श्रौत प्रमाण नहीं ।

सकृदिति चेत् ।३६।

पदार्थ—(सकृत्) एक ही समय मंत्रार्द्ध बोलकर सारा होम करना (इति चेत्)जो ऐसी शंका हो तो, इसका उत्तर अगले सूत्र में है ।

भावार्थ—किसी भी स्निग्ध द्रव्य का होम अर्द्धर्च अर्थात् आधी ऋचा बोलकर करना। यदि ऐसी शंका हो तो, इसका उत्तर अगले सूत्र में है।

न कालभेदात् ।३७।

पदार्थ—(न) नहीं (कालभेदात्) अर्द्धर्चों के भिन्नकाल का निमित्त होने से ।

भावार्थ—अर्द्धर्च मंत्र होम करने के निमित्त हैं और निमित्तों का काल भिन्न होने से एक ही समय सबका होम करना योग्य नहीं। कालभेद के कारण नैमित्तिक की आवृत्ति होना ही न्याय संगत है।

भिन्न जाति में कुम्भी का भेद होना चाहिये। इस अधिकरण के सूत्र—

जात्यन्तरे भेदः स्यात् पक्तिवैषम्यात् ।३८।

पदार्थ—(जात्यन्तरे) पृथक् २ जाति के द्रव्यों का पाक करना हो तो (पक्तिवैषम्यात्) पाक की विषमता के कारण (भेदः स्यात्) भेद मानना चाहिये।

भावार्थ—पृथक् २ जाति के द्रव्य पकाने हों तो पृथक् २ कुम्भी रूप पात्रों का भेद होना चाहिये, कारण कि प्रत्येक द्रव्य की पाक की अवधि समान नहीं होती।

वृद्धिदर्शनाच्च ।३९।

पदार्थ—(च) और (वृद्धिदर्शनात्) पात्रों की वृद्धि होने का वचन होनें से भी।

भावार्थ—कोई द्रव्य शीघ्र पकता है, किसी को पकने में देर भी लगती है। ऐसे स्थान पर पृथक् २ पात्र में पाक करने से पात्रों की वृद्धि की है। इसलिये ऐसे स्थान पर कुम्भी रूप पात्र का भेद होना चाहिये।

पुरोडाश प्रमाण से चतुष्कपाल पात्रों का भी भेद होना चाहिये।

पूर्वपक्ष—

कपालानि च कुम्भीवत् तुल्यसंख्यानाम् ।४०।

पदार्थ—(च) और (कपालानि) पुरोडाश पकाने वाले कपाल नामक पात्र (कुम्भीवत्) कुम्भी की भांति (तुल्यसंख्यानाम्) समान संख्या वालों का तंत्र होना चाहिये।

भावार्थ—समसंख्याक कपाल कर्मानुसार कुम्भी पात्र के तुल्य तंत्र रूप कर्म करना। अर्थात् पुरोडाश संख्या के अनुसार कपाल पात्र में दीर्घता उत्पन्न कर चार ही कपालों में वहु पुराडाशों का भी पाक हो सकेगा। इसलिये कपालों में भी तंत्रता ही माननी चाहिये।

सिद्धान्त सूत्र—

प्रतिप्रधानं वा प्रकृतिवत् ।४१।

पदार्थ—(वा) अथवा (प्रतिप्रधानम्) प्रत्येक पुरोडाश के लिये भिन्न २ कपाल पात्र चाहियें। (प्रकृतिवत्) प्रकृति के तुल्य।

भावार्थ—जैसे आग्नेय अष्टाकपाल आठकपाल में संस्कृत होता है, अग्नीषोमीय एकादशकपाल: अग्नीषोमीय पुरोडाश एकादशकपालों में संस्कृत होता है, वैसे यहाँ भी प्रत्येक प्रधान पुरोडाश के लिये पृथक् २ पात्र होने चाहियें।

सर्वेषां चाभिप्रथनं स्यात् ।४२।

पदार्थ—(सर्वेषां च) सभी कपालों का सम्वन्ध कर (अभिप्रथनं स्यात्) विस्तार करने में आया है।

भावार्थ—'यावत्कपालं पुरोडाशं प्रथयति' जितने कपाल बताये हों उस प्रकार पुरोडाश का विस्तार किया गया है। यह कथन कपालों का भेद माने विना संगत नहीं होता। अतः पुरोडाश के अनुसार चतुष्कपाल में भेद मानना चाहिये।

व्रीहि के अवहनन आदि में प्रति प्रहार में मंत्र की आवृत्ति नहीं।
इस अधिकरण के सूत्र—

एक द्रव्ये संस्काराणां व्याख्यातमेककर्मत्वं तस्मिन् मंत्रार्थनानात्वादावृत्तौ मन्त्रस्यासकृत् प्रयोगः स्यात् ।४३।

पदार्थ—(एक द्रव्ये) व्रीहि आदि एक द्रव्य में (संस्काराणाम्) अवहनन आदि संस्कार (एककर्मत्वं व्याख्यातम्) एक कर्म आगे कहा गया है, (तस्मिन् मन्त्रार्थनानात्वात्) जहाँ मंत्र का अर्थ भिन्न २ हो वहाँ, (मन्त्रस्य असकृत् प्रयोगः स्यात्) मंत्र का बार बार प्रयोग होता है।

भावार्थ—'व्रीहीन् अवहन्ति' व्रीहि का अवहनन करना, अर्थात् उनका अवघातकर छिलकों से व्रीहि को पृथक् करना। यह अवघात करते समय 'अवरक्षो दिवः सपत्नं वध्यासम्' यह मंत्र बोलना होता है। यह अवघात के प्रारम्भ में ही बोलना। जब २ व्रीहि पर मूसल का प्रहार किया जाय तब तब नहीं बोलना, अर्थात् इस मंत्र की आवृत्ति नहीं करनी। एक ही समय मंत्रोच्चारण से तुष विवेचन तक के प्रहार अभिसंहित होते हैं। अतः वहाँ मंत्र की आवृत्ति निरर्थक होती है।

पृथक् २ बीजों की इष्टि में द्रव्यभेद होने से संस्कारों की आवृत्ति के लिये मंत्र की आवृत्ति करनी चाहिये। इस अधिकरण के सूत्र—

द्रव्यान्तरे कृतार्थत्वात्तस्य पुनः प्रयोगान्मन्त्रस्य तद्गुणत्वात् पुनः प्रयोगः स्यात्तदर्थेन विधानात् ।४४।

पदार्थ—(द्रव्यान्तरे) जहाँ पृथक् २ द्रव्य हो वहाँ (कृतार्थत्वात्) प्रथम बीज में मंत्र कृतार्थ हो जाने से अन्य बीजों को पीसते समय (तस्य पुनः प्रयोगात्) उनका फिर से प्रयोग हुआ होने से (तद्गुणत्वात्) वह प्रयोग मंत्र गुणभूत होने से (पुनः प्रयोगः स्यात्) मंत्र का फिर से प्रयोग होता है (तदर्थेन विधानात्) अतिदेश शास्त्र उसके लिये विधान करता होने से।

भावार्थ—जहाँ द्रव्य का भेद हो अर्थात् पृथक् २ द्रव्य कूटे पीसे जायें, वहाँ जब जब द्रव्य बदला जावे, तब तब मंत्र बोलना चाहिये। अर्थात् पृथक् २

द्रव्यों के स्थल से मंत्र की आवृत्ति होती है। दर्शपूर्णमास में प्रतिनिर्वपणादि में मंत्र की आवृत्ति है, इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष—

निर्वपणलवनास्तरणाज्यग्रहणेषु चैकद्रव्यवत् प्रयोजनैकत्वात् ।४५।

पदार्थ—(च) और (निर्वपणलवनास्तरणाज्यग्रहणेषु) निर्वपण, लवन, आस्तरण तथा आज्यग्रहण में (एकद्रव्यत्वात्) एक द्रव्य के तुल्य (प्रयोजनैकत्वात्) एक प्रयोजन होने से मंत्र का एक ही समय पाठ करना।

भावार्थ—निर्वपण, लवन, आस्तरण और आज्य ग्रहण में अवघात के तुल्य एक ही प्रयोजन होने से एक ही बार मंत्र बोलना चाहिये। 'प्रयुजो मुष्टीन् लुनाति' इस स्थान पर 'बर्हिर्देवसदनं दामि' यह मंत्र बोलना। चतुर्जुह्वां गृह्णाति (जुहू में चार समय घी लेना) इस स्थान पर 'शुक्रं त्वा' इत्यादि मंत्र बोलना। निर्वाप आदि एक एक प्रयोजन होने से एक ही मंत्र बोलना इसलिये कि प्रतिक्रिया में मंत्र की आवृत्ति नहीं करनी। चार बार मुठ्ठी भर निर्वाप करना हो वहाँ चार बार मंत्र न बोलना, एक समय ही मंत्र बोलना चाहिये। इत्यादि।

सिद्धान्त सूत्र—

द्रव्यान्तरवद्वा स्यात् संस्कारात् ।४६।

पदार्थ—(वा) अथवा (द्रव्यान्तरवत्) पृथक् २ बीजों के अवहनन के तुल्य (संस्कारात्) संस्कार्य द्रव्य में भेद होने से (स्यात्) मंत्र की आवृत्ति होती है।

भावार्थ—मंत्र से स्मरण पूर्वक निर्वाप क्रिया से भिन्न २ द्रव्यों का संस्कार होना आवश्यक होने से प्रत्येक क्रिया के समय मंत्र की आवृत्ति करना इष्ट है।

वेदि प्रोक्षण में प्रत्यावृत्ति मंत्र की आवृत्ति नहीं होती। इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष—

वेदिप्रोक्षणे मन्त्राभ्यासः कर्मणः पुनः प्रयोगात् ।४७।

पदार्थ—(वेदिप्रोक्षणे) वेदी के प्रोक्षण में (मन्त्राभ्यासः) मंत्र की

आवृत्ति करनी चाहिये (कर्मणः पुनः प्रयोगात्) कर्मों का फिर से प्रयोग होने से।

भावार्थ—'वेदिरसि' इत्यादि मंत्र से 'त्रिर्वेदीं प्रोक्षति' तीन बार वेदी पर प्रोक्षण करना। इस स्थान पर तीन बार प्रोक्षण करना होने से तीन ही बार मंत्र भी बोलना चाहिये। प्रोक्षण क्रिया प्रधान है और मंत्र इसका अंग है 'प्रतिप्रधानमंगावृत्तिः' जब जब प्रधान कर्म हो, तब उसका अंग भी करना ही चाहिये, ऐसा नियम है। इसलिये मंत्र की आवृत्ति करनी चाहिये।

पूर्वपक्ष—

एकस्य वा गुणविधिर्द्रव्यैकत्वात्तस्मात् सकृत्प्रयोगः ।४८।

पदार्थ—(वा) अथवा (एकस्य गुणविधिः) एक ही कर्म को तीन बार करने रूप अभ्यास की गुणविधि है (तस्मात्) अतः (सकृत् प्रयोगः) मंत्र का एक ही समय प्रयोग करना। (द्रव्यैकत्वात्) एक ही द्रव्य होने से।

भावार्थ—वेदिप्रोक्षण रूप क्रिया एक है। तीन समय प्रोक्षण करने से क्रिया भिन्न नहीं होती, अतः एक ही समय मंत्र बोलना, तीन समय नहीं। अर्थात् मंत्र की अनावृत्ति है।

कण्डूयन मंत्र का एक ही समय प्रयोग करने सम्बन्धी अधिकरण—

पूर्वपक्ष सूत्र—

कण्डूयने प्रत्यंगं कर्मभेदः स्यात् ।४९।

पदार्थ—(कण्डूयने) अंगों के कण्डूयन में (प्रत्यंगम्)। जैसा २ अंग में कण्डूयन करना हो, उस २ में कण्डूयन के समय (कर्मभेदः स्यात्) मंत्र बोलना चाहिये। इसलिये मंत्र की आवृत्ति करनी चाहिये।

भावार्थ—दीक्षित यजमान को जब शरीर के किसी अवयव में कंडूति (खाज) उत्पन्न हो, तब कृष्ण विषाण से कण्डूति करनी और प्रत्येक कण्डूति के समय मंत्र का पृथक् २ उच्चारण करना, अतः मंत्र की आवृत्ति करनी।

सिद्धान्त सूत्र—

अपि वा चोदनैककालमैककर्म्यं स्यात् ।५०।

पदार्थ—(अपि वा) अथवा (चोदनैककालम्) विधिकाल एक होने से (ऐककर्म्यम् स्यात्) एक ही कर्म होने से।

भावार्थ—कण्डूयन शरीर के किसी अंग के संस्कार के लिये नहीं होता और उसके लिये कडूयन का विधान भी नहीं है। कण्डूयन तो रागप्राप्त है। तात्कालिक दुःख की निवृत्ति के लिये है। इससे तात्कालिक दुःख की निवृत्ति को उत्पन्न करने वाले कण्डूयन व्यक्तियों में भिन्न २ होने पर भी प्रतिकण्डूयन मंत्र की आवृत्ति नहीं करनी। अवहननवत् एक ही समय मंत्र बोल कर जिन २ अंगों में कण्डूयन करना हो वहाँ करना। इसलिये कि कण्डूयन मंत्र का एक ही समय प्रयोग करना।

ज्योतिष्टोम करते समय स्वप्नादि में मंत्र की अनावृत्ति है।

स्वप्ननदीतरणाभिवर्षणामेध्यप्रतिमंत्रणेषु चैवम् ।५२।

पदार्थ—(च) और (एवम्) इस प्रकार (स्वप्ननदीतरणाभिवर्षणा-मेध्यमन्त्रणेषु) स्वप्न, नदीतरण, अभिवर्षण तथा अमेध्य दर्शन में मंत्र की अनावृत्ति है।

भावार्थ—दीक्षित यजमान को स्वप्न आया हो, नदी पार करने के प्रसंग में, अभिवृष्टि में तथा अपवित्र वस्तु के दर्शन में जो जो मंत्र बोलने हों, वे एक ही समय बोलने चाहियें। ये मंत्र शाबर भाष्य आदि आकर ग्रन्थों में दिये हैं, वहाँ देखने चाहियें।

दीक्षित यजमान के प्रयाण करते समय मंत्र की अनावृत्ति होती है।

प्रयाणे त्वार्थनिवृत्तेः ।५३।

पदार्थ—(प्रयाणे) प्रयाण के समय (तु) तो (आर्थनिवृत्तेः) हेतु-निवृत्ति होने से।

भावार्थ—दीक्षित यजमान किसी स्थान के लिये प्रस्थान करे तो जहाँ जहाँ विश्राम लेकर पुनः प्रयाण करे, वहाँ वहाँ बारम्बार मंत्र नहीं बोलने, प्रयाण के आरम्भ में एक ही समय मंत्र बोलने चाहियें। प्रयाण का फल मिले इसे उद्दिष्ट कर मंत्र बोले जाते हैं। यह फल एक ही है अतः एक ही समय मंत्र बोलने चाहियें। प्रयाण का मंत्र 'भद्रादभिश्रेयः प्रेहि' है। इस मंत्र का एक ही समय प्रयोग करना चाहिये।

उपरव मंत्र की आवृत्ति करनी होती है।

पूर्वपक्ष—

उपरवमन्त्रस्तन्त्रं स्याल्लोकवच्च बहुवचनात् ।५४।

पदार्थ—(उपरवमंत्रः) उपरव मंत्र (तन्त्रम्) तंत्र रूप में (स्यात्) होता है (च) और (लोकवत्) लौकिक व्यवहार के तुल्य (बहुवचनात्) बहुवचन का प्रयोग होने से ।

भावार्थ—उपरव अर्थात् सोमरस निकालने के लिये जो जमीन में गड्ढा खोदा जाता है वह **'सन्ति ज्योतिष्टोमे पीठपादचतुष्टयाकारा बाहुमात्रखाता उपरवनामकाश्चत्वारो गर्ताः'** इस प्रकार सायणाचार्य ने न्यायमालाविस्तर में उपरव का अर्थ किया हैं। ऐसे चार गड्ढे किये जाते हैं तथा वे एक हाथ गहरे होते हैं। इन उपरव अर्थात् गड्ढों को खोदते समय **'रक्षोहणो वलगहनो वैष्णवान् खनामि'** यह मंत्र बोला जाता है। प्रत्येक गर्त खोदते समय इस मंत्र की आवृत्ति नहीं करनी, परन्तु एक ही समय मंत्र बोलकर चारों उपरव (गड्ढे) खोदने चाहियें। अर्थात् मंत्र की आवृत्ति नहीं करनी, आवृत्ति न करने का नाम तंत्र है।

सिद्धान्त सूत्र—

न सन्निपातित्वादसंनिपातिकर्मणा विशेषाग्रहणे कालैकत्वात् सकृद्वचनम् ।५५।

पदार्थ—(न) नहीं (सन्निपातित्वात्) उपरव का मंत्र अनुष्ठेय क्रिया के स्मरण का जनक होने से (असन्निपातिकर्मणाम्) जो मंत्र अर्थ स्मरण द्वारा अदृष्टजनक नहीं होता, पर मात्र अदृष्टजनक ही होता है, उसमें किसी विशेष के ग्रहण न होने से (सकृद्वचनम्) तंत्र भले ही हो (कालैकत्वात्) काल की एकता भी इसीलिये होती है।

भावार्थ—कितने ही मंत्र अदृष्ट का स्मरण कराने से अदृष्ट जनक होते हैं और कितने ही मात्र अदृष्ट जनक ही होते हैं। जो मंत्र अर्थ का स्मरण कराकर अदृष्ट जनक होते हैं उनकी आवृत्ति करनी चाहिये। केवल अदृष्टजनक हो तो उनकी आवृत्ति न करनी। प्रकृत में प्रत्येक उपरव के खनन में रक्षोहण मंत्र से स्मरण कराना होता है। **'यावदेव मन्त्रजनिते ज्ञानं तावदेव तत्क्रियाकरणम्'** इस प्रकार सुबोधिनी सूत्र वृत्ति में उल्लेख है। अतः उपरव खोदते समय मंत्र की आवृत्ति करनी चाहिये। इसलिये कि उपरव मंत्र की आवृत्ति है।

हविष्कृत् आदि मंत्रों की आवृत्ति है—इस अधिकरण के सूत्र—

हविष्कृदध्रिगुपुरोनुवाक्यामनोतस्यावृत्तिः कालभेदात् ।५६।

पदार्थ—(हविष्कृदध्रिगुपुरोनुवाक्यामनोतस्य आवृत्तिः) हविष्कृत्, अध्रिगु, पुरोवाक्या और मनोता मंत्रों की भी आवृत्ति होती है (कालभेदात्) काल के भेद के कारण।

भावार्थ—'**हविष्कृदेहि**' यह हविष्कृत् मंत्र **दैव्याः शमितारः** यह अध्रिगु प्रैष मंत्र, **अग्ने नयसुपथा** आदि पुरोवाक्या मंत्र और **त्वं ह्यग्ने मनोता**' यह मनोता कहलाता है। इन चारों मंत्रों की काल के भेद के कारण प्रतिकर्म आवृत्ति होती है।

अध्रिगोश्च विपर्यासात् ।५७।

पदार्थ—(च) और (अध्रिगोः) अध्रिगु मंत्रों की तो (विपर्यासात्) विहितक्रम के लोप से भी आवृत्ति होती है।

भावार्थ—अध्रिगु मंत्र की आवृत्ति में विहित क्रम का लोप होना, यह भी कारण है। इसका विशेष भाव भाष्य में देखना चाहिये।

करिष्यद्वचनात् ।५८।

पदार्थ—(करिष्यद्वचनात्) करिष्यद् वचन से भी आवृत्ति सिद्ध होती है।

भावार्थ—**आरभध्वम्, उपनयत** ऐसे वचन कर्म करने वाले के लिये कहे जाते हैं। इससे भी अध्रिगु मंत्र की आवृत्ति सिद्ध होती है। **या चेयमध्रिगोर्विभक्तिः** इत्यादि भाष्य विशेष जिज्ञासुओं को देखना चाहिये।

इति मीमांसादर्शनभाष्ये एकादशाध्यायस्य चतुर्थः पादः॥११।४॥

अथ मीमांसादर्शने

द्वादशाध्यायस्य प्रथमः पादः

अग्नीषोमीय और प्रयाज आदि से पुरोडाश का उपकार होता है। इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष —

तन्त्रिसमवाये चोदनातः समानानामेकतन्त्रत्व-मतुल्येषु तु भेदो विधिक्रमतादर्थ्यात् तादर्थ्यं श्रुतिकालनिर्देशात् ।१।

पदार्थ—(तन्त्रिसमवाये) प्रधानों के समवाय में (चोदनातः) विधि-वाक्य से (समानानाम्) समानों के अर्थात् एक विधि से विहितों का (एक-तंत्रत्वम्) एक प्रयोग होता है। (अतुल्येषु तु भेदः) भिन्न विधिबोधित कर्मों में भेद होता है। (विधिक्रमतादर्थ्यात्) अंगों के अनुष्ठान का क्रम उनके लिये होता है (तादर्थ्यम्) तादर्थ्य (श्रुतिकालनिर्देशात्) प्रयोगारम्भ काल के भेद का निर्देश होने से ।

भावार्थ—प्रधान कर्मों का जहाँ समवाय हो वहाँ विधिवाक्य से समान अर्थात् एक विधि से विहित अंगों का एक प्रयोग होता है। भिन्न भिन्न विधि-वाक्य से बोधित कर्मों में भेद होता है। ऐसे स्थान पर अंगों का अनुष्ठान क्रम आवृत्ति से ही होता है। प्रयोगकाल के आरम्भ का भी भेद होता है। इनके उदाहरण शाबर भाष्य आदि ग्रन्थों में देखो ।

गुणकालविकाराच्च तन्त्रभेदः स्यात् ।२।

पदार्थ—(च) और (गुणकालविकारात्) गुण और काल के भेद से (तन्त्रभेदः स्यात्) तंत्र में भेद आता है।

भावार्थ—जो गुण तथा काल में भेद हो तो तंत्र में भेद होता है, अर्थात् समानता से कार्य नहीं हो सकता।

सिद्धान्त सूत्र—

तन्त्रमध्ये विधानाद्वा मुख्यतंत्रेण सिद्धः स्यात् तन्त्रार्थस्याविशिष्टत्वात् ।३।

पदार्थ—(वा) अथवा (तन्त्रमध्ये विधानात्) एक तंत्र में विधान होने से (मुख्यतंत्रेण सिद्धः स्यात्) मुख्य तंत्र से सिद्ध होता है (तन्त्रार्थस्य अविशिष्टत्वात्) अंग कृत जो अर्थ होता है वह उपकार विशिष्ट होता है।

भावार्थ—मुख्य तंत्र से अर्थात् मुख्य प्रयोग से पुरोडाश आदि पर उपकार होता है। कारण तंत्रों में ही पुरोडाश आदि का विधान है और तंत्र के जो अंग होते हैं वे भी उपकार विशिष्ट अर्थात् प्रधानकर्म पर उपकार करने वाले होते हैं।

विकाराच्च न भेदः स्यादर्थस्याविकृतत्वात् ।४।

पदार्थ—(च) और (विकारात् न भेदः स्यात्) एकादशत्व और पृषदाज्य रूप गुण विकार से भेद नहीं होता। अर्थात् प्रयोग में भेद नहीं पड़ता। (अर्थस्य अविकृतत्वात्) अंग जनित उपकार अविकृत होने से।

भावार्थ—विकार से अर्थात् एकादशत्व और पृषदाज्य रूप गुण विकार से मुख्य प्रयोग में भेद नहीं आता। अर्थात् प्रयाजादि की आवृत्ति नहीं होती। कारण कि अंग जनित जो उपकार होता है उसका अतिदेश करने से फलांश कुछ भी विकार नहीं होता।

एकेषां चाशक्यत्वात् ।५।

पदार्थ—(च) और (एकेषाम्) कितने अंगों का (अशक्यत्वात्) भेद से अनुष्ठान शक्य नहीं होता।

भावार्थ—जहाँ देश और काल के नियम में भंग होता हो वहाँ अंगों के भेद से अनुष्ठान भी नहीं हो सकता।

एकाग्निवच्च दर्शनम् ।६।

पदार्थ—(च) और (एकाग्निवत्) एक अग्नि के तुल्य (दर्शनम्) प्रत्यक्षश्रुति दर्शन है।

भावार्थ—द्रव्यादि सामग्री और पुरोडाश आदि एक ही अग्नि में होते जाते हैं, उनके लिये भिन्न भिन्न अग्नि नहीं होती। 'मध्ये अग्नेराज्याहुती-

जुँहोति पुरोडाशाहुतीश्च' । इस वाक्य से एक ही अग्नि में होमना, ऐसा दर्शन अर्थात् ज्ञान होता है ।

पुरोडाश में आज्य भागों की कर्त्तव्यता का अधिकरण—

जैमिनेः परतन्त्रापत्तेः स्वतन्त्रप्रतिषेधः स्यात् ।७।

पदार्थ—(जैमिनेः) जैमिनि आचार्य के मत में आज्य भाग कर्त्तव्य है (परतन्त्रापत्तेः) परतंत्र की प्राप्ति होने से (स्वतन्त्रप्रतिषेधः स्यात्) अपने तंत्र का प्रतिषेध होता है ।

भावार्थ—पाशुक तंत्र पर का तंत्र है । इससे आज्य भाग की प्राप्ति होती है । पुरोडाश तंत्र स्वतंत्र अर्थात् स्वयं का तंत्र है, उसमें प्रयोग विधि का प्रतिषेध है । आज्यभागादि विषय में पर की प्राप्ति नहीं, अतः उसका बाध नहीं होता । देखो शाबर भाष्य । **यथा देवदत्ते यज्ञदत्तयानमारूढे देवदत्तयानं निवर्तते न वस्त्रालंकारः ।** जैसे देवदत्त के यज्ञदत्त के यान पर बैठ जाने पर देवदत्त का स्वयं का यान लौट जाता है, पर देवदत्त के वस्त्र, अलंकार आदि नहीं लौटते कारण कि उनमें परतंत्र की प्राप्ति नहीं है, उसी प्रकार आज्यभाग करने में किसी भी पाशुक अंग की प्राप्ति नहीं होती, अतः उसका प्रतिषेध नहीं होता ।

सोम में दार्शिक वेदी का करण नहीं, इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष सूत्र—

नानार्थत्वात्सोमे दर्शपूर्णमासप्रकृतीनां वेदिकर्म स्यात् ।८।

भावार्थ—(सोमे) सोम याग के (दर्शपूर्णमासप्रकृतीनाम्) दर्शपूर्णमास जिनकी प्रकृति है, उनके लिये (वेदिकर्म स्यात्) अलग वेदी बनानी चाहिये । (नानार्थत्वात्) भिन्न फल होने से ।

भावार्थ—भिन्न फल होने से सौमिक वेदी से भिन्न वेदी बनानी चाहिये । सौमिकी वेदी अवदान ग्रहण आदि प्रचार के लिये होती है । ओर दार्शपौर्णमासिकी वेदी हविषों के आसादन के लिये होती है । इससे पृथक् वेदी बनानो चाहिए ।

सिद्धान्त सूत्र—

अकर्म वा कृतदूषा स्यात् ।९।

पदार्थ—(वा) अथवा (अकर्म) अलग वेदी नहीं बनानी (कृतदूषा स्यात्) जो अलग वेदी बनाने में आवे तो वह सौमिकी वेदी के दूषण रूप होगा।

भावार्थ—सौमिकी वेदी हविर्धारण के लिये भी समर्थ है और प्रचार के लिये भी समर्थ है। अतः हविषों के धारण के लिये पृथक् वेदी बनानी, सौमिकी वेदी के दूषण रूप है इससे पृथक् वेदी नहीं बनानी चाहिये।

सोम में दार्शिक स्रुब आदि पात्रों से सावन पुरोडाशादि का होम करने सम्बन्धी अधिकरण—

पूर्वपक्ष—

पात्रेषु च प्रसंगः स्याद्धोमार्थत्वात् ।१०।

पदार्थ—(च) और (पात्रेषु) होम साधन पात्रों में (प्रसंगः स्यात्) ग्रह चमसों से होम की सिद्धि होती है। (होमार्थत्वात्) होम के लिये ही होने से।

भावार्थ—ज्योतिष्टोम में ग्रहचमस पात्रों से ही होम की सिद्धि होती है। दर्शपूर्णमास में जुहू, उपभृत् आदि पात्रों की होम के लिये आवश्यकता नहीं।

सिद्धान्त सूत्र—

न्याय्यानि वा प्रयुक्तत्वादप्रयुक्ते प्रसंगः स्यात् ।११।

पदार्थ—(वा) अथवा (न्याय्यानि) दर्शपूर्णमास के पात्र ज्योतिष्टोम में होने न्याय्य हैं। (प्रयुक्तत्वात्) कारण कि उन पात्रों का परिग्रह हुआ होता है। (अप्रयुक्ते प्रसंगः स्यात्) नहीं तो अपरिग्रह में प्रसंग होगा।

भावार्थ—प्राकृत जुहू आदि पात्र सन्निहित होने से अन्य पात्रों का प्रसंग होना योग्य नहीं। दर्शपूर्णमास याग प्रकृति होता है। अतः उनके पात्रों से ही होम करना। लोक व्यवहार में भी किसी को कहीं जाना हो और अपना वाहन तैयार हो तो वह अन्य के वाहन की प्रतीक्षा नहीं करता। इस हेतु से प्राकृत जुहू आदि पात्र होना उचित है।

शामित्र में पुरोडाश श्रवण के अभाव का अधिकरण—

शामित्रे च पशुपुरोडाशो न स्यादितरस्य प्रयुक्तत्वात् ।१२।

पदार्थ—(च) और (शामित्रे पशुपुरोडाशो न स्यात्) शामित्र अग्नि से पुरोडाश का श्रपण नहीं करना। और उस पशु का ब्राह्मणादि को दान भी

नहीं देना। (इतरस्य प्रयुक्तत्वात्) गार्हपत्य अग्नि उसके पूर्व तैयार होने से।

भावार्थ—पुरोडाश का श्रपण शामित्र नामक अग्नि में नहीं करना, पर गार्हपत्य अग्नि में पुरोडाश का श्रपण करना चाहिये।

कौंडपायी के अयन में अग्निहोत्र द्रव्य का प्राजहित में श्रपण करना, इस सम्बन्धी अधिकरण।

श्रपणं चाग्निहोत्रस्य शालामुखीये न स्यात् प्राजहितस्य विद्यमानत्वात्।१३।

पदार्थ—(च) और (अग्निहोत्रस्य शालामुखीये श्रपणं न स्यात्) अग्निहोत्र हविष् का श्रपण शालामुखीय अग्नि में नहीं करना (प्राजहितस्य विद्यमानत्वात्) प्राजहित अर्थात् गार्हपत्य अग्नि विद्यमान होने से।

भावार्थ—कुण्डपायियों के अयन में अग्निहोत्र के हविष् का श्रपण शालामुखीय अग्नि में नहीं करना, पर गार्हपत्य अग्नि में करना। इस सूत्र में प्राजहित शब्द गार्हपत्य अग्नि के लिये प्रयुक्त हुआ है। **प्राजहित इति गार्हपत्यस्य पूर्वाचार्यसंज्ञा** गार्हपत्य को पूर्व के आचार्य 'प्राजहित' नाम देते थे।

हविर्धान शकट भिन्न शकट में औषध द्रव्य वाले पुरोडाश का निर्वाप होता है।

पूर्वपक्ष सूत्र—

हविर्धाने निर्वपणार्थं साधयेतां प्रयुक्तत्वात्।१४।

पदार्थ—(हविर्धाने) सोम के आधारभूत शकट (निर्वपणार्थम्) निर्वाप के लिये (साधयेताम्) उत्पन्न करे (प्रयुक्तत्वात्) प्रयुक्त होने से।

भावार्थ—हविर्धान नामक शकट निर्वाप के लिये सिद्ध है। इसलिये निर्वाप के लिये अन्य शकट लाने की आवश्यकता नहीं। **अन्यस्य उपादाने केवलमनर्थको व्यापार.।** अन्य शकट लाने का प्रयत्न व्यर्थ है। जिस शकट में औषध गुण वाले अष्टिक कर्म किये जावें उसमें ही निर्वाप भी करना चाहिये।

सिद्धान्त सूत्र—

असिद्धिर्वाऽन्यदेशत्वात्प्रधानवैगुण्यादवैगुण्ये प्रसंगः स्यात्।१५।

पदार्थ—(वा) अथवा (असिद्धिः) हविर्धान नामक दो शकटों में निर्वाप साधन की असिद्धि है। (अन्यदेशत्वात्) भिन्न स्थान होने से (प्रधानवैगुण्यात्) प्रधान में वैगुण्य आता होने से (अवैगुण्ये प्रसंगः स्यात्) अवैगुण्य में प्रसंग होना चाहिये।

भावार्थ—जो दो हविर्धान शकट होते हैं उनमें निर्वाप की सिद्धि नहीं हो सकती। कारण कि ये दोनों शकट हविर्धान के मण्डल में होते है। उन्हें गार्हपत्य के पीछे के याग में लेजाकर निर्वाप करने से जो सोमयाग है, उसमें वैगुण्य उत्पन्न होता है। अतः वैगुण्य न आवे, इसके लिये अन्य शकट का उपादान करना चाहिये।

अनसां च दर्शनात् ।१६।

पदार्थ–(च) और (अनसां दर्शनात्) बहु शकटों के होने की सूचना मिलती है।

भावार्थ—'अनांसि प्रवर्तयन्ति' यहाँ अनस बहुवचन में प्रयुक्त हुआ है। इससे दो से अधिक शकट होने चाहियें, ऐसा अनुमान होता है। सोम के आधारभूत शकट का तो द्विवचन है इससे बहु शकटों की प्रतीति न हो, पर उक्त वाक्य से बहु शकटों की प्रतीति होती है। इससे सिद्ध होता है कि हविर्धान शकट के अतिरिक्त दूसरे शकट में निर्वाप करना।

प्रायणीय आदि में दीक्षा जागरण के अभाव का अधिकरण—

तद्युक्तं च कालभेदात् ।१७।

पदार्थ—(च) और (तत्) पृथक् जागरण (युक्तम्) योग्य है (कालभेदात्) कालभेद होने से।

भावार्थ—दीक्षा के दिवस रात्रि में जागरण करना ऐसा श्रवण है। उसमें दर्श और पूर्णमास में औपवस्थ दिवस में रात्रिजागरण का श्रवण है। प्रायणीयादि में वह अतिदिष्ट है, उसकी दीक्षा जागरण के साथ प्रसंगसिद्ध होती है। इस पूर्वपक्ष के सम्बन्ध में उत्तर यह है कि दीक्षा जागरण से पृथक् जागरण प्रायणीयादि में करना। कारण कि दोनों के समय में भेद है।

विहार के भेद में मंत्र का भेद है। इस अधिकरण के सूत्र—

मन्त्राश्च सन्निपातित्वात् ।१८।

पदार्थ—(च) और (मंत्राः) मंत्र (सन्निपातित्वात्) समीप में उपकारक होने से।

भावार्थ—वरुण प्रघास में मारुती प्रचारार्थ प्रतिप्रस्थाता और अध्वर्यु को ये मंत्र बोलने होते हैं। इन मंत्रों में तंत्र है या आवृत्ति अर्थात्

एक ही ऋत्विज् दोनों मंत्र बोले, इस पूर्वपक्ष का समाधान यह है कि दोनों ऋत्विजों को अपने २ मंत्र बोलने चाहियें। मंत्र के अन्त में 'गृह्णामि' उत्तम पुरुष का क्रियापद होता है। वह यह सूचित करता है कि जो मंत्र बोले उसका उपकारक यह मंत्र नहीं हो सकता कारण कि दोनों मंत्र बोलने, अर्थात् तंत्र नहीं, पर भेद है।

दीक्षणीय आदि में अग्न्याधान का अभाव है। इस अधिकरण के सूत्र—

धारणार्थत्वात्सोमेऽग्न्यन्वाधानं न विद्यते ।१९।

पदार्थ—(सोमे) सोम सम्बन्धी दीक्षणीय आदि में (धारणार्थत्वात्) समाप्ति पर्यन्त धारण के लिये होने से (अग्न्याधानं न विद्यते) अग्न्याधान नहीं होता।

भावार्थ—अग्नि के धारण करने के लिये अग्न्याधान होता है। और वह धारण दीक्षणीयादि की अपेक्षा प्राचीन सौमिक अग्न्याधान से सिद्ध है। अतः दीक्षणीय आदि में अग्न्याधान नहीं किया जाता है। **न च घृतस्य धारणकार्यमस्ति।**

दीक्षणीय आदि में व्रतोपायन का अभाव है।

तथा व्रतमुपेतत्वात् ।२०।

पदार्थ—(तथा) इस प्रकार (व्रतम्) व्रत प्राप्त करना नहीं होता (उपेतत्वात्) व्रत धारण किया होने से।

भावार्थ—सत्यवचस और ब्रह्मचर्यपालन रूप व्रत सोमयाग के लिये पहले से ही ग्रहण किया होता है और उसे सोमयाग पूरा होने तक पालना होता है। अतः दर्श पौर्णमासिक व्रत, जो अतिदेश से प्राप्त होता है, उसका अतिदेश नहीं करना। कारण, व्रत तो अतिदेश पहले ही प्राप्त किया होता है। **अग्नेव्रतपते** इत्यादि मंत्र व्रत ग्रहण के लिये होता है।

विप्रतिषेधाच्च ।२१।

पदार्थ—(च) और (विप्रतिषेधात्) विप्रतिषेध अर्थात् बाध आता है, इसलिये।

भावार्थ—सौमिकव्रत तो पहले ही ग्रहण किया होता है और यह व्रत चालू होता है। ऐसे समय **'व्रतं चरिष्यामि'** में व्रत का आचरण करूंगा, इस प्रकार भविष्यत्काल के साथ व्रत का सम्बन्ध बताना, इसमें स्पष्ट बाध ज्ञात होता है। जो मनुष्य सत्य और ब्रह्मचर्य का पहले से पालन करता हो वह तो ऐसा कहे कि मैं सत्य बोलूंगा और ब्रह्मचर्य का पालन करूंगा। इसलिये वह

इस समय व्रत का पालन नहीं करता, ऐसी प्रतीति होती है। अतः ऐसा वाध होने से अतिदेशिक व्रत का अभाव मानना चाहिये।

सत्यवदिति चेत् ।२२।

पदार्थ—(सत्यवत्) तू सत्य बोल, (इति वत्) इस प्रकार मानने में बाध नही, जो ऐसी शंका हो तो, इसका उत्तर अगले सूत्र में है।

भावार्थ—'सत्यं वद' ऐसी आज्ञा धर्मशास्त्र से प्राप्त होती ही है, फिर भी दर्शपूर्णमास प्रकरण में यह व्रत फिर से लिया जाता है, इसके तुल्य अतिदेशिक व्रत की प्राप्ति करने में क्या बाधा है? इसका उत्तर अगले सूत्र में दिया गया है।

न संयोगपृथक्त्वात् ।२३।

पदार्थ—(न) नहीं (संयोगपृथक्त्वात्) उद्देश्य में भेद होने से।

भावार्थ—दृष्टान्त में वैषम्यदोष है। स्मृति जो सत्य वचन का उपदेश देती है, उस पुरुष को उद्दिष्ट कर और यहाँ ऋतु को उद्दिष्ट कर सत्य का उपदेश होता है। और वह उपदेश रूप व्रत सोम याग के समय लिया होने से आतिदेशिक व्रत प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं रहती।

ऐष्टिकों में अग्न्याधान का अनुष्ठान नहीं। इस अधिकरण के सूत्र—

ग्रहार्थं च पूर्वमिष्टेस्तदर्थत्वात् ।२४।

पदार्थ—(च) और (ग्रहार्थम्) देवतापरिग्रह के लिये भी अग्न्यन्वाधान की आवश्यकता नहीं। (इष्टेः पूर्वम्) दीक्षणीय इष्टि (तदर्थत्वात्) उसके लिये होने से।

भावार्थ—सौमिक अग्न्येन्वाधान धारण के लिये होने से चोदक प्राप्त अन्वाधान रहे, पर देवता परिग्रह के लिये अन्वाधान कैसे नहीं करना? इसके उत्तर में इस सूत्र में यह स्पष्ट है कि देवता परिग्रह के लिये भी अन्वाधान की आवश्यकता नहीं। प्रसंग से उसकी भी सिद्धि हो जाती है। दीक्षणीया इष्टि उसके लिये ही होने से। इसलिये कि देवता परिग्रह के लिये ही होता है।

पूर्वपक्ष की शंका—

शेषवदिति चेत् ।२५।

पदार्थ—(शेषवत् इति चेत्) अंग देवता के लिये ऐष्टिक अन्वाधान होता है। जो ऐसी शंका हो तो, इसका उत्तर अगले सूत्र में है।

भावार्थ—दीक्षणीय इष्टि में जो अन्वाधान किया जाता है, वह तो अंगभूत ऐष्टिक देवता के परिग्रह के लिये है। दीक्षणीयेष्टि से तो प्रधान देवता का परिग्रह करना होता है, इस प्रकार भिन्नार्थक होने से प्रसंग सिद्धि नहीं हो सकती। इस शंका का समाधान अगले सूत्र में है।

न वैश्वदेवो हि ।२६।

पदार्थ—(न) उक्त शंका उचित नहीं (हि) कारण कि (वैश्वदेवः) विश्वदेव पद समग्र देवों के लिये प्रयुक्त होने से प्रधान देवता भी आ जाते हैं।

भावार्थ—प्रधान में वैश्वदेव का ग्रहण है। वैश्वदेव तो सकल देवताओं का वाचक पद है इसलिये—**विश्वदेवपदवाच्यं देवतात्वावच्छिन्नसामान्यं देवतात्वावच्छिन्नान्तःपातिनामंगदेवतानामपि तद् ग्रहसम्बन्धात् प्रधानत्व-मस्ति।** वैश्वदेव में अंगभूत देवता से भी प्रधानत्व का सम्बन्ध है ही।

पूर्वपक्ष वादी की शंका—

स्याद्वा व्यपदेशात् ।२७।

पदार्थ—(वा) अथवा (स्यात्) ऐष्टिक अन्वाधान करना चाहिये (व्यपदेशात्) भेद से निर्देश हुआ होने से।

भावार्थ—ऐष्टिक अन्वाधान करना चाहिये, कारण कि वैश्वदेव का भेद से निर्देश है। जैसे कि **'अग्निर्वसुभिः सोमो रुद्रैः इन्द्रो मरुद्भिः, वरुण आदित्यैः बृहस्पतिर्विश्वदेवैः।** यहाँ वसु आदि देवों की अपेक्षा विश्वदेव पृथक् बताये गये हैं। अतः 'विश्वदेव' यह पद अमुक देवताओं का वाचक है, समग्र-देवताओं का नहीं। अतः अंग देवता इस पद का वाच्य न होने से ऐष्टिक अन्वाधान करना चाहिये।

शंका का समाधान—

न गुणार्थत्वात् ।२८।

पदार्थ—(न) नहीं (गुणार्थत्वात्) स्तुति के लिये होने से।

भावार्थ—उपर्युक्त स्थल में विश्वदेवों को एक भिन्न देवता के रूप में बताया गया है, यह तो मात्र स्तुतिपरक है। स्तुति इस प्रकार उक्त वाक्य से

ही निकलती है। **'अग्न्यादयो वरुणान्ता मरुदाद्येकदेशयुक्ताः,बृहस्पतिस्तु सकल-देवतायुक्तः'** अग्न्यादि से वरुणान्त देव मरुदादि के एक देश जैसे हैं, पर बृहस्पति तो सर्वदेवतायुक्त है। ऐसा कह कर बृहस्पति की श्रेष्ठता बताई है। अतः ऐष्टिक अन्वाधान करने की आवश्यकता नहीं।

ऐष्टिक में पत्नी संनहन का अनुष्ठान नहीं, इस अधिकरण के सूत्र—

संनहनं वृत्तत्वात् ।२६।

पदार्थ—(संनहनम्)पत्नी संनहन नहीं करना कारण कि (वृतत्वात) हो जाने से।

भावार्थ—सोम के अंगभूत ऐष्टिक कर्मों में पत्नी का संनहन नहीं करना दीक्षा के समय सोम के लिये पत्नी संनहन हो चुकता है। **'योक्त्रेण पत्नी सन्नह्यति मेखलया दीक्षितम्'** योक्त्र(जुआ)से पत्नी का संनहन करना और मेखला से दीक्षित यजमान का संनहन करना। यह संनहन पहने वस्त्र निकल न जायें, इसलिये होता है। **'संनहनं च वाससो धरणार्थं सर्वार्थम्'** इस प्रकार शाबर भाष्य में उल्लेख है।

ऐष्टिक कर्म में आरण्य भोजन का अभाव है। इस अधिकरण के सूत्र--

अन्य विधानादारण्यभोजनं न स्यादुभयं हि वृत्यर्थम् ।३०।

पदार्थ—(अन्यविधानात्) अन्य का विधान होने से (आरण्यभोजनं न स्यात्) आरण्य भोजन नहीं करना, (हि) कारण कि (उभयं वृत्यर्थम्) दोनों वृत्ति के लिये होते हैं।

भावार्थ--दर्श पूर्णमास में आरण्य भोजन का आम्नान है। आरण्य अर्थात् इन्द्रिय। इन्द्रिय तृप्ति के लिये जो भोजन हो, उसका नाम आरण्य भोजन है। इस भोजन की प्राप्ति अतिदेश से सोम के ऐष्टिक कर्म जो प्रायणीय आदि हैं, उनमें भी प्राप्त होती। फिर भी अतिदेश करने की आवश्यकता नहीं कारण कि सोम में भोजन का प्रत्यक्ष आम्नान है। जैसे कि **पयोव्रतं ब्राह्मणस्य यवागू राजन्यस्याऽमिक्षा वैश्यस्य।** ये दोनों भोजन दृष्टार्थक हैं और वह वृत्ति के के लिये ही है। अतिदिष्ट भोजन की अपेक्षा प्रत्यक्ष श्रुत भोजन प्रबल है, अतः आरण्य भोजन का अतिदेश नहीं करना। पय आदि का भोजन करना।

ऐष्टिकों में शेषभक्षों का अनुष्ठान करना चाहिये, इस अधिकरण के सूत्र—

शेषभक्षास्तथेति चेन्नान्यार्थत्वात् ।३१।

पदार्थ—(शेषभक्षाः तथा इति चेत् न) इडाभक्षण आदि की भी उसी रीति से निवृत्ति माननी, जो ऐसी शंका हो तो उचित नहीं (अन्यार्थत्वात्) इस भक्षण का उद्देश्य पृथक् होता है।

भावार्थ—शेषभक्षण तो संस्कार के लिये होता है, वृत्ति के लिये नहीं। अतः शेष भक्षण तो करना ही चाहिये। **'हविः शेषान् भक्षयति'** यहाँ जो द्वितीया विभक्ति प्रयुक्त हुई है, उससे संस्कार समझा जाता है। अतः शेष भक्षण तो करना ही चाहिये।

ऐष्टिक में अन्वाहार्यदान का अभाव है, यह अधिकरण—

भृतत्वाच्च परिक्रयः ।३२।

पदार्थ—(च) और (परिक्रयः) दर्शपूर्णमास परिक्रय रूप अन्वाहार्य की निवृत्ति होती है (भृतत्वात्) ज्योतिष्टोम की दक्षिणा से परिक्रीत होने से।

भावार्थ—ज्योतिष्टोम की दक्षिणा यह मुख्य दक्षिणा है। और दर्श-पूर्णमास की दक्षिणा यह अवान्तर अंग दक्षिणा है। इस अंग दक्षिणा को अन्वाहार्य परिक्रय कहा जाता है। इस अंग दक्षिणा की निवृत्ति होती है अर्थात् यह दक्षिणा न देनी कारण ऋत्विज् तो ज्योतिष्टोम की मुख्य दक्षिणा से परिक्रीत होते हैं। **'तस्य द्वादशशतं दक्षिणा'** मुख्य दक्षिणा बारह सौ रुपये होती है।

ऐष्टिक कर्मों में शेषभक्ष संस्कारार्थ होने से वह तो कर्त्तव्य ही है। पूर्वपक्ष आशंका सूत्र—

शेषभक्षास्तथेति चेत् ।३३।

पदार्थ—(शेषभक्षाः तथा इति चेत्) अन्वाहार्य की भांति शेषभक्षण की भी निवृत्ति क्यों नहीं ?

भावार्थ—जैसे अन्वाहार्य परिक्रय निवृत्ति मानी जाती है, वैसे शेष भक्ष की भी निवृत्ति माननी चाहिये। कारण कि वह भी परिक्रय के लिये है।

शंका समाधान—

न कर्मसंयोगात् ।३४।

पदार्थ—(न) नहीं (कर्मसंयोगात्) कर्मवाचक द्वितीया विभक्ति का श्रवण होने से।

भावार्थ—अन्वाहार्य परिक्रय के तुल्य शेषभक्ष की निवृत्ति नहीं हो सकती, कारण कि भक्ष तो संस्कार कर्म के लिये है। **हविः शेषान्** इस स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग संस्कार कर्म को सूचित करता है अतः उसकी निवृत्ति नहीं होनी चाहिये। अन्वाहार्य परिक्रय संस्कार कर्म के लिये नहीं, अतः उसकी निवृत्ति हो सकती है।

ऐष्टिक कर्मों में होता के वरण का सद्भाव है। इस अधिकरण के सूत्र—

प्रवृत्तवरणात्प्रतितंत्रं वरणं होतुः क्रियते ।३५।

पदार्थ—(प्रतितन्त्रम्) प्रत्येक इष्टि में (होतुः वरणं क्रियते) होता का वरण होता है (प्रवृत्तवरणात्) प्रवृत्ति हुये पीछे कर्म में वरण किया जाने से।

भावार्थ—**'अग्निर्देवो दैव्यो होता देवान् यक्षत'** इस मंत्र से जो ऐष्टिक वरण ऋत्विज् की अनुमति के प्रकाशन के लिये हो तो कर्म प्रारम्भ होने से पूर्व यह वरण होना चाहिये। परन्तु यहाँ तो कर्म की प्रवृत्ति हुये पीछे मध्य में वरण का आम्नान है। अतः यह अनुमति प्रकाशन के लिये नहीं, परन्तु अदृष्टार्थक है। वह अदृष्टार्थक वरण सौमिक वरण से सिद्ध नहीं होता, अतः वरण की आवृत्ति होनी चाहिये।

पूर्वपक्ष का शंका सूत्र—

ब्रह्मापीति चेत् ।३६।

पदार्थ—(ब्रह्मा अपि इति चेत्) ब्रह्मा का वरण भी मध्य में होना चाहिये। यदि ऐसी शका हो तो, इसका उत्तर अगले सूत्र में है।

भावार्थ—**भूपते भुवनपते** इत्यादि मंत्र से ब्रह्मा नामक ऋत्विक् का वरण भी कर्म के बीच होना चाहिये। अर्थात् प्रत्येक इष्टि में उसका भी वरण होना चाहिये। वरण की आवृत्ति होनी चाहिये।

न प्राग् नियमात् तदर्थं हि ।३७।

पदार्थ—(न) नहीं (प्राग्) पहले (नियमात्) वरण हो जाने से (हि) कारण कि (तदर्थम्) ब्रह्मा की अनुमति के ज्ञान के लिये वह होता है।

भावार्थ—यह सूत्र होता है और ब्रह्मा के वरण में वैषम्य बताने के लिये है। ब्रह्मा का वरण ब्रह्म कर्तृक क्रिया के पहले होने से बीच में उसका वरण करने की आवश्यकता नहीं। अन्यकर्तृक क्रिया चाहे पहले प्रारम्भ हुई

हो पर ब्रह्मकर्तृक कोई भी क्रिया उसके वरण के पूर्व प्रारम्भ नहीं होती। होता और ब्रह्मा के वरण में इतना वैषम्य है। इसलिये कि होता का वरण क्रिया के प्रारम्भ हुये पीछे आम्नात है और ब्रह्मा का वरण क्रिया का आरम्भ हुये पहले होता है।

निर्दिष्टस्येति चेद् ।३८।

पदार्थ—(निर्दिष्टस्य इति चेत्) अमावस्या के पहले दिन 'वेदिं करोति' इस वाक्य से विहित परिग्रह की अनुज्ञा रूप जो कर्म है, वह प्रथम होने से उपर्युक्त सूत्र का अर्थ असिद्ध है।

भावार्थ—ब्रह्मा के वरण के पहले भी ब्रह्मकर्तृक क्रिया आरम्भ हो चुकती है, जैसे कि अमावस्या के प्रथम दिन वेदी बनाने की अनुज्ञा ब्रह्मा द्वारा प्रदत्त होती है। यह अंग कर्म ब्रह्मा के वरण से पूर्व होने से उपर्युक्त सूत्र का जो अर्थ बताया है, वह प्रसिद्ध है, अर्थात् होता और ब्रह्मा दोनों का प्रवृत्तवरण होता है।

नाश्रुतत्वात् ।३९।

पदार्थ—(न) नहीं (अश्रुतत्वात्) परिग्रह श्रुत न होने से।

भावार्थ—उपर्युक्त सूत्र में जो शंका की है, वह उचित नहीं। कारण कि अमावस्या के पहले दिन वेदी बनाने का कर्म होता है पर ब्रह्मा द्वारा उसका परिग्रह करना, तो ब्रह्मा के वरण के पश्चात् ही होता है।

ब्रह्मा के वरण के पहले वेदिपरिग्रह श्रुत नहीं है। अर्थात् शास्त्र विहित नहीं है।

होतुस्तथेति चेत् ।४०।

पदार्थ—(होतुः तथा इति चेत्) होता का भी वैसे ही है।

भावार्थ—होता के वरण के पहले भी कोई होतृकर्तृक क्रिया नहीं हो सकती।

न कर्मसंयोगात् ।४१।

पदार्थ—(न) नहीं (कर्मसंयोगात्) के साथ सम्बन्ध है।

भावर्थ—होता के वरण के पहले तो होतृ कर्तृक कर्म है। जसे कि 'प्रवृत्तसामिधेनीरन्वाह' होता स्वयं वृत्त (वरण) हुये पहले सामिधेनी मंत्र बोलता है। अतः होता का वरण तो कर्म का प्रारम्भ हुये पीछे बीच में होने से अदृष्टार्थक है। अतः ऐष्टिक दीक्षणीय आदि कर्म के होता का वरण होना चाहिये। ब्रह्मा का वरण तो दृष्टार्थक है और वह सोमयाग के प्रारम्भ में ही

हुआ होनें से, फिर से उसका वरण करने की आवश्यकता नहीं। आतिथ्य में बर्हिष का प्रतिकर्म प्रोक्षणादि के अभाव में है। इस अधिकरण के सूत्र—
पूर्वपक्ष—

यज्ञोत्पत्युपदेशे निष्ठितकर्मप्रयोगभेदात् प्रतितन्त्रं क्रियते ।४२।

पदार्थ—(यज्ञोत्पत्युपदेशे) आतिथ्यरूप यज्ञ के समीप देश में (निष्ठित कर्म) जो निष्ठित कर्म अर्थात् प्रोक्षणादि कर्म किये जाते हैं वे (प्रयोगभेदात्) भिन्न प्रयोग होने से (प्रतितन्त्रं क्रियते) प्रत्येक प्रयोग में किये जाते हैं।

भावार्थ—**'यदातिथ्यायां बर्हिः तदुपसदाम् तदग्नीषोमीयस्य'** इत्यादि श्रुत है। यह बर्हि आतिथ्या, उपसद तथा अग्नीषोमीय इन तीनों के लिये साधारण होती है, यह पीछे चतुर्थ अध्याय में उल्लिखित है। इस साधारण बर्हिष् में प्रोक्षण आदि संस्कार प्रत्येक कर्म में पृथक् २ करना चाहिये।
सिद्धान्त सूत्र—

न वा कृतत्वात्तदुपदेशोहि ।४३।

पदार्थ—**'बर्हिः प्रोक्षति'** इस स्थान पर बर्हिष का द्वितीया विभक्ति में प्रयोग है। वह बर्हिष् का संस्कार बताता है। यह बर्हिष् एक ही होने से प्रोक्षणादि संस्कार की आवृत्ति करने की आवश्यकता नहीं है।

आतिथ्या संस्तरण मंत्र की आवृत्ति है, इस अधिकरण के सूत्र—

देशपृथक्त्वान्मन्त्रोऽभ्यावर्तते ।४४।

पदार्थ – (देशपृथक्त्वात्) भिन्न भिन्न देश होने से (मंत्रः) मंत्र की (अभ्यावर्तते) आवृत्ति होती है।

भावार्थ—आतिथ्या का देश 'प्राग्वंश' है और अग्नीषोमीय का देश उत्तर वेदि है। इस प्रकार देश भेद के कारण **'ऊर्णाम्रदसं त्वा स्तृणामि'** इस मंत्र की आवृत्ति करनी चाहिये।

बर्हिष् के देशान्तर में ले जाने में संनहन और हरण मंत्रों का प्रयोग न करना, इस अधिकरण के सूत्र—
पूर्वपक्ष सूत्र—

संनहनहरणे तथेति चेत् ।४५।

पदार्थ—(संनहनहरणे) बर्हिष् को देशान्तर में ले जाने तथा संनहन में (तथा इति चेत्) मंत्रों की आवृत्ति होती है।

भावार्थ—'पूषा ते ग्रन्थिम्' इत्यादि मंत्र से संनहन किया जाता है और 'बहस्पतेर्मू र्ध्ना हरामि' इस मंत्र से हरण किया जाता है। इन दोनों मंत्रों की आवृत्ति करनी, ऐसा पूर्वपक्षवादी का मत है।

सिद्धान्त सूत्र—

नान्यार्थत्वात् ।४६।

पदार्थ—(न) नहीं (अन्यार्थत्वात्) भिन्न अथ होने से।

भावार्थ—वेदी में स्तरण के लिये जो दर्भ का संनहन और हरण किया जाता है, उसके लिये यह मंत्र नहीं। पर दर्भ देश में जब उसका छेदन किया जाता है उस समय के संनहन तथा हरण के लिये यह मंत्र है। वह एक ही होने से आवृत्ति की आवश्यकता नहीं। **'यथा तत्र वातिथ्यायां यदा गार्हपत्य-देशादाहवनीयदेशं प्रोक्षणाय बर्हिर्नीयते न तदाहरणमन्त्रः प्रयुज्यते एवमिहापि'** शाबरभाष्य। जैसे आतिथ्या में जब गार्हपत्य देश से आहवनीय देश में दर्भ को प्रोक्षण के लिये ले जाया जाता है, उस समय आहरण मंत्र का प्रयोग नहीं होता। वैसे ही यहां भी अर्थात् इन मंत्रों की आवृत्ति नहीं होती।

इति मीमांसादर्शनभाष्ये द्वादशाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥१२।१॥

मीमांसादर्शने द्वादशाध्ययस्य द्वितीयः पादः

विहार अग्नि वैदिक कर्म के लिये ही होती है, इस अधिकरण के सूत्र।
पूर्वपक्ष—

विहारो लौकिकानामर्थं साधयेत् प्रभुत्वात् ।१।

पदार्थ—(विहारः) गार्हपत्य आदि तीन अग्नियाँ (प्रभुत्वात्) शक्ति-युक्त होने से (लौकिकानाम् अर्थं साधयेत्) लौकिक कर्मों के अर्थ को भी सिद्ध करती हैं।

भावार्थ—गार्हपत्य अग्नि, दक्षिणाग्नि तथा आहवनीयाग्नि इन तीनों अग्नियों को विहार कहा जाता है। ये अग्नियाँ लौकिकर्म को भी सिद्ध करती हैं। पकाना, जलाना तथा प्रकाश देना आदि अग्नि के कर्म हैं। कोई लौकिक पदार्थ रांधना हो तो भी विहार अग्नि में रांधा जा सकता है। कारण कि इसमें अग्नि समर्थ है।

मांसपाकप्रतिषेधश्च तद्वत् ।२।

पदार्थ—(च) और (तद्वत्) इस प्रकार (मांसपाकप्रतिषेधः) मांस-पाक का तो प्रतिषेध है।

भावार्थ—विहार अग्नि में मांसपाक का प्रतिषेध है, अर्थात् विहार अग्नि में कोई भी लौकिक पाक नहीं बन सकता। मांसपाक का अर्थ यहाँ मांस वर्धक पुष्टिकारक पाक है।

सिद्धान्त सूत्र—

निर्देशाद्वा वैदिकानां स्यात् ।३।

पदार्थ—(वा) अथवा (निर्देशात्) निर्देश होने से (वैदिकानाम् स्यात्) वैदिक कर्म हो सकते हैं।

भावार्थ—विहार अग्नि से वैदिक कर्म हो सकते हैं, कारण कि उसके लिये निर्देश अर्थात् विधान है। जैसे **'गार्हपत्ये पत्नीः संयाजयन्ति, दक्षिणाग्नौ**

फलीकरणं होमे करोति। यदाहवनीये जुहोति' इन तीन वाक्यों में तीन अग्नियों में होम करने का विधान है। इससे सिद्ध होता है कि उपर्युक्त विहार अग्नि में वैदिक कर्म ही हो सकते हैं। लौकिक कर्म नहीं। अतः 'अग्निहोत्रादिर्वैदिकार्थो विहारः' इस प्रकार माधवाचार्य ने भी न्याय माला में उल्लेख किया है।

सति चौपासनस्य दर्शनात् ।४।

पदार्थ—(सति च) विहाराग्नि में (औपासनस्य दर्शनात्) कामना प्रयुक्त होम औपासन अग्नि में देखा जाता है।

भावार्थ—जो लौकिक कर्म भी विहाराग्नि में किये जायें तो कामना प्रयुक्त होम औपासनाग्नि में विहित हैं, वह किस लिये होना चाहिये? औपासनाग्नि में होम का विधान करना व्यर्थ है। लौकिक होम का विधान राजसूय यज्ञ में औपासन अग्नि में बताया है, इससे सिद्ध होता है कि विहाराग्नि तो वैदिक कर्म के लिये ही है।

अभावदर्शनाच्च ।५।

पदार्थ— (च) और (अभावदर्शनात्) मांस आदि अपवित्र वस्तुओं का यज्ञ में अभाव ही होने का दर्शन है।

भावार्थ—मांस आदि अपवित्र वस्तुओं का यज्ञ में अभाव ही है, तथा विहार अग्नियों में मांस वर्धक पुष्टिकारक पाक रांधने का भी निषेध है।

मांसपाको विहितप्रतिषेधः स्याद्वाऽऽहुतिसंयोगात् ।६।

पदार्थ—(मांसपाकः विहितप्रतिषेधः स्याद् वा) अथवा पुष्टिजनक पाक का विधि निषेध है (आहुतिसंयोगात्) आहुति का संयोग होने से।

भावार्थ—जो पुष्टिकारक पाक वदिक अग्नि में होमना हो उस पाक को वैदिक अग्नि में बनाने का विधान है और जिस पुष्टिकारक पाक का वैदिक अग्नि में होमने का विधान न हो, उनका पाक विहार अग्नि पर न करना। अमुक पुष्टिकारक पाक की आहुतियें वैदिक अग्नि में देने का विधान है।

वाक्यशेषो वा दक्षिणस्मिन्नारभ्यविधानस्य ।७।

पदार्थ—(वा) अथवा (वाक्यशेषः) वाक्यशेष है (दक्षिणस्मिन्) दक्षिणाग्नि में (अनारभ्यविधानस्य) अनारभ्य विधान का।

भावार्थ—दक्षिणाग्नि में **'पत्नीव्रतं श्रपयति'** यह अनारभ्य विधि का वाक्य शेष है। जिस किसी कारण से यजमान पत्नी ने पुष्टिकारक पाक का व्रत होम के लिये किया हो, तो उस पाक का श्रपण दक्षिणाग्नि में हो सकता है। **'दक्षिणाऽग्नौ पत्न्या व्रतस्य श्रपणमाम्नातम्'** शाबर भाष्य। पत्नीव्रत के लिये श्रपण का आम्नान है, इस प्रकार शाबर भाष्य में उल्लेख है।

सवनीयपशु में पुरोडाश की कर्त्तव्यता का अधिकरण—

पूर्वपक्ष सूत्र—

सवनीये छिद्रापिधानार्थत्वात् पशुपुरोडाशो न स्यादन्येषामेवमर्थत्वात् ।८।

पदार्थ—(सवनीये) जिस समय पशु विप्र आदि को दान में दिया जाता है उस समय (छिद्रापिधानार्थत्वात्) यज्ञ कर्म करने में कोई वैगुण्य अज्ञान से आया हो तो उसके लिये (पशुपुरोडाश) पशु दान से पीछे पुरोडाश (न स्यात्) नहीं होना चाहिये (अन्येषाम् एवमर्थत्वात्) अन्य कर्मों से वह कार्य हो जाने से।

भावार्थ—जिस समय पशु का दान किया जाता है, उस समय पशु निमित्त कोई पुरोडाश करने की आवश्यकता नहीं। यदि अज्ञान के कारण कर्म में कुछ न्यूनता या अधिकता हो गई हो तो उस दोष के निवारण के लिये अन्य कर्म करने चाहियें। उनसे वह दोष दूर हो सकता है।

सिद्धान्त सूत्र—

क्रिया वा देवतार्थत्वात् ।९।

पदार्थ—(वा) अथवा (क्रिया) पुरोडाश करना चाहिये (देवतार्थत्वात्) देवतार्थक होने से।

भावार्थ—देवता के संस्कार के लिये अर्थात् संस्कार जन्य देवता के स्मरण के लिये होने से पुरोडाश करना चाहिये।

लिंगदर्शनाच्च ।१०।

पदार्थ—(च) और (लिंगदर्शनात्) लिंगवाक्य होने से।

भावार्थ—**'पुराडाशेन माध्यन्दिने सवने चरन्ति'** यह पुरोडाश की कर्त्तव्यता बताने वाला वाक्य होने से पुरोडाश करना चाहिये। पुरोडाश जौ या गेंहू के आटे का बनाया जाता है।

सवनीय पुरोडाश में हविष्कृत् के आह्वान का अभाव है। इस अधि-करण के सूत्र—

हविष्कृत्सवनीयेषु न स्यात् प्रकृतौ यदि सर्वार्था पशु प्रत्याहूता सा कुर्याद् विद्यमानत्वात् ।११।

पदार्थ—(सवनीयेषु हविष्कृत् न स्यात्)सवनीय पुरोडाशों में हविष्कृत् का आह्वान नहीं होता। (प्रकृतौ यदि सर्वार्था) जो प्रकृति में आह्वान है यदि वह सर्व के लिये है तो (पशु प्रत्याहूता सा) वह हविष्कृत् पशु के दान के समय आहूत है (कुर्याद् विद्यमानत्वात्) वही आह्वान करेगा। पुनः आह्वान करने की जरूरत नहीं।

भावार्थ—सवनीय पुरोडाश में हविष्कृत् का आह्वान नहीं करना। वह तो पशु के लिये होता है। पशु के लिये आहूत वह हविष्कृत् सवनीय पुरोडाश में उपस्थित ही होता है। अतः वहाँ भी आह्वान करेगा। फिर से आह्वान करने की आवश्यकता नहीं रहती।

तृतीय सवन में हविष्कृत् के आह्वान की पुनरावृत्ति नहीं, इस अधि-करण के सूत्र—

पशौ तु संस्कृते विधानात् तार्तीयसवनकेषु स्यात् सौम्याश्विनयोश्चापवृत्तार्थत्वात् ।१२।

पदार्थ—(पशौ तु संस्कृते विधानात्) विप्रादि को दान देने के लिये तैयार किये पशु में हविष्कृत् का विधान होने से (तार्तीयसवनकेषु स्यात्) तीसरे सवन में पुरोडाश में (सौम्याश्विनयोः च) और सौम्य आश्विन चरु में आह्वान भेद से होता है (अपवृत्तार्थत्वात्) गतार्थक होने से।

भावार्थ—तृतीय सवन में पुरोडाश के समय और सौम्य आश्विन चरु के समय हविष्कृत् का आह्वान भेद से होता है। पशु का दान करते समय उस हविष्कृत् की आवश्यकता नहीं। हविष्कृत् हविष् बनाकर चलाया जा सकता है। हविष् बनाने वाली कोई स्त्री होती है ऐसा स्त्रीलिंग शब्द के रखने से समझा जाता है। हविष् बनाने के लिये उसके आने से फिर से उसे बुलाने की आवश्यकता नहीं रहती।

योगाद् वा यज्ञाय तद्विमोके विसर्गः स्यात् ।१३।

पदार्थ—(वा) अथवा (यज्ञाय योगात्) यज्ञ के लिये वह नियुक्त होने से (तद्विमोके विसर्गः स्यात्) व्रत की पूर्ति हुये पीछे उसका विसर्ग होता है, अर्थात् छूट मिलती है।

भावार्थ—हविष्कृत् की नियुक्ति यज्ञ सम्पादन के लिये होती है। अतः यज्ञ की समाप्ति होने पर हविष्कृत् तो मुक्त किया जाता है, इससे पूर्व नहीं।

निशियज्ञ में अमावस्या तंत्र प्रयोग का अधिकरण—

पूर्वपक्ष सूत्र—

निशियज्ञे प्राकृतस्याप्रवृत्तिः स्यात् प्रत्यक्ष-शिष्टत्वात् ।१४।

पदार्थ—(निशियज्ञे) निशियज्ञ में (प्राकृतस्य) अमावस्या तंत्र की (अप्रवृत्तिः स्यात्) प्रसक्ति नहीं (प्रत्यक्षशिष्टत्वात्) यह इष्टि प्रत्यक्ष शिष्ट होने से।

भावार्थ—निशियज्ञ में दर्शेष्टि तंत्र की प्रवृत्ति नहीं होती, कारण कि यह निशियज्ञ रूप इष्टि प्रत्यक्ष विहित है, यह इष्टि किसी का भी अंग नहीं, इसकी श्रुति स्वातन्त्र्य से ही है। **'अग्नये रक्षोघ्ने अष्टाकपालं निर्वपेत् यो रक्षोभ्यो बिभीयात्'** यह निशियज्ञ का विधान वाक्य है। अतः तंत्र भेद अर्थात् प्रयोगभेद है।

कालवाक्यभेदाच्च तन्त्रभेदः स्यात् ।१५।

पदार्थ—(च) और (कालवाक्यभेदात्) काल और वाक्य का भेद होने से (तंत्रभेदः स्यात्) तंत्र में भेद है।

भावार्थ—काम्येष्टि का अर्धरात्रि में करने का समय होता है। और दर्शेष्टि दूसरे दिन की जाती है। इस प्रकार काम्येष्टि और दर्शेष्टि के समय में भेद है। जहाँ दर्शयाग की उत्पत्ति है वहाँ इस इष्टि की उत्पत्ति भी नहीं। पर काम्येष्टि काण्ड में ही इसकी उत्पत्ति है। अतः तंत्र में भेद मानना चाहिये।

वेद्युद्धननव्रतं विप्रतिषेधात् तदेव स्यात् ।१६।

पदार्थ— (वेद्युद्धननव्रतम्) वेदिखनन और व्रत ग्रहण दर्शिक ही होता है। (विप्रतिषेधात्) विप्रतिषेध होने से (तदेव स्यात्) वही होता है।

भावार्थ—प्रयोग भेद होने पर भी सभी अंगों की आवृत्ति नहीं होतीं। कई अंग तो वही रहते हैं। दर्शेष्टि के लिये बनाई वेदी भी वही रहती है, उसे खोद डालने से दर्शेष्टि विगुण हो जाती है। व्रत ग्रहण भी वही रहता है।

सिद्धान्त सूत्र—

तन्त्रमध्ये विधानाद्वा तत्तन्त्रा सवनीयवत् ।१७।

पदार्थ—(वा) अथवा (सवनीयवत्) सवनीय पुरोडाश के तुल्य (तन्त्रमध्ये विधानात्) तंत्र के बीच विहित होने से (तत्तन्त्रा) काम्येष्टि दर्श तंत्र वाली होती है।

भावार्थ—निशियज्ञ अर्थात् काम्येष्टि स्वतंत्र नहीं, पर दर्शतंत्र के आधीन होती है। कारण कि अमावस्या के तंत्र में ही इसका विधान है। **'अमावस्यायां निशि निर्वपेत्'** इस प्रकार विधान है। सवनीय पुरोडाश जैसे पशु तंत्र में विहित होने से उन्हें पशु तंत्र वाले ही मानने पड़ते हैं, वैसे अमावस्या के तंत्र में विहित निशियज्ञ काम्येष्टि भी उसी तंत्र वाली है।

वैगुण्यादिध्माबर्हिर्न साधयेदग्न्यन्वाधानं च यदि देवतार्थम् ।१८।

पदार्थ—(वैगुण्यात्) विगुणता के कारण (इध्मावर्हिः न साधयेत्) इध्म और बर्हि निशियज्ञ को सिद्ध नहीं कर सकती (च) और (अग्न्यन्वाधानम्) अग्नि समिन्धन भी (यदि देवनार्थम्) यदि देवता के लिये हो तो।

भावार्थ—इध्मा बर्हि और अग्निसमिन्धन ये अंग निशियज्ञ को सिद्ध नहीं कर सकते, इनमें भेद मानना चाहिए। अर्थात् दर्शेष्टि के जो अंग निशियज्ञ को सिद्ध कर सकते हैं उन अंगों की आवृत्ति नहीं करनी। अन्य अंगों की आवृत्ति करनी, ऐसा इस अधिकरण का भाव है।

दर्श पूर्णमास की विकृतियाँ जो सौर्यादि हैं, उनमें आरम्भणीया इष्टि करनी, इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष सूत्र—

आरम्भणीयाविकृतौ न स्यात्प्रकृतिकालमध्यत्वात् कृतापुनस्तदर्थेन ।१९।

पदार्थ—(आरम्भणीया विकृतौ न स्यात्) आरम्भणीया इष्टि विकृति सौर्यादि में न करना (प्रकृतिकालमध्यत्वात्) प्रकृतिभूत दर्शपूर्णमास का जो काल है उसमें आ जाने से (कृता) की जाती है (तदर्थेन) उस प्रयोग के लिये (पुनः) फिर से करने की आवश्यकता नहीं।

भावार्थ—सौर्यादि विकृति याग में आरम्भणीया इष्टि नहीं करनी। कारण कि **यावज्जीवं दर्शपूर्णमासाभ्यां यजेत्**' इस वाक्य से जीवन परिमित काल अंगत्व विहित होता है। एक काल में अनुष्ठीयमान प्रयोग एक ही होता है और उसमें सौर्यादि का प्रयोग है। अतः प्रकृति काल के समयकी जाने वाली आरम्भणीया इष्टि का फिर से अनुष्ठान करना उचित नहीं। जो प्रकृति में किया जाता है, वही सौर्यादि याग के लिये है।

सिद्धान्त सूत्र—

स्याद्वा कालस्याशेषभूतत्वात् ।२०।

पदार्थ—(वा) अथवा (स्यात्) सौर्यादि विकृति याग में आरम्भणीया इष्टि करनी चाहिये (कालस्य अशेषभूतत्वात्) यावज्जीवन जो काल बताया है वह प्रकृति का शेष न होने से।

भावार्थ—जो यावज्जीवन विहित काल है, वह प्रकृति का अंग नहीं, यह तो निमित्त परक है। प्रतिपर्व भिन्न प्रयोग होने से और तंत्र मध्य उसके न आने से सौर्यादि विकृति याग में भी आरम्भणीया इष्टि करनी चाहिये।

आरम्भविभागाच्च ।२१।

पदार्थ—(च) और (आरम्भविभागात्) आरम्भ का विभाग होने से।

भावार्थ—दर्शपूर्णमासारम्भ की अपेक्षा सौर्य याग का आरम्भ पृथक् होने से प्रधान का भेद होता है और प्रतिप्रधान में अंगावृत्ति करनी होती है, अतः सौर्यादि यागों में आरम्भणीया इष्टि करनी चाहिये।

प्रधानों के धर्म के विरोध में बहु धर्मों का अनुष्ठान कर्त्तव्य है। इस अधिकरण के सूत्र—

विप्रतिषिद्धधर्माणां समवाये भूयसां स्यात्सधर्मत्वम् ।२२।

पदार्थ—(विप्रतिषिद्धधर्माणाम्) विरुद्ध धर्मों का (समवाये) समवाय में (भूयसां सधर्मत्वं स्यात्) अधिक अंगों में जो साधारण धर्म हो उनका अनुष्ठान करना।

भावार्थ—परस्पर विरोधी धर्मों का जहाँ सन्निपात होता हो तो अधिक अंगों में जो साधारण धर्म हो, वे कर्त्तव्यरूप में जाने जाते हैं। जैसे कि एक कमरे में ग्यारह दीपक रक्खे हों और दूसरे में एक ही दीपक रक्खा हो तो प्रकाश का जहाँ अधिक लाभ होता हो, वहाँ पुस्तक पढ़ने वाले को बैठना चाहिये। इस सम्बन्ध में विशेष जिज्ञासुओं को शाबरभाष्य पढ़ना चाहिये।

समान संख्या वाले प्रधान अंगों में जो धर्म विरोध प्रतीत हो तो प्रथम पठित के धर्म ही कर्तव्य होते हैं। इस अधिकरण के सूत्र—

मुख्यं वा पूर्वचोदनाल्लोकवत् ।२३।

पदार्थ—(वा) सिद्धान्त सूचक है (मुख्यम्) प्राथमिक तंत्र ही करना चाहिये (पूर्वचोदनात् लोकवत्) पूर्वपठित होने से लौकिक व्यवहार में जैसे बने वैसे।

भावार्थ—समान संख्या वाले प्रधान अंगों में जो विरोध ज्ञात हो तो प्रथम पठित जो प्रधान अंग हो उसके धर्म ही कर्त्तव्य हैं। जैसे कि **आग्नावैष्णवमेकादशकपालं निर्वपेदपराह्णे। सारस्वतीमथाज्यंस्त यजत इति।** इसमें प्रथम पठित आग्नावैष्णव एकादशकपाल के धर्म कर्त्तव्य हैं, कारण कि वे पाठ के क्रम में प्रथम पठित हैं।

तथा चान्यार्थदर्शनम् ।२४।

पदार्थ—(तथा च) और इस प्रकार (अन्यार्थदर्शनम्) अन्य अर्थ का भी दर्शन होता है।

भावार्थ—अन्य अर्थ का भी दर्शन यही बताता है—जैसे कि **अध्वरस्येध पूर्वमथाग्नेयीज्यते।** इत्यादि विशेष शावर भाष्य में देखो।

अंग प्रधान के धर्मों के विरोध में प्रधान के धर्मों का ही अनुष्ठान किया जाता है।

अंगगुणविरोधे च तादर्थ्यात् ।२५।

पदार्थ—(च) और (अंगगुणविरोधे) प्रधान के साथ अंग के गुणों का विरोध हो तो प्रधान के अंग कर्त्तव्य होते हैं (तादर्थ्यात्) अंग प्रधान के लिये होने से।

भावार्थ—दीक्षणीया रूप अंग का प्रधान सोमयाग के गुण के साथ विरोध होता है। यहाँ प्रधान के गुण का ही रक्षण करना होता है, कारण कि अंग के गुण, प्रधान के साद्गुण्य के लिये ही होते हैं। **'य इष्ट्या पशुना सोमेन वा यजेत सोऽमावास्यायां पौर्णमास्यां वा'** यहाँ दीक्षणीया इष्टि होने से उसका पर्व के साथ सम्बन्ध है, और सोमयाग का भी पर्व के साथ सम्बन्ध है। इस

स्थान पर सोमयाग प्रधान होने से पर्व के दिवस में इसका अनुष्ठान करना चाहिये। पौर्णमासी और अमावस्या, ये दोनों दिवस पर्वदिवस माने जाते हैं।

परिधि में परिधि और यूप दोनों के धर्मों का अनुष्ठान करना। इस अधिकरण के सूत्र—

परिधिर्द्व्यर्थत्वादुभयधर्मा स्यात् ।२६।

पदार्थ—(परिधिः) परिधि (द्व्यर्थत्वात्) दोनों अर्थ वाली होने से (उभयधर्मा स्यात्) उभय धर्मा होती है।

भावार्थ—जैसे मार्जनादि परिधि के धर्म हैं और वह अग्निपरिधार्यक होने से उसका अनुष्ठान होता है वैसे नियोजन यूप का कार्य है। अतः परिधि के विधान से यूप के धर्म, जो प्रोक्षणादि हैं, उनका भी अनुष्ठान करना चाहिये।

परिधि में अपने धर्म का विरोध आवे तो यूप के धर्मों का अनुष्ठान न करना।

पूर्वपक्ष सूत्र—

यौप्यस्तु विरोधे स्यान्मुख्यानन्तर्यात् ।२७।

पदार्थ—(विरोधे तु) जहाँ परिधि और यूप के धर्मों का विरोध ज्ञात हो वहाँ (यौप्यः) यूप के धर्म का अनुष्ठान करना (मुख्यानन्तर्यात्) मुख्य का ही सामीप्य होने से।

भावार्थ—जहाँ यूप के धर्म और परिधि के धर्मों में विरोध ज्ञात हो वहाँ यूप के धर्मों का अनुष्ठान करना चाहिते। कारण कि यूप मुख्य है।

सिद्धान्त सूत्र—

इतरो वा तस्य तत्र विधानात् ।२८।

पदार्थ—(वा) अथवा (इतरः) परिधि के धर्म कर्त्तव्य हैं (तत्र तस्य विधानात्) पशु नियोजन परिधि में विहित होने से।

भावार्थ—परिधि में परिधित्व का रक्षण कर उसमें पशु को बाँधना चाहिये। यज्ञ में दूध, दही आदि पदार्थों की आवश्यकता होने से गाय आदि पशुओं को लाकर बांधना पड़ता है और उन्हें दुहना पड़ता है। इसलिये तक्षणादि यूपधर्मों को कर परिधि को भंग नहीं करना चाहिये। परिधि सत्वक् होती है, उसे छीलने से सत्वक्त्व का भंग होता है। यूप की जो छाल होती है उसे त्वक् कहतेहैं। भावार्थ यह है कि परिधि के साथ यूप के धर्म का जो विरोध न हो तो उस धर्म का अनुष्ठान करना।

उभयोश्चांगसंयोग: ।२९।

पदार्थ—(च) और (उभयोः) दोनों पक्षों का (अंगसंयोगः) अंग के साथ सम्बन्ध है।

भावार्थ—दोनों पक्षों का अंग अर्थात् शेष के साथ सम्बन्ध है वहाँ किसी भी स्थान पर प्रधान की प्रत्यासत्ति नहीं, अतः परिधि के धर्म ही कर्त्तव्य हैं। यहाँ शाबर भाष्य में इस प्रकार उल्लेख है। **उभयोश्च पक्षयोरंगेनैव धर्मस्य संयोगः। न क्वचित्प्रधानस्य प्रत्यासत्तिः। नासत्योपकारकविशेषः अतः परिधिधर्मः कर्त्तव्यः।**

सवनीय और पुरोडाश में पशु का ही तंत्रित्व होने से पाशुक तंत्रा का ही आदान करना—

पूर्वपक्ष सूत्र—

पशुसवनीयेषु विकल्पः स्याद्वैकतश्चेदुभयोर-श्रुतिभूतत्वात् ।३०।

पदार्थ—(पशुसवनीयेषु) पशुदान का प्रयोग और पुरोडाश होमने के प्रयोग का (विकल्पः) विकल्प (स्यात्) है (वैकृतः चेत्) अतिदेशशास्त्र से इसके अंग गृहीत होते हैं। यहाँ चेत् शब्द संशय द्योतक नहीं, निश्चय होने से। (उभयोः) दोनों के अंगों का (अश्रुतिभूतत्वात्) श्रवण न होने से।

भावार्थ—**यदीयतन्त्रमध्येऽर्थान्तरं स तन्त्री। अर्थान्तरं प्रसंगि** जिसके तंत्र में अन्य अर्थ आ जाता है, वह तंत्री कहलाता है। आनेवाला अर्थ प्रसंगि कहलाता है। पशुदान का प्रयोग और पुरोडाश का प्रयोग इन दोनों में विकल्प है। कारण कि दोनों में से किसी के अंग प्रत्यक्ष विहित नहीं, पर अतिदेश शास्त्र से प्राप्त होते हैं। इस सूत्र में जो **चेत्** शब्द का प्रयोग हुआ है, वह संशय द्योतक नहीं कारण कि निश्चय ही है।

ईजाना बहुभिर्यज्ञैर्ब्राह्मणा वेदपारगाः।
शास्त्राणि चेत् प्रमाणं स्युर्यातास्ते परमां गतिम् ॥

इस श्लोक में 'चेत्' शब्द संशय सूचक नहीं, कारण कि यज्ञ करने वाले विद्वान् ब्राह्मण अवश्य परम गति प्राप्त करते हैं, ऐसा इसका अर्थ है। इससे स्पष्ट होता है कि किसी समय 'चेत्' शब्द निश्चय अर्थ भी बताता है।

सिद्धान्त सूत्र—

पाशुकं वा तस्य वैशेषिकाम्नानात्तदनर्थकं विकल्पे स्यात् ।३१।

पदार्थ—(वा) अथवा (पाशुकम्) पशु सम्बन्धी प्रयोग तंत्री है (तस्य) उसका (वैशेषिकाम्नानात्) विशेष आम्नान होने से (विकल्पे) जो विकल्प हो तो (स्यात्) उसका विशेष आम्नान निरर्थक हो जाय।

भावार्थ—उक्त दोनों प्रयोगों में पशु सम्बन्धी प्रयोग ही तंत्री अर्थात् मुख्य है और पुरोडाश प्रयोग उसके भीतर ही समा जाने से तंत्री नहीं। जो दोनों में से कोई भी तंत्री हो सकता होता तो पाशुक प्रयोग का विशेष आम्नान होना निरर्थक हो जाता।

पशोश्च विप्रकर्षस्तन्त्रमध्ये विधानात् ।३२।

पदार्थ—(च) और (पशोः विप्रकर्षः) पशु के दान देने का प्रयोग दीर्घकाल पर्यन्त होता है। (तन्त्रमध्ये विधानात्) पुरोडाश प्रयोग तो उसके बीच में आ जाता है।

भावार्थ—प्रातः सवन में पशुदान देने का प्रयोग है और सायंकाल के सवन में भी इसका ही प्रयोग होता है। केवल माध्यदिन सवन में पुरोडाश का प्रयोग होता है अतः पाशुक प्रयोग ही तंत्री अर्थात् मुख्य है। और पुरोडाश प्रयोग प्रसंगी है।

प्रकृति और विकृति का समान तंत्र हो, तब वैकृत अंगों में प्रकृति प्रसंगी होती है।

अपूर्वं च प्रकृतौ समानतन्त्रा चेदनित्य-त्वादनर्थकं हि स्यात् ।३३।

पदार्थ—(च) और (प्रकृतौ समानतन्त्रा) प्रकृति के साथ विकृति समान तंत्र हो तो (अपूर्वम्) प्रकृति तंत्र होती है (चेत्) यदि ऐसा कहा जाय तो (अनित्यत्वात्) विकृति अनित्य होने से (अनर्थकं हि स्यात्) वह अनर्थक हो जाय।

भावार्थ—विकृति और प्रकृति समान तंत्र हो तो प्रकृति तंत्र ही करना, कारण कि वह नित्य है। ऐसे पूर्वपक्षवादी का उत्तर यह है कि विकृति तंत्र ही करना चाहिये, कारण कि विकृति अनित्य होती है। जो विकृति को इस प्रसंग में स्थान न दिया जाय, तो निरर्थक हो जाता है। इस स्थान पर शाबर भाष्य में उल्लेख है—**नैमित्तिकी चिकीर्षा नित्यां चिकीर्षां बाधते**। नैमित्तिक चिकीर्षा नित्य चिकीर्षा का बाध करती है। विकृति नैमित्तिक होती है और प्रकृति नित्य होती है अतः दोनों समान तंत्र जहाँ हो वहाँ विकृति तंत्र ही करना, प्रकृति तंत्र में प्रसक्त होता है।

आग्रयण में प्रसून बर्हिषों का ही ग्रहण है। इस अधिकरण के सूत्र—

अधिकश्च गुणः साधारणेऽविरोधात्कांस्य-भोजिवदमुख्येऽपि ।३४।

पदार्थ—(च) और (साधारणे अविरोधात्) साधारण में विरोध न होने से (अधिकः गुणः) अधिक गुण करना चाहिये (कांस्यभोजिवत्) कांस्य पात्र में भोजन व्रत पालने वाले शिष्य के तुल्य। (अमुख्ये अपि) मुख्य न हो तो भी।

भावार्थ—आग्रयण में ऐन्द्राग्न वैश्वदेव तथा द्यावापृथिव्य इस क्रम से हविष् होता है उसमें पहले दो में पुष्पित अथवा अपुष्पित दर्भ लेने होते हैं और अन्तिम द्यावापृथिव्य हविष् में तो प्रसून बर्हि अर्थात् पुष्पित बर्हि ही अर्थात् दर्भ लेना होता है। अब आग्रयण में पुष्पित बर्हि लेना या अपुष्पित ? इसमें सिद्धान्त यह है कि अमुख्य अर्थात् चरम उपस्थिति वाले आग्रयण में अधिक गुण अर्थात् पुष्पित बर्हि का ही ग्रहण होता है। ऐन्द्राग्न में अंग लोप न होने से कुछ विशेष नहीं आता। जैसे गुरु मुख्य है और शिष्य अमुख्य है पर शिष्य को कांसे के पात्र में भोजन करने का नियम है। तो अब किसी स्थान में इन दोनों गुरु शिष्यों का एक साथ भोजन करने का समय आवे तो गुरु और शिष्य व्रतपालनार्थ कांसें के पात्र में भोजन करे तो बाधा नहीं आती। भावार्थ यह है कि मुख्य को बाधा न हो तो अमुख्य अधिक गुण का पात्र बनता है।

द्यावा पृथिव्यादि की तंत्रता है, इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष सूत्र—

तत्प्रवृत्या तु तन्त्रस्य नियमः स्याद्यथा पाशुकं सूक्तवाकेन ।३५।

पदार्थ—(तु) पूर्वपक्ष का सूचक है (तत्प्रवृत्या) प्रसून बर्हि के नियम की प्रवृत्ति होने से (तन्त्रस्य नियमः स्यात्) द्यावापृथिव्य नियम का तंत्र है (यथापाशुकं सूक्तवाकेन) जैसे पीछे सूत्र ३१ में सूक्तवाक मंत्र की प्रवृत्ति पाशुकतंत्र का नियम है, वैसे।

भावार्थ—प्रसून बर्हि के नियम की प्रवृत्ति होने से द्यावापृथिव्य तंत्र का ही अनुष्ठान होना चाहिये। इसलिये यही मुख्य है, ऐसा मानना चाहिये, ऐसा इसी पाद के ३१ वें सूत्र में पाशुक तंत्र का नियम बनाया है। वैसे ही यहां भी द्यावापृथिव्य का ही तंत्र होना चाहिये।

सिद्धान्त सूत्र—

न वाऽविरोधात् ।३६।

पदार्थ—(वा) अथवा (न) नहीं (अविरोधात्) विरोध न होने से।

भावार्थ—यहाँ किसी भी प्रकार का विरोध नहीं। जो ऐन्द्राग्न का प्रसून बर्हि अंग है, वैसे द्यावापृथिव्य का भी यह अंग है। अंग बाध की भीति न होने से दोनों में से किसी एक का नियम नहीं हो सकता, इसलिये दोनों में चाहे जिस तंत्र का अनुष्ठान हो सकता है। दोनों मंत्र अतिदेश से प्राप्त हैं।

अशास्त्रलक्षणत्वाच्च ।३७।

पदार्थ—(च) और (अशास्त्रलक्षणत्वात्) प्रसूनबर्हिष् के लिये कोई प्रत्यक्ष शास्त्र लक्षण नहीं हैं।

भावार्थ—प्रत्यक्ष शास्त्र अर्थात् श्रुतिवचन दोनों में से एक का न होने से इसलिये कि दोनों प्रकृति में से अतिशास्त्र से प्राप्त होने से दोनों में से अमुक का तंत्र न होना चाहिये, ऐसा नियम नहीं बनाया जा सकता, अतः दोनों की तंत्रता है।

इति मीमांसादर्शनभाष्ये द्वादशाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥१२।२॥

मीमांसादर्शने द्वादशाध्यायस्य
तृतीयः पादः

अष्टरात्र नामक याग में वत्सत्वक् और अहतवास का समुच्चय है। इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष—

विश्वजिति वत्सवङ् नामधेयादितरथा तन्त्रभूयस्त्वादहतं स्यात् ।१।

पदार्थ—(विश्वजिति) विश्वजित् नामक याग में (वत्सवङ् नामेधेयात्) वत्सत्वक् नामधेय अर्थात् नामरूप अतिदेश से प्राप्त होता है(इतरथा) अन्यथा (तन्त्रभूयस्त्वात्) अहनों का भूयस्त्व होने से (अहतं स्यात्) अहत वस्त्र की प्राप्ति होती।

भावार्थ—अष्टरात्र नामक एक अहीन क्रतु है। इसमें पहले दिवस के याग का नाम विश्वजित् है और आठवें दिवस के याग का नाम अभिजित् हैं। बीच के ६ दिनों के याग का नाम ज्योति है। विश्वजित् एकाह में वत्सत्वक् परिधानार्थ आम्नात है। वत्सत्वक् अर्थात् प्रावरणवस्त्र **'अवभृथादुदेत्य वत्सत्वचं परिधत्ते'** ज्योतिष्टोम में अहतवास विहित है। अष्टरात्र नामक याग में इन दोनों की प्राप्ति होती है, इसके समाधान में यह सूत्र है कि वत्सत्वक् अर्थात् प्रावरण वस्त्र ही अष्टरात्र के उपयोग में लेना चाहिये। कारण कि नामधेय से इसी की प्राप्ति होती है। चोदक की अपेक्षा नामधेय बलवत्तर होता है। जो नाम का अतिदेश न होता तो अहत वस्त्र की प्राप्ति होती।

सिद्धान्त सूत्र—

अविरोधो वा उपरिवासो वत्सत्वक् ।२।

पदार्थ—(वा) अथवा (अविरोधः) दोनों में विरोध नहीं (उपरिवासोः वत्सत्वक्) उप का जो आच्छादन है वही वत्सत्वक् है।

भावार्थ—अहतवस्त्र और प्रावरण वस्त्र इन दोनों में विरोध नहीं। यदि एक से दूसरे का काम होता हो तो विरोध आता और विकल्प होता,

पर ऐसा नहीं। अहतवास कौपीन के लिये होता है और वत्सत्वक् अर्थात् प्रावरणवस्त्र शरीर के ऊपर ओढ़ने का वस्त्र है। दोनों की आवश्यकता होती है अतः अहत और प्रावरण वस्त्रों का समुच्चय है।

अनिर्वाप्य पशु पुरोडाशों में पशु पुरोडाश का ही तंत्रित्व है। इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष सूत्र—

अनुनिर्वाप्येषु भूयस्त्वेन तन्त्रनियमः स्यात् ।३।

पदार्थ—(अनुनिर्वाप्येषु) अनु निर्वाप्य हविषों में (भूयस्त्वेन) बहुत्व होने से (तन्त्रनियमः स्यात्) पशु पुरोडाश में तंत्र की प्रसक्ति है।

भावार्थ—अग्निप्रकरण में इस प्रकार श्रवण है—**आनीषोमीयपशुपुरोडाशमनु अष्टौ देवसुवाँ हवींषि निर्वपति।** इन आठ हविषों का निर्वाप होने से बहुत्व के अनुग्रह के कारण हविषों के तंत्र का ही अनुष्ठान होना चाहिये।

सिद्धान्त सूत्र—

आगन्तुकत्वाद्वा स्वधर्मा स्याच्छ्रुतिविशेषादितरस्य च मुख्यत्वात् ।४।

पदार्थ—(वा) अथवा (आगन्तुकत्वात्) अमुख्य होने से (स्वधर्मा-स्यात्) पुरोडाश का तंत्र होना चाहिये। (श्रुतिविशेषात्) अनुशब्द के स्वारस्य से (इतरस्य च मुख्यत्वात्) पुरोडाश मुख्य होने से।

भावार्थ—जो आठ अनुनिर्वाप्य हविष हैं वे आगन्तुक अर्थात् अमुख्य होने से और पुरोडाश के पीछे निर्वाप्य होने से पुरोडाश का ही तंत्रित्व होना चाहिये। अर्थात् पुरोडाश के तंत्र का ही अनुष्ठान होना चाहिये।

स्वस्थानत्वात् ।५।

पदार्थ—(च) और (स्वस्थानत्वात्) अपने स्थान में होने से।

भावार्थ—पुरोडाश स्वस्थान में होने से पुरोडाश तंत्र ही होना चाहिये। अनुनिर्वाप्यों का नहीं।

स्विष्टकृच्छ्रवणान्नेति चेत् ।६।

पदार्थ—(स्विष्टकृच्छ्रवणात्) स्विष्टकृत् का श्रवण होने से (न इति

चेत्) पुरोडाश का तंत्र नहीं हो सकता, इस शंका का समाधान अगले सूत्र में है।

विकारः पवमानवत् ।७।

पदार्थ—(विकारः) 'अग्नये पवमानाय' यहाँ जैसे गुण का विधान है, (पवमानवत्) वैसे पवमान रूपगुण विधान के तुल्य प्रकृत में भी गुण विधान है।

भावार्थ—जैसे अग्नि के तुल्य पवमान गुण विधि है वैसे आठ देवस हविषों के लिये स्विष्टकृत् भी गुण विधि है।

अविकारो वा प्रकृतिवच्चोदनां प्रति भावाच्च ।८।

पदार्थ—(वा) अथवा (अविकारः) अस्विष्टकृत् शब्द वाला वचन करना चाहिये। (प्रकृतिवत्) प्रकृति के तुल्य (चोदनां प्रति भावात् च) विधि के लिये अनुवाद होने से।

भावार्थ—अस्विष्टकृद् वचन करना चाहिये प्रकृति के तुल्य अतिदेश होने से। दर्शपूर्णमास में जो स्विष्टकृत् विधान है उसके लिये यह विधान है। इसलिये कि स्विष्टकृत् शब्द से प्राकृती देवता लक्षणा से अनुवादित होती है। पुरोडाश तंत्र का ही अनुष्ठान होना चाहिये, यह समग्र अधिकरण का भाव है।

एक कर्म में भिन्न भिन्न कार्य वाले गुणों का समुच्चय होता है, इस अधिकरण के सूत्र।

एककर्मणि शिष्टत्वाद् गुणानां सर्वकर्म स्यात् ।९।

पदार्थ—(एक कर्मणि) एक कर्म में (गुणानां शिष्टत्वात्) अनेक गुणों का विधान हो तो (सर्वकर्म स्यात्) सर्व गुणों का उपयोग करना, अर्थात् गुणों का समुच्चय करना।

भावार्थ—एक कर्म को उद्दिष्ट कर जो अधिक गुण विहित हों तो वे सबका समुच्चय हैं, ऐसा समझना जैसे कि—**ऋजुमाघार यति। सततमाघार-यति।** यहाँ आधाररूप एक कर्म में ऋजुत्व और संतत्व गुण का समुच्चय है, ऐसा समझना चाहिये।

जो सभी गुणों का एक ही प्रयोजन हो तो गुणों का विकल्प समझना, इस अधिकरण के सूत्र—

एकार्थास्तु विकल्पेरन् समुच्चये ह्यावृत्तिः स्यात् ।१०।

पदार्थ—(तु) पर (एकार्थाः) जो सभी गुणों का एक प्रयोजन हो तो गुणों का विकल्प मानना (हि) कारण कि (समुच्चये) समुच्चय माना जावे तो (आवृत्तिः स्यात्) प्रधान की आवृत्ति माननी पड़ेगी।

भावार्थ—जो एक ही प्रयोजन को उद्दिष्ट कर अनेक गुणों का विधान हो तो गुणों का विकल्प मानना, कारण कि, एक ही गुण से प्रयोजन निष्पन्न हो जाने से अन्य गुणों के अनुष्ठान की आवश्यकता नहीं रहती। जो अन्य गुणों का भी अनुष्ठान किया जावे तो प्रधान की आवृत्ति माननी पड़ेगी और ऐसी आवृत्ति में कोई भी प्रमाण नहीं। प्रधान के लिये गुण होता है, परन्तु गुण के लिये प्रधान कर्म नहीं होता।

अभ्यस्येतार्थवत्वादिति चेत् ।११।

पदार्थ—(अर्थवत्वात्) अपूर्व के लिये (अभ्यस्येत्) प्रधान की भी आवृत्ति करनी (इति चेत्) यदि ऐसी शंका हो तो, इसका उत्तर अगले सूत्र में दिया है।

भावार्थ—अनेक गुण होने से प्रधान की भी आवृत्ति की जाती है और इससे अपूर्व की उत्पत्ति की जावे तो क्या दोष है? इस शंका का समाधान अगले सूत्र में है।

नाश्रुतित्वात् ।१२।

पदार्थ—(न) नहीं (अश्रुतित्वात्) ऐसी आवृत्ति करने के लिये कोई श्रुति वचन नहीं।

भावार्थ—सभी अंगों के उपयोग के लिये प्रधान की भी आवृत्ति करनी, ऐसा कोई श्रुति वचन नहीं। जब तक अपूर्वत्व की सिद्धि न हो तब तक वह वचन शास्त्र भी नहीं कहलाता। निष्फल वचन कभी भी शास्त्र का वचन धारण नहीं कर सकता। यदि ऐसा कहा जावे कि तब अन्य गुणों का विधान किस लिये किया गया तो इसका समाधान यह है कि एक गुण का उपयोग इस काल में किया तो अन्य गुण का उपयोग अन्यकाल में होगा। इस प्रकार अन्य गुणों की भी अर्थवत्ता सिद्ध होगी। शाबर भाष्य में भी लिखा है कि **'गुणान्तरशासनस्यार्तत्वं वक्ष्यति, कालान्तरे अर्थवत्यं स्यादिति।'** इस पंक्ति का भाव उपर्युक्त लेखन में आ जाता है। इससे समझ लेना चाहिये कि गणान्तर का आनर्थक्य नहीं।

सति चाभ्यासशास्त्रत्वात् ।१३।

पदार्थ—(सति च) और जो अभ्यास शास्त्र विहित हो तो (अभ्यासशास्त्रत्वात्) अभ्यास करना योग्य है।

भावार्थ—यदि अभ्यास शास्त्र में विहित हो तो करना—जैसे कि 'उभे बृहद्रथन्तरे भवतः' इस स्थान में दो बृहद्रथन्तर बताये हैं, तो दोनों को गाना चाहिये।

विकल्पवच्च दर्शयति ।१४।

पदार्थ—(च) और (विकल्पवत्) विकल्प विधान भी (दर्शयति) बताता है।

भावार्थ—किसी ऋतु में गुणों के विधान का विकल्प भी बताते हैं जैसे कि—बैल्वो वा खादिरो वा पालाशो वा। बिल्व,खदिर या पलाश का यूप ऋतु में करना। इस स्थान पर विकल्प बताया है।

कालान्तरेऽर्थवत्वं स्यात् ।१५।

पदार्थ—(कालान्तरे) विकल्प कालान्तर में (अर्थवत्वं स्यात्) सफल प्रयोजन वाला होगा।

भावार्थ—विकल्प में एक सी कार्य सिद्धि होने से, अन्य गुण जो विहित है, वह निरर्थक हो जायगा। इस शंका का समाधान यह है कि अन्य समय इसका उपयोग होगा और विधान सफल होगा। कोई बिल्व का उपयोग करेगा तो कोई पलाश का भी उपयोग करेगा। ऐसा होने से विधान का साफल्य होगा और विकल्प भी प्रामाणिक माना जायगा।

वैगुण्य दूर करने के लिये जो जो प्रायश्चित विहित हों, उनका भी विकल्प है।

प्रायश्चित्तेषु चैकार्थ्यान्निष्पन्नेनाभिसंयोगस्तस्मात् सर्वस्य निर्घातः ।१६।

पदार्थ—(च) और (प्रायश्चित्तेषु) अनेक प्रायश्चितों में (एकार्थ्यात्) एक ही प्रयोजन होने से (निष्पन्नेन) उत्पन्न हुये निमित्त के साथ (अभिसंयोगः) प्रायश्चित का सम्बन्ध होता है (तस्मात्) अतः एक ही प्रायश्चित के अनुष्ठान से (सर्वस्य निर्घातः) सब दोषों का नाश होता है।

भावार्थ—अनेक प्रायश्चित होते हैं। ऋतु करने में कहीं भी वैगुण्य हुआ हो तो प्रायश्चित किया जाता है। एक ही प्रायश्चित के अनुष्ठान से उत्पन्न

हुये वैगुण्य का नाश होता है। वैगुण्य हुआ, यह शास्त्र से ही जाना जाता है और प्रायश्चित करने से इसका नाश होता है यह भी शास्त्र से ही समझा जाता है। इससे प्रायश्चितों का समुच्चय है, ऐसा नहीं समझना चाहिये। शास्त्र में बताये प्रकार कोई भी एक प्रायश्चित करने से ऋतु में उत्पन्न हुये दोष का नाश होता है। अतः उसी दोष का नाश करने के लिये अन्य प्रायश्चित्त का अनुष्ठान नहीं करना चाहिये। अर्थात् जहाँ अनेक प्रायश्चित्त बतायें हों, वहां विकल्प है, ऐसा समझना चाहिये।

नैमित्तिक प्रायश्चित्तों का समुच्चय है। इस अधिकरण के सूत्र—

समुच्चयस्त्वदोषोऽर्थेषु ।१७।

पदार्थ—(अर्थेषु अदोषः) जहाँ अर्थ में वैगुण्य अथवा प्रत्यवाय का श्रवण न हो, और केवल कर्म कर्त्तव्यता मात्र का श्रवण होता हो वहाँ (समुच्चयः) प्रायश्चित्त का समन्वय मानना चाहिये।

भावार्थ—जहाँ कर्म में वैगुण्य के दोष का श्रवण न होता हो और प्रायश्चित्त निमित्त के कारण बताया गया हो वहाँ प्रायश्चित्त का समुच्चय है, ऐसा समझना चाहिये। जैसे कि 'भिन्नेषु जुहोति स्कन्ने जुहाति'। यज्ञ का पात्र टूट गया हो अथवा छिद्र हो जाने से उसमें रक्खे बहने वाले पदार्थ बह गये हों तो होम करना। इस स्थान पर दोनों होमों का समुच्चय समझना चाहिये। भिन्नता और स्कन्नता निमित्तमात्र हैं और उसके लिये किया गया होम कर्म का अंग बनता है।

कर्मकाल में अनध्याय आवे तो भी मन्त्रों का प्रयोग करना चाहिये।

पूर्वपक्ष सूत्र—

मंत्राणां कर्मसंयोगात् स्वधर्मेण प्रयोगः स्याद् धर्मस्य तन्निमित्तत्वात् ।१८।

पदार्थ – (मन्त्राणां कर्मसंयोगात्) मंत्रों के सम्बन्ध कर्म के साथ होने से (स्वधर्मेण प्रयोगः स्यात्) मंत्र का धर्म के साथ ही प्रयोग होना चाहिये। धर्मस्य तन्निमित्तत्वात्) पठितत्व रूप धर्म पठन के लिये ही होने से।

भावार्थ—कर्म के अंग रूप में जिन मंत्रों का विधान हुआ हो व उन मंत्रों से कर्म करते समय यदि अमावस्या आदि पर्व आवें तो उस दिन मंत्र का पाठन करना चाहिये कारण कि पर्व में अध्ययन का निषेध है। जब जब मंत्र का पठन हो तब तब स्वाध्याय ही है। और अनध्याय के दिनों में स्वाध्याय नहीं करना चाहिये। अतः जो कर्म करते समय अनध्याय के दिन आयें तो कर्म के अंगभूत मंत्र उस दिन नहीं बोलने चाहियें।

सिद्धान्त सूत्र—

विद्यां प्रति विधानाद्वा सर्वकालं प्रयोगः स्यात् कर्मार्थत्वात् प्रयोगस्य ।१९।

पदार्थ—(वा) अथवा (विद्यां प्रति विधानात्) अध्ययन के प्रति अनध्याय का विधान होने से (सर्वकालं प्रयोगः स्यात्) प्रत्येक दिन कर्म हो सकता है (कर्मार्थत्वात् प्रयोगस्य) कर्म का प्रयोग कर्म के लिये होने से।

भावार्थ—अध्ययन में अनध्याय के दिनों का सम्बन्ध है। यज्ञादि कर्म के प्रयोग में इसका सम्बन्ध नहीं। यज्ञ में जो मंत्र बोले जाते हैं वे अध्ययन के लिये नहीं होते। ये तो कर्म सिद्धि के लिये होते हैं। इससे यज्ञादि कर्म तो अनध्याय के दिन भी हो सकते हैं और मंत्र भी बोले जा सकते हैं, उसमें किसी प्रकार का प्रत्यवाय नहीं है।

जपादि मंत्रों में मंत्र समाम्नाय सिद्ध स्वर नियम का अधिकरण।

पूर्वपक्ष सूत्र—

भाषास्वरोपदेशादैरवत् प्रावचनप्रतिषेधः स्यात् ।२०।

पदार्थ—(भाषास्वरोपदेशात्) भाषिक स्वर के उपदेश से (प्रावचन-प्रतिषेधः स्यात्) प्रावचन स्वरों का प्रतिषेध होता है (ऐरवत्) जैसे 'इरा पद' के उपदेश से 'गिरु' पद का निषेध होता है, उस प्रकार।

भावार्थ—ब्राह्मण ग्रन्थों में कितने ही मंत्रों में भाविक स्वर होते हैं, और मंत्र समाम्नाय में त्रैस्वर्य से मंत्र पठित होते हैं। भाषिक स्वर अर्थात्—

छन्दोगा बह्वृचाश्चैव तथा वाजसनेयिनः।
उच्चनीचस्वरं प्राहुः स वै भाषिक उच्यते ॥

सामवेदीय, ऋग्वेदीय तथा यजुर्वेदीय ब्राह्मण उदात्त, अनुदात्त और स्वरित स्वरों का ही उच्चारण करते हैं। वह भाषिक स्वर कहलाता है। उन मंत्रों में जो प्रवचन का स्वर होता है उसका प्रतिषेध होता है, जैसे 'इरा' पद के उच्चारण करने से 'गिरा' पद का निषेध होता है, उसी प्रकार। भाषिक स्वर पृथक् होता है और प्रावचन स्वर भी पृथक् होता है। प्रावचन के स्थान में स्वर का उच्चारण करने से प्रावचन का निषेध होता है।

सिद्धान्त सूत्र—

मन्त्रोपदेशो वा न भाषिकस्य प्रायापत्ते-र्भाषिकश्रुतिः ।२१।

पदार्थ—(वा) अथवा (मन्त्रोपदेशः) मंत्रों का ही उपदेश होता है (न भाषिकस्य) भाषिक स्वर का उपदेश नहीं (प्रायापत्तेः) उत्पत्तिकालिक स्वर का बाध होने से (भाषिकश्रुतिः) भाषिकश्रुति है ;

भावार्थ—केवल भाषिक स्वरों का उपदेश नहीं, पर स्वर विशिष्ट मंत्र का उपदेश होता है। मन्त्रोत्पत्ति के समय का जो स्वर होता है वही कर्म करते समय ब्राह्मण स्वर होता है। इसलिये प्रावचन स्वर विशिष्ट मंत्र का ही उच्चारण करना चाहिये। एक स्वर के स्थान में अन्य स्वर बोलना ठीक नहीं।

विकारः कारणाग्रहणे ।२२।

पदार्थ—(कारणाग्रहणे) कारण का ग्रहण न होने के कारण (विकारः) 'इरा' पद से 'गिरा' पद का बाध होता है।

भावार्थ—इरा पद से गिरा पद का विकार हो जाता है। जैसे स्वर में तो भाषिक स्वर के अनुपदेश में मंत्र का उपदेश कारण रूप में है, वैसे 'इरा' पद रूप विकार 'गिरा' का बाध न करे, इसमें कोई कारण नहीं।

ब्राह्मणोत्पन्न मंत्रों का भाषिक स्वर नियम है। इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष सूत्र—

तन्न्यायत्वाददृष्टोऽप्येवम् ।२३।

पदार्थ—(तन्न्यायत्वात्) इसी न्याय से (अदृष्टः अपि एवम्) मन्त्रकाण्ड में अदृष्टमंत्र भी प्रावचन स्वर होता है।

भावार्थ—**यज्ञकर्मण्यजपन्यूंखसामसु** (पाणिनीय व्याकरण—१-२-३४) वेद में त्रैस्वर्य से मंत्र पठित हैं। पर यज्ञ कर्म करते समय उसमें एक श्रुति स्वर है। ब्राह्मण में बताये स्वर से पाठ करने की आवश्यकता नहीं अर्थात् भाषिक स्वर से ये मंत्र नहीं बोलने। कारण कि पूर्व सूत्र में मंत्र मात्र का विधान होने से स्वर विधान नहीं।

सिद्धान्त सूत्र—

तदुत्पत्तेर्वा प्रवचनलक्षणत्वात् ।२४।

पदार्थ—(वा) अथवा (तदुत्पत्तेः) ब्राह्मण में उत्पत्ति होने से (प्रवचन-लक्षणत्वात्) प्रवचन का लक्षण उसमें होने से ब्राह्मण वाक्य में मंत्रत्व भी है ही।

भावार्थ—ब्राह्मण ग्रन्थ में जिस मंत्र की उत्पत्ति है, उनमें तो भाषिक स्वर ही है। स्वर विशिष्ट ही ब्राह्मण मंत्र की उत्पत्ति है। प्रवचन मंत्र का जो लक्षण अन्य अध्याय में कहा है, वह लक्षण ब्राह्मण वाक्य में भी होने से ब्राह्मण वाक्य को भी मन्त्ररूप में कहना उचित है। यहाँ शाबर भाष्य में इस प्रकार उल्लेख है—**ब्राह्मणोत्पत्तेर्मन्त्रस्य। भाषिकेण प्रयोगः स्यात्। प्रवचन-लक्षणत्वात्। प्रवचनं मन्त्राणां लक्षणं यथा मंत्रा प्रोच्यन्ते तथाविधा विज्ञा-यन्ते। ते च भाषिक एव उत्पन्नाः। तोषातन्यथा विधत्वे प्रमाणं नास्ति तस्माद्यथोत्पन्नास्तथाविधा एव प्रयोक्तव्याः।** ब्राह्मण ग्रन्थों में जिस स्वर से मंत्र उत्पन्न हुये हैं उस स्वर से ही प्रयोक्तव्य होने चाहियें। भाषिक स्वर में उत्पन्न हुये हैं, अतः भाषिक स्वर से ही प्रयाग करना चाहिये।

करण मंत्रों में मन्त्रान्त में कर्म का प्रारम्भ करना चाहिये। इस अधि-करण के सूत्र—

मन्त्राणां करणार्थत्वान्मन्त्रान्तेन कर्मादि-सन्निपातः स्यात् सर्वस्य वचनार्थत्वात्।२५।

पदार्थ—(मन्त्राणां करणार्थत्वात्) मंत्र क्रिया करने के लिये होने से (मन्त्रान्तेन) मंत्र बोले पीछे (कर्मादिसन्निपातः स्यात्) कर्म प्रारम्भ करना (सर्वस्य वचनार्थत्वात्) सर्व मंत्र समस्त अर्थ बताने वाले होने से।

भावार्थ—कर्मकाण्ड में अमुक मंत्र से अमुक कर्म करना। ऐसा जहाँ बताया गया है वहाँ सम्पूर्ण मंत्र बोलकर पीछे कर्म करना चाहिये। कारण कि मंत्र तो अर्थ के स्मारक होते हैं। सम्पूर्ण मंत्र बोले बिना अर्थ का स्मरण नहीं हो सकता और जो मंत्र के प्रारम्भ में एकाध पद बोल कर ही कर्म कर लिया जावे तो पीछे का मंत्र भाग बोलना व्यर्थ है। कारण कि अर्थ का प्रथम से ही स्मरण हो गया हो तो अवशिष्ट मंत्र किसलिये बोलना? इसलिये यह नियम बनाया गया है कि सम्पूर्ण मंत्र बोलने के पश्चात् ही क्रिया करनी।

'वसोर्धारा' में पूर्व के तुल्य मंत्र का सन्निपात होता है। इस अधि-करण के सूत्र—

पूर्वपक्ष सूत्र—

सन्ततवचनाद् धारायामादिसंयोगः।२६।

पदार्थ—(सन्ततवचनात्) 'सन्तत' वचन होने से (धारायाम्) धारा में (आदिसंयोगः) आदि संयोग है।

भावार्थ—मंत्र और धारा का अत्यन्त संयोग होने से मंत्र के प्रारम्भ में ही धारा का संयोग होना चाहिये। 'संततां बसोर्धारां जुहोतीति' इस वाक्य में कर्म का मंत्र के साथ आदि संयोग इष्ट है या अन्त्य संयोग? अर्थात् मंत्र बोलने के बाद धारा करनी? इस शंका का समाधान पूर्वपक्ष की ओर से उपर्युक्त प्रकार से किया गया है।

सिद्धान्त सूत्र—

कर्मसन्तानो वा नानाकर्मत्वादितरस्या-शक्यत्वात् ।२७।

पदार्थ—(वा) अथवा (कर्मसन्तानः) कर्म का अत्यन्त संयोग क्रिया और मंत्र का नहीं, पर क्रियाओं का ही अत्यन्त संयोग होता है। (नानाकर्म-त्वात्) कर्म अनेक होने से (इतरस्य अशक्यत्वात्) क्रिया और मंत्र का संतत संयोग होने से।

भावार्थ—क्रिया आशुतर विनाशिनी होती है और मंत्र चिरस्थायी होता है। इसलिये इन दोनों का संयोग नहीं हो सकता। संयोग तो समकाल में स्थिर पदार्थों का ही हो सकता है। अतः मंत्र के अन्त में अर्थात् मंत्र बोलने के पीछे क्रिया होनी चाहिये। 'द्वादश द्वादश जुहोति' इस संख्या से अनेक कर्म होना समझा जाता है।

आघार में भी मन्त्रान्त में ही कर्म सन्निपात होता है, इस अधिकरण के सूत्र—

आघारे चेद् दीर्घधारत्वात् ।२८।

पदार्थ—(आघारे चेत्) आघार में जो मंत्र के प्रारम्भ में संयोग इष्ट है, इस शंका का समाधान करते हैं कि (दीर्घधारत्वात्) दीर्घ धारा होने से।

भावार्थ—'संततमाघारयति' इस स्थान पर भी संतत वचन दीर्घ धारा परक होने से मंत्रान्त में ही आघार करना इष्ट है।

एक कार्य मंत्रों का विकल्पाधिकरण—

मन्त्राणां सन्निपातित्वादेकार्थानां विकल्पः स्यात् ।२९।

पदार्थ—(मन्त्राणां सन्निपातित्वात्) मंत्रों के स्मरण द्वारा कर्म में प्राप्त होकर उपकारक होने से (एकार्थानां विकल्पः स्यात्) एक अर्थ वालों का विकल्प होता है।

भावार्थ—**पूषा वां विभजतु, भगो वां विभजतु, अर्यमा वां विभजतु।** ये तीन मंत्र पुरोडाश विभाग के लिये हैं। यह विभाग एक मंत्र से भी शक्य है, कारण कि एक मंत्र से पुरोडाश विभाग का स्मरण हो सकता है। अतः इन मंत्रों में से किसी भी एक मंत्र से कार्य होता है। इससे यह सिद्धान्त निकलता है कि एक ही अर्थ वाले अथवा एक प्रयोजन वाले मंत्र एक से अधिक हों तो उनका विकल्प मानना चाहिये।

संख्या युक्त वचन विहित मंत्रों का समुच्चय है। इस अधिकरण के सूत्र—

संख्याविहितेषु समुच्चयोऽसंनिपातित्वात् ।३०।

पदार्थ—(संख्याविहितेषु) संख्या के साथ जहाँ मंत्रों का विधान हो वहाँ (समुच्चयः) मंत्रों का समुच्चय समझना (असंनिपातित्वात्) कर्म में स्मरण द्वारा सर्व मंत्र हेतु रूप होने से।

भावार्थ—**'चतुर्भिरभ्रिमादत्ते'** इस स्थान पर चारों ही मंत्रों से अभ्रि का आदान होता है। चारों ही मंत्र बोलने के बाद अभ्रि को हाथ से पकड़ना। यद्यपि अन्तिम मंत्र से ही अर्थ स्मरण होने से पूर्वोक्त तीन मंत्र बोलने की आवश्यकता नहीं होती, फिर भी इनका उच्चारण अवश्य करना होता है, कारण कि वह विहित होने से अदृष्ट जनक होता है।

ब्राह्मण विहित **'उरु प्रथस्व'** इत्यादि मंत्रों का विकल्प है, इस अधिकरण के सूत्र।

पूर्वपक्ष सूत्र—

ब्राह्मणविहितेषु च संख्यावत्सर्वेषामुपदिष्टत्वात् ।३१।

पदार्थ—(च) और (ब्राह्मणविहितेषु) ब्राह्मण ग्रन्थों में विहित (संख्यावत्) संख्या के तुल्य (सर्वेषाम्) सर्व मंत्रों का समुच्चय होता है (उपदिष्टत्वात्) उपदिष्ट होने से।

भावार्थ—**'उरु प्रथस्व' 'उरु प्रथोरु ते यज्ञपतिः प्रथताम्'** ये दोनों ब्राह्मण ग्रन्थोक्त मंत्र हैं। और इनका विनियोग लिंग रूप प्रमाण से पुरोडाश प्रथन

में है। दोनों मंत्र उपदेश द्वारा विहित है, इससे प्रथन रूप कार्य में इन दोनों का समुच्चय मानना चाहिये।

याज्यावषट्कारयोश्च समुच्चयदर्शनं तद्वत् ।३२।

पदार्थ—(च) और (याज्यावषट्कारयोः) जैसे याज्या और वषट्कार का (समुच्चयदर्शनम्) समुच्चय दर्शन होता है (तद्वत्) उसी प्रकार।

भावार्थ—'याज्यया जुहोति' 'वषट्कारेण जुहोति' इन दोनों मंत्रों का जैसे एक होम रूप कार्य में समुच्चय है, वैसे पुरोडाश प्रथन में भी उपर्युक्त दोनों मंत्रों का समुच्चय है।

सिद्धान्त सूत्र—

विकल्पो वा समुच्चयस्याश्रुतित्वात् ।३३।

पदार्थ—(वा) अथवा (विकल्पः) विकल्प है (समुच्चयस्य अश्रुतित्वात्) समुच्चय का श्रवण न होने से।

भावार्थ—समुच्चय का श्रवण न होने से पुरोडाश मंत्रों में विकल्प ही मानना चाहिये।

गुणार्थत्वादुपदेशस्य ।३४।

पदार्थ—(उपदेशस्य) उपदेश (गुणार्थत्वात्) गुणार्थक होने से।

भावार्थ—जब कि मंत्र में 'प्रथस्व' रूप क्रिया पद से कार्य समझा जा सकता है लिंग द्वारा ही मंत्रों का विनियोग हो सकता है, फिर भी विनियोग का ही उपदेश किया है, वह गुणार्थक है, अर्थात् स्तुति रूप अर्थवाद के लिये है।

वषट्कारे नानार्थत्वात् समुच्चयः ।३५।

पदार्थ—(वषट्कारे) वषट्कार दृष्टान्त में (नानार्थत्वात्) भिन्नार्थकता होने से (समुच्चयः) वहाँ समुच्चय मानना पड़ता है।

भावार्थ—वषट्कार रूप जो दृष्टान्त दिया है, वह उचित नहीं, कारण 'याज्या' यह तो मंत्र है और वह देवता का स्मरण कराता है। वषट्कार तो प्रदान के लिये है। इस प्रकार याज्या और वषट्कार के पृथक् २ अर्थ के लिये वहाँ समुच्चय हो सकता है, पर 'उरु प्रथस्व' आदि मंत्रों में ऐसा भेद न होने से विकल्प ही मानना चाहिये।

हौत्र मंत्रों का भी समुच्चय है, इस अधिकरण के सूत्र।

पूर्वपक्ष सूत्र—

हौत्रास्तु विकल्पेरन्नेकार्थत्वात् ।३६।

पदार्थ—(हौत्राः तु) हौत्र मंत्रों में तो (विकल्पेरन्) विकल्प होता है (एकार्थत्वात्) एकार्थक होने से ।

भावर्थ—'यूपाय उच्छ्रीयमाणाय अनुब्रूहि' इस प्रकार प्रैषवाक्य के पीछे होता को उच्छ्रायण लिंगक मंत्र बोलना चाहिये । उच्छ्रायण लिंगक मंत्र चार हैं—उच्छ्रयस्व वनस्पते' प्रथम, 'समिद्धस्य' द्वितीय, 'उर्ध्वम् ऊषु णः' तृतीय और 'उर्ध्वोन' चतुर्थ इन चारों मंत्रों का समुच्चय मानना या विकल्प ? इसमें । पूर्वपक्षवादी का मानना है कि विकल्प मानना चाहिये ।

सिद्धान्त सूत्र—

क्रियमाणानुवादित्वात् समुच्चयो वा हौत्राणाम् ।३७।

पदार्थ—(वा) अथवा (क्रियमाणानुवादित्वात्) क्रियमाण कर्म का अनुवाद होने से (समुच्चयः) समुच्चय है (हौत्राणाम्) हौत्र मंत्रों का ।

भावर्थ—निर्वापादि मंत्रों के तुल्य कर्ता का स्मरण कराने वाले ये मंत्र नहीं, पर अध्वर्यु जो काम करता है, उसका अनुवाद होता को करना होता है । अतः हौत्र मंत्रों में समुच्चय ही मानना चाहिये, विकल्प नहीं ।

समुच्चयं च दर्शयति ।३८।

पदार्थ—(च) और (समुच्चयं दर्शयति) समुच्चय वनाने वाला वाक्य भी है ।

भावार्थ—'त्रिःप्रथमामन्वाह' प्रथम ऋचा को तीन वार बोलना, 'त्रिरुत्तमाम्' तीसरी ऋचा तीन बार बोलनी । यहाँ प्रथमत्व और उत्तमत्व मंत्र गणन बिना सम्भव नहीं हो सकता । अतः समुच्चय ही मानना चाहिये ।

इति मीमांसादर्शनभाष्ये द्वादशाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥१२।३॥

अथ मीमांसादर्शने
द्वादशाध्यायस्य चतुर्थः पादः

जप, स्तुति, आशीः तथा अभिधान का समुच्चय है। इस अधिकरण के सूत्र—

जपाश्चाकर्मसंयुक्ताः स्तुत्याशीरभिधानाच्च याजमानेषु समुच्चयः स्यादाशीः पृथक्त्वात् ।१।

पदार्थ—(जपाः च) और जप के मंत्रों का समुच्चय है (अकर्मसंयुक्ताः) कर्मप्रकाशक लिंग से शून्य होने के कारण (स्तुत्याशीरभिधानात्) स्तुति, आशीः तथा अभिधान होने से (याजमानेषु) यजमान कर्म में (समुच्चयः स्यात्) समुच्चय होता है। (आशीः पृथक्त्वात्) आशीः पृथक् पृथक् होने से।

भावार्थ—कर्मप्रकाशक लिंग से रहित और यजमान बोलने में आता जप प्रयोजन वाले मंत्रों का समुच्चय मानने में आता है। मंत्रों का भी समुच्चय मानना कारण कि उनका अर्थ इष्ट होता है। **वैष्णवीमनूच्य वाग् यन्तव्या सारस्वतीमनूच्य वाग् यन्तव्या। बार्हस्पत्यमनूच्य वाग् यन्तव्या** । इनसे जप का विधान होता है। **'अग्निर्मूर्धा'** इत्यादि स्तुति के मंत्र हैं और **'आयुर्दा अग्नेस्यायुर्मे देहि'** यह आशीः मंत्र है। भावार्थ यह है कि जिन मंत्रों में आशिष बताई है, उन सबका समुच्चय करना। केवल एक ही आशी वचन बोलकर दूसरे को छोड़ना, यह नहीं समझना चाहिये। कारण कि पृथक् अर्थों की आशिष तथा स्तुति पृथक् होती है। इस प्रकार जप के जो मंत्र हों उनका भी समुच्चय समझना।

समुच्चयं च दर्शयति ।२।

पदार्थ—(च) और (समुच्चयं च दर्शयति) समुच्चय बताते हैं।

भावार्थ—**'त्रिः प्रथमामन्वाह'** इत्यादि वाक्यों से समुच्चय भी बताया गया है। इस स्थान पर शाबर भाष्य में इस प्रकार उल्लेख है—**एकस्मिश्च**

मन्त्रे त्रितयमपि संभवति स्तुतिरभिधानं जपश्च, यथा इदं विष्णुर्विचक्रमे इति। यदि विष्णुर्बोध्यते ततः स्तुतिः अथान्यस्मै वृत्तान्त आख्यायते ततोऽभिधानम्। अथात्मनावधार्यते ततो जपः। एक ही मंत्र में स्तुति, अभिधान और जप तीनों होते हैं। जैसे कि '**इदं विष्णुर्विचक्रमे**' इत्यादि मंत्र में दूसरे को विष्णु का बोध कराया जाय तो वह स्तुति, जो केवल वृत्तान्त ही कहा जाय तो अभिधान और स्वयं के लिये निर्णय करता हो तो जप कहलाता है।

ऐन्द्र बार्हस्पत्य में द्विविध याज्या और अनुवाक्य का विकल्प है, इस अधिकरण के सूत्र—

याज्यानुवाक्यासु तु विकल्पः स्याद् देवतोपलक्षणार्थत्वात्।३।

पदार्थ—(तु) पर (याज्यानुवाक्यासु) ऐन्द्र बार्हस्पत्य लिंगक अनेक याज्या और पुरोवाक्या युगलों का (विकल्पः स्यात्) विकल्प माना जाता है (देवतोपलक्षणार्थत्वात्) देवता के स्मरण के लिये होने से।

भावार्थ—'**इदं वामास्ये हविः**' इस अनुवाक में ऐन्द्र और बार्हस्पत्य लिंग वाले याज्या और अनुवाक्या के युगल आम्नात हैं। इसमें समुच्चय मानना उचित नहीं पर विकल्प ही मानना चाहिये अर्थात् कोई भी एक याज्या और अनुवाक्या ऋक् बोलनी चाहिये। याज्या और अनुवाक्या का उद्देश्य देवता का स्मरण कराने का होता है और इष्टफल तो एक ही होता है।

लिंगदर्शनाच्च ।४।

पदार्थ—(च) और (लिंगदर्शनात्) लिंगवाक्य का दर्शन होने से।

भावार्थ—'**द्वे द्वे संभरन्ति**' इसमें एक याज्या और एक पुरोवाक्या संज्ञक, इस प्रकार मिलकर दो ऋचाओं का कथन है। इस लिंग वाक्य से भी विकल्प ही जाना जाता है।

सोमद्रव्य के साधनभूत द्रव्यों के समुच्चय का अधिकरण—

पूर्वपक्ष—

क्रयणेषु तु विकल्पः स्यादेकार्थत्वात् ।५।

पदार्थ—(तु) पूर्वपक्ष द्योतक अव्यय है। (क्रयणेषु) सोम खरीदने के द्रव्यों में (विकल्पः स्यात्) विकल्प होता है (एकार्थत्वात्) सबका एक प्रयोजन होने से।

भावार्थ—सोमक्रय करने के अनेक साधन होते हैं। '**अजया क्रीणाति हिरण्येन क्रीणाति**' इत्यादि। बकरी देकर सोम खरीदा जा सकता है, स्वर्ण,

देकर भी खरींदा जा सकता है। वस्त्र देकर भी सोम लिया जा सकता है। इन द्रव्यों में से कोई एक द्रव्य देकर सोमलता खरीदनी चाहिये। सर्व द्रव्यों से सोम क्रय करना आवश्यक नहीं। अतः सोम क्रय के साधन द्रव्यों में विकल्प है। ऐसा पूर्वपक्षवादी का मन्तव्य है।

सिद्धान्त सूत्र—

समुच्चयो वा प्रयोगे द्रव्यसमवायात् ।६।

पदार्थ—(वा) अथवा (समुच्चयः) समुच्चय है (प्रयोगे) प्रयोग में (द्रव्यसमवायात्) द्रव्यों का समवाय बताया होने से।

भावार्थ—प्रयोग में अर्थात् सोम याग में जितने द्रव्य सोम क्रय के साधन रूप में वर्णित हैं उन सभी से सोम खरीदना चाहिये। इसलिये साधन द्रव्य का समुच्चय है, विकल्प नहीं।

समुच्चयं च दर्शयति ।७।

पदार्थ—(च) और (समुच्चयं दर्शयति) समुच्चय बोधक वचन भी हैं।

भावार्थ—दशभिः क्रीणाति, दशाक्षरा विराट्, विराजमेव प्राप्नोति। इत्यादि वाक्य द्रव्यों का समुचचय बताते हैं। अतः क्रयद्रव्य का समुचचय मानना, यही सिद्धान्त है।

उपयजनादि प्रतिपत्ति कर्मों का समुच्चय है। इस अधिकरण का सूत्र—

संस्कारे च तत्प्रधानत्वात् ।८।

पदार्थ—(च) और (संस्कारे) संस्कार में (तत्प्रधानत्वात्) वह प्रधान होने से।

भावार्थ—उपयजन में होमीय द्रव्य के प्रधान होने से सकल द्रव्यों का समुच्चय है। 'प्रतिप्रधानमंगावृत्तिः' प्रधान के अनुसार अंग कर्मों की आवृत्ति करनी आवश्यक है।

आधान में विविध संख्याक दक्षिणाओं का विकल्प है, इस अधिकरण के सूत्र।

संख्यासु तु विकल्पः स्याच्छ्रुति विप्रति षेधात् ।९।

पदार्थ—(तु) सिद्धान्त सूचक है (संख्यासु) संख्याओं में (विकल्पः स्यात्) विकल्प है (श्रुतिविप्रतिषेधात्) संख्या के श्रवण में विरोध होने से।

भावार्थ—आधान में इस प्रकार श्रवण है—एका देया, षट्देया, द्वादश देया। इस प्रकार दक्षिणा दान का विधान है। यहाँ समुच्चय मानना या

विकल्प ? उस शंका के समाधान में यह सूत्र है और दक्षिणाओं में विकल्प है। समुच्चय नहीं यह सिद्धान्त है। अर्थात् एक को एक ही दक्षिणा देनी, अनेक नहीं।

पशु गणों में द्रव्याहुतियोंका विकल्प है, इस अधिकरण के सूत्र।

सिद्धान्त सूत्र —

द्रव्यविकारे च पूर्ववदर्थकर्म स्यात् तथा विकल्पे नियमः प्रधानत्वात् ।१०।

पदार्थ—(द्रव्यविकारे च) और द्रव्य के विकार में (पूर्ववत्) उपर्युक्त अधिकरण के अनुसार (अर्थकर्म स्यात्) अर्थ कर्म है, अर्थात् विकल्प है। (तथा विकल्पे नियमः) तथा विकल्प में नियम बंधा है (प्रधानत्वात्) प्रधान होने से द्रव्य होम का समुच्चय नहीं।

भावार्थ—यदि यज्ञ में अधिक पशु दान में दिये जावें तो, वहाँ उनसे सम्बन्धित पवित्र द्रव्यों का होम किया जाता है। इन द्रव्यों में विकल्प है, अर्थात् किसी एक द्रव्य से होम करना, सभी द्रव्यों से नहीं। कर्मप्रधान होते हैं, और द्रव्य गुण होते हैं अतः विकल्प होना ही इष्ट है।

सिद्धान्ताक्षेप सूत्र—

द्रव्यत्वेऽपि समुच्चयो द्रव्यस्य कर्मनिष्पत्तेः प्रतिपशु कर्मभेदादेवं सति यथाप्रकृति ।११।

पदार्थ—(द्रव्यत्वे अपि समुच्चयः) क्रिया के लिये गुणभूत होने पर भी (द्रव्यस्य कर्मनिष्पत्तेः)होमने योग्य द्रव्य की उत्पत्ति कर्म से हुई होने के कारण (प्रतिपशु) प्रत्येक पशु के पीछे (कर्मभेदात्) कर्म का भेद होने से समुच्चय होना इष्ट है। (एवं सति)इस प्रकार होने से (यथाप्रकृति)प्रकृति के अनुसार होना योग्य है।

भावार्थ—क्रिया को उद्दिष्ट कर द्रव्य गुण रूप होता है। तथापि द्रव्यों का समुच्चय होना इष्ट है। कारण कि द्रव्य के होम के योग्य विशुद्धि गुण वाला बनाना कर्म से होता है। तथा जो जो पशुदान में दिया जाता है उसके पीछे होम रूप कार्य करना होता है। इस प्रकार प्रकृति के अनुसार विकृति में भी समुच्चय होना ही उचित है। ऐसा सिद्धान्त पर आक्षेप करने वाले का मानना है।

कपालेऽपि तथेति चेत् ।१२।

पदार्थ—(कपाले अपि तथा) कपालों में भी समुच्चय मानना चाहिये (इति चेत्) यदि ऐसी शंका हो तो—

भावार्थ—कर्म के द्रव्य की निष्पत्ति होती है। इसलिये कारण से ही जो द्रव्य का समुच्चय माना जावे तो कपाल रूप द्रव्य का भी समुच्चय मानना चाहिये। कारण कपालों का प्रयोग भी कर्म से ही होता है।

न कर्मणः परार्थत्वात् ।१३।

पदार्थ—(न) नहीं (कर्मणः परार्थत्वात्) कर्म तो परार्थ ही होता है।

भावार्थ—कर्म तो परार्थ ही होता है। इसके कारण द्रव्यों में समुच्चय नहीं माना जा सकता। तद्यथा काष्ठान्याहर्तुं प्रस्थिते पुरुषे शाकाहरणमप्युपाधिः क्रियते शाकमप्याहरेति। शावर भाष्य। कोई मनुष्य काष्ठ लेने जाता हो और उसे शाक भी लाने के लिये कहा जाता है कि खेत से शाक भी लेते आना। पर यहाँ काष्ठानयन मुख्य है और शाकानयन गौण है। इसलिये इन दोनों का समुच्चय नहीं हो सकता। पर शाक विकल्प ही रहता है। वैसे प्रकृत स्थल में भी होमीय द्रव्यों में से किसी एक द्रव्य का विकल्प ही होता है।

प्रतिपत्तिस्तु शेषत्वात् ।१४।

पदार्थ—(तु) पर (प्र[ति]पत्तिः) प्रतिपत्तिरूप कर्म है (शेषत्वात्) शेष होने से।

भावार्थ—यह सूत्र भी शेष द्रव्यों में समुच्चय वताने की ही आशंका करता है। अवशिष्ट द्रव्य की प्रतिपत्ति करनी होती है। प्रतिपत्ति अर्थात् उसे योग्य स्थान में रखना। इससे भी समुच्चय की ही सिद्धि होती है।

शृतेऽपि पूर्ववत् ।१५।

पदार्थ—(शृते अपि) शृत में भी (पूर्ववत्) पूर्व के तुल्य समुच्चय ही है।

भावार्थ—शृते चरुम्, दधंश्चरुम् इस प्रकार अभ्युदयेष्टि में आम्नान है। येऽणिष्ठास्तान् विष्णवे शिपिविष्टाय शृते चरुमिति विहिते शृते क्षीरेऽपि। अत्र शृतपदं ये स्थविष्ठास्तानिन्द्राय प्रदात्रे दधंश्चरुमित्यत्र दध्नोप्युपलक्षणम्। इस लेख से प्रतिपत्ति कर्म वताया गया है और समुच्चय का प्रतिपादन किया गया है।

सिद्धान्त सूत्र—

विकल्पे त्वर्थकर्म नियमप्रधानत्वाच्छेषे च कर्म कार्यसमवायात्तस्मात् तेनार्थकर्म स्यात् ।१६।

पदार्थ—(विकल्पे तु अर्थकर्म) विकल्प में तो अर्थकर्म होता है (नियम-प्रधानत्वात्) नियम में ही तात्पर्य होने से (शेषे च) और शेष में (कर्म) अर्थ-कर्म है। (कार्यसमवायात्) शृत का कार्य में समवाय होने से (तस्मात्) अतः (तेन अर्थ कर्म स्यात्) अर्थ कर्म ही है।

भावार्थ—पशु को दान में दिये पीछे उसके अंग में जो होमीय द्रव्य होते हैं वे एक ही द्रव्य से होम करने, ऐसा नियम होता है। इसलिये प्रकृति प्राप्त अर्थ कर्म का वरण नहीं हो सकता। शेष द्रव्य में भी यदि तो द्रव्य का कहीं भी उपयोग न हुआ हो तो इसका प्रतिकर्म होता है पर यदि इसका कहीं भी उपयोग करना हो तो वह अर्थकर्म ही कहलाता है। दधि और शृत का कहीं भी उपयोग न हुआ होने से इनका प्रतिपत्ति कर्म नहीं, पर अर्थ कर्म ही है।

काम्य अग्नि के साथ नित्य अग्नि का विकार है। इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष सूत्र—

उखायां काम्यनित्यसमुच्चयो नियोगे कामदर्शनात् ।१७।

पदार्थ—(उखायाम्) उखा में (काम्यनित्यसमुच्चयः) काम्य और नित्य अग्नि का समुच्चय है (नियोगे) अग्नि के नियोजन में (कामदर्शनात्) काम का दर्शन हुआ होने से।

भावार्थ—अग्नि चयन रूप कर्म में उखा बनाकर उसमें अग्नि का धारण कर रक्खा जाता है। यह नित्य अग्नि है। अब उसमें काम्य अग्नि का भी श्रवण होता है—**वृक्षाग्राज्ज्वलतो ब्रह्मवर्चसकामस्य आहृत्य अवदध्यात्।** जिसे ब्रह्मवर्चस की कामना हो उसे वनदाह के समय जलते अग्रभाग से अग्नि लाकर आधान करना चाहिये। यह अग्नि काम्य कहलाती है। कारण कि ब्रह्मवर्चस रूप कामना का इसके साथ सम्बन्ध है। काम्य अग्नि अनित्य होती है। इससे नित्य अग्नि में होम करना चाहिये। जो काम्य अग्नि है, वह तो फल के लिये धारण की जाती है। **वृक्षाग्निः केवलनिधानार्थः, संतापाग्नि-**

होमार्थः। इस प्रकार दोनों अग्नियों का पृथक् २ फल होने से बाध नहीं होता अतः उनका समुच्चय होता है।

असति चासंस्कृतेषु कर्म स्यात् ।१८।

पदार्थ—(असति च) यदि समुच्चय मानने में न आवे तो (असंस्कृतेषु) असंस्कृत अग्नि में (कर्म स्यात्) कर्म करना पड़े।

भावार्थ—यदि काम्य अग्नि से नित्य अग्नि का बाध हो तो असंस्कृत अग्नि ही में किया कहलाये। वृक्षाग्र से लाई अग्नि असंस्कृत कहलाती है। संस्कृत अग्नि ही सबके लिये होती है, अतः बाध नहीं होता पर समुच्चय है, ऐसा मानना चाहिये।

तस्य च देवतार्थत्वात् ।१९।

पदार्थ—(तस्य च) और वह अग्नि (देवतार्थत्वात्) देवता के लिये होती है।

भावार्थ—नित्य अग्नि देवतोद्देश्यक होमार्थ होने से उसमें विद्यमान काम्य अग्नि तो केवल सन्निधान के लिये ही रक्खी जाती है, अतः समुच्चय मानना चाहिये।

सिद्धान्त सूत्र—

विकारो वा तदुक्तहेतुः ।२०।

पदार्थ—(वा) अथवा (विकारः) बाध होता है (तदुक्तहेतुः) वह हेतु कहलाता है।

भावार्थ—नित्य अग्नि कि जो होम के लिये विहित है, उसका बाध होता है। इसलिये कि नित्य अग्नि का जो कार्य है, वह काम्य अग्नि भी करती है, अर्थात् काम्य अग्नि में होम होता है। यदि काम्य अग्नि में होम न हो तो उसका आहरण करना व्यर्थ है। जहाँ बाधक नहीं हो, वहाँ नित्य अग्नि भी काम करेगी। अतः इसके विषय का भी लोप नहीं होगा। बाध होने से विकल्प मानना पड़ता है। जो कामनायुक्त हो उसे काम्य अग्नि में होम करना चाहिये और जो अकामी हो उसे नित्य अग्नि में होम करना चाहिये।

वचनादसंस्कृतेषु कर्म स्यात् ।२१।

पदार्थ—(वचनात्) वचन होने से (असंस्कृतेषु) असंस्कृत अग्नि में (कर्म स्यात्) कर्म होना चाहिये।

भावार्थ—वचन के बल से असंस्कृत अग्नि में भी होम रूप कर्म हो सकता है।

संसर्गे चापि दोषः स्यात् ।२२।

पदार्थ—(अपि संसर्गे च) पर संसर्ग में (दोषः स्यात्) दोष होता है।

भावार्थ—यदि समुच्चय मानने में आवे तो प्रादाव्य अग्नि के साथ वैहारिक अग्नि का संसर्ग होगा और उसमें दोष का श्रवण होगा। असंस्कृत अग्नि को प्रादाव्य अग्नि कहा जाता है। 'अग्नये शुचयेऽष्टाकपालं निर्वपेत्। शुचि अग्नि में अष्टाकपाल पुरोडाश का निर्वाप करना। अतः समुच्चय न मानना।

वचनादिति चेत् ।२३।

पदार्थ—(वचनात्) वचन के कारण संसर्ग मानना (इति चेत्) जो ऐसी शंका हो तो ?

भावार्थ—संसर्ग करने का वचन है। वाचनिक कर्म करने में किसी भी प्रकार का दोष नहीं जो ऐसी शंका हो तो इसका उत्तर अगले सूत्र में है।

तथेतरस्मिन् ।२४।

पदार्थ—(तथा) इस प्रकार (इतरस्मिन्) अन्य पक्ष में भी वचन है।

भावार्थ—असंस्कृत अग्नि में होम करना भी वाचनिक ही है। अतः इसमें भी दोष नहीं। इससे यह सिद्ध होता है कि नैमित्तिक अग्नि हो, उससे नित्य का बाध मानना चाहिये, दोनों का समुच्चय नहीं।

उत्सर्गेऽपि कर्मणः कृतत्वात् ।२५।

पदार्थ—(उत्सर्गे अपि) उत्सर्ग अग्नि में भी (कर्मणः कृतत्वात्) कर्म किया होने से।

भावार्थ—नित्य अग्नि देवता परिग्रह के लिये है, यह जो कहा है उसमें भी दोष नहीं आता। अग्नि के अन्वाधान से देवता का परिग्रह हो सकता है। केवल अग्नि से नहीं। जो अन्वाधान रूप कर्म किया गया है उससे देवता का परिग्रह भी होता है। अतः दूसरी अग्नि में भी वचन से यजन होता है।

वैकारिक अग्नि में आहवनीयत्व का अभाव है, इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष सूत्र—

स आहवनीयः स्यादाहुतिसंयोगात् ।२६।

पदार्थ—(सः आहवनीयः)वृक्षाग्र के ऊपर से लाई अग्नि आहवनीय संज्ञा वाली (स्यात्) होती है (आहुतिसंयोगात्) आहुति के सम्बन्ध से।

भावार्थ—वृक्षाग्र के ऊपर से लाई अग्नि वैकारिक अग्नि कहलाती है, इसे आहवनीय नाम दिया जाता है या नहीं, इस शंका के सम्बन्ध में पूर्वपक्षवादी का ऐसा मानना है कि इसे 'आहवनीय' नाम दिया जा सकता है, कारण कि 'हूयतेऽस्मिन्' इसमें भी आहुतियाँ दी जाती हैं। आहुति के सम्बन्ध से आहवनीय संज्ञा उस पर भी लागू होती है।

सिद्धान्त सूत्र—

अन्यो वोद्धृत्याहरणात् ।२७।

पदार्थ—(वा) अथवा (अन्यः) आहवनीय से अन्य है (उद्धृत्य आहरणात्) वृक्ष के अग्र भाग के ऊपर से लाई जाने वाली होने से।

भावार्थ—वृक्ष के अग्र के ऊपर से लाई जाने वाली लौकिक अग्नि है। वह आहवनीय नहीं कहला सकती। आधानादि से संस्कृत हुई अग्नि ही आहवनीय कहलाती है। केवल योग से आहवनीय नाम प्रसिद्ध है।

वैकारिक अग्नि के आधानिक संस्कार का अभाव है। इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्षसूत्र—

तस्मिन् संस्कारकर्म शिष्टत्वात् ।२८।

पदार्थ—(तस्मिन्) उस वैकारिक अग्नि में (संस्कारकर्म) आधानादि संस्कार कर्म करना चाहिये (शिष्टत्वात्) सर्व कर्म के शेष रूप में विहित होने से।

भावार्थ—वैकारिक अग्नि में आधानादि संस्कार करने चाहिये। कारण कि वे सर्वकर्मों के शेष रूप में विहित हैं। जो आधान संस्कार न किये जावें तो उसके लिये किया गया होम विगुण हो जायगा।

सिद्धान्त सूत्र—

स्थानात्तु परिलुप्येरन् ।२९।

पदार्थ—(तु) सिद्धान्त सूचक है (स्थानात्) असंस्कृत अग्नि संस्कृत अग्नि के स्थान में आया होने से (परिलुप्येरन्) आधानादि संस्कारों का उसमें लोप है।

भावार्थ—संस्कृत अग्नि के स्थान में वह वैकारिक अग्नि आई है, अतः इसमें आधानादि संस्कार न करने चाहियें। यथा 'चैत्रो मैत्रकार्ये विनियुक्तः मैत्रकार्यं कुरुते, मैत्रमातुरुदरार्दिनःसरणादि नापेक्षते।' (जैमिनिसूत्रवृत्ति) मैत्र के कार्य में विनियुक्त हुआ चैत्र, मैत्र का काम करता है, पर मैत्र की माता

के उदर से जन्म लेने आदि की क्रियाओं की वह अपेक्षा नहीं रखता। अतः वैकारिक अग्नि आधानादि संस्कार की अपेक्षा नहीं रखती।

नित्य उख्य अग्नि के नित्य धारण करने का अभाव है। इस अधिकरण के सूत्र—

पूर्वपक्ष सूत्र—

नित्यधारणे विकल्पो ह्यकस्मात्प्रतिषेधः स्यात् ।३०।

पदार्थ—(नित्यधारणे) उख्य अग्नि के नित्य धारण करने में (विकल्पः) विकल्प है। (हि) कारण कि (अकस्मात् प्रतिषेधः न स्यात्) अकस्मात् प्रतिषेध नहीं हो सकता।

भावार्थ—अग्नि चयन में जो नित्य उख्य अग्नि है, उसका सार्वकालिक धारण विकल्पित है। कारण कि—**न प्रति समिध्यः** इत्यादि प्रतिषेध अकस्मात् नहीं हो सकता। प्राप्ति पूर्वक प्रतिषेध होता है। अतः धारण विधि की कल्पना की जाती है। अतः नित्य धारण की विधायिका श्रुति की कल्पना करनी चाहिये। इस कारण से उख्य अग्नि का नित्य धारण करने में विकल्प है।

सिद्धान्त सूत्र—

नित्यधारणाद् वा प्रतिषेधो गतश्रियः ।३१।

पदार्थ—(वा) अथवा (नित्यधारणात्) नित्य धारण होने से (गतश्रियः प्रतिषेधः) गत श्री के लिये प्रतिषेध है।

भावार्थ—गतश्री पुरुष की उख्य अग्नि नित्यधारण करनी होती है। अतः उसका ही प्रतिषेध उख्य अग्नि में है, अतः विकल्प नहीं। **'धार्यो गतश्रिय आहवनीयः'** यह वाक्य गतश्री के आहवनीय अग्नि के धारण करने का विधान करता है। **आहवनीय स्थानापन्नत्वात् उख्यस्यापि** (शाबर भाष्य) आहवनीय स्थानापन्न उख्य अग्नि होने से उसका भी नित्य धारण प्रसक्त है। अतः उसके प्रतिषेध के लिये ही **'न प्रतिसमिध्यः'** इत्यादि श्रुति है। भाव यह है कि गतश्री के सिवाय अन्य उख्य अग्नि के नित्य धारण करने का अभाव है।

सत्र में शुक्र ग्रह स्पर्शादि का एक कर्तृकत्व है, इस अधिकरण के सूत्र—

परार्थान्येको यजमानगणे ।३२।

पदार्थ— (यजमानगणे) अधिक यजमानों में (परार्थानि) परार्थ कर्म (एकः) एक यजमान करता है।

भावार्थ—'शुक्रं यजमानोऽन्वारभते' इत्यादि शुक्र ग्रह संस्कारादि कर्म परार्थ होने से एक ही यजमान करता है। सत्र में अनेक यजमान होते हैं, तत् तत् कर्म सभी को नहीं करना।

अहीन यज्ञ में शुक्रस्पर्शादि कोई भी कर सकता है, इस अधिकरण के सूत्र—

अनियमोऽविशेषात् ।३३।

पदार्थ—(अनियमः) नियम नहीं (अविशेषात्) विशेष न होने से।

भावार्थ—अहीन क्रतु में शुक्र स्पर्श कोई भी यजमान कर सकता है। अमुक ही यजमान स्पर्श करे, ऐसा नियम नहीं है। विशेष का अवधारण कराने का कोई प्रमाण नहीं मिलता।

सत्र में शुक्र स्पर्श गृहपति को ही करना, इस अधिकरण का सूत्र—

मुख्यो वाऽविप्रतिषेधः ।३४।

पदार्थ—(वा) अथवा (मुख्यः) मुख्य यजमान ही सत्र में शुक्र स्पर्श करे (अविप्रतिषेधात्) विरोध न होने से।

भावार्थ—सत्र में यजमान के कार्य जो शुक्रग्रह स्पर्श आदि हैं, वे तो मुख्य गृहपति को ही करने चाहियें, ऐसा करने में कोई विरोध न होने से।

सत्र में अंजनादि संस्कार सभी को करना, इस अधिकरण के सूत्र।

सत्रे गृहपतिसंयोगात् हौत्रवत् ।३५।

पदार्थ—(सत्रे) सत्र में अंजन और अभ्यंजन संस्कार (गृहपतिः) गृहपति को ही करना (असंयोगात्) असंयोग का अभाव होने से (हौत्रवत्) होता के तुल्य।

भावार्थ—जैसे हौत्र कर्म होता ही करता है, और इससे होतृ शब्द की शक्ति अबाधित रहती है, वैसे ही अंजनादि संस्कार गृहपति द्वारा ही करने चाहियें। वैसा करने से गृहपति शब्द की शक्ति अबाधित होती है।

आम्नायवचनाच्च ।३६।

पदार्थ—(च) और (आम्नायवचनात्) आम्नाय का वचन होने से।

भावार्थ—गृहपति के लिये आम्नाय का वचन भी है। 'यसां भूयजमानानां यो गृहपतिः स भूयिष्ठामृ द्धिमध्नोंति।' जो गृहपति होता है, वह अधिक ऋद्धि प्राप्त करता है।

सिद्धान्त सूत्र—

सर्वे वा तदर्थत्वात् ।३७।

पदार्थ—(वा) अथवा (सर्वे) सभी यजमान अंजनादि संस्कार करें (तदर्थत्वात्) वे सबके लिये होने से।

भावार्थ—सोलह ऋत्विज् और एक गृहपति सब मिलकर सत्रह होते होते हैं। इन सबके लिये संस्कार है। अतः अंजनादि संस्कारों से सभी संस्कार्य हैं।

गृहपतिरिति च समाख्या सामान्यात् ।३८।

पदार्थ—(च) और (गृहपति इति समाख्या) गृहपति यह समाख्या है। (सामान्यात्) साधारण स्वामित्व का प्रकर्ष बोधक होने से।

भावार्थ—'**ऋद्धिकामाः सत्रमासीरन्**" इस वाक्य से सर्वार्थत्व प्रतीत होता है। '**गृहस्य शालाया मखस्य वा प्रभुत्वं सर्वसाधारणं शक्यार्थस्य बाधाभावः।**' इस वाक्य से सामान्य की प्रतीति होती है। अतः अंजनादि संस्कार सभी को करने चाहियें।

विप्रतिषेधे परम् ।३९।

पदार्थ—(विप्रतिषेधे) विरोध में (परम्) जो पर हो वे होते हैं।

भावार्थ—जहाँ यजमान और ऋत्विजों के कार्य एक साथ करने होते हैं वहाँ ऋत्विजों के कार्य हो करने कारण कि '**ये यजमानास्ते ऋत्विजः**' इस वाक्य से ऋत्विक कर्म आतिदेशिक होने से यजमानके कार्य की अपेक्षा प्रबल है।

हौत्रे परार्थत्वात् ।४०।

पदार्थ—(हौत्रे) होतृ कर्म में (परार्थत्वात्) वह परार्थ होने से।

भावार्थ—हौत्र कर्म करने में पुरुष परार्थ है। अतः वह कर्म किसी एक पुरुष को करना चाहिये। '**तत्र समाख्या नियामिका**' यहाँ समाख्या नियम करने वाली होती है। अर्थात् वह कर्म होता को ही करना चाहिये। वहाँ होता गुणभूत है और एक किये हुये अंजनरूप संस्कार से फल संस्कार होता है। अतः हौत्र कर्म में यजमान प्रधान होता है। अतः प्रधान संस्कार की आवृत्ति करना चाहिये। इसलिये पूर्व में जो हौत्रवत् दृष्टान्त पूर्वपक्षवादी ने दिये हैं। वे उचित नहीं।

वचनं परम् ।४१।

पदार्थ—(वचनम्) आम्नाय वचन जो दिया है वह (परम्) अर्थवाद है।

भावार्थ—फल भूयस्त्व को बताने वाला जो वचन दिया है, वह तो अर्थवाद है। **तत्परमर्थवादः।** (सूत्रवृत्तिः)

ब्राह्मण को ही आर्त्विज्य करने में अधिकार है। इस अधिकरण के सूत्र।

पूर्वपक्ष—

प्रभुत्वादार्त्विज्यं सर्ववर्णानां स्यात् ।४२।

पदार्थ—(प्रभुत्वात्) समर्थ होने से (आर्त्विज्यम्) ऋत्विक् कर्म (सर्ववर्णानाम् स्यात्) सभी वर्णों को करना चाहिये।

भावार्थ—ऋत्विक् का कर्म किस वर्ण को करना चाहिये, इसका निर्णय इस अधिकरण में है। पूर्वपक्षवादी ऐसा मानता है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्णों में से किसी भी वर्ण का पुरुष ऋत्विक् कर्म करा सकता है। कारण कि सभी विद्वान् होते हैं। 'न ह्यविद्वान् विहितोऽस्ति।' जो अविद्वान् है, वह किसी भी कर्म में विहित ही नहीं।

सिद्धान्त सूत्र—

स्मृते वा स्याद् ब्राह्मणानाम् ।४३।

पदार्थ—(वा) अथवा (स्मृतेः) स्मृति प्रमाण से (ब्राह्मणानाम् स्यात्) ब्राह्मण वर्णस्थ पुरुषों को ही ऋत्विक् कर्म कराना होता है।

भावार्थ—याजन, अध्यापन और प्रतिग्रह ये तीन कर्म तो ब्राह्मणों को ही कराने, कारण कि ये उसकी आजीविका रूपी हैं। '**प्रतिग्रहोऽधिको विप्रे याजनाध्यापने तथा।**' ऐसा स्मृति का वचन है। कल्पसूत्र में भी ब्राह्मणों को ही आर्त्विज्य करने को कहा है। अतः ब्राह्मण ही ऋत्विज् हो सकते हैं, क्षत्रिय या वैश्य नहीं।

फलचमसविधानाच्चेतरेषाम् ।४४।

पदार्थ—(च) और (फलचमसविधानात्) फल चमस का विधान होने से (इतरेषाम्) क्षत्रिय और वैश्य वर्णों को।

भावार्थ—ऋत्विजों को आर्त्विज्य कर्म में सोमपान करना होता है। अब क्षत्रिय और वैश्य को सोमपान करने का निषेध है। इसमें इस प्रकार प्रमाण वाक्य हैं—**यदि राजन्यं वैश्यं वा याजयेत् स यदि सोमं बिभक्षयिषेत् न्यग्रोधस्तिमिनीराहृत्यताः सम्पिष्य दधन्मुन्मृत्य तमस्मै भक्षं प्रयच्छेन्न सोमम् इति सोमपान निषेधात्**' यदि राजन्य या वैश्य से यज्ञ कराये और वे जो सोमभक्षण की इच्छा करें तो उन्हें वट वृक्ष की कोंपलों को पीस उसमें दही डालकर खिलाना चाहिये। इस भक्ष को फलचमस कहते हैं। पर सोमरस तो क्षत्रिय और वैश्य को देना नहीं। इस निषेध के कारण क्षत्रिय और वैश्य ऋत्विक् नहीं बन सकते। ऋत्विजों को तो सोमपान करना चाहिये। अतः भाव यह है कि आर्त्विज्य कर्म करने का अधिकार ब्राह्मणों को ही है।

सान्नाय्येऽप्येवं प्रतिषेधः सोमपीथ-

हेतुत्वात् ।४५।

पदार्थ—(सान्नाय्ये अपि एवम्) सान्नाय्य में भी इसी प्रकार (प्रतिषेधः) प्रतिषेध है। (सोमपीथहेतुत्वात्) यह सोम पान का निषेध बताता है।

भावार्थ—सान्नाय्य पान का राजन्य और वैश्य को निषेध है। **'न राजन्यो न वैश्यो वा सान्नाय्यं पिबेत्।'** कारण कि राजन्य और वैश्य असोमपीथ होते हैं। इसलिये सोमपान की योग्यता (अर्हता) राजन्य और वैश्य को नहीं होती।

चतुर्धाकरणे च निर्देशात् ।४६।

पदार्थ—(च) और (चतुर्धाकरणे) चतुर्धाकरण में भी (निर्देशात्) ब्राह्मणों का ही निर्देश है।

भावार्थ—दर्शपूर्णमास याग में चतुर्धाकरण मंत्र लिंग भी ब्राह्मण को ही आर्त्विज्य का अधिकार देता है। **'ब्राह्मणानामिदं हविः सौम्यानां सोमपीथिनाम्'** सोमपान करने वाले ब्राह्मणों का यह हविष् है। **'नेहाब्राह्मणस्यास्ति'** अब्राह्मण का नहीं, अर्थात् चतुर्धाकरण राजन्य अथवा वैश्य का नहीं। शेष हविष् के भक्षण के लिये जो चार भाग किये जाते हैं उसे 'चतुर्धाकरण' कहा जाता है। और उसे ऋत्विजों को ही भक्षण करना होता है। अतः ब्राह्मणों को ही आर्त्विज्य का अधिकार है।

अन्वाहार्ये च दर्शनात् ।४७।

पदार्थ—(च) और (अन्वाहार्ये) अन्वाहार्य दक्षिणा में (दर्शनात्) ब्राह्मणों का ही दर्शन होने से।

भावार्थ—दर्शपूर्णमासिकी दक्षिणा में अर्थात् अन्वाहार्य दक्षिणा लेने के लिये ब्राह्मण ही होते हैं। क्षत्रिय अथवा वैश्य दक्षिणा नहीं लेते। **'एते वै देवा अहुतादो यद्ब्राह्मण यदन्वाहार्यमाहरन्ति तानेव तेन प्रीणाति।'** इस वचन का भाव यह है कि जो ब्राह्मण हैं वे अहुताद अर्थात् अहुत नहीं होमे हुये का भक्षण करने वाला है, अर्थात् दक्षिणा लेने वाला है। इन्हें दक्षिणा लेने में सन्तोष होता है। दक्षिणा ऋत्विजों को ही दी जाती है। अतः सिद्ध होता है कि आर्त्विज्य कर्म में ब्राह्मणों का ही अधिकार है। क्षत्रिय या वैश्य का आर्त्विज्य अथवा ऋत्विक् कर्म में अधिकार नहीं। इति शम्।

इति **मीमांसादर्शनभाष्ये** द्वादशाध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥१२।४॥

सम्पूर्णोऽयं द्वादशाध्यायः सम्पूर्णश्चायं गुर्जरभाषाभाष्यानुवादः ॥

इति श्रीफकीरचन्दतनुजेनरतनकँवरगर्भजेन राजस्थानप्रान्तार्गत-
जोधपुरनगरवास्तव्येन सिद्धान्तवाचस्पति, डाक्टर ऑफ
फिलासफी इत्यादि उपाधिधारिणा भवानीलालभारतीयेन कृतो
मीमांसादर्शनगुर्जरभाष्यस्य आर्यभाषानुवादः समाप्तम्ः ॥